॥ ओ३म् ॥

॥ लघुकौमुदी व्याकरम् ॥

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।
पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

प्रथम इस ग्रन्थ के बनानेवाले वरदराज भट्ट जी ग्रन्थ प्रतिपाद्य श्री वाग्देवी की प्रार्थना करते हैं, कि मैं स्वच्छ वर्ण और शुभ गुणों से युक्त (बुद्धिस्थ अज्ञान को नाश करने वाली) जो सरस्वती देवी हैं, तिसे नमस्कार कर बालकों को पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश के लिये लघुसिद्धान्तकौमुदी नामक ग्रन्थ बनाताहूं॥

॥ महेश्वर सूत्राणि ॥

१ अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् ॥ इति माहेश्वराणी सूत्राणि अणादिसंज्ञार्थानि ॥

ये महेश्वर के १४ सूत्र अण् आदि ४२ प्रत्याहारों के बनाने के लिये काम आते हैं। जिस से पाणिनिजी ने अष्टाध्यायी बनाया और जो उस में कुछ अल्प था, उसे कात्यायन ने वार्तिक बनाकर पूराकिया, और इन्ही दोनों के विचार के लिये पतञ्जली भगवान ने महाभाष्य बनाया। यहां प्रत्याहार शब्द का यौगिक अर्थ नहीं लिया जाता यह परिभाषिक शब्द है, प्रत्याहार उसे कहते हैं, जो सञ्ज्ञा उस (५) सूत्र से बनाई जाती है॥

२ एषामन्त्या इतः हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः लण्मध्ये त्वितसञ्ज्ञकः ॥

इन १४ सूत्रों के अन्त्य अक्षर इत् हैं। जैसे अइउण् सूत्र में णकार इत्। ऋलृक् में ककार इत्यादि। इत् यह पाणिनी जीका पारिभाषिक शब्द है, इसी तौर अनेक शब्द इस ग्रन्थ में आवेंगे जैसा टि, घु, नदी, भू, इत्यादि इनके यौगिक अर्थ नही लिये जाते और फल भी पृथक२ होते हैं, जहां इन्हें लिखेंगे, वही उन के फल भी लिखेंगे। पूर्वोक्त १४ सूत्रों के दो भाग हैं, एक अच्, और दूसरा हल्। अइउण् से लेकर ऐऔच तक अच् और हयवरट् से हल् तक हल् हैं। जो हल वर्णों में स्वर लगाये गये हैं, जैसा ह, य, व

और र इत्यादिकों में अकार है यह केवल उनके उच्चारण के लिये है और जहां मैं लिखे जायेंगे वहां ह न हो किन्तु ह् स्वर के लगाने का तात्पर्य यह है कि हल का होवे क्योंकि बिना स्वर के हलों का उच्चारण ही नहीं हो सका है और यही महाभाष्य कारने लिखा है जिन के उच्चारण में दूसरे वर्णों की सहायता की अपे न होवे उन्हें स्वर कहते हैं "स्वयं राजन्त इति स्वराः" व्यञ्जन उनको कहते हैं जिन का उच्चारण बिना स्वर के नहीं होसकता। "अन्वग्भवति व्यञ्जनम्" ॥

३ हलन्त्यम्। १। ३। ३। उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात्। उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ॥

उपदेश में जो अन्त्य हल् है वह इत्संज्ञक होय। पाणिनि कात्यायन और पतञ्जलि का जो प्रथम उच्चारण उसे उपदेश कहते हैं। पाणिनीजी ने जो सूत्र बनाये हैं उन्होंने उन को ऐसे क्रम से लिखा है कि पहिला सूत्र अगले की सहायता करे। यहां इस के लिखने की आवश्यकता यह है कि इस ग्रन्थ के पढ़ने वाले छात्र सूत्रों के अर्थों का इस सन्देह में न पड़ें जैसा हलन्त्यम् सूत्र है इस की वृत्ति में उपदेश पद दिया है यह तो सूत्र में है ही नहीं वृत्ति में कैसे आया यह पिछले सूत्र से आया है और इस के आने को अनुवृत्ति कहते हैं। इसी भांति सब सूत्रों में जानना। हल् सूत्र में जो अकार है वह उच्चारण के लिये नहीं किन्तु उसकी इत् संज्ञा होती है। और इस का फल आगे लिखेंगे।

४ अदर्शनं लोपः। १। १। ६०। प्रसक्तस्याऽदर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्। तस्य लोपः १। ३। ९। तस्येतो लोपः स्यात्। णादयोऽणाद्यर्थाः ॥

जो वस्तु है उसके न रहने को लोप कहते हैं। जिस की इत्संज्ञा होती है तिसका लोप होय। जो अ इ उ ण् ऋलृक् इत्यादि शिव सूत्रों के अन्त्य में ण् क् इत्यादि इत् हैं सो अण्, इक्, अच् इत्यादि प्रत्याहारों के लिये हैं। अब प्रत्याहार बनाने का क्रम लिखते हैं।

५ आदिरन्त्येन सहेता। १। १। ७१। अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथाऽणिति अ इ उ वर्णानां संज्ञा, एवमच् हल् अलित्यादयः ॥

प्रत्येक प्रत्याहार अन्त्य इत्संज्ञक वर्णों के सहित आदि वर्णों से मध्यस्थ वर्णों का बोध होजाता है। जैसा अण् (१) सूत्र से ण् की इत्संज्ञा होती है फिर (४) अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण है ण् उस के साथ आदि वर्ण है अ उस के मध्यस्थ वर्ण हैं इ उ अर्थात् अण् कहने से अ इ उ का बोध भया ण् का लोप होजाता है। (५) इसी रीति अच् हल् अल् इत्यादि प्रत्याहारों को जानना। ये ४२ प्रत्याहार हैं —

अण् १, अण् २, अक् ३, अच् ४, अट् ५, अम् ६, अश् ७, अल् ८, इक् ९, इण् १०, इच् ११, उक् १२, एच् १३, एङ् १४, ऐच् १५, खय् १६, खर् १७, ङम् १८, चर् १९, चय् २०, छव् २१, जश् २२, झल् २३, झष् २४, झर् २५, झय् २६, ञम् २७, मय् २८, भष् २९, यण् ३०, यय् ३१, यञ् ३२, यम् ३३, यर् ३४, रल् ३५, शर् ३६, शल् ३७, वय् ३८, वश् ३९, वल् ४०, हल् ४१, हश् ४२ ॥

६ ऊ३ कालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः। १। २। २७। उश्च ऊश्च ऊ३ श्च व. वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुत-सञ्ज्ञा स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा ॥

अङ्गुष्ठ के मूल की नाडी की गति जितने काल में एकबार होती है, उतने काल में ह्रस्व, उस से दूने काल में दीर्घ, और उस से तिगुन काल में प्लुत् का उच्चारण करना चाहिये। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से प्रत्येक स्वर तीन प्रकार के हैं ॥

७ उच्चैरुदात्तः। १। २। २९ ॥

ताल्वादि स्थान के ऊपर के भाग में जो अच् निष्पन्न होता है, उसे उदात्त कहते हैं।

८ नीचैरनुदात्तः। १। २। ३० ॥

ताल्वादि स्थान के अधोभाग में जो अच् निष्पन्न होता है उसे अनुदात्त कहते हैं ॥

९ समाहारः स्वरितः। १। २। ३१। स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाऽननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥

उदात्तत्व और अनुदात्तत्व ये दोनों वर्ण धर्म जिस में मिले हों उसे स्वरित कहते हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये स्वर के गुण हैं, और इन का काम केवल वेद में पड़ता है। अनुनासिक और अननुनासिक भेद से स्वरों की संख्या द्विगुण होती है ॥

१० मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः। १। १। ८। मुखसहितनासिकयोच्चार्य्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्। तदित्थम् अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः लृवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाऽभावात्। एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाऽभावात् ॥

मुख सहित नासिका से जिस वर्ण का उच्चारण होता है, उसे अनुनासिक और जिस का नहीं होता उसे निरनुनासिक कहते हैं। पूर्वोक्त अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, ये १८ प्रकार के हैं। जैसे एक अ, के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ये तीन भेद हैं। तब इन प्रत्येक के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेदों से नव भेद हुए, तब नव अनुनासिक और ९ अननु

और ए इत्यादिकों में अकार है यह केवल उनके उच्चारण के लिये है और कहीं स लिये जानियें कहीं इ ग हो किन्तु ह् स्वर के लगाने का तात्पर्य यह है कि उन का उच्चार होवे क्योंकि बिना स्वर के वर्णों का उच्चारण हो नहीं हो सक्ता है और यही इस महाभाष्य कारने लिखा है जिन के उच्चारण में दूसरे वर्णों की सहायता की अपे न होवे उन्हें स्वर कहते हैं "स्वयं राजन्त इतिस्वरः" व्यञ्जन उनको कहते हैं जिन उच्चारण बिना स्वर के नहीं होसकता। "अन्वग्भवति व्यञ्जनम्" ॥

३ हलन्त्यम्। १। ३। ३। उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात्। उपदे आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र ॥

उपदेश में जो अन्त्य हल् है वह इत्संज्ञक होय। पाणिनी कात्यायन और पत ञ्जलि का जो प्रथम उच्चारण उसे उपदेश कहते हैं। पाणिनीजी ने जो सूत्र बनाये हैं उन्हें ने उन को ऐसे क्रम से लिखा है कि पहिला सूत्र अगले की सहायता करे। यहां इस लिखने की आवश्यकता यह है कि इस ग्रन्थ के पढ़ने वाले जब सूत्रों के पदों को देख सन्देह में न पड़ें जैसा हलन्त्यम् सूत्र है उस की वृत्ति में उपदेश पद दिया है वह त सूत्र में है ही नहीं वृत्ति में कैसे आया वह पिछले सूत्र से आया है और इस लेआने को अनुवृत्ति कहते हैं। इसी भान्ति सब सूत्रों में जानना। हल् सूत्र में जो अकार है वह उच्चारण के लिये नहीं किन्तु उसकी इत् संज्ञा होती है। और इस का फल आगे लिखेंगे

४ अदर्शनं लोपः। १। १। ६०। प्रसक्तस्याऽदर्शनं लोपः स्यात्। तस्य लोपः १। ३। ९। तस्येतो लोपः स्यात्। णादयो ऽणाद्यर्थाः ॥

जो वस्तु है उसके न रहने का लोप कहते हैं। जिस की इत्संज्ञा होती है तिसका लोप होय। जो ण इ च् आदिक इत्यादि जिन सूत्रों के अन्त्य में ण् क् इत्यादि हल् हैं वे अण् इक अच् इत्यादि प्रत्याहारों के लिये हैं। अब प्रत्याहार बनाने का क्रम लिखते हैं

५ आदिरन्त्येन सहेता। १। १। ७१। अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथाऽणिति अ इ उ वर्णानां संज्ञा, एवमच् हश् अलित्यादयः ॥

प्रत्येक प्रत्याहार अन्त्य इत्संज्ञक वर्णों के सहित आदि वर्णों से मध्यस्थ वर्ण का बोध होजावे। जैसा अच् (१) सूत्र अ च् की इत्संज्ञा होती है फिर (४) अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण है च् उस के साथ आदि वर्ण है अ उस के मध्यस्थ जब हैं इ उ प्रभृत अच् कहने से अ इ उ का बोध भया च् का बोध होजाता है। (५) इसी रीति अण् इक अश् इत्यादि प्रत्याहारों को जानना। ये ४० प्रत्याहार हैं —

अण् १, अण् २, अक् ३, अच् ४, अट् ५, अम् ६, अश् ७, अल् ८, इक् ९, इण् १०, इच् ११, उक् १२, एच् १३, एङ् १४, ऐच् १५, खय् १६, खर् १७, ङम् १८, चर् १९, चय् २०, छव् २१, जश् २२, झल् २३, झष् २४, झर् २५, झय् २६, ञम् २७, मय् २८, भष् २९, यण् ३०, यय् ३१, यञ् ३२, यम् ३३, यर् ३४, रल् ३५, शर् ३६, शल् ३७, वश् ३८, बश् ३९, वल् ४०, हल् ४१, हश् ४२॥

६ ऊ३ कालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः। १। २। २७। उश्च ऊश्च ऊ३श्च वः। वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञा स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा॥

अङ्गुष्ठ के मूल की नाडी की गति जितने काल में एकबार होती है, उतने काल में ह्रस्व, उस से दूने काल में दीर्घ, और उस से तिगुन काल में प्लुत् का उच्चारण करना चाहिये। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से प्रत्येक स्वर तीन प्रकार के हैं॥

७ उच्चैरुदात्तः। १। २। २९॥

तालवादि स्थान के ऊपर के भाग में जो अच् निष्पन्न होता है, उसे उदात्त कहते हैं।

८ नीचैरनुदात्तः। १। २। ३०॥

तालवादि स्थान के अधोभाग में जो अच् निष्पन्न होता है उसे अनुदात्त कहते हैं॥

९ समाहारः स्वरितः। १। २। ३१। स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाऽननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा॥

उदात्तत्व और अनुदात्तत्व ये दोनों वर्ण धर्म जिस में मिले हों उसे स्वरित कहते हैं। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये स्वर के गुण हैं, और इन का काम केवल वेद में पड़ता है। अनुनासिक और अननुनासिक भेद से स्वरों की संख्या द्विगुण होती है॥

१० मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः। १। १। ८। मुखसहितनासिकयोच्चार्य्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्। तदित्थम् अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः लृवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाऽभावात्। एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाऽभावात्॥

मुख सहित नासिका से जिस वर्ण का उच्चारण होता है, उसे अनुनासिक और जिस का नहीं होता उसे निरनुनासिक कहते हैं। पूर्वोक्त अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, ये १८ प्रकार के हैं। जैसे एक अ, के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ये तीन भेद हैं। जब इन प्रत्येक के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेदों से नव भेद हुए, तब नव अनुनासिक और ९ अननु

नासिक इस भेद से १८ भेद हुए। लृवर्ण १२ प्रकार का है क्यों कि इस को दीर्घ नहीं है। ए, ओ, ऐ, औ, ये भी १२ प्रकार के हैं क्योंकि इन का ह्रस्व नहीं होता।

११ तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्। १। १। ९। ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्। (वा०) ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्॥

जिन वर्णों के ताल्वादि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों समान हों उन की परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है। वार्तिककार के मत में ऋ और लृ इन दोनों वर्णों की परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है॥

१२ अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। इचुयशानां तालु। ऋटुरषाणां मूर्धा। लृतुलसानां दन्ताः। उपूपध्मानीयानामोष्ठौ। ञमङणनानां नासिका च। एदैतोः कण्ठतालु। ओदौतोः कण्ठोष्ठम्। वकारस्य दन्तोष्ठम्। जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। नासिकाऽनुस्वारस्य॥

अ आ अ३ क ख ग घ ङ ह और विसर्ग इन वर्णों का कण्ठ स्थान है। इ ई इ३ च छ ज झ ञ य और श इन वर्णों का तालु स्थान है। ऋ ॠ ऋ३ ट ठ ड ढ ण र और ष इन वर्णों का मूर्धा स्थान है। लृ लॄ लृ३ त थ द ध न ल और स इन वर्णों का दन्त स्थान है। उ ऊ उ३ प फ ब भ म और उपध्मानीय इन वर्णों का ओष्ठ स्थान है। ञ म ङ ण न इन का अपने वर्गों से अधिक एक नासिका स्थान है। ए ऐ का कण्ठ और तालु स्थान है। ओ औ का कण्ठ और ओष्ठ स्थान है। व का दन्त और ओष्ठ स्थान है। जिह्वामूलीय का स्थान जिह्वा का मूल है। अनुस्वार का स्थान नासिका है॥

१३ प्रयत्नो द्विधा। आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पञ्चधा। स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु विवृतमेव। बाह्यस्त्वेकादशधा। विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च। वर्गाणां प्रथम

तृतीयपञ्चमौ यणश्चाल्पप्राणाः। कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तःस्थाः। शल ऊष्माणः अचः स्वराः। ⌣क ⌣ख इति कखाभ्यां प्रागर्द्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः। ⌣प ⌣फ इति पफाभ्यां प्रागर्द्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ॥

प्रयत्न दो प्रकार के हैं। आभ्यन्तर और बाह्य। प्रथम आभ्यन्तर प्रयत्न पांच प्रकार का है। स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत। स्पर्श वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न है। अन्तस्थ वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है। ऊष्मा वर्णों का ईषतद्विवृत प्रयत्न है। स्वर वर्णों का विवृत प्रयत्न है। ह्रस्व अकार के प्रयोग में संवृत प्रयत्न होता है। परन्तु साधनिका दशा में वह विवृत कहाता है। बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार का है। जैसे विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्प-प्राण, महाप्राण उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित। खर प्रत्याहार में जितने अक्षर हैं (क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष और स) तिनका विवार श्वास और अघोष प्रयत्न है। हश् प्रत्याहार में जितने अक्षर हैं। (ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड और द) तिनका संवार नाद और घोष प्रयत्न है। वर्गों के पहिले तीसरे और पांचवें वर्ण (क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब और म और यण् (य, व, र, और ल) का अल्प-प्राण प्रयत्न है। वर्गों के जो दूसरे और चौथे अक्षर हैं अर्थात् (ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ) और शल् श, ष, स और ह का महा प्राण प्रयत्न है। ककार से लेके मकार पर्यन्त जो अक्षर हैं, तिन्हें स्पर्श कहते हैं। (यण य, व, र, ल) को अन्तस्थ कहते हैं। शल् (श, ष, स और ह) को ऊष्म कहते हैं, अच् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, और औ) को स्वर कहते हैं, । ककार वा खकार से पूर्व जो आधा विसर्ग के समान चिन्ह हैं, वह जिह्वामूलीय कहाता है। पकार वा फकार के पूर्व जो आधा विसर्ग के समान चिन्ह है, वह उपध्मानीय कहाता है। स्वर के ऊपर जो एक विन्दु ॰ यह अनुस्वार और उस के आगे जो दो विन्दु : हैं वह विसर्ग कहाता है॥

१४ अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः। १। १। ६९ अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। अत्रैवाण् परेण णकारेण। कु चु टु तु पु एते उदितः। तदेस इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथा लृकारस्य द्वादशानां संज्ञा॥ [illegible] कारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः। एवं लृकारो [illegible] अन्त्य में संयोग (१५) अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा निर्दिष्टोऽन्त्यस्यादेशः द्वयोर्द्वयोः संज्ञा॥

जो कार्य्य षष्ठ्यन्त से कहा गया होय वह अन्त्य अल् को होय। इस लिये सु द् ध् य् यू के यकार ही का लोप पाया ।

२५ (वा०) यणः प्रतिषेधो वाच्य । सुद्ध्युपास्यः । मद्ध्वरि । धात्त्रंशः । लाकृति ॥

कात्यायन मुनि ने इस (२४) सूत्र पर यह कहा है कि यदि संयोगान्त पद का अन्त्य वर्ण यण् प्रत्याहार का होवे तो उसका लोप न होय। इस लिये यकार का लोप न भया। तब—सुद्ध्य् उपास्यः मधु+अरि=मद्ध्वरि । धातृ+अंश धात्त्रंश । ल+आकृति=लाकृति ॥

२६ एचोऽयवायाव ।६।१।७८। एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ॥

अच् परे रहे तो एच् के स्थान में क्रम से अय् अव् आय् आव् आदेश होय ॥

२७ यथासंख्यमनुदेश समानाम् ।१।३।१०। समसम्बन्धी विधिर्यथा संख्यं स्यात् । हरये । विष्णवे । नायक । पावक ।

समसम्बन्धी जो कार्य वह यथा संख्या से होय जैसा कहा एच् प्रत्याहार में चार वर्ण हैं ए, ओ, ऐ और औ इन को चार आदेश अर्थात् अय् अव् आय् और आव् हैं सो क्रम से हों जैसा एको अय् ओ को अव् ऐ को आय और औ को आव् हरे+ए=हरये । विष्णो×ए=विष्णवे । नै+अक=नायक । पौ+अक=पावक ॥

२८ वान्तो यि प्रत्यये ।६।१।७९। यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गव्यम् नाव्यम् ॥

यदि ऐसा प्रत्यय परे हो कि जिसका पहिला अक्षर यकार हो तो ओकार को अव् और औकार को आव् आदेश होय। यथा। गो+यम्=गव्यम् नौ+यम्=नाव्यम्।

२९ अध्वपरिमाणे च । गव्यूति ॥

जब गो शब्द के आगे यूति शब्द मार्ग के परिमाण अर्थ में मिले तो उसके ओकार को अव् आदेश होय। जैसा गो×यूति=गव्यूति (दो कोस)

३० अदेङ् गुणः ।१।१।२। अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ॥

ह्रस्व अकार एकार और ओकार गुणसंज्ञक होय ॥

३१ तपरस्तत्कालस्य ।१।१।७०। तः परो यस्मात् स च तात् परश्चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ॥

जिस स्वर से परे तकार हो, वा तकार से परे जो स्वर हो, सो उसी काल के सवर्ण का बोधक होय।

॥ ३२ ॥ आद्गुणः । ६ । १ । ८७ । अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुणादेशः स्यात्। उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्॥

अवर्ण से अच् प्रत्यहार परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होय। उप+इन्द्रः=उपेन्द्रः। गङ्गोदकम्॥

॥ ३३ ॥ उपदेशेऽजनुनासिक इत्। १। ३। २। उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात्। प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लण् सूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा॥

उदेश में अनुनासिक अच् इत्सञ्ज्ञक होय। पाणिनी के छात्र उसे अनुनासिक जानें जिसे पाणिनी जी ने अनुनासिक माना है।

लण् सूत्र में जो अनुनासिक इत्सञ्ज्ञक अकार है, तिस के साथ रेफ मिलकर र और ल का बोधक भया अर्थात् र कहने से र, ल का बोध भया।

॥ ३४ ॥ उरण् रपरः। १। १। ५१। ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तं तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते। कृष्णर्द्धिः। तवल्कारः।

ऋ तीस का बोधक पहिले कहा गया है, उस के स्थान में जो अण् आदेश सो रपर होय अर्थात् ऋ को र और ऌ को ल होय। जैसा कृष्ण+ऋद्धिः। यहां (३२) से गुण पाया तब इस सूत्र से अकार और ऋकार मिलकर अर् गुण भया कृष्णर्द्धिः। ऐसे ही तव+ऌकारः=तवल्कारः॥

॥ ३५ ॥ लोपः शाकल्यस्य। ८। ३। १९। अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्वा लोपोऽशि परे॥

अकार से परे जो पद के अन्त में यकार वा वकार तिसका लोप विकल्प से होय यदि उस के आगे कोई अश् प्रत्याहार का वर्ण रहे। हरे+इह=(२६) हरय्+इह= हर इह वा हरयिह। विष्णो+इह(२६)=विष्णव्+इह=विष्ण इह॥ वा विष्णविह॥

॥ ३६ ॥ पूर्वत्रासिद्धम्। ८। २। १। सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्। हर इह। हरयिह। विष्ण इह। विष्णविह॥

सात अध्याय और एक पाद के शास्त्र की अपेक्षा अन्त्य अध्याय के तीन पाद भी

जो कार्य्य षष्ठ्यन्त से कहागया होय वह अन्त्य अल् को होय। इस लिये सु द् ध् य् के यकार ही का लोप पाया।

२५ (वा॰) यणः प्रतिषेधो वाच्यः। सुद्ध्युपास्यः। मद्ध्वरिः। धात्र्यंशः। लाकृतिः॥

कात्यायन मुनि ने इस (२३) सूत्र पर यह कहा है कि यदि संयोगान्त पद का अन्त्य वर्ण यण् प्रत्याहार का होवे तो उसका लोप न होय। इस लिये यकार का लोप न भया। जैसे—सुद्ध्युपास्यः मधु+अरिः=मद्ध्वरिः। धातृ+अंशः=धात्र्यंशः। लृ+आकृतिः=लाकृतिः॥

२६ एचोऽयवायावः। ६।१।७८। एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि॥

अच् परे रहे तो एच् के स्थान में क्रम से अय् अव् आय् आव् आदेश होवें॥

२७ यथासंख्यमनुदेशः समानाम्। १।३।१। समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात्। हरये। विष्णवे। नायकः। पावकः।

समसम्बन्धी जो कार्य वह यथा संख्या से होय जैसा जैसा यहां ए च् प्रत्याहार में चार वर्ण हैं ए, ओ, ऐ और औ इन को चार आदेश अर्थात् अय् अव् आय् और आव् हैं सो क्रम से हों जैसा एकार को अय् ओ को अव् ऐ को आय् और औ को आव्। हरे+ए=हरये। विष्णो+ए=विष्णवे। नै+अकः=नायकः। पौ+अकः=पावकः॥

२८ वान्तो यि प्रत्यये। ६।१।७९। यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः। गव्यम्। नाव्यम्॥

यदि ऐसा प्रत्यय परे हो कि जिसका पहिला अक्षर यकार हो तो ओकार को अव् और औकार को आव् आदेश होय। जैसा। गो+यम्=गव्यम् नौ+यम्=नाव्यम्।

२९ अध्वपरिमाणे च। गव्यूतिः॥

जब गो शब्द के आगे यूति शब्द मार्ग के परिमाण अर्थ में मिले तो उसके ओकार को अव् आदेश होय। जैसा गो+यूतिः=गव्यूतिः (दो कोस)

३० अदेङ् गुणः। १।१।२। अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात्॥

ह्रस्व अकार एकार और ओकार गुणसंज्ञक होय॥

३१ तपरस्तत्कालस्य। १।१।७०॥ तः परो यस्मात् स च तात् परश्चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा स्यात्॥

॥ ४१ ॥ (वा०) प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु। प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः॥

प्र शब्द (४५) से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष वा एष्य शब्द परे रहे तो दोनों मिलकर वृद्धि होवे प्र+ऊहः=प्रौहः। प्र+ऊढः=प्रौढः। प्र+ऊढिः=प्रौढिः। प्र+एषः=प्रैषः। प्र+एष्यः=प्रैष्यः॥

॥ ४२ ॥ (वा०) ऋते च तृतीयासमासे। सुखेन ऋतः सुखार्तः। तृतीयेति किम् परमर्तः।

यदि तृतीया समास में अकार वा आकार से परे ऋत शब्द हो तो दोनों मिलकर वृद्धि होवे। सुख+ऋतः=सुखार्तः। तृतीया कहने से परमर्तः यहां वृद्धि न हुई क्योंकि यहां कर्मधारय समास है। परम्+ऋत=(३२) परमर्तः।

॥ ४३ ॥ (वा०) प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे। प्रार्णम् इत्यादि॥

प्र। वत्सर। कम्बल। वसन। ऋण। दशन। इन शब्दों के आगे ऋण शब्द रहे तो वृद्धि होय। प्र+ऋणम्=प्रार्णम्। वत्सतर+ऋणम्=वत्सतरार्णम्। इसी प्रकार औरों को भी जानना।

॥ ४४ ॥ उपसर्गाः क्रियायोगे। १। ४। ५९। प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

जब प्र इत्यादिकों का योग क्रिया से हो तब वे उपसर्ग कहावें॥

॥ ४५ ॥ प्र। परा। अप्। सम। अनु। अव। निस्। निर्। दुस्। दुर्। वि। आङ्। नि। अधि। अपि। अति। सु। उत्। अभि। प्रति। परि। उप। एते प्रादयः॥

ये बाईस प्रादि कहाते हैं॥

॥ ४६ ॥ भूवादयो धातवः। १। ३। १। क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः॥

जो शब्द क्रिया को प्रतिपादन करवावे और भू आदि दश गणों में से किसी गण में पढा हो सो धातु कहावे॥

॥ ४७ ॥ उपसर्गादृति धातौ। ६। १। ९१। अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। प्रार्च्छति॥

शास्त्र असिद्ध है। इसी भांति तीनों पादों में भी पूर्व शास्त्र की अपेक्षा पर शास्त्र असिद्ध है। जैसे *लोपः शाकल्यस्य* (२५) *त्रिपादि का सूत्र* है उस से जो लोप हुआ तो हर इह ऐसा सिद्ध भया। अब यहां अकार और इकार को मिलाकर आद्गुण सूत्र (१२) से एकार गुण प्राप्त भया परन्तु यह सपादसप्ताध्यायी का सूत्र है त्रिपादी के सूत्र के कार्य को नहीं देख सकता इस लिये उस सूत्र की दृष्टी में यकार का लोप ही नहीं हुआ तो फिर गुणादेश कैसा इस कारण गुणादेश न भया॥

॥ ३७ ॥ वृद्धिरादैच् । १ । १ । आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ॥

आकार, ऐकार और औकार का नाम वृद्धि है॥

॥ ३८ ॥ वृद्धिरेचि । ६ । १ । ८८ । आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणाऽपवादः । कृष्णैकत्वम् । गङ्गौघ । देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कण्ठ्यम् ॥

अ वा आ से परे यदि एच् (ए ओ ऐ वा औ) रहे तो दोनों मिलकर वृद्धि होवे यह नियम निरवकाश होकर गुण का बाधक है क्योंकि जिस विषय में यह प्राप्त होता है उसी विषय में गुण सर्वदा प्राप्त रहता है। यदि इस विषय में गुण होवे तो वृद्धि की कहां सफलता होवेगी। इस लिये यह अपने विषय में गुण को बाधता है। "निरवकाशो विधिरपवादः" कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम्। गङ्गा+ओघ=गङ्गौघ देव+ऐश्वर्यम्=देवैश्वर्यम्। कृष्ण+औत्कण्ठ्यम्=कृष्णौत्कण्ठ्यम्॥

॥ ३९ ॥ एत्येधत्यूठ्सु । ६ । १ । ८९ । अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । उपैति उपैधते । प्रष्ठौहः । एजाद्योः किम् । उपेतः । मा भवान् प्रेदिधत् ॥

अ वा आ से परे यदि इण् वा एध धातु के ऐसे रूप हों कि जिनका प्रथम वर्ण ए हो वा ऊठ् शब्द परे हो तो दोनों मिलकर वृद्धि होय। जैसे। उप+एधते=उपैधते। ऊठ्—प्रष्ठ+ऊहः=प्रष्ठौहः यदि इण् वा एध धातु के आदि वर्ण ए हो ऐसा न कहते तो यहां भी वृद्धि हो जाती इस लिये प्रथम वर्ण ए हो ऐसा कहा तब उपेतः बना उप+इतः=उपेतः। प्र+इदिधत्=प्रेदिधत्॥

॥ ४० ॥ (वा) अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् । अक्षौहिणी सेना ॥

अक्ष शब्द से यदि ऊहिनी शब्द परे रहे तो दोनों मिल कर वृद्धि होय यह वार्तिक का मत है। अक्ष+ऊहिनी=अक्षौहिणी=सेना॥

॥ ४१ ॥ (वा०) प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु। प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैष। प्रैष्यः॥

प्र शब्द (४५) से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष वा एष्य शब्द परे रहे तो दोनो मिलकर वृद्धि होवे प्र+ऊहः=प्रौहः। प्र+ऊढ=प्रौढ। प्र+ऊढिः=प्रौढि। प्र+एषः=प्रैषः। प्र+एष्य=प्रैष्यः॥

॥ ४२ ॥ (वा०) ऋते च तृतीयासमासे। सुखेन ऋतः सुखार्तः। तृतीयेति किम् परमर्तः।

यदि तृतीया समास मे अकार वा आकार से परे ऋत शब्द हो तो दोनों मिलकर वृद्धि होवे। सुख+ऋतः=सुखार्तः। तृतीया कहने से परमर्तः यहा वृद्धि न हुई क्योंकि यहा कर्मधारय समास है। परम+ऋत=(३२) परमर्तः।

॥ ४३ ॥ (वा०) प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे। प्रार्णम् इत्यादि॥

प्र। वत्सर। कम्बल। वसन। ऋण। दशन। इन शब्दो के आगे ऋण शब्द रहे तो वृद्धि होय। प्र+ऋणम्=प्रार्णम्। वत्सतर+ऋणम्=वत्सतरार्णम्। इसी प्रकार औरों को भी जानना।

॥ ४४ ॥ उपसर्गाः क्रियायोगे। १। ४। ५९। प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

जब प्र इत्यादिकों का योग क्रिया से हो तब वे उपसर्ग कहावें॥

॥ ४५ ॥ प्र। परा। अप्। सम। अनु। अव। निस्। निर्। दुस्। दुर्। वि। आङ्। नि। अधि। अपि। अति। सु। उत्। अभि। प्रति। परि। उप। एते प्रादयः॥

ये बाईस प्रादि कहाते हैं॥

॥ ४६ ॥ भूवादयो धातवः। १। ३। १। क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः स्युः॥

जो शब्द क्रिया को प्रतिपादन करवावे और भू आदि दश गणो मे से किसी गण मे पढा हो सो धातु कहावे॥

॥ ४७ ॥ उपसर्गादृति धातौ। ६। १। ९१। अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात्। प्रार्छति॥

जिस उपसर्ग के अन्त में अकार हो उस से परे एक ऐसा धातु हो कि जिस के आदि में ऋकार होवे तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होय जैसा। प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति॥

॥ ४८ ॥ एङि पररूपम् ।६।१।९४। आदुपसर्गादेङादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात्। प्रेजते। उपोषति॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे जो एकारादि वा ओकारादि धातु रहे तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होय। प्र+एजते=प्रेजते। उप+ओषति=उपोषति॥

॥ ४९ ॥ अचोऽन्त्यादि टि।१।१।६४। अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टि संज्ञं स्यात्।

अचों में जो अन्त्य अच् है सो जिसके पूर्व हो उस के सहित उसकी टि संज्ञा होय।

॥ ५० ॥ (वा) शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्। तच्चटेः। शकन्धुः। कर्कन्धुः। मनीषा। लाङ्गलीषा। आकृतिगणोऽयम्। मार्तण्डः।

शकन्धु आदि गण पठित शब्दों की जो टि उसी को पररूप एकादेश होय। शक+अन्धु=शकन्धु। कर्क+अन्धु=कर्कन्धु। मनस्+ईषा=मनीषा। लाङ्गल+ईषा=लाङ्गलीषा। इन सब के शब्द स्वरूप ही के देखने से जाने जाते हैं कि ये शकन्ध्वादि के हैं क्योंकि किसी मुनि ने इस गण की पूरी गणना नहीं की। जैसे मार्त+अण्डः=मार्तण्डः

॥ ५१ ॥ ओमाङोश्च।६।१।९५। ओमि आङि चात् पररूपमेकादेशः स्यात्। शिवायोन्नमः। शिवेहि।

यदि अवर्ण शब्द से पर ओम् वा आङ् शब्द रहे जिसके पूर्व में अकार हो तो पररूप एकादेश होय। शिवाय+ओम्+नमः=शिवायोन्नमः। शिव+आङ्+इहि=शिव+एहि=शिवेहि॥

॥ ५२ ॥ अकः सवर्णे दीर्घः।६।१।१०१। अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात्। दैत्यारिः। श्रीशः। विष्णूदयः। होतॄकारः॥

अक् प्रत्याहार से सवर्ण अच् प्रत्याहार परे रहे तो पूर्व पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होय। दैत्य+अरिः=दैत्यारिः। श्री+ईशः=श्रीशः। विष्णु+उदयः=विष्णूदयः। होतृ+ऋकारः=होतॄकारः (११)॥

॥ ५३ ॥ एङः पदान्तादति । ६ । १ । १०९ । पदान्तादेङोति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेऽव । विष्णोऽव ॥

यदि पदान्त १७ एकार वा ओकार से परे ह्रस्व अकार रहे तो पूर्वरूप एकादेश होय । हरे+अव=हरेऽव । विष्णोऽव । ऐसे स्थान में यह चिन्ह ऽ लिखा जाता है जिसका नाम अर्द्धाकार है ॥

॥ ५४ ॥ सर्वत्र विभाषा गोः । ६ । १ । १२२ । लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते । गो अग्रम् । गोऽग्रम् । एङन्तस्य किम् । चित्रग्वग्रम् । पदान्ते किम् । गोः ॥

वैदिक वा अवैदिक प्रयोगों मे यदि पदान्त एङन्त (ए वा ओ अन्त में जिसके) गोशब्द से परे ह्रस्व अकार रहे तो विकल्प से प्रकृतिभाव होय । जैसा का तैसा ही रहने को प्रकृतिभाव कहते हैं, गो अग्रम् वा गोऽग्रम् यदि एङन्त नही कहते तो । चित्रगु+अग्रम् । यहा प्रकृतिभाव होता क्योंकि गो शब्द एङन्त नहीं है । चित्रगु+अग्रम्=चित्रग्वग्रम् । पदान्त क्यों कहा । गो+अस्=गो. । यहा गो शब्द का ओकार पदान्त नही है इसलिये पूर्वरूप होता है ॥

॥ ५५ ॥ अनेकाल् शित् सर्वस्य । १ । १ । ५५ । इति प्राप्ते ।

जो अनेकाल् वा शित् आदेश है वह सपूर्ण स्थानी के स्थान में होवे ॥

॥ ५६ ॥ ङिच्च । १ । १ । ५३ । ङिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात् ।

वह अनेकाल् आदेश अन्त्य अल्‌ही के स्थान में होवे जिसका ङकार इत् है ।

॥ ५७ ॥ अवङ् स्फोटायनस्य । ६ । १ । १२३ । पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ् वाचि । गोऽग्रम् । पदान्ते किम् । गवि ॥

अच् परे रहे तो पदान्त एङन्त गो शब्द को स्फोटायन आचार्य के मत में अवङ् आदेश होवे । गोऽग्रम् वा गवाग्रम् । पदान्त क्यों कहा । गो+इ=गवि । यहा गो शब्द का ओकार पदान्त १७ नहीं है, इस लिये यह सूत्र २९ लगा ॥

॥ ५८ ॥ इन्द्रे च । ६ । १ । १२४ । गोरवङ् स्यादिन्द्रे । गवेन्द्रः ।

गो शब्द को अवङ् आदेश होवे इन्द्र शब्द परे रहते । गो+इन्द्रः=गवेन्द्रः ।

॥ ५९ ॥ दूराद्धूते च । ८ । २ । ८४ । दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा ॥

जो दूर से पुकार ने में वाक्य है उसकी टि ४९ विकल्प से प्लुत ६ होवे ॥

॥ ६० ॥ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् । ६ । १ । १२५ । एतेऽचि नित्यं प्रकृत्या स्युः । आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति ॥

प्लुत और प्रगृह्य जैसा का तैसा रहे यदि अच् परे रहे तो । ए । कृष्ण ३ अत्र ।

॥ ६१ ॥ ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् । १ । १ । ११ । ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यं स्यात् । हरी एतौ । विष्णू इमौ । गङ्गे अमू ॥

ई ऊ वा ए जिसके अन्त्य में हो ऐसा जो द्विवचन सो प्रगृह्य संज्ञक होय अर्थात् जैसे का तैसा रहे । हरी एतौ । विष्णू इमौ । गङ्गे अमू ॥

॥ ६२ ॥ अदसो मात् । १ । १ । १२ ॥ अस्मात् परावीदूतौ प्रगृह्यौ स्तः । अमी ईशाः । रामकृष्णावमू आसाते । मात् किम् । अमुकेऽत्र ॥

अदस् शब्द के मकार से परे जो ई वा ऊ सो प्रगृह्य संज्ञक होय । रामकृष्णावमू आसाते । मकार से परे क्यों कहा । अमुकेऽत्र (११) यदि मकार का ग्रहण जो न करते तो पूर्वसूत्र (६१) से एकार की अनुवृत्ति हो जाती तो प्रगृह्य संज्ञा हो जाती इसलिये मकार ग्रहण किया तो अमुके + अत्र यहां प्रकृतिभाव न हुआ ।

॥ ६३ ॥ चादयोऽसत्त्वे । १ । ४ । ५७ । अद्रव्यार्थाश्चादयो निपाताः स्युः ॥

च इत्यादि जो शब्द द्रव्य के वाचक न हों सो निपात कहावें । द्रव्य उसे कहते हैं जिसका अन्वय लिङ्ग संख्या के साथ हो ।

॥ ६४ ॥ प्रादयः । १ । ४ । ५८ । एतेऽपि तथा ॥

प्र आदि २२ भी पूर्वोक्त प्रकार से निपात कहावें ॥

॥ ६५ ॥ निपात एकाजनाङ् । १ । १ । १४ । एकोऽज्निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः । इ इन्द्र । उ उमेश । वाक्यस्मरणयोरङित् । आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । अन्यत्र ङित् ईषदुष्णम् । ओष्णम् ॥

आङ् को छोड़कर जो निपात एकाच् हैं सो प्रगृह्य कहावें । इ इन्द्र । उ उमेश । वाक्य और स्मरण अर्थ से अन्यत्र आकार ङित होता है अर्थात् ङित् मान के जो कार्य्य माना है वह उस से भी होवे । आ एवं नु मन्यसे । क्या अब आप ऐसा मानते हो आ

किल तत्। हां वह ऐसा होता है। अन्यच आ निपात ङित् है इसी कारण प्रगृह्य नहीं होता। आ+उष्णम् ३२=ओष्णम् अर्थात् थोडा गरम॥

॥ ६६ ॥ ओत्। १। १। १५। ओदन्तो निपातः प्रगृह्यः। अहो ईशाः॥

ओ है अन्त में जिसके ऐसा जो निपात सो प्रगृह्य ६०कहावे। अहो ईशाः अहोईशाः॥

॥ ६७॥ सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे। १। १। १६। सम्बुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ परे। विष्णो इति। विष्णविति। विष्ण इति॥

लौकिक इति शब्द परे रहे तो जो सम्बुद्धि निमित्त ओकार सो शाकल्य आचार्य्य के मत मे प्रगृह्य कहावे। विष्णो इति। अन्य के मत में विष्णविति (२६) भया। जब लोप, शाकल्यस्य ३५ से वकार का लोप भया तब। विष्ण इति॥

॥ ६८ ॥ मय उञो वो वा। ८। ३। ३३। मयः परस्योञो वो वाऽचि। किम्वुक्तम्॥

मय् प्रत्याहार से परे जो उञ् का उकार तिस को विकल्प से व आदेश होय यदि अच् परे रहे तो। किमु+उक्तम्=किम्वुक्तम्। वा किमु उक्तम् (६५)॥

॥ ६९॥ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च। ६। १। १२७। पदान्ता इको ह्रस्वो वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वरसन्धिः। चक्रि अत्र। चक्र्यत्र। पदान्ता इति किम् गौर्यौ॥

जो पद के अन्त में वर्तमान इक् तिसको विकल्प से ह्रस्व होय यदि असवर्ण अच् परे रहे उ०। चक्री+अत्र=चक्रि अत्र। यदि सन्धि १८ हो जाती तो ह्रस्व करने का कुछ फल न होता इस लिये सन्धि नही होती। जब ह्रस्व न हुआ तब १८ सूत्र से चक्र्यत्र होता है। पदान्त इक् कहने से। गौर्यौ। गौरी+औ यहा ह्रस्व नहीं होता (१८)।

॥ ७० ॥ अचो रहाभ्यां द्वे। ८। ४। ४६। अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा स्तः। गौर्य्यौ॥

अच् से परे जो रेफ या हकार तिस से परे जो यर् तिसको विकल्प से द्वित्व होय। गौर्य्यौ वा गौर्यौ॥

॥ ७१ ॥ वा० न समासे वाप्यश्वः॥

समास में ह्रस्व विधि ६९ नही लगती॥

॥ ७२ ॥ ऋत्यकः । ६ । १ । १२८ । ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद्वा । ब्रह्म ऋषिः ब्रह्मर्षिः । पदान्ता किम् । आर्च्छत् ॥

पदान्त अक् विकल्प से ह्रस्व होय यदि ऋकार परे रहे । ब्रह्मा+ऋषि ब्रह्मऋषि वा ब्रह्मर्षि १२ और १७ पदान्त कहने से । आर्च्छत् यहां ह्रस्व न हुआ ॥

॥ इति स्वरसन्धिः ॥

॥ अथ व्यञ्जनसन्धिः ॥

॥ ७३ ॥ स्तोः श्चुना श्चुः । ८ । ४ । ४० । सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः । रामश्शेते । रामश्चिनोति । सच्चित । शार्ङ्गिञ्जय ॥

जब सकार तवर्ग के साथ शकार वा चवर्ग का योग हो तब सकार को शकार और तवर्ग को चवर्ग आदेश होय । रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति । सत्+चित्=सच्चित् विपत्+जालम्=विपज्जालम् ॥

॥७४॥ शात् । ८ । ४ । ४४ । शात् परस्योर्न न । विश्नः । प्रश्नः ।

शकार से परे जो तवर्ग उसको चवर्ग आदेश न हो । विश्+न=विश्न । प्रश्+न=प्रश्न ।

॥ ७५ ॥ ष्टुना ष्टुः । ८ । ४ । ४१ । स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः । रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा । तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे ॥

जब सकार टवर्ग के साथ षकार वा तवर्ग का योग होय तब सकार को षकार और तवर्ग को टवर्ग आदेश होय । रामस्+षष्ठः=रामष्षष्ठः पेष्+ता=पेष्टा । तत्+टीका=तट्टीका । षुष्+त=षुष्टः ॥

॥ ७६ ॥ न पदान्ताट्टोरनाम् । ८ । ४ । ४२ । पदान्ताट्टवर्गात् परस्यानामः स्तोः ष्टुर्न स्यात् । षट् सन्तः । षट्ते । पदान्तात् किं ईट्टे । टो किम् । सर्पिष्टमम् ॥

नाम् शब्द के नकार को छोड़के पदान्त (१०) टवर्ग से परे जो सकार और तवर्ग तिनको षकार और टवर्ग आदेश न होय । षट्+सन्त=षट्सन्त षट्+ते=षट्ते ॥

पदान्त कहने से ईट्टे यहां टवर्गका निषेध न हुआ ईट्+ते=ईट्टे टवर्ग कहनेसे सर्पिष्टमम् में षटुत्व हुआ सर्पिष्+तमम्=सर्पिष्टमम् ७५।

७७ अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्। षण्णाम्। षण्णवति षण्णगर्यः॥

पिछिले निषेध सूत्र से जो नाम शब्द ही को ष्टुत्व निषेध किया है, सो उचित नहीं है, किन्तु वहां नवति और नगरी इन शब्दों का भी ग्रहण करना चाहिये षट्+नाम्=षण्णाम्। षट्+नवतिः= षण्णवति। षट्+नगर्य्यः=षण्णगर्य्यः॥

॥ ७८। तोः षि। ८। ४। ४३। न ष्टुत्वम्। सन्षष्टः॥

षकार परे रहते तवर्ग को टवर्ग आदेश न होय। सन्+षष्टः=सन्षष्ठ'।

॥७९॥ झलां जशोऽन्ते। ८ २ ३९। पदान्ते झलां जश स्यु.। वागीश॥

पद (१७) के अन्त में जो झल् प्रत्याहार के वर्ण तिनके स्थान में जश् आदेश होय। वाक्+ईश =वागीशः चित्+रूपम्=चिद्रूपम्।

॥ ८० ॥ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा। ८। ४। ४५। यरः पदान्तस्याऽनुनासिकेपरेऽनुनासिको वा स्यात् एतन्मुरारिः। एतद्मुरारि

यदि अनुनासिक परे रहे तो पदान्त (१७) यर् के स्थान मे अनुनासिक आदेश विकल्प से हो। एतद्+मुरारि =एतन्मुरारिः वा एतद्मुरारिः॥

८१ ॥ वा० प्रत्यये भाषायां नित्यम्। तन्मात्रम्। चिन्मयम्।

प्रत्यय का अवयव अनुनासिक परे रहे तो पदात (१७) यर् के स्थान मे नित्यही अनुनासिक आदेश होता है। तद्+मात्रम्=तन्मात्रम्। चिद्+मयम्=चिन्मयम्॥

॥ ८२ ॥ तोर्लि। ८। ४। ६०। परसवर्णः। तल्लयः विद्वाँल्लिखति। नस्यानुनासिको ल.॥

लकार परे हो तो तवर्ग के स्थान में परसवर्ण अर्थात् लकार आदेश होय तद्+लय =तल्लय'। विद्वान्+लिखति=विद्वांलिखति यहां अनुनासिक न को अनुनासिक ल आदेश भया॥

॥ ८३ ॥ उदः स्थास्तम्भो. पूर्वस्य। ८। ४। ६१। उदः परयोः स्थास्तम्भो पूर्वसवर्ण॥

उद् उपसर्ग से परे जो स्था और स्तम्भ तिनको पूर्वसवर्ण होय ।

॥ ८४ ॥ तस्मादित्युत्तरस्य । १ । १ । ६७ । पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाणं कार्यं वर्णान्तरेणाऽव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् ॥

पांचवां कारक की विभक्ति है अन्त में जिसके ऐसा जो पद तिसके निर्देश से जो कार्य विधान हो सो उसी को हो जो उससे परे रहे और वह किसी दूसरे वर्ण से व्यव हित न होय ।

॥ ८५ ॥ आदेः परस्य । १ । १ । ५४ । परस्य यद्विहितं तत् तस्यादेर्बोध्यम् । इति सस्य थः ॥

वह कार्य उसके प्रथम वर्ण को होय जो पर को किया जाता है । उद्+स्थानमें यहां स्थानम् के सकार को पूर्व सवर्ण से थकार भया क्योंकि सकार के विवार, श्वास अघोष और महाप्राण (११) प्रयत्न हैं तो विवार श्वास अघोष महाप्राण प्रयत्नवान् दकार का सवर्ण थकारही है इस कारण थकार आदेश भया तब उद्थ्थानम् ऐसा भया ।

॥ ८६ ॥ झरो झरि सवर्णे । ८ । ४ । ६५ । हलः परस्य झरो वा लोपः सवर्णे झरि ॥

हल् से परे जो झर् तिसका लोप विकल्प से होय यदि सवर्णी झर् परे रहेतो । उद्थ+थानम्=उद्थानम् ॥

॥ ८७ ॥ खरि च । ८ । ४ । ५५ । खरि झलां चर इत्युदो दस्य तः उत्थानम् । उत्तम्भनम् ॥

खर् परे हो तो झल् के स्थान में चर आदेश होय उद् +थानम= उत्थानम् ॥

॥ ८८ ॥ झयो होऽन्यतरस्याम् । ८ ४ । ६२ । झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः । नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थः वाग्घरिः । वाग्हरिः ॥

झय् प्रत्याहार से परे जो हकार तिसको पूर्व सवर्ण विकल्प से होय । वाक्+हरि यहां पूर्वसवर्ण से हकार को घकार भया क्योंकि हकार के संवार, नाद, घोष और महा-प्राण (११) प्रयत्न हैं तो संवार, नाद घोष महाप्राण प्रयत्नवान् गकार को है इस कारण आदेश भया । वाग्+हरि =(७८)वाग्घरि ॥

॥ ८६ ॥ शश्छोऽटि । ८ । ४ । ६३ । झयः परस्य शस्य छो वाऽटि । तद् शिव इत्यत्र दस्य चुत्वेन जकारे कृते खरि चेति जकारस्य चकारः । तच्छिवः । तच्शिवः ॥

पदान्त (१७) झय् प्रत्याहार से परे जो शकार तिसको छकार आदेश होय विकल्प से अट् प्रत्याहार परे रहते। तद्+शिव = तद्+छिव =(७१) तज्+छिव =(८७) तच्छिव वा (७१) तज्+शिव. =(८७) तच्शिव. ॥

॥ ६० ॥ वा० छत्वममीति वाच्यम् । तच्छ्लोकेन ॥

वार्त्तिककार के मत में अम् प्रत्याहार परे रहते भी पदान्त (१७) झय् से परे शकार के स्थान में छकार देश होता है। तद्+श्लोकेन तद्+छ्लोकेन (७१) तज्+छ्लोकेन =(८७) तच्छ्लोकेन ॥

॥ ६१ ॥ मोऽनुस्वारः । ८ ३ । २३ । मान्तस्य पदस्याऽनुस्वारो हलि । हरिं वन्दे ॥

हल् परे रहते मकारांत पद (१७) के मकार को अनुस्वार आदेश हो। हरिम्+वन्दे = हरिंवन्दे ॥

॥ ६२ ॥ नश्चापदान्तस्य झलि । ८ । ३ । २४ । नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः । यशांसि । आक्रंस्यते ॥

झल् परे रहते अपदान्त नकार और मकार को अनुस्वार आदेश होय ॥

॥ ६३ ॥ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः । ८ । ४ । ५८ । शान्तः ॥

यय् परे रहते अनुस्वार को परसवर्ण होय शाम्+त = शान्त ॥

॥ ६४ ॥ वा पदान्तस्य । ८ । ४ । ५६ । त्वङ्करोषि । त्वंकरोषि ॥

यय् परे रहते पदान्त (१७) अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होय। त्वं+करोषि = त्वङ्करोषि वा त्वं करोषि ॥

॥ ६५ ॥ मोराजिसमः क्वौ । ८ । ३ । २५ । क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव स्यात् । सम्राट् ॥

क्विबन्त धातु परे रहे तो सम् शब्द के मकार को मकार ही आदेश होय सम्+राट् = सम्राट् ॥

॥ ६६ ॥ हे मपरे वा । ८ । ३ । २६ । मपरे हकारे परे मस्य मो वा । किम् ह्मलयति ॥ किं ह्मलयति ।

जिस मकार से परे ह्नकार हो ऐसा ह्नकार परे रहे तो विकल्प से म को मकारही होय किम् + ह्नलयति = किम्ह्नलयति वा ८१ किंह्नलयति ॥

॥ ८७ ॥ या॰ यवलपरे यवला वा । किय्ँ ह्य । किं ह्य । किव्ँ ह्वलयति । किं ह्वलयति । किल्ँ ह्लादयति । किं ह्लादयति ॥

जिस हकार से परे यकार वकार अथवा लकार हो ऐसा हकार परे रहे तो म को क्रम से य व ल आदेश होय । किम् + ह्य = किय्ँ ह्य वा (८१) किंह्य । किम् + ह्वलयति = किव्ँ ह्वलयति वा किंह्वलयति किम् + ह्लादयति = किल्ँ ह्लादयति वा किंह्लादयति ॥

॥ ८८ ॥ नपरे नः । ८ । ३ । २७ । नपरे हकारे मस्य नो वा । किन् ह्नुते किं ह्नुते ॥

मकार जिस से परे हो ऐसा हकार परे रहते मकार को विकल्प से नकार आदेश होय । किम् + ह्नुते = किन्ह्नुते वा (८१) किंह्नुते ॥

॥ ८९ ॥ ङ सि धुट् । ८ । ३ । २९ । ङात् परस्य सस्य धुड्वा ॥

उस स को धुट् आगम होय जिस के पूर्व ङकार रहे ॥

॥ ९० ॥ आद्यन्तौ टकितौ । १ । १ । ४६ । टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तौ स्तः । षट् सन्तः । षट्त्सन्तः ॥

जिसका ट वा क इत्संज्ञक हो तो जिसको कहा हो उसके आदि और अन्त में यथासंख्य से होय अर्थात् टित् आदि और कित् अन्त में होय । षड् + सन्त = षड् धुट् सन्त धुट् का लोप होता है १—७ और ११ तब षड्ध् + सन्त = ७८ षट्ध् + सन्त ८० षट्त्सन्त ।

॥ १०१ ॥ ङ्णोः कुक्टुक् शरि । ८ । ३ । २८ । वास्त । प्राङ्क्षष्ठः प्राङ्षष्ठः । सुगण्ट्षष्ठ । सुगण्षष्ठ ॥

ङकार और णकार को क्रम से विकल्प करके कुक और टुक आगम होय यदि शर् परे रहे तो । प्राङ् + षष्ठ = प्राङ् + कुक् षष्ठः उक् का लोप भया १-४-२४ प्राङ्क्षष्ठ सुगण् + षष्ठ = सुगण्ट्षष्ठ ।

॥ १०२ ॥ नश्च । ८ । ३ । ३० । नान्तात् परस्य सस्य धुड्वा । सन्त्स । सन् स ॥

सकार को विकल्प से धुट् आगम होय । यदि उस के पूर्व नकारान्त पद रहे

सन्+स' =सन् धुट् सः=उट् का लोप होता है, ३-४ और ३३ तब सन्ध्+स.=७८ सन्ट्+स.=८७ सन्त्स.।

॥ १०३ ॥ शि तुक्। ८। ३। ३१। पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा। शञ्च्छम्भुः। सञ्शम्भुः सञ्चशम्भुः। सञ्छम्भुः॥

यदि शकार परे रहे तो पदान्त नकार को विकल्प से तुक् आगम होय। सन्+शम्भु= सन् तुक् शम्भु.= उक् का लोप भया ३-४ और ३३ तब सन्त्=शम्भु'+८८ सन्त्+छम्भु =७३ सञ्च्+छम्भः वा शञ्च्छम्भुः जब छत्व ८८ नहीं भया तब सञ्च् शम्भु. तुक नहीं भया तब सञ्शम्भु॥

। १०४ ॥ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्।८।३।३२।ह्रस्वात् परो यो ङम् तदन्तं यत् पदं तस्मात् परस्याचो नित्यं ङमुट् स्यात्। प्रत्यङ्ङात्मा। सुगण्णीश.। सन्नच्युतः॥

ह्रस्व से परे जो ङकार णकार और नकार तदन्त जो पद तिस से परे जो अच् उस को क्रम से ङुट्, णुट् और नुट् आगम होय। प्रत्यङ्+आत्मा=३-४ और ३३ प्रत्यङ्ङात्मा सुगण्+ईश =सुगण्णीश' सन्नच्युतः॥

॥ १०५ ॥ समः सुटि। ८। ३। ५। समो रुः सुटि॥

सम शब्द के मकार को रु आदेश हो सुट् के परता। सम्+स्कर्ता॥

॥ १०६ ॥ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा। ८। ३। २। अत्र रुप्रकरणे रो पूर्वस्यानुनासिको वा॥

इस प्रकरण में रु से पूर्व जो स्वर तिसको विकल्प से अनुनासिक होय। सरु+स्कर्ता=सरुस्कर्ता।

॥ १०७ ॥ अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः। ८। ३। ४। अनुनासिकं विहाय रो पूर्वस्मात् परोऽनुस्वारागमः॥

जिस पक्ष में अनुनासिक होता है, उस से पूर्व जो स्वर उससे परे अनुस्वार का आगम होय। सरु+स्कर्ता=सँरुस्कर्ता॥

१०८ ॥ खरवसानयोर्विसर्जनीयः। ८। ३। १५। खर्यवसाने च पदान्तस्य रस्य विसर्गः॥

खर् परे रहे वा अवसान तो पदान्त में विद्यमान जो रेफ तिसको विसर्ग होय। सरु+स्कर्ता= २ और ४ सर्+स्कर्ता=सःस्कर्ता इसी प्रकारसँर्+स्कर्ता=सँः स्कर्ता।

॥ १०९ ॥ (वा) सम्पुङ्कानां सो वक्तव्य । संस्स्कर्ता संस्स्कर्ता ॥

सम् शब्द पुम् शब्द और कान् शब्द के विसर्ग को सकार आदेश होय। सँ+स्कर्ता सँस्स्कर्ता सँ +स्कर्ता=सँस्कर्ता।

॥ ११० पुमः खय्यम्परे । ८ । ३ । ६ । अम्परे खयि पुमो रुः पुँस्कोकिलः पुंस्कोकिलः ॥

जिस खय् से परे अम् हो ऐसा खय् परे रहते पुम् शब्द के मकार को रु आदेश होय। पुम्+कोकिल =पुरु+कोकिल=१ ६ १ ७, ११ ४ १ ८ और १०९ पुंस्कोकिल पुँस्कोकिल ॥

१११ ॥ नश्छव्यप्रशान् । ८ । ३ । ७ । अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः ॥

जिस छव् से परे अम् हो ऐसा छव् परे रहते प्रशान् शब्द के नकार को छोड़ कर पदान्त १० में जो नकार तिस को रु आदेश होय। चक्रिन्+त्रायस्व १ ६ १ ७ ११ ४ और १ ८ चक्रिँ+त्रायस्व चक्रिं +त्रायस्व।

११२ ॥ विसर्जनीयस्य सः । ८ । ३ । ३४ । खरि। चक्रिँस्त्रायस्व चक्रिंस्त्रायस्व। अप्रशान् किम्। प्रशान् तनोति। पदस्येति किम् हन्ति ॥

विसर्ग के स्थान में सकार आदेश होय+यदि खर से परे खर रहे तो। चक्रिँ+त्रायस्व=चक्रिँस्त्रायस्व। चक्रिं+त्रायस्व=चक्रिंस्त्रायस्व। अप्रशान कहने से प्रशान् तनोति यहां रु आदि कार्य न हुये इसी प्रकार पद कहने से हन्ति में भी न हुआ।

११३ ॥ नॄन पे । ८ । ३ । १० । नॄनित्यस्य रुर्वा पे ॥

पकार परे रहते नॄन् शब्द के नकार को विकल्प से रु आदेश होय। नॄन्+पाहि=नॄरु+पाहि=नॄँ+पाहि=नॄं +पाहि।

॥ ११४ ॥ कुप्वोः≍क≍पौ च । ८ । ३ । ३७ । कवर्गे पवर्गे च विसर्गस्य≍क≍पौ स्तः । चाद्विसर्गः । नॄँ≍पाहि । नॄं≍पाहि नॄँः पाहि । नॄंःपाहि । वा नॄन् पाहि ॥

जब कवर्ग वा पवर्ग परे रहे तब विसर्ग के स्थान में क्रम से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हो और पक्ष में विसर्ग भी होय। नॄँ+पाहि=नॄँ≍पाहि वा नॄँःपाहि। नॄं+पाहि=नॄं≍पाहि वा नॄंःपाहि। जब रु नहीं भया तब नॄन्पाहि।

॥ ११५ ॥ तस्य परमाम्रेडितम् । ८ । १ । २ । द्विरुक्तस्यपरमाम्रेडितं स्यात् ॥

द्विरुक्त शब्द (अर्थात् एक शब्द जो दोबार कहा गया हो) की दूसरी भाग का आम्रेडित संज्ञा होती है।

११६ ॥ कानाम्रेडिते । ८ । ३ । १२ । कान्नकारस्य रुराम्रेडिते । काँस्कान् कांस्कान् ॥

यदि आम्रेडित परे रहे तो कान् शब्द के नकार के स्थानमे रु आदेश होय। कान्+कान् = कारु+कान् = कां:+कान् = कांस्कान्।

॥ ११७ ॥ छेच । ६ । १ । ७३ । ह्रस्वस्य छे तुक। शिवच्छाया ॥

ह्रस्व को तुक् आगम होय यदि उस से परे छकार रहे। शिव+छाया = शिवच्छाया।

११८ ॥ पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७६ । दीर्घात् पदान्ताच्छे तुग्वा । लक्ष्मीच्छाया ॥

छकार परे रहते पदान्त दीर्घ को विकल्प से तुक् आगम होय। लक्ष्मी+छाया = लक्ष्मीच्छाया वा लक्ष्मी छाया।

॥ इति हल्सन्धि ॥

११९ ॥ वा शरि । ८ । ३ । ३६ । शरि विसर्गस्य विसर्गो वा। हरिःशेते । हरिश्शेते ॥

शर् परे रहे तो विसर्ग को विकल्प से विसर्ग ही होय। हरिःशेते वा हरिश्शेते ११२, ७३

१२० ॥ ससजुषो रुः । ८ ।२। ६६ । पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रु स्यात्

पदके अन्त में रहने वाला सकार को और सजुष् शब्द के षकार को रु आदेश होय। शिवस्+अर्च्यः = शिवरुअर्च्यः।

॥ १२१ ॥ अतोरोरप्लुतादप्लुते । ६ । १ । ११३ । अप्लुतादतः परस्य रो रु. स्यादप्लुतेऽचि ॥ शिवोऽर्च्यः ॥

अप्लुत अकार से परे जो रु तिस को उकार आदेश होय यदि अप्लुत अकार परे रहे तो। शिवरु+अर्च्य. शिव+उ+अर्च्य ३२ शिवो+अर्च्य ५३ = शिवोऽर्च्य.।

१२२ ॥ हशि च । ६ । १ । ११४ । तथा । शिवो वन्द्यः ॥

हश् परे रहते अप्लुत अकार से परे जो रु तिसके स्थान में उ आदेश होय। शिवरु+वन्द्य = शिव+उवन्द्य ३१ ॥ शिवोवन्द्यः ॥

१२३ ॥ भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि । ८ । ३ । १७ । एतत्पूर्वस्य

रोयादिशोऽशि । देवायिह । देवाविह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते ॥

जिस र से पूर्व भो भगो अघो वा अवर्ण रहे तिसको यकार आदेश होय अश् परे रहते । देवास्+इह = देवार+इह = देवाय्+इह ।

१२४ ॥ हलि सर्वेषाम् । ८ । ३ । २२ । भोभगोअघोअपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि ॥

सब आचार्यों के मत में हल् परे रहते उस यकार का लोप हो जिस यकार के पूर्व भो भगो अघो वा अवर्ण रहे । भोस्+देवा = भोर+देवा = भोय्+देवा = भोदेवाः । भगोस+नमस्ते = भगोर+नमस्ते = भगोय्+नमस्ते = भगोनमस्ते । अघोस्+याहि = अघोर याहि = अघोय्+याहि = अघोयाहि । देवास्+नम्या = देवार+नम्या = देवाय्+नम्या = देवानम्या ॥

॥ १२५ ॥ रोऽसुपि । ८ । २ । ६९ । अह्नो रेफादेशो न तु सुपि । अहरहः । अहर्गणः ॥

सुप् प्रत्याहार परे न रहे तो अहन् शब्द के नकार को रेफ आदेश होय । अहन्+अहन् = अहरहः । अहन्+गण = अहर्गणः ।

१२६ ॥ रो रि । ८ । ३ । १४ । रेफस्य रेफे परे लोपः ॥

रेफ का लोप होय यदि रेफ परे रहे तो । पुनर्+रमते = पुनारमते ।

१२७ ॥ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः । ६ । ३ । १११ । ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुना रमते । हरी रम्यः । शम्भू राजते । अणः किम् । तृढः । वृढः । मनस्+रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रोरीति लोपे च प्राप्ते ॥

यदि लोप का निमित्त ढकार वा रेफ परे हो तो उससे पूर्व अण् को दीर्घ होय । पुनर्+रमते = पुनारमते । हरिस्+रम्य । हरिर्+रम्य = हरि+रम्य = हरीरम्य । शम्भुस्+राजते = शम्भूराजते ।

१२८ ॥ विप्रतिषेधे परं कार्यम् । १ । ४ । २ । तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् । इति प्राप्ते पूर्वत्रासिद्धमिति रोरीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथः ॥

तुल्यबलवाले सूत्रों के विरोध पक्ष में अष्टाध्यायी क्रमानुसार जो परे होवे

कार्य करे। मनस्+रथ =१२०, ३१, ४ मनर्+रथः =यहां १२२ हशिच इस सूत्र से उत्व प्राप्तभया, और रोरि १२६ इस से लोप भी प्राप्त भया तो विप्रतिषेधे परं कार्यम्। इस से लोप प्राप्त भया, क्यों कि १२२ छठें अध्याय का सूत्र है, और यह १२६ आठवें अध्याय का है, इस कारण यह १२६ पर है, परन्तु पूर्वत्रासिद्धम् ३६ इस से रोरि असिद्ध है, क्यों कि जब लोप करने लगेंगे तब जो १२० ससजुषोरुः से रु किया है, वह असिद्ध हो जायगा रेफ के स्थान में सकार आय जायगा, इस कारण लोप नहीं भया, उत्व १२२ भया मन+उ+रथ =३२ मनोरथः। १२७ सूत्र में अण् प्रत्याहार पूर्व णकार तक लिया जाता है (अइउण्) इस लिये तृढः वृढः यहां दीर्घ न हुआ।

१२९ ॥ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि। ६। १। १३२। अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे। एष विष्णु। स शम्भु। अकोः किम्। एषको रुद्रः। अनञ्समासे किम् असश्शिवः हलि किम्। एषोऽत्र॥

हल् परे रहे तो उस सु के स का लोप होय जो ककार रहित एतद् शब्द वा तद् शब्द का है, परन्तु नञ् समास में न होय। एषस्+विष्णु =एषविष्णुः सस्+शम्भु =सशम्भु। ककार रहित कहने से एषको रुद्र में लोप न भया नञ् समास में न होय ऐसा कहने से यहां नहीं भया, असस्+शिव, ७३ =असश्शिव। हल् कहने से एषोऽत्र में न हुआ।

१३० ॥ सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्। ६। १। १३४। स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्येत। सेमामविड्ढिप्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः॥

अच् परे रहते यदि लोप के विना श्लोक का वा मन्त्र का चतुर्थांश ठीक न बैठे तो तद् शब्द के सकार का लोप होय। सस्+इमां अविड्ढिप्रभृतिम् =३२ सेमा अविड्ढिप्रभृतिम् सस्+एष दाशरथी रामः =३८ सैष दाशरथी रामः॥

—॥ इति विसर्गसन्धिः ॥—

॥ अथाजन्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

१३१ ॥ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। १। २। ४५। धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वार्थवच्छब्दरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्॥

धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त से भिन्न जो अर्थवान् शब्द सो प्रातिपदिक संज्ञक होय।

रोर्यादेशोऽपि । देवायिह । देवाइह । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते ॥

जिस रु से पूर्व भो भगो अघो वा अवर्ण रहे तिसको यकार आदेश होय अश् परे रहते । देवास्+इह = देवारु+इह = देवाय्+इह ।

१२४ ॥ हलि सर्वेषाम् । ८ । ३ । २२ । भोभगोअघोअपूर्वस्य यस्य लोपः स्याद्धलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि ॥

सब आचार्यों के मत में हल् परे रहते उस यकार का लोप हो जिस यकार के पूर्व भो भगो अघो वा अवर्ण रहे । भोस्+देवाः = भोरु+देवाः = भोय्+देवाः = भोदेवाः । भगोस्+नमस्ते = भगोरु+नमस्ते = भगोय् । नमस्ते = भगोनमस्ते । अघोस्+याहि = अघोरु याहि = अघोय्+याहि = अघोयाहि । देवास्+नम्या = देवारु+नम्या = देवाय्+नम्या = देवानम्या ॥

॥ १२५ ॥ रोऽसुपि । ८ । २ । ६९ । अह्नो रेफादेशो न तु सुपि । अहरहः । अहर्गणः ॥

सुप् प्रत्याहार परे न रहे तो अहन् शब्द के नकार को रेफ आदेश होय । अहन्+अहः = अहरहः । अहन्+गण = अहर्गण ।

१२६ ॥ रोरि । ८ । ३ । १४ । रेफस्य रेफे परे लोपः ॥

रेफ का लोप होय यदि रेफ परे रहे तो । पुनर्+रमते = पुनारमते ।

१२७ ॥ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः । ६ । ३ । १११ । ढरेफयोर्लोपनिमित्तयोः पूर्वस्याणो दीर्घः । पुना रमते । हरी रम्यः । शम्भू राजते । अणः किम् । तृढः । वृढः । मनस् रथ इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रोरीति लोपे च प्राप्ते ॥

यदि लोप का निमित्त ढकार वा रेफ परे हो तो उससे पूर्व अण् को दीर्घ होय । पुनर्+रमते = पुनारमते हरिस्+रम्यः । हरिर्+रम्य = हरि । रम्य = हरीरम्य शम्भुस्+राजते = शम्भूराजते ।

१२८ ॥ विप्रतिषेधे परं कार्यम् १ । ४ । २ । तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यात् । इति प्राप्ते पूर्वत्रासिद्धमिति रोरीत्यस्यासिद्धत्वाद् उत्वमेव । मनोरथः ॥

तुल्यबलवाले सूत्रों के विरोध उस में अष्टाध्यायी क्रमानुसार जो परे होसो

कार्य करे। मनस्+रथ' =१२०, ३१, ४ मनर्+रथः =यहां १२२ हशिच इस सूत्र से उत्व प्राप्तभया, और रोरि १२६ इस से लोप भी प्राप्त भया तो विप्रतिषेधे परं कार्यम्। इस से लोप प्राप्त भया, क्योंकि १२२ छठें अध्याय का सूत्र है, और यह १२६ आठवें अध्याय का है, इस कारण यह १२६ पर है, परन्तु पूर्वत्रासिद्धम् ३६ इस से रोरि असिद्ध है, क्योंकि जब लोप करने लगेगे तब जो १२० ससजुषोरु' से रु किया है, वह असिद्ध हो जायगा रेफ के स्थान में सकार आय जायगा, इस कारण लोप नहीं भया, उत्व १२२ भया मन+उ+रथ' =३२ मनोरथः। १२७ सूत्र से अण् प्रत्याहार पूर्व णकार तक लिया जाता है (अइउण्) इस लिये तृढः वृढः यहां दीर्घ न हुआ।

१२९ ॥ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि। ६। १। १३२। अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे। एष विष्णुः। स शम्भुः। अकोः किम्। एषको रुद्रः। अनञ्समासे किम्। असश्शिवः। हलि किम्। एषोऽत्र॥

हल् परे रहे तो उस सु के स का लोप होय जो ककार रहित एतद् शब्द वा तद् शब्द का है, परन्तु नञ् समास में न होय। एषस्+विष्णुः =एषविष्णु' सस्+शम्भुः =सशम्भु'। ककार रहित कहने से एषको रुद्र में लोप न भया नञ् समास में न होय ऐसा कहने से यहां नहीं भया, असस्+शिवः ७३ =असश्शिवः। हल् कहने से एषोऽत्र मे न हुआ।

१३० ॥ सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्। ६। १। १३४। स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्यंत। सेमामविड्ढिप्रभृतिम्। सैष दाशरथी रामः॥

अच् परे रहते यदि लोप के विना श्लोक का वा मन्त्र का चतुर्थांश ठीक न बैठे तो तद् शब्द के सकार का लोप होय। सस्+इमाम् अविड्ढिप्रभृतिम् =३२ सेमाम् अविड्ढिप्रभृतिम् सस्+एष दाशरथी रामः =३८ सैष दाशरथी रामः॥

—॥ इति विसर्गसन्धिः ॥—

॥ अथाजन्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

१३१ ॥ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। १। २। ४५। धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वार्थवच्छब्दरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्॥

धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त से भिन्न जो अर्थवान् शब्द सो प्रातिपदिक संज्ञक होय।

१३२ ॥ कृत्तद्धितसमासाश्च । १ । २ । ४६ कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा स्युः ॥

कृत्प्रत्ययान्त तद्धितप्रत्ययान्त और समास इन की भी प्रातिपदिक संज्ञा होवे।

१३३ स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् । ४ । १ । २ । सु औ जस् इति प्रथमा । अम् औट् शस् इति द्वितीया । टा भ्याम् भिस् इति तृतीया । ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी । ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी । ङस ओस् आम् इति षष्ठी । ङि ओस् सुप् इति सप्तमी ॥

ये २१ स्वादि प्रत्यय हैं। सु औ जस् प्रथमा। अम औट् शस द्वितीया। टा भ्याम् भिस् तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस् चतुर्थी। ङसि भ्याम भ्यस् पञ्चमी। ङस ओस आम् षष्ठी। और ङि ओस् सुप् सप्तमी॥

१३४ ॥ ङ्याप्प्रातिपदिकात् । ४ । १ । १ । प्रत्ययः । ३ । १ । १ । परश्च । ३ । १ । २ । इत्यधिकृत्य । ङ्यन्तादाबन्तात् प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः स्युः ॥

ङ्यन्त (ङीप् ङीष् वा ङीन्) आबन्त (टाप् डाप् वा चाप्) और प्रातिपदिक से पर स्वादि प्रत्यय हों।

॥ १३५ ॥ सुपः । १ । ४ । १०३ । सुपस्त्रीणि त्रीणि वचनान्येकश एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः ॥

सुप् प्रत्याहार में जो प्रथमा आदि के तीन तीन नाम हैं सो क्रम से एकवचन द्विवचन और बहुवचन संज्ञक हों।

॥ १३६ ॥ द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने । १ । ४ । २२ । द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः ॥

जब वक्ता को दो पदार्थों के कहने की इच्छा होवे तो द्विवचन और एक की इच्छा होवे तो एकवचन का प्रयोग होता है।

॥ ७८७ ॥ बहुषु बहुवचनम् । १ । ४ । २१ । बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं स्यात् ॥

जब बहुत पदार्थों के कहने की इच्छा होवे तो बहुवचन का प्रयोग होता है।

॥१३८॥ विरामोऽवसानम्।१।४।११०। वर्णानामभावोऽवसानसञ्ज्ञः स्यात्। रुत्वविसर्गौ राम ॥

वर्णों के अभाव को अवसान कहते हैं। राम शब्द की साधन प्रक्रिया लिखते हैं। शब्द दो प्रकारके हैं, व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न व्युत्पन्नपक्ष मे प्रातिपदिकसञ्ज्ञा इस १३२ मे और अव्युत्पन्नपक्ष मे इस १३१ ने होती है, फिर मानो विभक्तियां पाईं १३४ उन से प्रथमा का एक वचन सु १३६ आया रामसु सु मे के उ का लोप भया ३३, ४ तव रामस् (१२०) १०८ राम।

॥ १३९ ॥ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ। १। २। ६४ ॥ एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ॥

किसी एक विभक्ति के पूर्व जितने एक समान के रूप दिखाई पडे उन मे से एक का शेष हो और औरों का लोप होय। जैसा राम राम औ=राम।

॥ १४० ॥ प्रथमयोः पूर्वसवर्णः। ६। १।१०२। अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश स्यात्। इति प्राप्ते ॥

यदि अक् प्रत्याहार से परे प्रथमा वा द्वितीया सम्बन्धी अच् रहे तो पूर्व पर के स्थान में पूर्व का सवर्ण दीर्घ होय। राम+औ यहा दीर्घ पाया।

॥ १४१ ॥ नादिचि। ६। २। १०४। आदिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः। वृद्धिरेचि। रामौ ॥

यदि अवर्ण से परे प्रथमा वा द्वितीया सम्बन्धी इच् रहे तो पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश न होय। राम+औ ३८=रामौ।

॥ १४२ ॥ चुटू। १। ३। ७ प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ स्त ॥

प्रत्यय के आदि मे जो चवर्ग वा टवर्ग सो इत्सञ्ज्ञक होय।

॥ १४३ ॥ विभक्तिश्च। १। ४। १०४। सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्त

सुप् और तिङ् प्रत्यय की विभक्ति सञ्ज्ञा होती है।

॥ १४४ ॥ नविभक्तौ तुस्मा। १। ३। ४। विभक्तिस्थास्तवर्गसमा नेत। इति सस्य नेत्त्वम्। रामा ॥

विभक्ति के जो तवर्ग, स् और म् तिन की इत्सञ्ज्ञा न होवे। राम+जस् १४२ से राम्+अस् अस् के स की इत्सञ्ज्ञा पाई, पर १४४ ने दबाया राम्+अस [illegible] १२०, १०८=रामा।

॥ १४५ ॥ एकवचनं सम्बुद्धिः । २ । ३ । ४९ । सम्बोधने प्रथमाया एकवचनं सम्बुद्धिसंज्ञं स्यात् ॥

सम्बोधन के विषे जो प्रथमा का एकवचन सो सम्बुद्धिसंज्ञक होय । रामसु यहां सु की सम्बुद्धि संज्ञा भई ।

१४६ ॥ यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् । १ । ४ । १३ । य प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्दस्वरूपं तस्मिन् प्रत्यये परेऽङ्गसंज्ञं स्यात् ।

जो प्रत्यय जिस प्रकृति से विधान करें यदि वही प्रत्यय उस से परे हो तो उस प्रकृति की अङ्गसंज्ञा होवे ।

॥ १४७ ॥ एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः । ६ । १ । ६९ । एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते सम्बुद्धिश्चेत् । हे राम हे रामौ हे रामाः ॥

एङन्त वा ह्रस्वान्त अङ्ग से परे जो हल् तिसका लोप हो यदि वह सम्बुद्धि का अवयव होय तो । राम सु ११ ४ = रामस् अङ्ग संज्ञा १४६ तब स का लोप है राम विद्यार्थियों को याद रखना चाहिये कि सम्बोधन में ह शब्द का प्रयोग होता है ।

॥ १४८ ॥ अमि पूर्वः । ६ । १ । १ ०७ । अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः । रामम् । रामौ ॥

अक् प्रत्याहार से परे अम् सम्बन्धी अच् हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्व रूप एकादेश होय । द्वितीया में राम + अम् = रामम् । दो वचन में रामौ ।

१४९ । लशक्वतद्धिते ।१।३।८। तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः स्युः

तद्धित भिन्न प्रत्यय के आदि में जो ल श क वा कवर्ग सो इत्संज्ञक होवें । राम + शस् = रामशस् ।

॥ १५ ॥ तस्माच्छसो नः पुंसि । ६ । १ । पूर्वसवर्णदीर्घात् परो यः शसस्सस्तस्य नः स्यात् पुंसि ॥

पूर्वसवर्णदीर्घ से परे जो शस प्रत्यय का स् तिसको नकार होय पुल्लिङ्ग में । राम + अस् १ ३ = रामास् = रामान् ।

॥ १५१ ॥ अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि । ८ । ४ । २ अट् कवर्गः पवर्ग आङ् नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवमिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे । इतिप्राप्ते ॥

अट् प्रत्याहार के वर्ण, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् ये पृथक् पृथक् हों वा यथा संभव मिले हों तो समान पद में विद्यमान् जो रेफ वा षकार तिससे परे जो न तिस को ण आदेश होय। रामान् यहां णत्व पाया।

॥ १५२ ॥ पदान्तस्य। ८। ४। ३७। नस्य णो न। रामान्

पद के अंत में वर्तमान जो न तिस को ण आदेश न होय। इसलिये रामान् में न भया।

॥ १५३ ॥ टाङसिङसामिनात्स्याः। ७। १। १२। अदन्ताट्टादीनामिनादयः स्युः णत्वं। रामेण॥

ह्रस्व अकारान्त अङ्ग से परे जो टा, ङसि और ङस् तिन को क्रम से इन, आत् और स्य आदेश होवें। राम+टा=राम इन ३२, १५१=रामेण

॥ १५४ ॥ सुपि च। ७। ३। १०२। यञादौ सुप्यतोऽङ्गस्य दीर्घः। रामाभ्याम्।

यञ् प्रत्याहार के वर्ण आदि में हैं जिन के ऐसा सुप् प्रत्यय परे रहे तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ होय। राम+भ्याम्=रामाभ्याम्

॥ १५५ ॥ अतो भिस ऐस्। ७। १। ९। अनेकाल् शित् सर्वस्य। रामैः।

भिस् को ऐस् आदेश होय, यदि उसके पूर्व अदन्त अङ्ग रहे तो ऐस् में अनेक अल् हैं इस कारण सम्पूर्ण भिस् को ऐस् भया, तब राम+ऐस् ३८, १२०, १०८ रामैः अब चतुर्थी के रूप लिखते हैं राम+ङे तब

॥ १५६ ॥ ङेर्यः। ७। १। १३। अतोऽङ्गात् परस्य ङेर्यादेशः॥

ङे को य आदेश होय यदि उसके पूर्व अदन्त अङ्ग रहे। राम+य ऐसा भया तब।

॥ १५७ ॥ स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ। १। १। ५६। आदेशः स्थानिवत् स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ। इति स्थानिवत्त्वात् सुपि चेति दीर्घः। रामाय। रामाभ्याम्॥

आदेश स्थानी के समान होय अर्थात् जो धर्म स्थानी में है वह आदेश पर भी आवे यदि स्थानी के अवयव वा तद रूप अल् के धर्म को मान कर कार्य करना होय तो न होय। रामाय यहां ङे के स्थान में जो यकार भया है, सो भी इस सूत्र से अर्थात् ङे में जो सुप् है, वह आया। तब सुप् को मानकर दीर्घ १५४ भया रामाय। रामाभ्याम्।

॥ १५८ ॥ बहुवचने झल्येत्। ७। ३। १०३। झलादौ बहुवचने

सुप्यतोऽङ्गस्यैकार । रामेभ्य । सुपि किम् । पचध्वम् ॥

झल् प्रत्याहार है आदि में जिस के ऐसा बहुवचन सुप् परे हो तो अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होवे। राम+भ्यस = रामेभ्य। इस सूत्र में सुप् ग्रहण से पचध्वम् यहां एकार न हुआ। क्योंकि ध्वम् तिङ् प्रत्यय है जिसका वर्णन आगे किया जायेगा अब पञ्चमी के रूप लिखते हैं। राम+ङसि तब

॥ १५९ ॥ वाऽवसाने । ८ । ४ । ५६ । अवसाने झलां चरो वा। रामात् रामाद् रामाभ्याम् । रामेभ्य । रामस्य ।

झल् को विकल्प से चर होय यदि अवसान परे रहे तो। राम+ङसि१११ = राम+आत् ५२ = रामात् वा रामाद् रामाभ्याम् रामेभ्य षष्ठी का एक वचन। राम+ङस् = १५१ राम+स्य १५१ = रामस्य।

॥ १६ ॥ ओसि च । ७ । ३ । १ ४ । अतोऽङ्गस्यैकार । रामयो ।

यदि ओस विभक्ति परे रहे तो ह्रस्व अकारान्त अङ्ग को एकार होय। राम+ओस = रामे ओस् ६ = रामयो

॥ १६१ ॥ ह्रस्वनद्यापो नुट् । ७ । १ । ५४ । ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात् परस्यामो नुडागम ॥

आम को नुट् आगम होय यदि उस से पूर्व ह्रस्वान्त नद्यन्त वा आबन्त अङ्ग हो। राम+आम् तब राम+नाम्

॥ १६२ ॥ नामि । ६ । ४ । ३ । अजन्ताङ्गस्य दीर्घ । रामाणाम । रामे । रामयो । एवं कृते ॥

यदि नाम् (नुट आगम से षष्ठी बहुवचन आम् का नाम भया हो) परे रहे तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ होय। राम+नाम् = रामानाम् १११ = रामाणाम।

॥ १६३ ॥ आदेशप्रत्यययो । ८ । ३ । ५९ । इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेश प्रत्ययावयवश्च यस्सस्तस्य मूर्धन्यादेश । ईषद्विवृतस्य सस्य तादृश एव ष । रामेषु । एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ता ॥

इण् प्रत्याहार वा कवर्ग से परे जो अपदान्त आदेश रूप सकार वा अपदान्त प्रत्यय का अवयव सकार तिसको मूर्धन्य षकार होवे। रामसु+१६ रामेसु ईषद्विवृत प्रयत्नवान् दन्त्य सकार के समान मूर्धन्य षकार है इस लिये षकार ही आदेश भया तब रामेषु सिद्ध भया। ऐसे ही कृष्ण, देव मुकुन्द यतीन्द्र सुरेन्द्र आदि अकारान्त शब्दों के

रूप भी जानो। विद्यार्थियों को यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि जिस शब्द में र या ष रहे उस को णत्व १५१ होता है और में नहीं।

॥ १६४ ॥ सर्वादीनि सर्वनामानि। १ । १ । २७। सर्व विश्व उभ उभय डतर डतम अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सम सिम। पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसञ्ज्ञायाम्। स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः। त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम ॥

सर्व आदि जो शब्द स्वरूप हैं सो सर्वनाम सञ्ज्ञक होंय।

सर्व सपूर्ण। विश्व सपूर्ण वा ससार। उभ दो। उभय दो अवयव विशिष्ट। डतर, डतम, ये दोनों प्रत्यय हैं इन से वे शब्द लिये जाते है जिन के अन्त्य में पूर्वोक्त प्रत्यय होय जैसे कतर कतम। अन्य दूसरा। अन्यतर दो मे एक। इतर दूसरा। त्वत् दूसरा। त्व दूसरा। नेम आधा। सम सपूर्ण। सिम सपूर्ण। यदि पूर्व पर अवर दक्षिण उत्तर अपर अधर ये सात शब्द व्यवस्था मे हों वा सञ्ज्ञा मे न हों तो सर्वादि गण में इनका पाठ जानो। उस स्व शब्द का सर्वादि गण मे ग्रहण है जिसका अर्थ आत्मा वा आत्मीय है यदि ज्ञाति वा धन अर्थ हो तो नही। अन्तर शब्द का अर्थ जो बहिर्योग वा उपसंव्यान हो तो जानो कि वह सर्वादिगण का है। त्यद् वह। तद् वह। यद् जो। एतद् यह। इदम् यह। अदस् वह। एक एक। द्वि दो। युष्मद् तू। अस्मद् मैं। भवतु आप। किम् कौन्। इन को भी सर्वादि गण में जानो।

॥ १६५ ॥ जस शी। ७। १। १७। अदन्तात् सर्वनाम्नो जसः शी स्यात्॥ अनेकाल्त्वात् सर्वादेश। सर्वे॥

अदन्त सर्व नाम से परे जो जस् तिसको शी (ई) आदेश होय। सर्व+जस्= सर्व+ई३२=सर्वे

१६६॥ सर्वनाम्न स्मै। ७। १। १४। अत सर्वनाम्नो ङे स्मै। सर्वस्मै।

अदन्त सर्व नाम से परे जो ङे तिसको स्मै आदेश होय। सर्व+ए=सर्वस्मै।

॥ १६७॥ ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ। ७। १। १५। अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्त। सर्वस्मात्।

अदन्त सर्वनाम से परे जो ङसि और ङि तिन को क्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश होय। सर्व+ङसि=सर्वस्मात्।

॥ १६८ ॥ आमि सर्वनाम्नः सुट ।७।१।५२। अवर्णान्तात् परस्य सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुडागम । एत्वे षत्वे सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् । शेषं रामवत् । एवं विश्वादयोऽप्यदन्ता । उभशब्दो नित्यं द्विवच नान्त' । उभौ २ । उभाभ्याम ३ । उभयो २ । तस्येह पाठो ऽकजर्थः । डतरडतमौ प्रत्ययौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणमिति तदन्ताग्राह्याः । नेम इत्यर्धे । सम सर्वपर्याय', तुल्यपर्यायस्तु न, समानामिति ज्ञापकात् ।

अवर्णान्त सर्वनाम से परे जो आम तिसको सुट् (स्) आगम होय । सर्व + आम् = सव + साम्१६ = सर्वे + साम्१६१ = सर्वेषाम् । सर्व + ङि १६० = सर्वस्मिन् सर्व शब्द के शेष रूप राम शब्द के समान जानने । इसी तौर विश्व आदि अदन्त सर्वनाम शब्द के रूप होते हैं । उभ शब्द का प्रयोग सदा द्विवचन में होता है । उभौ उभौ उभाभ्यां३ उभयो' २ । उभ नाम का पाठ एकवचन और बहुवचन ही में होता है तो द्विवचनान्त उभ शब्द का ग्रहण सर्वादि गण में मानने का तात्पर्य यह है कि इस को टि के पूर्व अकच् प्रत्यय होता है यदि उभ शब्द सर्वनाम में परिगणित न होता तो इसकी टि के पूर्व अकच् भी नहीं हो सकता इसलिये सर्वादिगण में पाठ मानागया । डतर और डतम प्रत्यय हैं । जहां प्रत्यय का ग्रहण हो वहां जिस शब्द के अन्तमें वह प्रत्यय होता हो उस प्रत्ययांत शब्द का ग्रहण होता है इस कारण सर्वादिगण में डतर और डतम व डतरान्त और डतमान्त शब्द का ग्रहण होता है । नेम शब्द का अर्थ आधा है । सम शब्द सर्व के अर्थ में सव नाम है पर तुल्य अर्थ में नहीं क्योंकि तुल्य अर्थ में समानाम् १० ऐसा सूत्रकार ने लिखा है यदि होता तो समेषाम् हो जाता ।

॥ १६९ ॥ पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १।१।३४। एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणसूत्रात् सर्वत्र या प्राप्ता सा वसि वा । पूर्वे । पूर्वाः । असंज्ञायां किम् । उत्तराः । कुरवः । स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था । व्यवस्थायां किम् । दक्षिणा गायकाः । कुशला इत्यर्थः ।

गण सूत्र से पूर्वादि शब्दोंको प्राप्त भइ जो सर्व नाम संज्ञा सो जस् परे रहते विकल्प से होय यदि पूर्वादि शब्द व्यवस्था वा असंज्ञा अर्थ में रहे । पूर्वे पूर्वाः यदि संज्ञा से भिन्न न कहना तो उत्तरा कुरव वहां भी दो रूप अर्थात् उत्तर उत्तरा हो जाते क्योंकि

यह उत्तर शब्द बाह्यदेश का वाचक है। व्यवस्था उसे कहते हैं जो पूर्वादिशब्दों के अर्थ से अपेक्षित सामान्य नियत का निश्चय है। व्यवस्था कहने से दक्षिणा गायका' यहां दक्षिणे दक्षिणा। न भया, क्योंकि दक्षिण ही देश के गानेवाले कुशल होते हैं यहा व्यवस्था अर्थ है।

१७० ॥ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्। १। १। ३५। ज्ञातिधनान्यवाचिन. स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। स्वे स्वा. ॥ आत्मीया आत्मान इति वा। ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः ज्ञातयोऽर्थौ वा ॥

वन्धु और धन अर्थ को छोड अन्य अर्थ में वर्तमान स्व शब्द की सर्वनाम सञ्ज्ञा विकल्प से हो यदि जस् परे रहे तो स्वे स्वा' अर्थात् आप वा अपना। वन्धु और धन अर्थ मे एकही रूप होता है। स्वा जाति वा अर्थ।

१७१ ॥ अन्तर बहिर्योगोपसंव्यानयो.। १। १। ३६। बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा। अन्तरे अन्तरा वा गृहा:। बाह्या इत्यर्थ। अन्तरे अन्तरा वा शाटका:। परिधानीया इत्यर्थ ॥

बाहिर और वस्त्र के धारण करने अर्थ मे अन्तरशब्द की सर्वनामसञ्ज्ञा विकल्प से होय जस् परे रहते। अन्तरे वा अन्तरा यहा बाहर के घर वा पहरने के योग्य वस्त्र अर्थात् (मागी) में अन्तर शब्द है ॥

१७२ ॥ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा। ७। १। १६। एभ्यो ङसिङ्यो: स्मात्स्मिनौ वा स्त। पूर्वस्मात्। पूर्वात्। पूर्वस्मिन्। पूर्वे। एवं परादीनामपि।। शेष सर्ववत् ॥

पूर्व आदि नव शब्दो से परे जो ङसि और ङि तिन को क्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प से होय। पूर्वस्मात्। पूर्वात्। पूर्वस्मिन्। पूर्वे इस प्रकार पर आदि शब्दो को जानना जो शेष रूप बचे उन को सर्व शब्द के समान जानना।

१७३ ॥ प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च। १। १। ३३। एते जस्युक्तसञ्ज्ञा वा स्यु:। प्रथमे। प्रथमा.। तय: प्रत्यय। द्वितये। द्वितया:। शेष रामवत्। नेमे। नेमा। शेष सर्ववत् ॥

यदि प्रथमादि शब्दों से परे जस् विभक्ति रहे तो उन शब्दो की सर्व नाम सञ्ज्ञा विकल्प से होय। प्रथमे, प्रथमा.। यहा प्रथमादि शब्दों मे तय को प्रत्यय जानना।

इस लिये यहां उस शब्द का ग्रहण है जिस के अन्त्य में वह प्रत्यय है द्वितये वा द्वितया इसके शेषरूप राम शब्द की सदृश हैं। नेमे वा नेमाः। इस के शेष रूप सर्व शब्द के सदृश हैं।

१०४ ॥ वा० तीयस्य ङित्सु वा। द्वितीयस्मै। द्वितीयायेत्यादि। एवं तृतीयः। निर्जर ॥

यदि ङित्सप् प्रत्यय परे रहे तो तीय प्रत्ययान्त शब्द को सर्व नाम संज्ञा विकल्प से होय। द्वितीयस्मै १९९। द्वितीयाय। ऐसे ही तृतीय शब्द को जानना। निर्जर नियतो जरास्य।

१०५ ॥ जराया जरसन्यतरस्याम्।७।२।१ १। अजादौ विभक्तौ। पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च। निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति। एकदेशविकृतमनन्यवदिति जराशब्दस्य जरस्। निर्जरसौ निर्जरस इत्यादि। पक्षे हलादौ च रामवत्। विश्वपाः।

यदि अजादि विभक्ति परे रहे तो जरा शब्द को जरस् आदेश विकल्प से होय। अष्टाध्यायी में पद और अङ्ग इन दोनों के अधिकार में जो कार्य्य जिस को कहा है सो तदन्त को भी होता है इस लिये जरा शब्द को आदेश जो जरस् कहा है वह निर्जर शब्द को भी पाया परन्तु आदेश उसी को होता है जिस को सूत्र में कहा है "निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति" तो सूत्र में जरा शब्द कहा गया है इस हेतु निर्जर शब्द का अवयव जो जर तिस को जरस् हुआ। यदि यह कहो कि निर्जर शब्द में जरा नहीं है किन्तु जर है तो यह नहीं कह सकते क्योंकि जो कुछ विकार को प्राप्त हो जाता है सो और के समान नहीं होता "एकदेशविकृतमनन्यवत्" निर्जरसौ निर्जरसः इत्यादि। जिस पक्ष में जरस् आदेश नहीं होता उसमें और हलादि विभक्ति में राम शब्द के समान रूप जानो। विश्वपाः अर्थात् विश्व की रक्षा करनेवाला "विश्वं पातीति"।

१०६ ॥ दीर्घाज्जसि च।६।१।१०५। विश्वपौ। विश्वपाः। विश्वपाम्। विश्वपौ ॥

दीर्घ से परे जो जस् वा इच् रहे तो पूर्वसवर्ण दीर्घ न होय। विश्वपा+औ १८=विश्वपौ।

१०७ ॥ सुडनपुंसकस्य।१।१।४३। स्वादिपञ्चवचनानि स र्वनामस्थानसंज्ञानि स्युर क्लीबस्य ॥

सु औ, जस् अम् औट् इन पांच वचनों की सर्वनामस्थान संज्ञा होय नपुंसक लिङ्ग का बाद कर।

१७८॥ स्वादिष्वसर्वनामस्थाने। १।४।१७। कप्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदं स्यात्॥

सर्वनामस्थान को छोड कर अष्टाध्यायी में जो सु प्रत्यय कहा है, वहां से लेकर क प्रत्यय पर्यंत जितने प्रत्यय मिलते हैं, तिनमे जो पूर्व है, तिसकी पद सज्ञा होवे।

१७९॥ यचि भम्। १।४।१८। यादिष्वजादिषु च कप्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात्॥

सर्वनामस्थान को छोडकर सु प्रत्यय से लेकर क प्रत्यय पर्यन्त जितने यकारादि वा अजादि स्वादि प्रत्यय मिलते हैं, तिन से जो पूर्व तिसकी भसज्ञा हो। अब यहा यह शङ्का हुई कि पद सज्ञा और भसज्ञा दोनों प्राप्त भई तो कौन होय। तब

१८० आकडारादेका संज्ञा। १।४।१। इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारय इत्यत. प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया। या पराऽनवकाशा च।

अष्टाध्यायी में इस सूत्र से "कडाराः कर्मधारय" इस सूत्र पर्यन्त यदि एक शब्द की अनेक सज्ञा प्राप्त हो तो जो सज्ञा अष्टाध्यायी के क्रमानुसार हो और जिसके दूसरे कही होने का अवकाश न हो वही सज्ञा हो। अनवकाश उसे कहते हैं जिस की और कही प्राप्ति न होवे। जैसे पदसज्ञा के विषय को छोड भसज्ञा की प्राप्ति और कही नही है, इस लिये अजादि विभक्ति परे रहते पद सज्ञा को बाधकर भ सज्ञा ही हुई।

१८१॥ आतोधातो:। ६।४।१४०। आकारन्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः। अलोऽन्तस्य। विश्वपः। विश्वपा। विश्वपाभ्यामित्यादि। एवं शङ्खध्मादयः। धातो: किम्। हाहान्। हरिः हरी॥

आकारान्त जो धातु तदन्त भसज्ञक जो अङ्ग तिसका लोप होय। विश्वपा शब्द के अन्त अर्थात् आकार का लोप भया, २४ विश्वपा+अस्=विश्वप। विश्वपा+टा= विश्वप। विश्वपाभ्याम् इत्यादि। ऐसे ही शङ्खध्मा आदि आकारान्त शब्द जानने। धातु कहने से। हाहा+अस्=हाहान्। यहा लोप न हुआ। अब इकारान्त हरि शब्द के रूप लिखते हैं। हरि "दु:ख हरतीति" हरि+औ १४० =हरी।

१८२॥ जसि च। ७।३।१०९। ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः। हरयः

ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होय यदि जस् परे रहे तो। हरि+जस् १४२, २६ =हरयः

१८३ ॥ ह्रस्वस्य गुणः । ७ । ३ । १०८ । सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् । हरी । हरीन् ॥

ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण होय सम्बुद्धि परे हो तो हे हरे १४ । ५० । हरिम् १५८ । हरीन् १४ १५ ।

१८४ ॥ शेषो घ्यसखि । १ । ४ । ७ । शेष इति स्पष्टार्थम् । ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्ज्जं घिसंज्ञम् ॥

सखि शब्द को छोड़कर जो ह्रस्व इकारान्त वा उकारान्त शब्द हैं तिन की घिसंज्ञा होय।

१८५ ॥ आङो नाऽस्त्रियाम् । ७ । ३ । १२० । घेः परस्याङो नाऽस्त्रियाम् । आङिति टासंज्ञा प्राचाम् । हरिणा । हरिभ्याम् । हरिभिः

स्त्रीलिङ्ग को छोड़कर आङ् अर्थात् टा को ना आदेश होय यदि उस से पूर्व घिसंज्ञक शब्द रहे। प्राचीन लोग टा को आङ् कहते हैं। हरि+टा१११=हरिणा हरिभ्याम्

१८६ ॥ घेर्ङिति । ७ । ३ । १११ । घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः । हरये ॥

यदि ङित् सुप् परे रहे तो घि संज्ञक शब्द को गुण होय। ङित उसे कहते हैं। जिस का ङ् इत् होय हरि+ङे २६ = हरये।

१८७ ॥ ङसिङसोश्च । ६ । १ । ११ । एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः । हरेः हर्य्योः हरीणाम् ॥

एङ् से परे यदि ङसि वा ङस् का अकार रहे तो पूर्व का रूप होय। हरि+ङसि १८६ = हरे+अस् = हरेः। हरि+ओस् १८ = हर्य्योः। हरि+आम् = १११ ? हरीणाम्।

१८८ ॥ अच्च घेः । ७ । ३ । ११९ । इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौत् घेरत् । हरौ । हरिषु । एवं कव्यादयः ॥

यदि ङि से पूर्व इकार वा उकार रहे तो। ङि को औ और घि संज्ञक शब्द को अकार आदेश होय हरि+ङि = हर+औ १८ = हरौ। हरिषु। इसी रीति से कवि अरि पाणि मुनि आदि शब्द हैं।

१८९ ॥ अनङ् सौ । ७ । १ । ९३ । सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ ॥

सम्बुद्धि से भिन्न सु परे रहे तो सखि रूप अङ्ग को अनङ् आदेश होय। सखन्+सु ११

१९ ॥ अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा । १ । १ । ६५ । अन्त्यादलः पूर्वो यो वर्णः स उपधासंज्ञः स्यात् ॥

उपधा उसवर्ण का नाम है, जो अन्त्य अल् से पूर्व हो। सखन्+सु यहां ख में अ की उपधा संज्ञा हुई।

१६१ ॥ सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ । ६ । ४ । ८ । नान्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

यदि सम्बुद्धि भिन्न सर्व नामस्थान परे रहे तो नकारान्त की उपधा को दीर्घ होय। सखन्+सु=सखान्सु

१६२ ॥ अपृक्त एकाल् प्रत्ययः । १ । २ । ४१ ॥

उस प्रत्यय का नाम अपृक्त है, जिस मे एक ही अल् रूप हो।

१६३ ॥ हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल् । ६ । १ । ६८ । हलन्तात् परं दीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल् लुप्यते ।

हलन्त वा दीर्घ ङी (ङीप्, ङीष्, ङीन्) वा आप् (टाप् डाप् चाप्) जिनके अन्त में हो उन से परे जो सु वा ति अथवा सि प्रत्यय रूप अपृक्त हल् सो लोप होय। सखान्सु ३३, २=सखान्स्=सखान्

१६४ ॥ न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य । ८ । २ । ७ । प्रातिपदिकसंज्ञकं यत् पदं तदन्तस्य नस्य लोपः । सखा ॥

प्रातिपदिक संज्ञक जो पद उसके अन्त में वर्तमान जो न तिसका लोप होय। सखान्=सखा

१६५ ॥ सख्युरसम्बुद्धौ । ७ । १ । ६२ । सख्युरङ्गात् परं सम्बुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णिद्वत् स्यात् ॥

सखि रूप अङ्ग से परे वह सर्व नामस्थान णित् के समान होय, (णित् मानके जो कार्य होता है वह उस को भी मानकर होय) जो सम्बुद्धि से भिन्न है।

१६६ ॥ अचो ञ्णिति । ७ । २ । ११५ । अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्ञिति णिति च परे । सखायौ । सखायः । हे सखे । सखायम् । सखायौ । सखीन् । सख्या । सख्ये ॥

अजन्त अङ्ग को वृद्धि होय, यदि वह प्रत्यय परे रहे जिसका ञकार वा णकार इत्संज्ञक हो। सखि+औ=सखायौ। सखायः। हे सखे १८२, १४५-७। सखायम्। सखायौ। सखीन्। सख्या १८। सख्ये।

१६७ ॥ ख्यत्यात् परस्य । ६ । १ । ११२ । खितिशब्दाभ्यां खीती-

शब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उ । सख्युः ॥

जिस को यणादेश १८ किया हो ऐसा जो ह्रस्व खि वा ति शब्द अथवा दीर्घ खी वा ती शब्द (ख्य् वा त्य्) तिस से परे जो ङसि वा ङस् का अकार तिसको उकार होय सखि=ङसि+सखि ङस् १८=सख्यु २।

१९८ ॥ औत् । ७ । ३ । ११८ । इत परस्य ङेरौत् । सख्यौ । शेषं हरिवत् ॥

ङि को औ आदेश होय यदि उस से पूर्व इकार रहे। सखि+ङि=सखि+औ१८= सख्यौ। शेष रूप हरि शब्द के समान जानने ॥

१९९ ॥ पतिः समास एव । १ । ४ । ८ । घिसञ्ज्ञः । पत्या पत्ये । पत्युः २ पत्यौ शेषं हरिवत् । समासे तु भूपतये । कतिशब्दो बहुवचनान्तः ॥

पति शब्द को घिसंज्ञा समास ही में होती है इस से यह सिद्ध भया कि केवल पति शब्द की घिसंज्ञा मान कर जोर कार्य्य होता है सो यहां भी न होगा पति+आ १८=पत्या पति+ङसि वा ङस्=पत्यु २ । पति+ङि=पत्यौ। शेष रूप हरि शब्द के समान जानने। समास में तो। भूपतये इस तौर नरपति गणपति आदि जानने। अब कति शब्द के रूप लिखते हैं। यह शब्द बहुवचनान्त है।

२०० ॥ बहुगणवतुडति संख्या । १ । १ । २३ ॥

बहु शब्द और गण शब्द और जिन के अन्त में वतु वा डति प्रत्यय हों वे संख्या कहावें। कति शब्द डति प्रत्ययांत है इस लिये उसकी संख्या संज्ञा हुई ॥

२०१ ॥ डति च । १ । १ । २५ । डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा स्यात् ।

डति प्रत्यय है अन्त में जिसके ऐसा जो संख्या वाचक शब्द सो षट् संज्ञक होवे। इस से कति शब्द की षट् संज्ञा भई ॥

२०२ ॥ षड्भ्यो लुक् । ७ । १ । २२ । जश्शसोः ॥

षट् संज्ञक से परे जो जस् वा शस् तिसका लोप होय। कति+जस्=कति।

२०३ ॥ प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः । १ । १ । ६१ । लुक्श्लुलुप्शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमात् तत्तत्संज्ञं स्यात् ॥

लुक् श्लु और लुप् शब्दों से प्रत्यय का जो अदर्शन अर्थात् न दिखाई पड़ना सो क्रम से लुक् श्लु और लुप संज्ञक होय ॥

२०४ ॥ प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । १ । १ । ६२ । प्रत्यये लुप्तेऽपि

तदाश्रितं कार्यं स्यात्। इति जसि चेति गुणे प्राप्ते॥

प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्यय मानके जो जो कार्य होते हों वे होवें। कति यहां इस सूत्र के २०२ लुक् होने पर भी इस सूत्र के अनुसार जो जस् को मान कर गुण होता है १८२ सो प्राप्त भया। ॥ तब

२०५॥ न लुमताङ्गस्य। १। १। ६३। लुमता शब्देन लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न स्यात्। कति २। कतिभिः। कतिभ्यः २। कतीनाम्। कतिषु। युष्मदस्मद्षट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः। त्रिशब्दो नित्यं बहुवचनान्त। त्रय.। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः २॥

जहा लुमता शब्द से लोप हो वहा लोप निमित्तक अङ्ग कार्य न होय। तब गुण न भया कति२, कतिभिः, कतिभ्य २, कतीनाम्, कतिषु, युष्मद्, अस्मद् और षट् संज्ञक शब्दों का तीनों लिङ्गो में समान रूप होते हैं।

२०६॥ त्रेस्त्रय:। ७। १। ५२। आमि त्रयाणाम्। त्रिषु। गौणत्वेऽपि प्रियत्रयाणाम्॥

आम् परे रहे तो त्रि शब्द को त्रय आदेश होय। त्रि+आम्=त्रयाणाम् १६१-२। त्रिषु जहा त्रिशब्द की मुख्यता नहीं है, तहा भी (बहुब्रीहि समास में) त्रय आदेश होता है। प्रियत्रयाणाम्।

२०७॥ त्यदादीनामः। ७। २। १०२। एषामकारो विभक्तौ द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः। द्वौ २। द्वाभ्याम् ३। द्वयोः २। पाति लोकमिति पपीः सूर्यः॥ पप्यौ। पप्य. हे पपीः पपीम्। पपीन्। पप्या। पपीभ्याम्३। पपीभिः। पप्ये। पपीभ्यः २। पप्यः २। पप्योः २। दीर्घत्वान्न नुट्। पप्याम्। ङौ तु सवर्णदीर्घः। पपी। पपीषु। एवं वातप्रम्यादय.। बह्व्य श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी॥

विभक्ति परे हो तो त्यद् आदि शब्दों को अकार आदेश होय। महाभाष्यकार को यह इष्ट है, कि द्वि शब्द तक यह सूत्र लगे। द्वि+औ=द्वौ। द्वाभ्याम् ३। द्वयो २ जो लोक की रक्षा करता है, उसे पपी, अर्थात् सूर्य कहते हैं। "पातिलोकम्" पपी+औ=पप्यौ। पप्य' हे पपी'। पपीम्। पपीन्। पप्या। पपीभ्याम्। पपीभि।

पप्ये। पपीभ्याम्। पपीभ्य' २। पप्य' २ पप्यो २। दीर्घ होने से नुट् १६१ न भया। पप्याम्। पपी+इ=पपी। पपीषु इसी भाति वातप्रमी आदि शब्दों के रूप होते हैं।

जिसके पास बहुत सी कल्याण करनेवाली स्त्री हों उसे बहुश्रेयसी कहते हैं बहुश्रेयस्यो यस्य सः

२०९ ॥ यू स्त्र्याख्यौ नदी । १ । ४ । ३ । ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ स्तः । प्रथमलिङ्गग्रहणं च । पूर्वं स्त्र्याख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्वं वक्तव्यमित्यर्थः ॥

ई वा ऊ है अन्त्य में जिसके ऐसा जो नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्द सो नदी संज्ञक होय। वार्तिककार ने कहा है कि ऐसे शब्दों में पहिले ही लिङ्ग का ग्रहण होवे अर्थात् जो शब्द पहिले स्त्री लिङ्ग का वाचक हो और समास होने पर विशेषण होकर पुल्लिङ्ग हो जाय तो भी वे नदी संज्ञक हों क्योंकि प्रथम वे स्त्रीलिङ्ग के थे। जैसे श्रेयसी शब्द पहिले स्त्रीलिङ्ग था फिर बहु शब्द के साथ समास होने से पुल्लिङ्ग हुआ तौभी इसकी नदी संज्ञा भई। यह शब्द ङ्यन्त है इस से बहुश्रेयसी+सु=बहुश्रेयसी १८० भया।

२१० ॥ अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । ७ । ३ । १०७ । सम्बुद्धौ । हे बहुश्रेयसि ॥

सम्बुद्धि परे रहे तो उन शब्दों को ह्रस्व होय जो शब्द नदी संज्ञक वा माता के वाचक हैं हे बहुश्रेयसि

२११ आण्नद्याः । ७ । ३ । ११२ । नद्यन्तात् परेषां ङितामाडागमः ॥

उस ङित् प्रत्यय को आट् आगम होय जिस के पूर्व नद्यन्त शब्द रहे।

२१२ ॥ आटश्च । ६ । १ । ९० । आटोऽचि परे वृद्धिरेकादेशः । बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयस्याः । बहुश्रेयसीनाम् ॥

आट् से परे यदि अच् रहे तो दोनों मिलकर वृद्धि होय बहुश्रेयसी+आट्+ए १८=बहुश्रेयस्यै। बहुश्रेयस्याः। बहुश्रेयसीनाम्।

२१३ ॥ ङेराम्नद्याम्नीभ्यः । ७ । ३ । ११६ । नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दात् परस्य ङेराम् । बहुश्रेयस्याम् । शेषं पपीवत् । अङ्यन्तत्वान्न सुलोपः । अतिलक्ष्मीः । शेषं बहुश्रेयसीवत् । प्रधीः ।

ङि को आम् आदेश होय। बहुश्रेयस्याम् २१ ११ १८। शेष रूप पपी शब्द के समान हैं। अतिलक्ष्मी शब्द ङ्यन्त नहीं है इस लिये सु का लोप न भया। अतिलक्ष्मीः "लक्ष्मीमतिक्रान्तः" शेष रूप बहुश्रेयसी के समान हैं। अब प्रधी शब्द के रूप लिखते हैं। प्रधीः ॥

२१४ ॥ अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ । ६ । ४ । ७७ । श्नुप्रत्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयङुवङौ स्तोऽजादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो श्नुप्रत्ययान्त अङ्ग इवर्णान्त वा उवर्णान्त जो धातु और भ्रू जो अङ्ग है तिसके इकार को इयङ् और उकार को उवङ् आदेश होय। यह सूत्र प्राप्त भया। तब

२१५ ॥ एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य । ६।४।८२ । धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यणजादौ प्रत्यये । प्रध्यौ । प्रध्यम् । प्रध्यौ । प्रध्यः । प्रध्यि । शेषं पपीवत् । एवं ग्रामणीः । ङौ तु । ग्रामण्याम् । अनेकाचः किम् । नीः । नियौ । नियः । अमि शसि च परत्वादियङ् । नियम् । ङेराम् । नियाम् । असंयोगपूर्वस्य किम् । सुश्रियौ । यवक्रियौ ॥

धातु का अवयवसंयोग पूर्व में न हो ऐसा जो इवर्णान्तधातु वह जिस अनेकाच् अङ्ग के अन्त से हो, तिसको यण् आदेश होवे, अजादि प्रत्यय परे रहते। अनेकाच् अङ्ग है, प्रधी तिसके अन्त में इवर्णान्त धातु है, धी तिस के इकार से पूर्व धातु का अवयव संयोग १६ भी नहीं है, और अजादि प्रत्यय परे है, और तो प्रधी शब्द के ईकार को यण् भया। प्रधी + औ = प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यम्। प्रध्यौ। सप्तमी का एकवचन प्रध्यि। शेष रूप पपी शब्द के तुल्य हैं। इसी रीति से ग्रामणी अर्थात् ग्राम का सरदार "ग्रामं नयतीति" नी अन्त्य में है इस से ग्रामणी + ङि = ग्रामण्याम् २१३। अनेकाच् कहने से। नीः नियौ। नियः। यहां यण् न हुआ, क्योंकि यह एकाच् शब्द है। १४८, १४० इन सूत्रों की अपेक्षा इयङ् विधायक सूत्र २१४ पर है इस लिये नी + अम् = नियम्। द्वितीया बहुवचन नियः। सप्तमी का एक वचन नियाम्। संयोग १६ पूर्व में न हो ऐसा कहने से सुश्री + औ = सुश्रियौ। यवक्री + औ = यवक्रियौ यहां यण् न हुआ।

२१६ ॥ गतिश्च । १ । ४ । ६० । प्रादयः क्रियायोगे गतिसञ्ज्ञाः स्युः । गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते । शुद्धधियौ ॥

—जब प्र आदि उपसर्गों का योग क्रिया के साथ हो तब वे गति सञ्ज्ञक होवें। भाष्य कार की आज्ञा है कि गति वा कारक से अन्य पूर्वपद जिस अङ्ग का होय तिस को यण् न होय। जैसे। शुद्धधी शब्द में धी शब्द से पूर्व जो शुद्ध शब्द है वह न तो गतिसञ्ज्ञक है, न कारक है, इसी से शुद्धधियौ में नहीं भया, क्योंकि प्राचीन के मत में प्रथमान्त कारक नहीं कहाता। शुद्धधी + औ = शुद्धधियौ

२१७ ॥ न भूसुधियोः । ६ । ४ । ८५ । एतयोरचि सुपि यण् न । सुधियौ । सुधियः इत्यादि । सुखमिच्छतीति, सुखी । सुती । सुख्यौ । सुत्यौ । सुख्युः । सुत्युः । शेषं प्रधीवत् । शम्भुर्हरिवत् । एवं भान्वादयः ॥

भू और सुधी शब्द को यण् न होय यदि अजादि सुप् परे रहे तो, सुधियौ । सुधियः इत्यादि । सुख चाहने वाले को सुखी "सुखमिच्छतीति" और सुत की इच्छा वाले को सुती 'सुतमिच्छति" कहते हैं । सुखी । सुती । सुख्यौ । सुत्यौ । सुखी+ ङसि वा ङस् = सुख्युः २ । सुत्युः २ । १८० । शेष रूप प्रधी शब्द के समान जानने । शम्भु शब्द हरि शब्द के तुल्य है । ऐसे ही भानु साधु स्वयम्भु कृपालु मधुरिपु आदि शब्द जानने ॥

२१८ ॥ तृज्वत् क्रोष्टुः । ७ । १ । ९५ । असम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने क्रोष्टुशब्दस्य क्रोष्टृ प्रयोक्तव्य इत्यर्थः ॥

सम्बुद्धि से भिन्न सर्वनामस्थान परे रहे तो क्रोष्टु शब्द तृजन्त के समान होय अर्थात् क्रोष्टु शब्द को क्रोष्टृ आदेश होय ।

२१९ ॥ ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः । ७ । ३ । ११० । ऋतोऽङ्गस्य गुणो ङौ सर्वनामस्थाने च । इति प्राप्ते ॥

ऋकारान्त अङ्ग को गुण होवे यदि ङि वा सर्वनामस्थान परे रहे तो । यह प्राप्त भया ॥ तब

२२ ॥ ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च । ७ । १ । ९४ । ऋदन्तानां उशनसादीनां चानङ् स्यादसम्बुद्धौ सौ ॥

यदि सम्बुद्धि से भिन्न सु परे रहे तो ऋकारान्त उशनस् पुरुदंसस् और अनेहस् इन को अनङ् आदेश होय ।

२२१ ॥ अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् । ६ । ४ । ११ । अबादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रोष्टून् ॥

अप् शब्द और तृन् प्रत्ययान्त वा तृच् प्रत्ययान्त जो शब्द और स्वसृ नप्तृ नेष्टृ त्वष्टृ क्षत्तृ होतृ पोतृ प्रशास्तृ इन को उपधा को दीर्घ होय यदि सम्बुद्धि भिन्न सर्वनामस्थान परे रहे तो । क्रोष्टु+सु फिर क्रोष्टृ+स् । फिर क्रोष्टन्+स् । तब क्रोष्टन् । क्रोष्टान् २८२ । तब क्रोष्टा । क्रोष्टृ+औ । तब क्रोष्टर+औ । क्रोष्टारौ क्रोष्टारः । क्रोष्टु+शस् (१७६ और १९६) = क्रोष्टून् ॥

२२२॥ विभाषा तृतीयादिष्वचि। ७। १। ९७। अजादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत्। क्रोष्ट्रा। क्रोष्टुना। क्रोष्ट्रे॥

अह तृतीया आदि विभक्ति परे हो जिस के आदि में अच् हो तो क्रोष्टु को क्रोष्टृ आदेश विकल्प से होय क्रोष्टु+आ १८=क्रोष्ट्रा वा, क्रोष्टुना (१८५) क्रोष्ट्रे॥

२२३॥ ऋत उत्। ६। १। १११। ऋतो ङसिङसोरति उदेकादेशः। रपरः

ऋ है अन्त में जिसके तिस से परे यदि ङसि वा ङस् का अकार रहे तो दोनों मिलकर रपर उकार, अर्थात् उर् एकादेश होय। क्रोष्टृ+अस्=क्रोष्टुर्+स्॥

२२४॥ रात् सस्य। ८। २। २४। रेफात् संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य। रस्य विसर्गः। क्रोष्टुः। क्रोष्ट्रोः॥

रकार से परे उसी सकार का लोप होय जो संयोग १६ के अन्त में है परन्तु और का नहीं। क्रोष्टुर्स् ११८ क्रोष्टुः। क्रोष्टृ+ओस् १८ क्रोष्ट्रोः।

२२५॥ नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन। क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि। पक्षे हलादौ च शम्भुवत् हूहूः हूह्वौ। हूहूम्। इत्यादि। अतिचमूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः। हे अतिचमु। अतिचम्वै। अतिचम्वाः। अतिचमूनाम्। खलपूः॥

विप्रतिषेधे परकार्यम् १२८ सूत्र में जो विधान किया है कि पर कार्य होय उस पर वार्तिककार का विचार है, कि नुम् अच् परे रहते र भाव और तृज्वद्भाव इन तीनों को बाध कर पूर्वविप्रतिषेध से नुट् ही आगम होवे क्रोष्टु+आम् यहां तृज्वद्भाव और नुट् दोनों पाया पर विप्रतिषेधे पर कार्यम् इस से तृज्वद्भाव पाया क्योंकि अष्टाध्यायीके क्रमानुसार वही पर है तब इस वार्तिक ने दबाकर पूर्वविप्रतिषेध से नुट् आगम विधान किया तब नुट् १६१ आगम भया फिर तृज्वद्भाव की प्राप्ति नहीं क्योंकि अच् परे नहीं है। क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि। पक्ष में और हलादि सुप् परे रहते इस के रूप शम्भु शब्द के सदृश हैं। नुम् और अच् परे रहते रभाव के उदाहरण आगे लिखेंगे। हूहूः। हूह्वौ। हूहूम् इत्यादि। परन्तु अतिचमू शब्द में चमू शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है इस लिये नदी संज्ञाका कार्य उस में विशेष है। हे अतिचमु चमूमतिक्रान्त अतिचम्वै। अतिचम्वाः। अतिचमूनाम्। अब खलपू शब्द के रूप लिखते हैं। खलपूः।

२२६॥ ओः सुपि। ६। ४। ८३। धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि। खलप्वौ। खलप्वः। एवं सुल्वादयः। स्वभूः। स्वभुवौ। स्वभुवः। वर्षाभूः।

धातु का अवयव संयोग पूर्व में नहो ऐसा उवर्ण जिस धातु के अन्त में हो ऐसा जो धातु भी जिस अनेकाच् अङ्ग के अन्त में हो तिस को यण आदेश होय अजादि सुप् प्रत्यय परे रहे तो खलप्वौ। खलप्वः खलं पुनातीति खलपूः। सुधी आदि शब्द भी इस के सदृश हैं सुष्ठु धुनातीति। स्वभूः। स्वभुवौ। स्वभुवः। वर्षासु भवतीति वर्षाभूः।

२२० ॥ वर्षाभ्वश्च। ६। ४। ८४। अस्य यण् स्यादचि सुपि। वर्षाभ्वावित्यादि। दृन्भूः॥

वर्षाभू शब्द को यण् आदेश होय यदि अजादि सुप् परे रहे तो। वर्षाभ्वौ इत्यादि। अब दृन्भू शब्द। दृन्भूः॥

२२१ ॥ वा॰ दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः। दृन्भ्वौ। एवं करभूः। पुनर्भूः। धाता। हे धातः। धातारौ। धातारः॥

वार्त्तिककार का यह मत है कि जो वर्षाभ्वश्च इस में केवल भू शब्द का ग्रहण किया है उस के साथ दृन्भू करभू और पुनर्भू शब्द का ग्रहण करना चाहिये। अब धातृ शब्द। धाता। हे धातः। धातारौ। धातारः॥

२२२ ॥ वा॰ ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्। धातॄणाम्। एवं नप्त्रादयः। नप्त्रादिग्रहणं व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्। तेनेह न। पिता। पितरौ। पितरः। पितरम्। शेषं धातृवत्। एवं जामात्रादयः। ना। नरौ॥

वार्त्तिककार का यह मत है कि ऋवर्ण से परे जो नकार तिसको णकार आदेश हो धातॄणाम्। एवं ही नप्तृ आदि शब्दों को जानना व्युत्पत्ति पक्ष में नप्त्रादि ग्रहण से यह सिद्ध होता है कि उणादि के (जो आगे लिखा जायगा) तृन् वा तृच् प्रत्यय से जो सिद्ध शब्द समाप्त हैं उस से न केवल जो सूत्र २२१ में लिखे हैं उन्हीं का दीर्घ होता है औरों को नहीं यदि औरों को होता तो इन नप्तृ आदि सातों शब्दों का सूत्र में लिखना व्यर्थ हो जाता इस लिये पितरौ में दीर्घ न हुआ क्योंकि यह उणादि से बना २२१ है। पिता। पितरौ। पितरः। पितरम्। शेष रूप धातृ शब्द के समान जानना। एवं ही जामातृ आदि जानना। अब नृ शब्द के रूप लिखते हैं। ना। नरौ॥

२२३ ॥ नृ च। ६। ४। ६। अस्य नामि वा दीर्घः। नृणाम्। नृणाम्।

नाम् पर रहते नृ शब्द को विकल्प से दीर्घ होय। नॄणाम् वा नृणाम्।

२२४। गोतो णित्। ७। १। ९०। ओकारान्ताद्विहितं सर्वनामस्थानं णिद्वत्। गौः। गावौ। गावः॥

यह सब नामस्थान णित् के समान होय (णित् नाम के जो कार्य होता है सब उसमें भी होय)। जिस से पूर्व दिखा ओकारान्त शब्द इस को गो शब्द के समान है गौः गावौ गावः॥

२३३॥ औतोऽम्शसोः। ६। १। ९३। ओतोऽम्शसोरचि आकार एकादेशः। गाम्। गावौ। गाः। गवा। गवे। गोः २। इत्यादि॥

ओ है अन्त्य में जिस के ऐसा जो शब्द तिस से परे जो द्वितीया का एकवचन वा बहुवचन प्रत्यय सबन्धी अकार रहे तो दोनों अर्थात् ओ और अ मिलकर आ होवे। गो+अम्=गाम् गो+औ यहां गो को णित् मान के (२३२) वृद्धि १९६ भई=गौ+औ २६=गावौ। गो+अस=गा गो+अस् पञ्चमी या षष्टी १८७=गोः इसी तौर सब रूप जानने॥

२३४॥ रायो हलि। ७। २। ८५। अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ। राः। रायौ। रायः। राभ्यामित्यादि। ग्लौः। ग्लावौ। ग्लावः। ग्लौभ्यामित्यादि॥

॥ इत्यजन्ताः पुल्लिङ्गाः॥

रै शब्द के आगे हलादि विभक्ति परे रहे तो उस के ऐ को आ आदेश होवे। रै+स=राः रै+औ२६=रायौ। रायः। रै+भ्याम्=राभ्याम् इत्यादि औकारान्त ग्लौ शब्द ग्लौ+सु=ग्लौः। ग्लावौ। ग्लावः। ग्लौभ्याम् इत्यादि॥

॥ अजन्त पुलिङ्ग समाप्त भया॥

॥ अथाजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः॥

॥ रमा॥

२३५॥ औङ आपः। ७। १। १८। आबन्तादङ्गात् परस्यौङः शी स्यात्। औङित्यौकारविभक्तेः संज्ञा। रमे। रमाः॥

रमा (१८२)

आबन्त (टाप् डाप् वा चाप् प्रत्यय है अन्त्य में जिस के ऐसा जो) अङ्ग से परे जो औङ् तिस को शी (ई) आदेश होवे। औङ् यह नाम औ औट् इन दोनों विभक्तियों का है। रमा+औ=रमा+ई ३२=रमे। रमाः॥

२३६॥ सम्बुद्धौ च। ७। ३। १०६। आप एकारः स्यात् सम्बुद्धौ। एङ्ह्रस्वादिति सम्बुद्धिलोपः। हे रमे। हे रमाः। रमाम्। रमे। रमाः।

सम्बुद्धि परे रहे तो आप के आ को ए आदेश होवे। हे रमे १४७ हे रमे २३५ हे रमाः द्वितीया में रमाम्। रमे रमाः॥

२३७ ॥ आङि चापः ।७।३।१०५। आङि ओसि च आप एकारः । रमया । रमाभ्याम् ३ । रमाभिः ।

आङ् (टा) वा ओस् विभक्ति परे रहे तो आप् के आ को ए आदेश होवे । रमा+आ=रमे+आ २१ =रमया रमाभ्याम् रमाभिः ॥

॥२३८॥ याडापः ।७।३।११३। आपो ङितो याट् । रमायै । रमाभ्यः २ । रमायाः २ । रमयोः २ । रमाणाम् । रमायाम् । रमासु । एवं दुर्गाम्बिकादयः ॥

यदि ङित्सुप् (ङ् है इत् जिसका ऐसा जो सुप् प्रत्यय) प्रत्यय के पूर्व आप् रहे तो प्रत्यय को याट् (या) आगम होवे । रमा+ए (ङे)=रमाया+ए १८ =रमायै रमाभ्यः २ । रमा+ अस् (ङसि ङस्)=रमायाः २ रमयोः २ रमा+आम् १४१ =रमाणाम् रमा+ङि ११३ =रमा+याम्=रमायाम् । रमासु इसी रीति से दुर्गा अम्बिका गङ्गा यमुना नर्मदा तमसा आदि जानने ॥

२३९ ॥ सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ।७।३।११४। आबन्तात् सर्वनाम्नो ङितः स्याट् स्यादापश्च ह्रस्वः । सर्वस्यै । सर्वस्याः २ । सर्वासाम् । सर्वस्याम् । शेषं रमावत् ॥

आबन्त सर्वनाम शब्द से परे जो ङित् सुप् प्रत्यय तिसको स्याट् (स्या) आगम होवे और उसके पूर्ववर्ती आ को अ होवे । सर्वा+ए (ङे)=सर्वस्यै । सर्वस्याः २ । सर्वासाम् २१८ सर्वस्याम् ११३ शेष रूप रमा शब्द के समान जानने ॥

२४० ॥ विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ ।१।१।२८। सर्वनामता वा । उत्तरपूर्वस्यै । उत्तरपूर्वायै । तीयस्येति वा संज्ञा । द्वितीयस्यै । द्वितीयायै । एवं तृतीया । अम्बार्थेति ह्रस्वः । हे अम्ब । हे अक्क । हे अल्ल । जरा । जरसौ । जरे । इत्यादि पक्षे रमावत् । गोपा, विश्वपावत् । मतिः । मतीः । मत्या ॥

उन सर्वादि शब्दों की विकल्प से सर्वनाम संज्ञा होवे जो दिशावाचीशब्द बहुव्रीहि समास के हैं । उत्तरपूर्वस्यै २३९ वा उत्तरपूर्वायै २३८ ङित् सुप् प्रत्यय परे रहते भी तीय प्रत्ययान्त शब्दों की सर्वनाम संज्ञा विकल्प से होवे । द्वितीयस्यै वा द्वितीयायै ऐसे ही तृतीया शब्द को भी जानना । सम्बुद्धि परे रहते ह्रस्व भया २१ हे अम्ब । हे अक्क । हे अल्ल । जरा १८१ जरसौ १०१ जरे २११ जरसः इत्यादि पक्ष में रमा शब्द के समान जानने । गोपा शब्द के रूप विश्वपा के समान जानने । मति द्वितीया

बहुवचन मती. स्त्रीलिङ्ग होने से न आदेश नभया १५० मत्या यहां भी ना आदेश न भया १८५॥

२४१॥ ङिति ह्रस्वश्च। १। ४। ६। इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ह्रस्वौ च इवर्णोवर्णौ स्त्रियां वा नदीसंज्ञौ स्तो ङिति। मत्यै। मतये। मत्याः २ मतेः २॥

स्त्री शब्द को छोड़ कर इयङ् वा उवङ् आदेश होते हैं, जिन को ऐसे जो ईकारान्त वा ऊकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्द और स्त्रीवाचक ह्रस्व इकारान्त वा उकारान्त शब्द तिनकी नदी सञ्ज्ञा विकल्प से होवे यदि ऐसा सुप् प्रत्यय परे रहे जिसका ङ् इत् है। मति+ए = २।११२।२ = मत्यै वा मतये १८६ इसी रीति से मत्या' २ वा मतेः२।

२४२॥ इदुद्भ्याम्। ७। ३। ११७। इदुद्भ्यां नदीसंज्ञकाभ्यां परस्य ङेराम्। मत्याम्। मतौ शेषं हरिवत्। एवं बुद्ध्यादयः॥

उन नदी सञ्ज्ञक शब्दों से परे सप्तमी के एकवचन ङि को आम् आदेश होवे जो ह्रस्व इकारान्त वा उकारान्त के हैं। मत्याम् नदी सञ्ज्ञा न भई, तब मतौ १८८ शेष रूप हरि शब्द के समान जानने। ऐसे ही बुद्धि, प्रतिपत्ति, उक्ति आदि को जानना॥

२४३॥ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ। ७। २। ९९। स्त्रीलिङ्गयोरेतौ स्तो विभक्तौ॥

विभक्ति परे रहते स्त्रीप्रतिपादक त्रि और चतुर् शब्द को क्रम से तिसृ और चतसृ आदेश होवे॥

२४४॥ अचि र ऋतः। ७। २। १००। तिसृ चतसृ एतयोर्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि। गुणदीर्घोत्वानामभावः। तिस्रः २। तिसृभिः। तिसृभ्यः २। आमि नुट्॥

अच् परे रहते तिसृ चतसृ शब्दों के ऋकार को र आदेश होवे। यह र आदेश गुण दीर्घ और उत्व को बाध कर होता है। तिस्रस्तिष्ठन्ति यहां गुण, १८३ को बाधकर र आदेशभया। तिस्रः पश्य यहां दीर्घ १४ को बाधा। प्रियतिस्रः स्वम् यहां उत्व २२२ को दबाया। तिस्रः२ तिसृभिः। तिसृभ्यः २ तिसृ+आम् यहां नुट् आगम भया, तब दीर्घ पाया॥

२४५॥ न तिसृचतसृ। ६। ४। ४। एतयोर्नामि दीर्घो न॥ तिसृणाम्। तिसृषु। द्वे २। द्वाभ्याम् ३। द्वयोः २। गौरी। गौर्यौ। गौर्यः। हे गौरि। हे गौर्यावित्यादि। एवं नद्यादयः। लक्ष्मीः शेष

गौरीवत्। एवं नदीतन्त्र्यादय। स्त्री। हे स्त्रि॥

नाम् परे रहते तिस चतस शब्दों को दीर्घ न होवे। तिसृणाम् (२१८) तिसृषु

हे०, २११ भ्याम् १ भ्यो २ (२१०) गौरी १८१ गौर्य्यौ यहां दीर्घ १४ को बाधकर १०४ यण् १८सुपा। गौर्य्यः हे गौरि २१ हे गौर्य्यौ इत्यादि इसी रीति से नदी आदि शब्दों को जानना। लक्ष्मी शब्द ङीप् प्रत्यय से नहीं बना है इस लिये सु का लोप १८१ नहीं भया लक्ष्मीः और सब रूप गौरी के सदृश है। इसी रीति से नदी तन्त्री आदि शब्दों को भी जानना। स्त्री १९८ हे स्त्रि॥ २१

२४६॥ स्त्रियाः। ६। ४। ७९। अस्येयङजादौ प्रत्यये परे। स्त्रियौ। स्त्रियः॥

अजादि प्रत्यय परे रहे तब स्त्री शब्द को इयङ् (इय्) आदेश होवे। स्त्री+औ= स्त्रियौ। स्त्रियः॥

२४७॥ वाम्शसोः। ६। ४। ८०। स्त्रिया इयङ्। स्त्रियम्। स्त्रीम्। स्त्रियः। स्त्रीः। स्त्रिया। स्त्रियै। स्त्रियाः २। परत्वान्नुट्। स्त्रीणाम्। स्त्रीषु। श्रीः। श्रियौ। श्रियः।

द्वितीया का एकवचन वा बहुवचन परे रहे तो, स्त्री शब्द को विकल्प से इयङ् (इय्) आदेश होवे। स्त्रियम् वा स्त्रीम् १०८ स्त्रियः वा स्त्रीः १९ स्त्रिया तृतीया स्त्रियै स्त्रियाः२ स्त्री+आम् यहां इयङ् को बाधकर परत्व से १२८ नुट् आगम भया स्त्रीणाम्। स्त्रीषु। श्रीः श्रियौ श्रियः॥

॥ २४८॥ नेयङुवङ्स्थानावस्त्री। १। ४। ४। इयङुवङोः स्थिति ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तो न तु स्त्री। हे श्रीः। श्रियै। श्रिये। श्रियाः। श्रियः॥

स्त्री शब्द को छोड़ कर उन ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों की नदी संज्ञा न होवे जिन को इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं। हे श्रीः इसी कारण यहां ह्रस्व २१ नहीं भया। श्रियै वा श्रिये श्रियाः वा श्रियः॥

२४९॥ वामि। १। ४। ५। इयङुवङ् स्थानौ स्त्र्याख्यौ यू आमि वा नदीसंज्ञौ स्तो न तु स्त्री। श्रीणाम्। श्रियाम्। श्रियि। श्रियाम्। धेनुमतिवत्॥

स्त्री शब्द को छोड़ कर उन ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों को विकल्प से आम् परे रहते नदी संज्ञा होवे जिन को इयङ् वा उवङ् आदेश होते हैं। नदी संज्ञा भए तब नुट् भया श्रीणाम् १९१ श्रियाम्। श्रियि वा श्रियाम् धेनु शब्द के रूप मति के

सदृश जानने ॥

२५० ॥ स्त्रियां च । ७ । १ । ९६ । स्त्रीवाची क्रोष्टुस्तृजन्तवद्रूपं लभते।

स्त्री वाची क्रोष्टु शब्द को क्रोष्टृ आदेश होवे ॥

२५१ ॥ ऋन्नेभ्यो ङीप् । ४ । १ । ५ । ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च स्त्रियां ङीप् । क्रोष्ट्री गौरीवत् । भ्रूः श्रीवत् । स्वयम्भूः पुम्वत् ॥

ऋकारान्त और नकारान्त शब्दों के आगे स्त्रीलिङ्ग अर्थ में ङीप् (ई) प्रत्यय लगाया जाय । क्रोष्टृ+ङीप् (ई) १८=क्रोष्ट्री इसे गौरि शब्द के समान जानना । भ्रूशब्द श्री के समान है स्वयभू शब्द पुल्लिङ्ग स्वभू के समान जानना ॥

२५२ ॥ न षट्स्वस्रादिभ्यः । ४ । १ । १० । ङीप्टापौ न ।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।

याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥

स्वसा । स्वसारौ । माता पितृवत् । शसि मातॄः । द्यौर्गौवत् । रा· पुंवत् नौर्ग्लौवत् ॥ ॥ इत्यजन्ता स्त्रीलिङ्गाः ॥

षट् संज्ञक और स्वसृ आदि शब्दों के आगे ङीप् और टाप् प्रत्यय जो स्त्री प्रत्यय के हैं सो न लगाये जायें । ये सात शब्द स्वस्रादि के हैं । स्वसृ, तिसृ, चतसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ और मातृ । स्वसृ+सु २२० । १ । स्वसा । स्वसारौ । मातृ शब्द को पितृ के समान जानना । परन्तु द्वितीया बहुवचन में मातॄ होता है । गोशब्द के समान द्यो को जानना । रै शब्द के रूप वैसे ही जानो जैसे पुलिङ्ग में हुए हैं ॥

॥ अजन्त स्त्रीलिङ्ग समाप्त भया ॥

॥ अथाजन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

२५३ ॥ अतोऽम् । ७ । १ । २४ । अतोऽङ्गात् क्लीवात् स्वमोरम् । ज्ञानम् । एङ्ह्रस्वादिति हल्लोपः । हे ज्ञान ॥

अकारान्त नपुसक अङ्ग से परे जो सु और अम् विभक्ति तिनको अम् आदेश होय । ज्ञान+सु=ज्ञान+अम्१४८ ज्ञानम् । हे ज्ञान ॥

२५४ ॥ नपुंसकाच्च । ७ । १ । १९ । क्लीबादौङः शी । भसंज्ञायाम् ।

नपुसक अङ्ग से परे जो औङ् विभक्ति तिस को शी (ई) आदेश होता है । शी आदेश होने से ज्ञान शब्द की भ सज्ञा ७९ हुई तब ॥

२५५ ॥ यस्येति च । ६ । ४ । १४८ । ईकारे तद्धिते च भस्ये वर्णावर्णयोर्लोपः इत्यलोपे प्राप्ते ।

ईकारान्त वा तद्धित प्रत्यय परे रहे तो भसंज्ञक इवर्ण और अवर्ण का लोप होय ज्ञान + ई यहां अकार का लोप पाया । तब

२५६ ॥ औङ आपः प्रतिषेधो वाच्यः । ज्ञाने ॥

वार्त्तिककार की यह आज्ञा है कि जब ई परे रहे तो पूर्व विधि न लगे जो औ को भी आदेश हो गया है । इस लिये ज्ञान के अकार का लोप न भया ज्ञान + ई ११ ज्ञाने ।

२५७ ॥ जश्शसोः शिः । ७ । १ । २० । क्लीबात् ।

नपुंसक अङ्ग से परे जो जस् और शस् विभक्ति तिनको शि (इ) आदेश होवे ॥

२५८ ॥ शि सर्वनामस्थानम् । १ । १ । ४२ ॥

शि को सर्वनामस्थान संज्ञा होवे ॥

२५९ ॥ नपुंसकस्य झलचः । ७ । १ । ७२ । झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ॥

सर्वनामस्थान परे रहते नपुंसक अङ्ग को नुम् (न) आगम होवे ॥

२६ ॥ मिदचोऽन्त्यात् परः । १ । १ । ४७ । अचांमध्ये योऽन्त्य स्तस्मात् परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात् । उपधादीर्घः । ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुवत् एवं धनवनफलादयः ॥

जिस आगम का मकार इत् होवे सो अचों में से जो अन्त्य अच् तिस से परे होय ज्ञान + इ यहां जो ज्ञान को नुम आगम विधान किया है वह ज्ञान के अकार से आगे भया क्योंकि अन्त्य अच् अकार ही है तब ज्ञानन् + इ१८१ दीर्घ भया तब ज्ञानानि शेष रूप राम शब्द के समान जानने । इसी रीति धन वन फल आदि शब्द जानने ।

२६१ ॥ अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः । ७ । १ । २५ । एभ्यः क्लीवेभ्यः स्वमोरद्डादेशः स्यात् ।

इतर इतम अन्य अन्यतर और इतर इन पांच नपुंसक शब्दों से परे जो सु और अम् तिन को अद्ड् (अद्) आदेश होवे । यहां डतर् और डतम् प्रत्यय है अर्थात् डतरान्त और डतमान्त शब्दों का ग्रहण करना ॥

२६२ ॥ टेः । ६ । ४ । १४३ । डिति भस्य टेर्लोपः । कतरत् । कतरद् । कतरे । कतराणि । हे कतरत् । शेषं पुवत् । एवं कतमत् ।

इतरत्। अन्यत्। अन्यतरत्। अन्यतमस्य त्वन्यतमम्, इत्येव॥

डतर है इत् जिस का ऐसा जो प्रत्यय सो परे रहे तो भसञ्ज्ञक १०८ शब्द की टि ४८ का लोप होवे। कतर+सु=कतरद् १५८ वा कतरत्। कतरे। कतराणि है कतरत् शेष रूप राम शब्द के समान जानने। इसी प्रकार कतमत्। इतरत्। अन्यत् और अन्यतरत् अन्यतम शब्द का रूप अन्यतमम् यही होता है अर्थात् ज्ञान शब्द के समान है॥

२६३॥ एकतरात् प्रतिषेधः। एकतरम्।

वार्तिककार की आज्ञा है कि एकतर शब्द में पूर्वोक्त विधि का प्रतिषेध होवे अर्थात् सु और अम् को अदड् आदेश न होवे। एकतरम्।

२६४॥ ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य। १।२।४७। अजन्तस्येत्येव। श्रीपम् ज्ञानवत्॥

नपुंसक लिङ्ग में जिस प्रतिपदिक के अन्त में दीर्घस्वर होवे उसे ह्रस्व आदेश होवे। श्रीपा+सु=श्रीपम् यह ज्ञान शब्द के समान है॥

२६५॥ स्वमोर्नपुंसकात्। ७।१।२३। लुक् स्यात्। वारि॥

नपुंसक अङ्ग से परे जो सु और अम् तिन का लुक् (लोप) होवे वारि+सु=वारि।

२६६॥ इकोऽचि विभक्तौ। ७।१।७३। इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ। वारिणी। वारीणि नलुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः। हे वारि। हे वारे। घेर्ङितीति गुणे प्राप्ते। वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन। वारिणे। वारिणः२। वारिणोः २। नुमचिरेति नुट् वारीणाम्। वारिणि। हलादौ हरिवत्।

उस नपुंसक अङ्ग को अजादि विभक्ति परे रहते नुम् (न्) आगम होवे जिसके अन्त में इक् प्रत्याहार के वर्ण होवें वारि+औ २५५ वारिणी वारि+जस् वा शस्= वारीणि। नलुमताङ्गस्य २०५ यह निषेध अनित्य है, इस कारण पक्ष में सम्बुद्धि निमित्तक जो कार्य्य है, सो होगा, तब हे वारि। हे वारे। १८२ भया। वारि+ङे यहां घेर्ङिति- १८६ से गुण और नुम् दोनों पाये, तब विप्रतिषेधे परं कार्यं १२८ इस से गुण ही पाया, सो नहीं भया, क्योंकि इस पर वार्तिककार कहते हैं, कि वृद्धि औत्व तृज्वद्भाव और गुण की अपेक्षा नुम् होवे पूर्वविप्रतिषेधसे। तब नुम् भया, वारिणे। वारिणः २ वारिणोः, आम परे रहते नुट् होता है, १६१ वारीणाम्। वारि+ङि=वारिणि। हलादि विभक्ति परे

रहते इस के भी रूप वारि के समान जानने ॥

२६७॥ अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः ।७।१।७५। टादावचि।
अस्थि दधि सक्थि और अक्षि इन को उदात्त अनङ् (अन्) आदेश होय टा आदि अजादि विभक्ति परे रहते।

२६८॥ अल्लोपोऽनः ।६।४।१३४। अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः दध्ना। दध्ने। दध्नः २। दध्नो २
अङ्ग का अवयव सर्वनामस्थान से भिन्न यकारादि वा अजादि स्वादि विभक्ति परे रहे तो अर्थवत् अन् के अकार का लोप होवे। दधन्+आ=दध्ना। दध्ने। दध्नः२। दध्नोः।

२६९॥ विभाषा ङिश्योः ।६।४।१३६। अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा स्यान्ङिश्योः परयोः। दध्नि। दधनि। शेषं वारिवत्। एवमस्थिसक्थ्यक्षि। सुधि सुधिनी। सुधीनि। हे सुधे। हे सुधि। सुधिनेत्यादि। मधु। मधुनी। मधूनि। हे मधो। हे मधु। सुलु। सुलुनी। सुलूनि। सुलुनेत्यादि। धातृ। धातृणी। धातॄणि। धातॄणाम्। हे धातः एवं ज्ञात्रादयः।

सर्वनामस्थान को छोड़ कर ङि का भी विभक्ति परे रहे तो अङ्ग का अवयव अन् के अकार का लोप विकल्प से होवे। दध्नि वा दधनि। शेष रूप वारि शब्द के समान जानने। ऐसे ही अस्थि सक्थि और अक्षि को भी जानना। सुधि मधु सुलु धातृ, ज्ञातृ आदि को वारि के समान जानो।

२७०॥ एच इग्घ्रस्वादेशे ।१।१।४८। प्रद्यु। प्रद्युनी। प्रद्यूनि। प्रद्युनेत्यादि। प्ररि। प्ररिणी। प्ररीणि। प्ररिणा। एकदेशविकृतमनन्यवत् प्रराभ्याम्। प्ररीणाम्। सुनु। सुनुनी। सुनूनि। सुनुनेत्यादि ॥ इति ॥

एच् को ह्रस्व आदेश विधान करने में ए ऐ को इ, और ओ औ को उ होवे। इसलिए प्रद्यो को प्रद्यु भया इसको भी वारि के समान जानो। प्ररै को प्ररि भया यहां ऐ को इ आदेश होने पर भी इस नियम से २२४ आ आदेश भया क्योंकि कुछ विकार होने से एक वस्तु दूसरी नहीं हो सकती इसलिए प्रराभ्याम् भया इत्यादि सु पूर्वक नौ शब्द को ह्रस्व से सुनु भया इस के भी रूप वारि के सदृश हैं ॥

॥ अजन्तनपुंसकलिङ्गं समाप्तमभूत् ॥

॥ अथ हलान्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

—— o ——

२७१ ॥ हो ढः । ८ । २ । ३१ । झलि पदान्ते च । लिट् । लिड् । लिहौ । लिहः । लिड्भ्याम् । लिट्सु । लिट्त्सु ॥

झल् परे रहते वा पदान्त में वर्तमान जो ह तिस को ढ आदेश होवे। लिह्+सु= लिढ्+७८। १५८ लिट् लिड् । लिहौ । लिहः। लिड् भ्याम् (७८) (८८) लिट्सु वा लिट्त्सु

२७२ ॥ दादेर्धातोर्घः । ८ । २ । ३२ । झलि पदान्ते चोपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः ।

झल् परे रहे तो वा पदान्त में वर्तमान उस धातु के ह को घ आदेश होवे, जो उपदेश में दकारादि है ॥

२७३ ॥ एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः । ८ । २ । ३७ । धात्ववयवस्यैकाचो झषन्तस्य बशो भष् से ध्वे पदान्ते च धुक् ।धुग् । दुहौ । दुहः । धुग्भ्याम् । धुक्षु।

धातु का अवयव जो एकाच झषन्त तद् अवयव जो बश् प्रत्याहार के वर्ण तिन को भष् प्रत्याहार के वर्ण हों, स वा ध्व प्रत्यय परे रहे वा पदान्त में वर्तमान होय। तब दुह्+सु=धुक् वा धुग्। दुहौ। दुहः। धुग्भ्याम्। ७८। १६३। धुक्षु।

२७४ ॥ वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् । ८ । २ । ३३ । एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च । ध्रुक् । ध्रुग्।ध्रुट् । ध्रुड् । द्रुहौ । द्रुहः । ध्रुग्भ्याम् । ध्रुक्षु । ध्रुट्सु ध्रुट्त्सु । एवं मुह् ।

झल् प्रत्याहार के वर्ण परे रहे वा पदान्त में वर्तमान जो द्रुह्, मुह्, ष्णुह् और ष्णिह् तिन के ह को घ आदेश विकल्प से होय । द्रुह+सु=ध्रुक् वा । ध्रुग् जब घ न भया, तब ध्रुट् वा ध्रुड् ७८ । १५८ द्रुहौ द्रुहः ध्रुग्भ्याम् ७८ ध्रुक्षु १६३ वा ध्रुट्त्सु ८८ इसी रीति से मुह् आदि के रूप जानने।

२७५ ॥ धात्वादेः षः सः । ६ । १ । ६४ । स्नुट् । स्नुड् । स्नुक् । स्नुग् । एवं स्निह् ।

धातु के आदि में जो ष तिस को स आदेश होवे। ष्णुह् को स्नुह् भया तब स्नुक् स्नुग् स्नुट् स्नुड् इसी रीति से ष्णिह् को स्निह्।

२७६ ॥ इग्यणः सम्प्रसारणम्। १।१।४५।

यण् को जो इक् आदेश होता है वह सम्प्रसारण कहाता है।

२७७ ॥ वाह ऊठ्। ६।४।१३२। भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ्।

भ संज्ञक जो वाह् शब्द तिस के व को ऊठ् (ऊ) सम्प्रसारण होवे।

२७८ ॥ सम्प्रसारणाच्च। ६।१।१०८। सम्प्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः। वृद्धिः। विश्वौहः। इत्यादि।

सम्प्रसारण के आगे अच् रहे तो दोनों मिल कर पूर्व का रूप होय। विश्ववाह्+अस् = विश्वऊ+आह्+अस् = विश्वऊह् अस् १८ = विश्वौहः इत्यादि।

२७९ ॥ चतुरनडुहोरामुदात्तः। ७।१।९८। सर्वनामस्थाने।

चतुर् और अनडुह् शब्द को उदात्त आम् आदेश होवे यदि उन से परे सर्वनामस्थान संज्ञक विभक्ति रहे तब। अनडुह्+सु = अनडुआह् सु।

२८० ॥ सावनडुहः। ७।१।८२। नुम्। अनड्वान्।

सु विभक्ति परे रहते अनडुह् शब्द को नुम् (न्) आगम होवे। अनड्वाह्+सु = अनड्वान्ह्सु १८१।४१ = अनड्वान्।

२८१ ॥ अम् संबुद्धौ। ७।१।९९। हे अनड्वन्। अनड्वाहौ२। अनडुहः।

सम्बुद्धि परे रहते अनडुह् को अम् आगम होता है। इस लिये हे अनड्वन् भया अनड्वाहौ। अनड्वाहः अनडुहः।

२८२ ॥ वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः। ८।२।७२। सान्तस्य वस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः स्यात् पदान्ते। अनडुद्भ्यामित्यादि। सान्तेति किम्। विद्वान्। पदान्तेति किम्। स्रस्तम्। ध्वस्तम्॥

स है अन्त में जिस के ऐसा जो वसु प्रत्यय सो है अन्त में जिस के ऐसा जो शब्द और स्रंसु ध्वंसु, अनडुह् शब्दों के अन्त्य वर्ण को द आदेश होवे पदान्त की विवक्षा में। अनडुह्+भ्याम् = अनडुद्भ्यामित्यादि १७८। सकारान्त यदि न कहते तो विद्वान् यहां भी दकार हो जाता क्योंकि वसु प्रत्ययान्त तो है परन्तु सकारान्त नहीं है यह तो नकारान्त है। पदान्त कहने से स्रस्तं ध्वस्तं यहां दकारादेश न भया क्योंकि यहां पदान्त नहीं है॥

२८३ ॥ सहेः साडः सः । ८ । ३ । ५६ । साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्द्धन्यादेशः । तुराषाट् । तुराषाड् । तुरासाहौ । तुरासाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि ॥

उस सकार को षकार आदेश होवे जो साड् रूप सह धातु का है । तुराषाट् तुराषाड् । तुरासाहौ । तुरासाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि ॥

२८४ ॥ दिव औत् । ७ । १ । ८४ । दिविति प्रातिपदिकस्यौत् स्यात् सौ । सुद्यौः । सुदिवौ ॥

प्रातिपदिक सञ्ज्ञक दिव के व् को औत् (औ) आदेश होवे सु परे रहते । सुदिव् + सु = सुद्यौः । सुदिवौ ॥

२८५ ॥ दिव उत् । ६ । १ । १३१ । पदान्ते । सुद्युभ्याम् इत्यादि । चत्वारः । चतुरः चतुर्भिः । चतुर्भ्यः ॥

पदान्त में वर्तमान दिव् शब्द के व् को उ आदेश होवे । सुदिव् + भ्याम् १७८ = सुद्युभ्याम् । सुद्युषु इत्यादि । चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः २ ।

२८६ ॥ षट् चतुर्भ्यश्च । ७ । १ । ५५ ॥ एभ्य आमो नुडागमः ॥

षट् सञ्ज्ञा भई है, जिस की ऐसा जो शब्द ३१८ और चतुर्शब्द तिन से परे जो आम् विभक्ति तिस को नुट् (न) आगम होवे ॥

२८७ ॥ रषाभ्यां नो णः समानपदे । ८ । ४ । १ ॥

यदि एक पद में र वा ष रहे तो उससे परे जो न तिस को ण आदेश होवे ॥

२८८ । अचो रहाभ्यां द्वे । ८ । ४ । ४६ ॥ चतुर्ण्णाम् ॥

यदि रेफ वा ह से पूर्व अच् रहे और परे यर् प्रत्याहार के वर्णों में से कोई वर्ण रहे तो उस वर्ण को द्वित्व होवे । चतुर् + आम् = चतुर्ण्णाम् ॥

२८९ ॥ रोः सुपि । ८ । ३ । १६ ॥ रोरेव विसर्गः सुपि । षत्वम् । षस्य द्वित्वे प्राप्ते ॥

सप्तमी बहुवचन विभक्ति परे रहे तो उसी रेफ को विसर्ग होवे जो रु होने से भया है, अन्य को न होवे । चतुर् + सु यहां विसर्ग न भया तब १६३ षत्व भया तब ष् को द्वित्व पाया ॥

२९० ॥ शरोऽचि । ८ । ४ । ४९ । अचि परे शरो न द्वे स्तः । चतुर्षु ।

उस मत् को दित्व न होवे जिस के आगे अच् रहे। इस लिये चतुर्षु में दित्व न भया,

२९१ ॥ मो नो धातोः ।८।२।६४॥ पदान्ते प्रशान् ॥

धातु के अवयव म को न आदेश होवे यदि वह पदान्त में वर्तमान रहे तब। प्रशाम्+सु=प्रशान्।

२९२ ॥ किमः कः ।७।२।१०३॥ विभक्तौ। कः। कौ। के इत्यादि सर्ववत्॥

विभक्ति से पूर्व जो किम् शब्द तिस को क आदेश होवे। किम्+सु=कः। कौ। के १५५। इत्यादि शेष रूप सर्व शब्द के समान जानने।

२९३ ॥ इदमो मः ।७।२।१०८॥ सौ। त्यदाद्यत्वापवादः।

सु परे रहे तो इदम् शब्द के म को मकार ही रहे। यह नियम त्यदादीनामः २ ० का अपवाद है॥

२९४ ॥ इदोऽय् पुंसि ।७।२।१११॥ इदम इदोऽय् सौ पुंसि। अयम्। त्यदाद्यत्वे॥

सु परे रहते इदम् के इद् भाग को अय् आदेश होवे। इदम्+सु=अयम्। इदम् को १ ० से=इद+अ+औ

२९५ ॥ अतो गुणे ।६।१।९७॥ अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः॥

अपदान्त ह्रस्व अकार से परे गुण संज्ञक वर्ण अर्थात् अ ए ओ रहे तो दोनों मिल कर पर का रूप होवे। इद+अ+औ इद+औ=१८ इदौ।

२९६ ॥ दश्च ।७।२।१०९॥ इदमो दस्य मः स्याद्विभक्तौ। इमौ। इमे। त्यदादेः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गः॥

विभक्ति परे रहते इदम् के द को मकार आदेश होवे। इदौ=इमौ। इमे १५५। त्यदादि शब्दों का यह स्वभाव ही है कि वे सम्बोधन नहीं रखते अर्थात् उन्हें सम्बोधन होता ही नहीं॥

२९७ ॥ अनाप्यकः ।७।२।११२॥ अककारस्य इदम इदोऽनापि विभक्तौ। आबिति प्रत्याहारः। अनेन॥

ककार रहित जो इदम् शब्द तिस के इद् भाग को अन् आदेश होय टा आदि अजादि विभक्ति परे रहे तो। इद+आ=अन+आ=आ१५१=अन+इन सु१२=अनेन।

२९८ ॥ हलि लोप । ७ । २ । ११३ ॥ अककारस्येदम इदो लोप आपि हलादौ । नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥

भ्याम् ३ भिस् भ्यस् २ वा सुप् परे रहे तो ककार रहित इदम् शब्द के इद् भाग का लोप होवे। अलोऽन्त्यस्य २४ यह सूत्र अभ्यास विकार (जो धातु प्रकार में आवेगा) को छोड कर और दूसरे अनर्थक में नहीं लगता। समुदाय को अर्थवान् कहते हैं और उस का जो एक देश है, वह अनर्थक कहाता है। "समुदायोऽर्थवान् समुदायस्यैकदेशोऽनर्थक" इस कारण इद्+भ्याम् यहां जो इद् का लोप विधान किया है, वह अनर्थक है, क्योंकि इद का एक भाग इद् है, इस लिये केवल द् का लोप न भया किन्तु संपूर्ण इद् का भया। तब शेष रहा अ जैसे इद्+भ्याम् = अ+भ्याम्।

२९९ ॥ आद्यन्तवदेकस्मिन् । १ । १ । २१ ॥ एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात्। सुपि चेति दीर्घः। आभ्याम् ॥

जैसा कार्य्य आदि और अन्त में किया जाता है, वैसा ही एक वर्ण में होवे। इस कारण सुपिच १५४ से जो दीर्घ अदन्त अङ्ग में होता था, वह इस अकार में भी हुआ तब अ+भ्याम् = आभ्याम् भया।

३०० ॥ नेदमदसोरकोः । ७ । १ । ११ ॥ अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न। एभि । अस्मै। एभ्य । अस्मात्। अस्य। अनयो २। एषाम् अस्मिन्। एषु ॥

उस भिस् को ऐस् आदेश न होवे जिस के पूर्व ककार रहित इदम् वा अदस् शब्द है। अभि १५८=एभि'। अस्मै १६६। एभ्य.। अस्मात् १६७। अस्य १५३। अनयोः १६०। एषाम् १५८। १६८। १६३। अस्मिन्। १६७। एषु १५८। १६३।

३०१ ॥ द्वितीया टौस्स्वेन । २ । ४ । ३४ ॥ इदमेतदोरन्वादेशे। किञ्चित् कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातु पुनरुपादानमन्वादेश । यथा। अनेन व्याकरणमधीतमेनं छन्दोऽध्यापयेति। अनयोः पवित्रं कुलमेनयो. प्रभूतं स्वमिति। एनम् । एनौ। एनान्। एनेन। एनयो: २। राजा ॥

द्वितीया टा वा ओस् विभक्ति परे रहे तो इदम् वा एतद् शब्द को एन आदेश होवे अन्वादेश के विषे। अन्वादेश उसे कहते हैं, जिस का एक वाक्य में प्रयोग होकर कार्यान्तर के लिये पुन उसी का वाक्यान्तर में प्रयोग होना। जैसा इस ने व्याकरण पढा है, इसे वेद पढाओ "अनेन व्याकरणमधीतमेन छन्दो ऽध्यापयेति" यहां इदम् शब्द

का प्रयोग व्याकरण पढ़ने में हुआ और उसी का दुबारा प्रयोग वेद पढ़ने में भया इस लिये इदम् को एन आदेश भया । ए दोनों पवित्र कुल वाले हैं इन दोनों का धन भी पवित्र है "अनयो पवित्रं कुलं अनयो प्रभूतं स्वमिति" यहां भी आदेश भया । राजन्+सु ८१ । १ । ४ = राजा ।

१०२ ॥ न ङिसम्बुद्ध्योः ।८।२।८॥ नस्य लोपो न ङौ सम्बुद्धौ च । हे राजन्

नकार का लोप न होवे जिस के आगे ङि वा सम्बुद्धि परे है । हे राजन् ।

१०३ ॥ ङावुत्तरपदे प्रतिषेधः । ब्रह्मनिष्ठः । राजानौ । राजानः । राज्ञः ॥

वार्तिककार की यह आज्ञा है कि यदि उत्तरपद परक ङि विभक्ति परे रहे तो पूर्वोक्त निषेध का प्रतिषेध होवे । इसी से ब्रह्मनिष्ठः यहां ङि परे रहते न का लोप भया ब्रह्मणि निष्ठा यस्य स ब्रह्मनिष्ठः" । राजन्+औ १८१ = राजानौ । राजानः । णुमि प्रकार ञ उच्चरित होता है राज्ञः । २५८ । ७१ ॥

१०४ । नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति । ८ । २ । २ ।
सुब्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ कृति तुग्विधौ नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र । तेन राजाश्व इत्यादौ न । इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न । राजभ्याम् । यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः ॥

सुब्विधि स्वरविधि संज्ञाविधि और कृति तुग्विधि (कृत्प्रत्यय परे रहे तो तुक आगम होता है) करने में नलोप असिद्ध होता है अन्यत्र नहीं । इसी से राजन् अश्व यहां नकार का लोप असिद्ध न भया क्योंकि यहां सुब्विधि आदि में से कोई भी नहीं है । राज+अश्व ९२ = राजाश्व । राजन्+भ्याम् यहां नलोप १८४ भया तब राजभ्याम् बना अब यहां का नलोप असिद्ध है क्योंकि सुब्विधि की है तब राज अदन्त न भया इस लिये राजभ्याम् में दीर्घ ११४ राजभिः में ११६ न ऐस् राजभ्यः में ११८ से एत्व न भया । यज्वन् शब्द से यज्वा १८१ । ८७ । यज्वानौ यज्वानः ।

१०५ ॥ न संयोगाद्वमन्तात् । ६ । ४ । १३७ ॥ वमान्तसंयोगादनोऽकारस्य लोपो न । यज्वनः । यज्वना । यज्वभ्याम् । ब्रह्मणः । ब्रह्मणा ॥

वकार मकार के पश्चात् अन् के अकार का लोप न होवे २५८ जिसके पूर्व वकारान्त वा मकारान्त संयोग रहे । यज्वनः यहां अन् के अ का २५८ से लोप पाया था सो नहीं भया । यज्वना यज्वभ्याम् १८७ । ब्रह्मन् स ब्रह्मा । ब्रह्माणौ ब्रह्माणः । ब्रह्मणा ।

३०६ ॥ इन्हन्पूषार्यम्णां शौ। ६। ४। १२ ॥ एषां शावेवोपधाया दीर्घो नान्यत्र। इति निषेधे प्राप्ते ॥

इन्, हन्, पूषन् और अर्यमन् इन शब्दों की उपधा को दीर्घ होवे यदि केवल शि परे रहे तो अन्यत्र नहीं।

३०७ ॥ सौ च। ६। ४। १३ ॥ इन्नादीनामुपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सौ। वृत्रहा। हे वृत्रहन् ॥

इन्, हन्, पूषन्, और अर्य्यमन् की उपधा को दीर्घ होय सम्बुद्धि भिन्न सु परे रहते। वृत्रहन्+सु = वृत्रहा। हे वृत्रहन्।

३०८ ॥ एकाजुत्तरपदे णः। ८। ४। १२ ॥ एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य णः। वृत्रहणौ ॥

जिस समास में एकाच शब्द उत्तरपद होवे और उस के पूर्वपद में र वा ष रहे तो तिस से परे जो प्रातिपदिकान्त नुम् वा विभक्तिस्थ जो नकार तिस को ण आदेश होवे। वृत्रहन्+औ यहां का नकार प्रातिपदिकान्त है, वृत्रहणौ ॥

हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु। ७। ३। ५४ ॥ ञिति णिति प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हकारस्य कुत्वम्। अल्लोपोनः। वृत्रघ्न इत्यादि। एवं शार्ङ्गिन् यशस्विन्। अर्यमन्। पूषन् ॥

ञित् वा णित् अथवा नकार परे रहें तो हन धातु के ह को घ आदेश होवे। वृत्रहन्+शस् २६८ वृत्रघ्न इत्यादि। इसी रीति से शार्ङ्गिन् यशस्विन्, अर्यमन् और पूषन् शब्दों के रूप जानने।

३१० ॥ मघवा बहुलम्। ६। ४। १२८ ॥ मघवन्शब्दस्य वा तृ इन्यन्तादेशः। ऋ इत् ॥

मघवन् शब्द के अन्त्य नकार को विकल्प से तृ आदेश होवे। तृ का ऋ इत्सञ्ज्ञक है।

३११ ॥ उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः। ७। १। ७० ॥ अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने। मघवान्। मघवन्तौ। मघवन्तः। हे मघवन्। मघवद्भ्याम्। तृत्वाभावे। मघवा। सुटि राजवत् ॥

धातु से भिन्न ऐसा जो उगित् (उ ऋ वा लृ जिस के इत् हों) शब्द और जिस के

नकार का लोप भया है ऐसा अञ्चु धातु तिस को नुम (न) आगम होवे। सर्वनामस्थान परे रहते। मघवन्+सु=मघवत्+स्=मघवन्त्स्। १८१। २६। १८९। मघवान्। मघवन्तौ मघवन्तः। हे मघवन्। मघवद्भ्याम्। तृ आदेश जब नहीं भया तब प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन पर्य्यन्त राजन् शब्द के समान रूप जानने।

३१२ ॥ श्वयुवमघोनामतद्धिते। ६। ४। १३३॥ अन्नन्तानां भानामेषामतद्धिते सम्प्रसारणम्। मघोनः मघवभ्याम् एवं श्वन् युवन्।

अन् जिन के अन्त में है ऐसे जो भसंज्ञक श्वन् युवन् और मघवन् शब्द तिनको सम्प्रसारण होवे यदि उन से तद्धित प्रत्यय परे न हो तो। मघवन्+अस्=मघोनः। मघवभ्याम् इसी रीति से श्वन् और युवन् शब्दों के रूप भी जानने।

३१३ ॥ न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्। ६। १। ३७॥ इति यस्य दीर्घः। यूनः। यूना। युवभ्याम् इत्यादि। अर्वा। हे अर्वन् ॥

सम्प्रसारण परे रहे तो पूर्व यण् को सम्प्रसारण न होवे। युवन्+अस=१२ यूनः। यूना। युवभ्याम् इत्यादि। अर्वन्+सु=अर्वा। हे अर्वन्।

३१४ ॥ अर्वणस्त्रसावनञः। ६। ४। १२७। नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशो न तु सौ। अर्वन्तौ। अर्वन्तः। अर्वद्भ्यामित्यादि।

नञ् रहित (जो) अर्वन् शब्द (अङ्ग वा अर्वन् शब्द) है अन्त में जिस के ऐसा जो अङ्ग तिसको तृ अन्तादेश होय यदि सु परे रहे तो न होवे। अर्वन्तौ। अर्वन्तः। अर्वद्भ्याम् इत्यादि।

३१५ ॥ पथिमथ्यृभुक्षामात्। ७। १। ८५॥ सौ ॥

पथिन् मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दों को आकार आदेश होय सु विभक्ति परे रहते।

३१६ ॥ इतोऽत् सर्वनामस्थाने। ७। १। ८६॥ पथ्यादेः ॥

सर्वनाम स्थान परे रहते पथिन् मथिन् और ऋभुक्षिन् के इकार को अकार आदेश होय।

३१७ ॥ थो न्थः। ७। १। ८७॥ पथिमथोः थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने। पन्थाः। पन्थानौ ॥

न्थ आदेश पथिन् मथिन् के थ का होय यदि उन से परे सर्वनामस्थान रहे तो।

पन्था' पन्थानौ। पन्थान ।

३१८ ॥ भस्य टेर्लोप ।७।१।८८। भस्य पथ्यादेष्टिलोप । पथ पथा। पथिभ्याम्। एव मथिन ऋभुक्षिन् ॥

पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् के भ सञ्ज्ञक टि का लोप होवे। पथिन्+शस् पथः। पथा। पथिभ्याम् ऐसे ही मथिन्, ऋभुक्षिन् को भी जानना।

३१९ ॥ ष्णान्ता षट्।१।१।२४। षान्ता नान्ता। सङ्ख्या षट् सञ्ज्ञा स्यात्। पञ्चन् शब्दो नित्य बहुवचनान्त। पञ्च। पञ्च। पञ्चभि। पञ्चभ्य २। नुट् ॥

उस सख्या वाचक शब्द की षट् सञ्ज्ञा होवे, जो षकारान्त वा नान्त है। पञ्चन् शब्द सर्वदा बहुवचन का वाची है। पञ्चन+जस् वा शस् ७०२=पञ्चन् १८४ पञ्च पञ्च। पञ्चभि पञ्चभ्यः२। पञ्चन्+आम् यहां नुट् आगम भया तब।

३२० नोपधायाः।६।४।७॥ नांतस्योपधाया दीर्घो नामि। पञ्चानाम्। पञ्चसु ॥

न है अन्त में जिस के ऐसी जो उपधा तिस को दीर्घ होवे, यदि उस से परे षष्टी का बहुवचन नाम् परे रहे तब।पद सञ्ज्ञा होने से पञ्चन् के न का लोप भया १८४ पञ्चानाम्। पञ्चसु।

३२१ ॥ अष्टन आ विभक्तौ।७।२।८४॥ हलादौ वा स्यात्।

हलादि विभक्ति परे रहे तो अष्टन् शब्द को आ आदेश विकल्प से होवे।

३२२ ॥ अष्टाभ्य औश्।७।२।८५॥ कृताकारादष्टनो जश्शसोरौश्। अष्टभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जश्शसोर्विषये आत्व ज्ञापयति। अष्टौ २। अष्टाभ्य ३। अष्टानाम्। अष्टासु। आत्वाभावे अष्ट पञ्चवत् ॥

किया है आकार जिस को ऐसा जो अष्टन् शब्द तिस से परे जस् शस् को औश् आदेश होय।अष्टभ्य औश् ऐसे लघु निर्देश से जस् शस् को औश् प्राप्त होना अष्टाभ्य ऐसे गुरु निर्देश से ज्ञापन किया कि आत्व विधायक "अष्टन् आ विभक्तौ" यह सूत्र हलादि विभक्ति के अतिरिक्त अजादि जहां उस की प्राप्ति नहीं थी ऐसे जस् (अस्) शस् (अस्) विभक्ति में भी प्रवृत्त होकर आत्व किया, तब औश् (औ) आदेश भया अष्टा औ १८ अष्टौ २ अष्टाभ्य. ३ अष्टानाम् अष्टासु विकल्प होने से जहा आत्व (आ) नहीं भया तहा पञ्चन् शब्द की तरह रूप जानने यथा अष्ट२ अष्टभ्यः २ अष्टानाम् अष्टसु।

३२३ । ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च । ३ । २ । ५९ ॥ एभ्य क्विन । अञ्चेः सुप्युपपदे । युजिक्रुञ्चोः केवलयो । क्रुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते । कनावितौ ॥

ऋत्विक दधृक् स्रग् दिग् उष्णिग् अञ्चु युजि क्रुञ्चु इन के आगे क्विन् प्रत्यय लगाया जाय इन में से जो अञ्चु धातु उस म तो तब होवे जब उस के पूर्व और सुबन्त रहे युजि और क्रुञ्च म तो तब होवे जब इन के पूर्व कुछ न रहे अर्थात् केवल यही रहें । क्रुञ्च के न के लोप का निपातन करते हैं । क्विन् प्रत्यय के क् और न् इत् हैं ।

३२४ ॥ कृदतिङ् । ३ । १ । ९३ ॥ अत्र धात्वधिकारे तिङ् भिन्न प्रत्ययः कृत्संज्ञः स्यात ॥

धातो । ३ । १ । ९१ । इस सूत्र के अधिकार में जो प्रत्यय तिङ् से अन्य हैं उनकी कृत् संज्ञा होवे ।

३२५ ॥ वेरपृक्तस्य । ६ । १ । ६७ ॥ लोप ॥

अपृक्त संज्ञक जो व जिसका लोप होय ।

३२६ ॥ क्विन्प्रत्ययस्य कु । ८ । २ । ६२ । क्विन्प्रत्ययो यस्मात् तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते । प्रत्ययस्यासिद्धत्वाच्चोःकुरिति कुत्वम् । ऋत्विग् । ऋत्विक । ऋत्विजौ । ऋत्विगभ्याम ॥

जिस शब्द से क्विन् प्रत्यय विधान किया गया है उस के अन्त्यवर्ण को कवर्ग आदेश होवे पदान्त में । यह नियम चो कु ३२८ की अपेक्षा असिद्ध है इस कारण व्यर्थ होता है ३२८ ऋत्विज्+क्विन् न को इत् संज्ञा १८८ म को ३ व को भी ३१ भई तब केवल व शेष रहा उस को अपृक्त १८२ तथा लोप व व का भी लोप ३२५ भया । ऋत्विग् । ऋत्विक् । ऋत्विजौ । ऋत्विजः । ऋत्विग्भ्याम् ।

३२७ ॥ युजेरसमासे । ७ । १ । ७१ । युजे सर्वनामस्थाने नुम् स्यादसमासे । सुलोप । संयोगान्तलोप । कुत्वेन नस्य ङः । युङ् । युञ्जौ । युञ्जः । युगभ्याम् ॥

सर्वनाम परे रहे तो युज शब्द का नुम् (न्) आगम होवे यदि समास में वह न रहे तो । युन्ज्+सु युन्ज् यन् युङ् । युञ्जौ । युञ्जः । युग्भ्याम् ।

३२८ ॥ चोःकु । ८ । २ । ३० । चवर्गस्य कवर्गः स्याज्झलि पदान्ते च । सुयुक् । सुयुजौ सुयुग्भ्याम् । खम् । खञ्जौ । खञ्जः । खन्भ्यां ॥

झल् प्रत्याहार के वर्ण परे रहे वा पदान्त में वर्तमान होय ऐसा जो चवर्ग तिसको कवर्ग आदेश होवे। सुयुग्। सुयुजौ। सुयुग्भ्याम्। खञ्ज्+सु२३=खन्। खञ्जौ। खञ्जः खन्भ्याम् २३।

३२९ ॥ व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः। ८। २। ३६। झलि पदान्ते च। जश्त्वचर्त्वे। राट्। राड्। राजौ। राड्भ्याम् एवं विभ्राट्। देवेट्। विश्वसृट् ॥

व्रश्च, भ्रस्ज, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्राज्, और छ वा श जिस के अन्त में होवें तिन को ष आदेश होय, यदि उन के आगे झल् प्रत्याहार के वर्ण परे रहें वा वे पदान्त में हों। राज्+सु=राष् यहां ष को जश्त्व करके ७८ ड भया, उस को भी चर्त्व ट्। विकल्प से भया, १५९ तब राट्। राड्। राजौ। राड्भ्याम्। इसी प्रकार विभ्राट्। देवेट् और विश्वसृट् के रूप जानने।

३३० ॥ परौ व्रजे षः पदान्ते। परावुपपदे व्रजेः क्विप् स्यात् दीर्घश्च पदान्ते षत्वमपि। परिव्राट्। परिव्राजौ ॥

जब व्रज धातु के पूर्व परि उपसर्ग उप-पद रहे तब उस से क्विप् प्रत्यय लगाया जाय और उस के स्वर को दीर्घ और पदान्त में ष आदेश भी होय। सर्वं परित्यज्य व्रजतीति परिव्राट्। परिव्रज्+सु=परिव्राट्=ड्। परिव्राजौ ॥

३३१ ॥ विश्वस्य वसुराटोः। ६। ३। १२८। दीर्घः। विश्वाराट् विश्वाराड्। विश्वराजौ। विश्वाराड्भ्याम् ॥

वसु वा राट् शब्द परे रहे तो विश्व शब्द को दीर्घ होवे। विश्वाराट्, विश्वाराड् विश्वराजौ। विश्वाराड्भ्याम्।

३३२ ॥ स्कोः संयोगाद्योरन्ते च। ८। २। २९ ॥ पदान्ते झलि च यः संयोगस्तदाद्यो स्कोर्लोपः। भृट्। सस्य श्चुत्वेन शः। झलांजश् झशि इति सस्य जः। भृज्जौ। भृड्भ्याम्। त्यदाद्यत्वं पररूपत्वम्।

पद के अन्त में वा झल् प्रत्याहार परे रहते जो संयोग तिस के आदि में जो स् वा क् तिस का लोप होवे। अकार भया २०७ फिर पर रूप भया, तब

३३३ ॥ तदोः सः सावनन्त्ययोः। ७। २। १०६ ॥ त्यदादीनां तदयोरनन्त्ययोः सः स्यात् सौ। स्यः। त्यौ। त्ये। सः तौ। ते। यः यौ। ये। एषः। एतौ। एते ॥

सु परे रहते उस तकार और दकार को स् आदेश होवे जो त्यदादि के हैं यदि वे सन के अन्त में न रहें तो त्यद्+सु १ ० स्य । त्यौ । त्य १६६ । तद्+सु = स । तौ । ते । यत्+सु = य । यौ । ये एतद्+सु = १११ = एष । एतौ । एत ॥

११४ ॥ ङे प्रथमयोरम । ७ । १ । २८ । युष्मदस्मद्भ्यां परस्य ङे भ्यसेतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेश ।

उस विभक्ति को अम् आदेश हो जो चतुर्थी का एकवचन या प्रथमा अथवा द्वितीया की है, यदि उस के पूर्व युष्मद् अस्मद् शब्द रहें तो।

११५ ॥ त्वाहौ सौ । ७ । २ । ९४ ॥ अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाहौ आदेशौ स्त ॥

सु परे रहते उस युष्म् और अस्म् को क्रम से त्व और अह् आदेश होवें जो युष्मद् और अस्मद् के हैं।

११६ ॥ शेषे लोप । ७ । २ । ९ ॥ एतयोष्टिलोप त्वम् । अहम् ॥

युष्मद् और अस्मद् शब्द के टि ४८ का लोप होवे। युष्मद्+सु = युष्मद्+अम त्वमद्+अम् = त्व+अम् = त्वम् इसी रीति से अस्मद् = अहम्।

११७ ॥ युवावौ द्विवचने । ७ । २ । ९२ । द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ स्तो विभक्तौ ॥

विभक्ति परे रहते युष्म और अस्म को क्रम से युव और आव आदेश होवें जो युष्मद् अस्मद् शब्द का है और वे शब्द जब दोके बोधक होवें।

११८ ॥ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् । ७ । २ । ८८ औङ्येतयो रात्वं लोके । युवाम । आवाम् ।

जब युष्मद् और अस्मद् शब्द के आगे प्रथमा विभक्ति का द्विवचन रहे और वह लोक का होवे (अर्थात् वेद विषय का न होवे) तब उन्हें आ आदेश होवे । युष्मद्+औ = युवाम् । इसी प्रकार अस्मद्+औ = आवाम् ।

११९ ॥ यूयवयौ जसि । ७ । २ । ९३ ॥ अनयोर्मपर्यन्तस्य । यूयम वयम ॥

जस् विभक्ति पर रहते युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को यूय वय् आदेश क्रम से होंय। युष्मद्+जस् (अम्) अस्मद् जस (अम्) ११७ यूयम् वयम् ॥

३४० ॥ त्वमावेकवचने । ७ । २।९७ । एकस्योक्तावनयोर्मपर्य्यन्तस्य त्वमौ स्तोविभक्तौ ।

विभक्ति परे रहते एक वाचक युष्मद् और अस्मद् शब्द के मपर्य्यन्त भाग को क्रम से त्व, म, आदेश होवें । युष्मद्+अम् = त्वद्+अम् ।

३४१ ॥ द्वितीयायाञ्च । ७ । २।८७ । अनयोरात्स्यात् । त्वाम् । माम्

द्वितीया विभक्ति परे रहते पूर्वोक्त शब्दों को आ आदेश होवे । त्वद्+अम् = त्व+आ+अम् (५२) (१४८) = त्वाम् इसी प्रकार माम् ।

३४२ ॥ शसो नः (न) । ७ । १ । २९ । आभ्यां शसो नः स्यादमोऽपवादः । आदेः परस्य । संयोगान्तलोपः । युष्मान् । अस्मान् ॥

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो शस् अर्थात् द्वितीया बहुवचन तिसको न्-आदेश होवे । नकारादेश (८५) से आदि को भया, तब सकार का लोप (२३) भया, जैसा युष्मद्+शस् = युष्मद्+न् स् = युष्मद्+न् = (३४१) युष्मद्+आन् (५२) = युष्मान् । अस्मान् ।

३४३ ॥ योऽचि । ७ । २ । ८९ । अनयोर्यकारादेशः स्यादनादेशेऽजादौ परतः । त्वया । मया ।

पूर्वोक्त शब्दों को य, आदेश होवे, यदि उन के आगे ऐसी अजादि विभक्ति रहे जिसको कुछ आदेश न हुआ होय तो । युष्मद्+य+आ । अस्मद्+य+आ = ३४० त्वया । मया ।

३४४ ॥ युष्मदस्मदोरनादेशे । ७ । २ । ८६ । अनयोरात्स्यादनादेशे हलादौ । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ।

पूर्वोक्त शब्दों को आ आदेश होवे जब उन के आगे ऐसी हलादि विभक्ति रहे जिसको कोई आदेश न भया होय । युष्मद्+भ्याम् (३३७) = युवद्+भ्याम् ३३१ युव+आ+भ्याम् (५२) = युवाभ्याम् आवाभ्याम् । युष्मद्+भिः ३४४ = युष्म+आ भिः (५२) युष्माभिः । अस्माभिः ।

३४५ ॥ तुभ्यमह्यौ ङयि । ७ । २ । ९५ । अनयोर्मपर्यन्तस्य । टिलोपः । तुभ्यम् । मह्यम् ।

पूर्वोक्त शब्दों के मकार पर्य्यन्त भाग को क्रम से तुभ्य और मह्य आदेश होवें, जब कि उनके आगे चतुर्थी का एक वचन रहे । युष्मद्+ङे = तुभ्यद्+ङे (३३४) = तुभ्यद्+अम् (३३६) = तुभ्यम् । मह्यम् ।

२४६ ॥ भ्यसोऽभ्यम् । ७ । १ । ३० । भाभ्यामपरस्य । युष्मभ्यम् । भस्मभ्यम् ।

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो चतुर्थी का बहुवचन भ्यस तिस को भभ्यम् आदेश होवे। युष्मद्+भ्यस्=युष्मद्+भम्यम् (२२६)=युष्मभ्यम्। भस्मभ्यम्।

२४७॥ एकवचनस्य च । ७ । १ । ३२ । भाभ्यां ङसेरत् । त्वत् । मत् ।

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो पञ्चमी का एकवचन ङसि तिस को भत् आदेश होवे युष्मद्+ङसि=युष्मद्+भत् (२४) (२२६) त्वत् मत्।

२४८ ॥ पञ्चम्या भत् । ७ । १ । ३१ । भाभ्यामपञ्चम्याभ्यसो ऽत्स्यात् । युष्मत् । भस्मत् ॥

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो पञ्चमी का बहुवचन भ्यस् तिस को भत् आदेश होवे। युष्मद्+भ्यस्=युष्मद्+भत् (२२६)=युष्मत्। भस्मत् ॥

२४९ ॥ तवममौ ङसि । ७ । २ । ९६ । भनयोस्मपर्यन्तस्य ॥
षष्ठी विभक्ति का एकवचन परे रहे तो पूर्वोक्त शब्दों के मपर्य्यन्त भाग को क्रम से तव मम आदेश होवे युष्मद्+ङस्=तवद्+ङस्।

२५ ॥ युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश । ७ । १ । २७ । तव । मम । युवयो । भावयो ।

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो षष्ठी का एकवचन ङस् तिस को अश् (भ) आदेश होवे। तवद्+ङस्=तवद्+भ २२६=तव। मम । युष्मद्+भोस् २२०=युवद्+भोस् २२६=युवयो भावयो ॥

२५१ ॥ साम भाकम् । ७ । १ । ३३ । भाभ्याम साम भाकम् । युष्माकम् । भस्माकम् । त्वयि । मयि । युवयो । भावयोः । युष्मासु । भस्मासु ॥

पूर्वोक्त शब्दों से परे जा भाम् (२६८ सुद् जिस को होने वाला है) भाम् तिस को भाकम आदेश होवे ॥ युष्मद्+भाम्=युष्मद्+भाकम २२६=युष्माकम्। भस्माकम्। युष्मद्+इ (२४)=त्वद्+इ २४१=त्वयि। भस्मद्+इ=मयि। युष्मद्+भोस् (२२०) २२६)=युवयो। भस्मद्=भावयो। युष्मद्+सु २४४=युष्मासु भस्मद्+सु=भस्मासु।

३५२॥ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ।८।१।२०। पदात्परयोरपादादौ स्थितयो षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वान्नावौ इत्यादेशौ स्तः।

किसी शब्द से परे रहे और पाद के आदि में न रहे, ऐसा षष्ठी, चतुर्थी वा द्वितीया विभक्ति के सहित जो युष्मद् और अस्मद् शब्द तिनको क्रम से वाम् और नौ आदेश होवें। इस सूत्र की प्रवृत्ति केवल द्विवचन में होती है॥

३५३॥ बहुवचनस्य वस्नसौ।८।१।२१। उक्तविधयोरनयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः॥

पूर्वोक्त (३५२) विषय में षष्ठी आदि विभक्ति के सहित युष्मद् वा अस्मद् हो तो उसके स्थान में क्रम से वस् और नस् आदेश होय॥

३५४ तेमयावेकवचनस्य ८।१।२२। उक्तविधयोरनयोः षष्ठी-चतुर्थ्येकवचनान्तयोस्तेमे एतौ स्तः।

पूर्वोक्त (३५२) विषय में षष्ठी वा चतुर्थी विभक्ति के एकवचन सहित युष्मद् वा अस्मद् हों तो उनके स्थान में क्रम से ते और मे आदेश होवें॥

३५५॥ त्वामौ द्वितीयाया।८।१।२३। द्वितीयैकवचनान्त-योस्त्वामा इत्यादेशौ स्तः॥

श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्तेमेऽपि शर्म स। स्वामी ते मेऽपि स हरि पातु वामपि नौ विभु।१। सुखम्वान्नौ ददात्वीश पतिर्वामपि नौ हरिः। सोऽव्याद्वो नश्शिवम्वो नो दयात्सेव्यो ऽत्र व स न.।२॥

पूर्वोक्त (३५२) विषय में वर्तमान द्वितीया विभक्ति के एक वचन सहित युष्मद् वा अस्मद् हों तो उसको क्रम से त्वा और मा आदेश होवें। श्री श' लक्ष्मी के पति त्वा (त्वाम् ३५५) तुझ को, मा—(माम् ३५५) मुझ को अवतु—पाले। इह = इहां ते (तुभ्यम् ३५४) तुझ को, मे (मह्यम् ३५४) = मुझको शर्म = सुख दत्तात् देवे स हरि = वह ईश्वर ते (तव ३५४) तेरा, मे (मम ३५४) मेरा स्वामी प्रभु है। विभु = ईश्वर वाम् (युवाम् ३५२) तुम दोनों को, नौ (आवाम् ३५२ हम दोनों को, पातु = पाले।१। ईश' = ईश्वर वाम् (युवाभ्याम् ३५२) तुम दोनों को, नौ (आवाभ्याम् ३५२) हम दोनों को सुख ददातु = सुख देवे हरि = ईश्वर वाम् (युवयो ३५२ तुम दोनों के, नौ आवयो. (३५२) हम दोनों का पति = स्वामी है। व. (युष्मान् ३५२) तुमको नः (अस्मान् ३५२) हमको अव्यात् = पाले। वः (युष्मभ्यम् ३०२) तुम को

नः (अस्मभ्यम् ३११) हमको शिवम् — कल्याणं, दधातु देवे । अथ यश्च वः (युष्माकम् ३११) तुमारे नः (अस्माकम् ३११) हमारे सः — वह ईश्वर सेव्य — सब तुम योग्य सेवा करने के योग्य है ॥

३५६ (वा) ॥ एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्या एकतिङ्वाक्यम् । तेनेह न ओदनं पचतव भविष्यति । एते वान्नावादयः अनन्वादेशे वा वक्तव्याः, अन्वादेशे तु नित्यं स्युः । धाता ते भक्तोऽस्ति धाता तव भक्तोऽस्ति तस्मै ते नम इत्येव । सुपात् । सुपाद् । सुपादौ ॥

एक वाक्य में युष्मद् और अस्मद् शब्दों को वां नौ आदि आदेश होवें। वाक्य वह कहाता है जिस में एक ही तिङन्त पद होवे। इस से यहां ओदनं पच तव भविष्यति में ३५५ से आदेश न हुआ क्योंकि यहां तिङन्त पद दो हैं पच और भविष्यति। ये वान्नावादि ३५२ ३ ४ से आदेश अनन्वादेश में विकल्प से होते हैं (अनन्वादेश १ १ से जो भिन्न है वह अन्वादेश कहाता है) और अन्वादेश में नित्य जैसा धाता ते (३४७) भक्तोऽस्ति वा धाता तव भक्तोऽस्ति — ब्रह्मा तुमारा प्रेम करने वाला है। तस्मै ते नमः इत्येव यहां तव को विकल्प से आदेश न भया तुम को नमस्कार ॥ सुपात् — ८ ११८ । सुपादौ।

३५६ ॥ पादः पत् । ६ । ४ । १३ । पाच्छब्दान्तं यदङ्गम्भन्तद् वयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः । सुपद् । सुपदा । सुपाद्भ्याम् । अग्निमत् । अग्निमथौ । अग्निमथम् ।

पादशब्दान्त को भसंज्ञक १८ अङ्ग तदवयव जो पाद शब्द तिस को पत् आदेश होवे द्वितीया बहुवचन में। सुपाद्+अः — सुपदः १ सुपदा १ सुपाद्भ्याम् । १ । ३ । ५। इसी प्रकार सब रूपों को जानो । अग्निमथ्+सु — १८१ — अग्निमथ् ८९ — अग्निमद् ११८ — अग्निमत् — द् । अग्निमथौ । अग्निमथम् ।

३५७ ॥ अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति । ६ । ४ २४ । हल न्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्यः लोपः किति ङिति । नुम् संयोगान्तस्य लोपः । नस्य कुत्वेन ङः । प्राङ् प्राञ्चौ । प्राञ्चः ॥

जिस का इत् सर्वसंज्ञक न होवे ऐसा जो हलन्त अङ्ग तिस की उपधा १८ में वर्त्तमान जो नकार तिसका लोप होवे कित् वा ङित्सम्बन्धी प्रत्यय परे रहते अपूर्वक अञ्च् धातु से हलन्त क्विन् प्रत्यय होता है और उस का लोप भी होजाता है तब दीर्घ ५२ होने से प्राञ्च् हुआ तदनन्तर पूर्वोक्त सूत्र ३५८ से नकार के लोप होने से प्राच् बना तब अदन्तनाम के प्रातिपदिक १३१ से अर प्राच्+सु तदनन्तर ३११ से नुम्

इत्था = प्रान्च् + सु १८३ = प्रान्च् २३ = प्रान् ३२६ से न को ङ भया = प्राङ् (पूर्वदिशा) प्रान्चौ ७३ = प्रान्चौ। प्रान्च.।

३५८ ॥ अचः । ६ । ४ । १३८ । लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य लोपः।

लोप होगया है नकार जिसका ऐसा। जो अन्च् धातु तिसका जो भसञ्ज्ञक १०८ अकार तिसका लोप होवे। द्वितीया बहुवचन में ॥ प्र + अन्च् + अ. २५७ = प्र + अच् + अः = प्र + च् + अः ।

३५९ ॥ चौ । ६ । ३ । १३८। लुप्ताकारनकाराञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घ.। प्राचः। प्राग्भ्याम्। प्रत्यङ्। प्रत्यञ्चौ। प्रतीच । प्रत्यग्भ्याम्। उदङ्। उदञ्चौ ॥

लोप होगया है अकार और नकार जिसका ऐसा जो अन्च् धातु सो परे रहे तो पूर्व में स्थित जो अण् प्रत्याहार के वर्ण तिसको दीर्घ होवे । प्र + च् + अ. = प्राच । इसी प्रकार प्राच् + भ्याम् १७८, ३२६ और ७९ = प्राग्भ्याम् इसी प्रकार और रूपों को बनाओ। इसी प्रकार प्रति + अन्च् से प्रत्यङ्। प्रत्यन्चौ। द्वितीया बहुवचन में प्रति + अच् + अ' = प्रतीच' प्रत्यग्भ्याम्। उद् + अन्च् से उदङ्। उदन्चौ।

३६० ॥ उद ईत् । ६ । ४ । १३९ । उच्छब्दात्परस्य लुप्तनकाराञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत्। उदीच·। उदग्भ्याम् ॥

उद् + उपसर्ग के उत्तर लुप्त नकारक (लोप हो गया है नकार जिसका) अन्च् धातु के अ को ई आदेश होय। उद् + अच् + अ = उदीच। उदीचा २ उदग्भ्याम्। इत्यादि।

३६१ ॥ समस्समि । ६ । ३ । ९३ । अप्रत्यान्तेञ्चतौ । सम्यङ्। सम्यञ्चौ। समीच । सम्यग्भ्याम् ॥

जब अन्च् धातु के अन्त में कोई प्रत्यय न रहे तब सम् शब्द को समि आदेश होय। समि + अन्च् = सम्यन्च् = सम्यङ्। सम्यन्चौ। समीच.। सम्यग्भ्याम् इत्यादि।

३६२ ॥ सहस्य सध्रि । ६ । ३ । ९५ । तथा। सध्र्यङ् ॥

जब अन्च् धातु के आगे कोई प्रत्यय न रहे तब सह को सध्रि आदेश होवे। सह + अन्च् = सध्र्यङ्।

३६३ ॥ तिरसस्तिर्य्यलोपे । ६ । ३ । ९४ । अलुप्ताकारेऽञ्चतौ

अप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्यादेशः। तिर्य्यङ्। तिर्य्यञ्चौ। तिरश्चः। तिर्य्यग्भ्याम्॥

नहीं लोप भया है नकार जिस का ऐसा जो अप्रत्ययान्त (जिस के अन्त में कोई प्रत्यय न रहे) अञ्च धातु उस के परे रहते तिरस् को तिरि आदेश होवे। तिरस्+अञ्च् = तिर्यञ्च् तिर्यञ्चो द्वितीया बहुवचन में तिरश्च। तिर्यग्भ्याम्। इत्यादि।

३६४ नाञ्चेः पूजायाम्।६।४।३०। पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न। प्राङ्। प्राञ्चौ। नलोपाभावादलोपो न। प्राञ्चः। प्राङ्भ्याम्। प्राङ्क्षु। एवम्पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः। क्रुङ्। क्रुञ्चौ। क्रुङ्भ्याम्। पयोमुक्। पयोमुग्। पयोमुचौ। पयोमुग्भ्याम्। उगित्वान्नुम्।

जब पूजा अर्थ में अञ्च धातु वर्त्तमान रहे तब उसके उपधा १८ में रहने वाला जो नकार तिसका लोप न होवे। प्राञ्च् ३१ = प्राञ् ११६ = प्राङ्। प्राञ्चौ। न लोप के न होने से अकार ११८ का लोप न भया तब प्राञ्च भया। प्राञ्च्+भ्याम् १०८ २१ = प्राञ्+भ्याम् ११६ = प्राङ्भ्याम्। प्राञ्च्+सु २१ = प्राञ्+सु ११६ = प्राङ्+सु १ = प्राङ्क्+सु १६१ = प्राङ्क्षु। इसी रीति पूजा अर्थ में प्रत्यङ् आदि शब्दों को जानना। क्रुञ्च् = क्रुङ्। क्रुञ्चौ। क्रुङ्भ्याम्। पयोमुच्+स १८१ = पयोमुच् ११८ = पयोमुक् ७८। १५८ = पयोमुक्-ग्। पयोमुचौ। पयोमुच्+भ्याम् १०८। ११८ और ७८ = पयोमुग्भ्याम्। महत् शब्द उगित् है इस कारण नुम् १११ होता है।

३६५॥ सान्तमहतस्संयोगस्य।६।४।१०। सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने। महान्। महान्तौ। महान्तः। हे महन्। महद्भ्याम्॥

स है अन्त में जिसके ऐसा जो संयोग तिसके वा अथवा महत् शब्द का जो नकार तिस की उपधा १८ को दीर्घ होवे सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे रहते। महत्+सु १११ = महन्त्+सु १८१ = महन्त् = महान्त् २१ = महान्। महान्तौ। महान्तः। हे महन्। महत्+भ्याम् १०८ और ७८ = महद्भ्याम्।

३६६॥ अत्वसन्तस्य चाऽधातोः।६।४।१४। अत्वन्तस्यो-पधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ सौ। धीमान्। धीमन्तौ।

धीमन्त । हे धीमन् । शसादौ महद्वत् । भातेर्डवतु, डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोप । भवान् । भवन्तौ । शत्रन्तस्य भवन् ॥

यदि सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहे तो अत्वन्त (अतु प्रत्यय है अन्त में जिस के) और धातु भिन्न जो असन्त तिसको उपधा १८० को दीर्घ होवे। धीमत्+सु ३११ = धीमन्त्+सु १८३ = धीमन्त् = धीमान्त् २३ = धीमान्। संयोगान्त लोप २३ के असिद्ध होने से नलोप (१८४ नहीं होता) द्वितीया के बहुवचन से लेकर सप्तमी के बहुवचन का रूप महत् शब्द के समान जानना। भाधातु से डवत् (अवत्) प्रत्यय हुआ तब भा+अवत् इस दशा में भा धातु को भ १७८ संज्ञा नहीं है तो भी डवतु प्रत्यय मे जो ड किया है उसी कारण से भा धातु के आ का लोप २६२ से भया तब भवत् इसकी साधने की रीति धीमत् के समान जानो। भवान्। भवन्तौ। जब भू धातु से शतृ प्रत्यय लगा कर भवत् भी बनाया जाता है इसका रूप भवत् होता है अत्वन्त न होने से दीर्घ ३६६ से नहीं भया।

३६७॥ उभे अभ्यस्तम् । ६ । १ । ५ । षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्त. ।

अष्टाध्यायी के छठे अध्याय के द्वित्व प्रकरण मे जो दो विहित हैं उन दोनों इकट्ठों की अभ्यस्त संज्ञा होवे।

३६८॥ नाऽभ्यस्ताच्छतु । ७ । १ । ७८। अभ्यस्ताच्छतुर्नुम् न। ददत्। ददतौ ॥

जिन शब्दों की अभ्यस्त संज्ञा ३६७ और ३६८ से होती है उन शब्दों से परे जो शतृ का अत् तिसको प्राप्त भया हुआ जो नुम ३११ सो न होवे। ददत् यह शब्द दा धातु के आगे शतृ प्रत्यय लगाने से बनाया जाता है। ददत्। ददतौ।

३६९॥ जक्षित्यादय षट् । ६ । १ । ६ । षड् धातवोऽन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञा स्यु । जक्षत् । जक्षतौ । जक्षत । एवं जाग्रत् । दरिद्रत्। शासत् । चकासत्। गुप्। गुपौ । गुप. । गुब्भ्याम्।

जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चकासत्, दीध्यत्, वेव्यत् और सातवा जक्षत् इन को अभ्यस्त संज्ञा होवे। इसी कारण ३११ से नुम् न भया। जक्षत्। जक्षतौ। जक्षत.। इसी रीति दरिद्रत् इत्यादि रूपों को जानना चाहिये। पकारान्त गुप् शब्द को लिखते हैं।

अप्रत्ययान्ते तिरसस्तिर्य्यादेश । तिर्य्यङ् । तिर्य्यञ्चौ । तिरश्च । तिर्य्यग्भ्याम् ॥

नहीं लोप भया है नकार जिस का ऐसा जो अप्रत्ययान्त (जिस के अन्त में कोई प्रत्यय न रहे) अञ्चु धातु सो परे रहते तिरस् को तिरि आदेश होवे । तिरस्+अञ्चु = तिर्य्यङ् तिर्य्यञ्चौ द्वितीया बहुवचन में तिरश्च । तिर्य्यग्भ्याम् । इत्यादि ।

३६४ नाञ्चेः पूजायाम् ।६।४।३० । पूजार्थस्याञ्चतेरुपधाया नस्य लोपो न । प्राङ् । प्राञ्चौ । नलोपाभावात्कौत्सो न । प्राञ्चः । प्राङ्भ्याम् । प्राङ्क्षु । एवम्पूजार्थे प्रत्यगादय । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुङ्भ्याम् । पयोमुक् । पयोमुग् । पयोमुचौ । पयोमुग्भ्याम् । उगित्वान्नुम् ।

जब पूजा अर्थ में अञ्चु धातु वर्त्तमान रहे तब उसके उपधा १८ में रहने वाला जो नकार तिसका लोप न होवे । प्राञ्चु २१ = प्रान् १२६ = प्राङ् । प्राञ्चौ । न लोप के न होने से चकार ११८ का लोप न भया तब प्राञ्च: भया । प्राञ्चु+भ्याम् १०८ २१ = प्रान्+भ्याम् १२६ = प्राङ्भ्याम् । प्राञ्चु+सु = २१ = प्रान्+सु १२६ = प्राङ्+सु १ = प्राङ्क्+सु १६१ = प्राङ्क्षु । इसी रीति पूजा अर्थ में प्रत्यञ्च आदि शब्दों को जानना । क्रुञ्चु = क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुङ्भ्याम् । पयोमुच्+स १८१ = पयोमुच १२८ = पयोमुक् ७८ । ११८ = पयोमुगन्य । पयोमुचौ । पयोमुच्+भ्याम् १०८ । ११८ और ७८ = पयोमुग्भ्याम् । महत् शब्द उगित् है इस कारण नुम् २११ होता है ।

३६५ ॥ सान्तमहतस्संयोगस्य ।६।४।१० । सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने । महान् । महान्तौ । महान्त । हे महन् । महद्भ्याम् ॥

स है अन्त में जिसके ऐसा जो संयोग तिस की अथवा महत् शब्द का जो नकार तिस की उपधा १८ को दीर्घ होवे सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान के परे रहते । महत्+सु २११ = महन्त्+सु १८१ = महन्त् = महान्त् २१ = महान् । महान्तौ । महान्त । हे महन् । महत्+भ्याम् १०८ और ७८ = महद्भ्याम् ।

३६६ ॥ अत्वसन्तस्य चाधातोः ।६।४।१४ । अत्वन्तस्योपधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ । धीमान् । धीमन्तौ ।

और १५८=षट्-ड्। षड्भिः ३ षड्भ्यः ४,५ षष्-।-आम् ३१८,२८६,७,७८ और ८० षण्णाम्। षट्सु वा ८८ षट्त्सु। अब पिपठिष् शब्द के रूपों को साधते हैं। पिपठिष् के षकार को रु आदेश १२० के करने से षत्व १६३। ३६ से असिद्ध है इस कारण रु आदेश होकर पिपठिर् भया॥

३७४॥ र्वोरुपधाया दीर्घ इकः। ८। २। ७६। रेफवान्तयोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते। पिपठीः। पिपठिषौ। पिपठीर्भ्याम्।

पद के अन्त में वर्तमान जो रकारान्त वा वकारान्त धातु तिस की उपधा १८० में रहनेवाला जो इक् तिस को दीर्घ होवे। पिपठिर्=पिपठीर् १०८=पिपठीः। पिपठिषौ। पिपठीर्भ्याम्॥

३७५॥ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि। ८। ३। ५८। एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्याम्परस्य सस्य मूर्द्धन्यादेशः। ष्टुत्वेन पूर्वस्य षः। पिपठीष्षु। पिपठीःषु। चिकीः। चिकीर्षौ। चिकीर्भ्याम्। चिकीर्षु। विद्वान्। विद्वांसौ। हे विद्वन्॥

नुम् विसर्ग और शर् प्रत्याहार के जो वर्ण इन मे से किसी एक के बीच में रहते भी इण् प्रत्याहार के वर्ण वा कवर्ग से परे जो स् तिस को मूर्द्धन्य अर्थात् ष् आदेश होवे। पिपठिष्-।-सु १७८, १२०, ३७५, १०८ और ११८=पिपठीःषु=पिपठीष्षु इसी तरह चिकीर्ष् शब्द को भी जानो। विद्वस्-।-सु=१८३,१७७,३११, २३, १८१ अब १८४ से न् का लोप २३ को ३६ से असिद्ध होजाने से न भया विद्वान् विद्वांसौ हे विद्वन्॥

३७६॥ वसोस्सम्प्रसारणम्। ६। ४। १३१। वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात्। विदुषः। वसुस्रंस्विति दः। विद्वद्भ्याम्॥

जिस के अन्त में वसु प्रत्यय होवे ऐसा जो भसञ्ज्ञक १७८ अङ्ग १४६ तिसको सम्प्रसारण २७६ होवे। विद्वस्-।-अस्=विदुस्+अस् १६३=विदुषः। विद्वस्-।-भ्याम् १७८, २८२=विद्वद्भ्याम्॥

३७७॥ पुंसोऽसुङ्। ७। १। ८९। सर्वनामस्थाने। पुमान्। हे पुमन्। पुमांसौ। पुंसः। पुम्भ्याम्। पुंसु। ऋदुशनेत्यनङ्। उशना उशनसौ॥

पुंस शब्द के आगे सर्वनामस्थान सञ्ज्ञक १७७ प्रत्यय परे रहते उस को असुङ् (पुंस् के स को अस्) आदेश होवे। जब स को असुङ् आदेश भया तब अनुस्वार अपने रूप म में आगया क्योंकि स को निमित्त मान कर अनुस्वार भया था तो जब निमित्त स् का

गुप् ०८—गुह् ११८—गुप् ह् । गुपौ । गुप्‌ः । गुप्+भ्याम् १०८ और ०८—गुभ्भ्याम् ।

१०० ॥ त्यदादिषु दृशो ऽनालोचने कञ्च । ३ । २ । ६० । त्यदादिषूपपदेषु अज्ञानार्थाद्दृशो कञ् । चात् क्विन् ।

त्यदादि उपपद हों और ज्ञान अर्थ से भिन्न अर्थ में वर्तमान जो दृश धातु तिस से आगे कञ् प्रत्यय लगाया जाय और पक्ष में (चाशिक) क्विन् प्रत्यय भी होवे ।

१०१ ॥ आ सर्वनाम्नः । ६ । ३ । ९१ । दृग्दृशवतुषु । तादृक् तादृशौ । तादृशः । तादृग्भ्याम् । व्रश्चेति षः । षत्वषत्वे । विट् । विड् । विशौ । विशः । विड्भ्याम् ॥

दृश् वा दृश् अथवा वतु प्रत्यय परे रहे तो सर्वनाम को आ आदेश होवे । तद् पूर्वक दृश धातु से क्विन् प्रत्यय हुआ और उस का लोप ३१५ होने पर कृदन्त मान के ११२ प्रातिपदिक संज्ञा होती है तब तद्+दृश्+सु—तादृश्+सु १८१ तादृश् ३२६—तादृष् ०८ और ११८—तादृक्+ग । तादृशौ । तादृशः । तादृग्भ्याम् । इत्यादि । विश् ३२८—विष् ०८ और ११८—विट्-ड् । विशौ । विशः । विड्भ्याम् इत्यादि ।

१०२ ॥ नशेर्वा । ८ । २ । ६३ नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते नक् । नट् । नशौ । नशः । नग्भ्याम् । नड्भ्याम् ।

पद के अन्त में रहने वाला जो नश् का श् तिसको पक्ष में क आदेश होवे । नश्—नष् ०८ और ११८—नक-ग् । जब क आदेश न भया तब विश् १०१ के समान जानो—नट् ड् । नशौ । नशः । नग्भ्याम् वा नड्भ्याम् ।

१०३ ॥ स्पृशोऽनुदके क्विन् । ३ । २ । ५८ । अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् । घृतस्पृक् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः । दधृक् । दधृषौ । दधृग्भ्याम् । रत्नमुट् । रत्नमुषौ । रत्नमुड्भ्याम् । षट् । षड्भिः षड्भ्यः । षण्णाम् । षट्सु । रुत्वम्प्रति षत्वस्याऽसिद्धत्वात्ससजुषो-रिति रुत्वम् ॥

उदक शब्द को छोड़ कर और और शब्द उपपद रहे तो स्पृश् धातु से आगे क्विन् प्रत्यय लगाया जाय क्विन् के जाने को देखो १०२ घृतस्पृश्—घृतस्पृक्-ग् । घृतस्पृशौ । घृतस्पृशः । घृतस्पृग्भ्याम् । दधृष् ३११—दधृष् ०८ और ११८ दधृक्-ग् । दधृषौ । दधृग्भ्याम् । रत्नमुष् ०८ और ११८—रत्नमुट् ड् । रत्नमुषौ । रत्नमुड्भ्याम् । अब बहुवचनान्त षष् शब्द को लिखते हैं । षष्+जस् ११८ और २२—षष् ०८

पश्चादुत्वमत्वे। अमुम्। अमू। अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः।

बहुवचन में अदस् शब्द के द से परे जो ए तिस को ई और उस पूर्व द को म आदेश होवे। अदे=अमी अद+अम् यहां विभक्ति कार्य अर्थात् पूर्व रूप १४८ और ३८० से उत्व मत्व भी पाया तो दोनों में कौन तब पूर्वत्रासिद्धम् ३६ से विभक्ति के कार्य के प्रति उत्व असिद्ध हुआ क्योंकि वह त्रिपादि का सूत्र है। इस कारण इस प्रकरण में प्रथम विभक्ति कार्य करके तब उत्व मत्व होता है। अमुम्। अमू। अमून् १५०। तृतीया के एकवचन मे अमुना होता है, उसकी प्रक्रिया यों है अद+आ ३८९ अमु+आ घिसंज्ञा १८४ होकर आ को ना आदेश १८५ भया=अमुना। पर यहां यह सन्देह होता है कि जब घिसंज्ञा १८४ से करने लगे तब ३६ से मुभाव ३८० असिद्ध हो जायगा, और उस के असिद्ध होने से घिसंज्ञा न हुई तब घि संज्ञा मान कर जो ना १८५ आदेश होता था वह भी न भया तब अमुना कैसा इस के लिये आगे नियम लिखते हैं।

३८२ ॥ न मु ने। ८। २। ३। नाभावे कर्त्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः। अमुना। अमूभ्यां। अमीभिः। अमुष्मै। अमीभ्यः। अमुष्मात्। अमुष्य। अमुयोः अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमीषु ॥ इति ॥

ना आदेश १८५ से करने को हो वा किया हो तो मुभाव ३८० असिद्ध न होवे अमुना। अमूभ्याम्। १५८ और ३८० अमीभि.। १६६ और अमुष्मै। १६७ अमुष्मात्। अमुष्य। अमुयो १६८। अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमीषु॥

॥ इति हलन्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

॥ अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

३८३ ॥ नहो धः। ८। २। ३४। झलि पदान्ते च ॥

नह धातु के ह को ध आदेश होवे जब कि उस के आगे झल प्रत्याहार के वर्ण रहें वा वह पदान्तमें होवे ॥

३८४ ॥ नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ। ६। ३। ११६। क्विबन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः। उपानत्। उपानहौ। उपानत्सु। क्विबन्तत्वात् कुत्वेन घः उष्णिक्। उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम्। द्यौः। दिवौ। दिवः। द्युभ्याम्। गीः। गिरौ। गिरः। एवं पूः। चतस्रः। चतसृणाम्। का। के। काः। सर्ववत्।

नाश भया तो नैमित्तिक का नाश तो हुआ ही है "निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः" पुंस्+सु = पुमस्+सु १११ = पुमन्स्+सु १७८ = पुमान् स+सु १८४ = पुमान् स् २१ = पुमान्। पुमांसौ। पुंसः। पुंस+भ्याम् १०७ और २१ = पुम्भ्याम्। पुंसु। उशनस्+सु २१ = उशन्+अन्+सु १८५ = उशनन्+सु १८१ = उशना+सु १८३ = ४ = उशना। उशनसौ॥

१७८॥ अस्य सम्बुद्धौ वानङ् नलोपश्च वा वाच्यः। हे उशन। हे उशनन्। हे उशनः। हे उशनसौ। उशनोभ्याम्। उशनस्सु। अनेहा। अनेहसौ। हे अनेहः। वेधाः। वेधसौ। हे वेधः। वेधोभ्याम्।

सम्बुद्धि अर्थात् प्रथमा का एकवचन सु विभक्ति परे रहे तो उशनस् शब्द को अनङ् और उस के नकार का लोप दोनों विकल्प से होवें। अनङ् (अन्) और न का लोप हुआ तब हे उशन। अनङ् हुआ और नलोप न भया तब हे उशनन्। जब दोनों न हुए तब हे उशनः। हे उशनसौ। उशनस्+भ्याम् १०८। १२ २ और ११ उशनोभ्याम्। उशनस्सु। अनेहस् शब्द के रूप २२ = अनेहा। अनेहसौ। हे अनेहः। अनेहोभ्याम्। वेधस् शब्द के रूप वेधाः १११। वेधसौ। वेधोभ्याम्॥

१७९॥ अदस औ सुलोपश्च। ७। २। १०७। अदस औत्स्यात्सौ सुलोपश्च तदोरिति सः। असौ। त्यदाद्यत्वम्। पररूपत्वम्। वृद्धिः।

प्रथमा का एक वचन सु विभक्ति परे रहे तो अदस् शब्द को औ (स् को औ) आदेश और उस के सु का लोप होवे। अदस्+सु १०७ १८५ = अद+औ १८ = अदौ १११ = असौ॥

१८०॥ अदसोऽसेर्दादु दो मः। ८। २। ८०। अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ दस्य मश्च। आन्तरतम्याद्ध्रस्वस्य उः दीर्घस्य ऊः। अमू। जसः शी। गुणः॥

सकार रहित अदस् शब्द के दकार से परे जो स्वर तिस को उ और ऊ (जो ह्रस्व स्वर रहे तो ह्रस्व उ और दीर्घ रहे तो दीर्घ ऊ) आदेश और उस द को म आदेश होवे। अदस्+औ १०७, १८५ और १८ = अदौ = अमू। अद+जस् = अदे—

१८१॥ एत ईद्बहुवचने। ८। २। ८१। अदसो दात्परस्यैत ईद्दस्य मो बह्वर्थोक्तौ। अमी। पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक्

पश्चादुत्वमत्वे। अमुम्। अमू। अमून्। मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः।

बहुवचन में अदस् शब्द के द से परे जो ए तिस को ई और उस पूर्व द को म आदेश होवे। अदे=अमी अद+अस् यहां विभक्ति कार्य अर्थात् पूर्व रूप १४८ और ३८० से उत्व मत्व भी पाया तो दोनों में कौन तब पूर्वत्रासिद्धम् ३६ से विभक्ति के कार्य के प्रति उत्व असिद्ध हुआ क्योंकि वह त्रिपादि का सूत्र है। इस कारण इस प्रकरण में प्रथम विभक्ति कार्य करके तब उत्व मत्व होता है। अमुम्। अमू। अमून् १५०। तृतीया के एकवचन में अमुना होता है, उसकी प्रक्रिया यों है अद+आ ३८० अमु+आ घिसंज्ञा १८४ होकर आ को ना आदेश १८५ भया=अमुना। पर यहां यह सन्देह होता है कि जब घिसंज्ञा १८४ से करने लगे तब ३६ से मुभाव ३८० असिद्ध हो जायगा, और उस के असिद्ध होने से घिसंज्ञा न हुई तब घि संज्ञा मान कर जो ना १८५ आदेश होता था वह भी न भया तब अमुना कैसा इस के लिये आगे नियम लिखते हैं।

३८२॥ न मु ने। ८। २। ३। नाभावे कर्त्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः। अमुना। अमूभ्यां। अमीभिः। अमुष्मै। अमीभ्यः। अमुष्मात्। अमुष्य। अमुयोः अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमीषु॥ इति॥

ना आदेश १८५ के करने को हो वा किया हो तो मुभाव ३८० असिद्ध न होवे अमुना। अमूभ्याम्। १५८ और ३८० अमीभि। १६६ और अमुष्मै। १६७ अमुष्मात्। अमुष्य। अमुयो १६८। अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमीषु॥

॥ इति हलन्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

॥ अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

३८३॥ नहो धः। ८। २। ३४। झलि पदान्ते च॥

नह धातु के ह को ध आदेश होवे जब कि उस के आगे झल प्रत्याहार के वर्ण रहें वा वह पदान्त में होवे॥

३८४॥ नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ। ६। ३। ११६। क्विबन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः। उपानत्। उपानहौ। उपानत्सु। क्विन्नन्तत्वात् कुत्वेन घः उष्णिक्। उष्णिहौ। उष्णिग्भ्याम्। द्यौः। दिवौ। दिवः। द्युभ्याम्। गीः। गिरौ। गिरः। एवं पूः। चतस्रः। चतसृणाम्। का। के। काः। सर्ववत्।

नहि (बांधना) वृति (होना) वृषि (बरसना) व्यधि (ताड़न करना) रुचि (चमकना) सहि (सहना) और तनि (फैलाना) इन धातुओं के अन्त में जब क्विप् प्रत्यय लगाया जाय तब इन के परे रहते इन से जो पूर्व पद है तिसे दीर्घ होवे। उप+नह् क्विप्=उपानह्+सु १८१=उपानह्= २८२ उपानध् ७८ और १५८=उपानत्–द्। उपानहौ। उपानह्+सु=उपानध्+सु ८०=उपानत्सु। उष्णिह् शब्द क्विप् प्रत्यय से बनाया जाता है इस कारण २२५ से ह को घ आदेश हुआ तब उष्णिघ् ७८ और १५८=उष्णिक्–ग्। उष्णिहौ। उष्णिघ्+भ्याम् १०८ और ७८=उष्णिग्भ्याम्। दिव् २८३=द्यौः। दिवौ। दिवः। दिव्+भ्याम् १०८ और ७८=द्युभ्याम्। द्युषु। गिर् १०४=गीः गिरौ गिरः। इसी रीति पुर् से पूः। पुरौ। पुरः। प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में चतस्रः चतुर्+आम् २११ ।=चतसृ। २११ चतसृणाम्। स्त्रीलिङ्ग में किम् शब्द का रूप का होता है। किम्=का। का+औ २११=के बहुवचन में काः। शेषरूप सर्वा शब्द के समान जानने।

२८५ । य सौ। ७। २। ११०। इदमो दस्य यः। इयम्। त्यदाद्यत्वम्। पररूपत्वम्। टाप्। दश्चेति मः। इमे। इमाः। इमाम्। अनया। हलि लोपः। आभ्याम्। आभिः। अस्यै। अस्याः। अनयोः। आसाम्। अस्याम्। आसु। [illegible]। [illegible]। [illegible]। त्यदाद्यत्वम्। टाप्। स्या। त्ये। त्याः। एवं तद्। एतद्। वाक्। वाचौ। वाचः। अप् शब्दो नित्यम्बहुवचनान्तः। अप्तृन्निति दीर्घः। आपः॥

प्रथमा के एकवचन में वर्तमान जो इदम् शब्द तिस के द को य आदेश होवे। इदम्+सु=२८१ इयम्। प्रथमा के एकवचन को छोड़ कर और विभक्ति परे रहते इदम् द को २२० से अकार भया फिर २८१ से पररूप होकर स्त्रीलिङ्ग होने के कारण टाप् प्रत्यय लगाकर इदा हुआ। इदा+औ २८६=इमा+औ २११ ।=इमे। इमाः। इमाम्। तृतीया विभक्ति के एकवचन में इदा+आ=२८०=इना+आ २१०+अने+आ २१६=अनया। हलादि विभक्ति परे रहते इद का लोप २८८ होता है। इदा+भ्याम्=आभ्याम्। आभिः। अस्यै ११८। अस्याः। इदा+ओस् २८०। २१० और २१=अनयोः। इदा+आम् ११८ और २८८=आसाम्। इदा+ङि ११२ और ११८ अस्याम्। आसु २८८। [illegible] १८१=अम् ११८=अम् १२८ और ११८=अम्–म्। [illegible] अमुम्याम् ११० और ११८। जैसे इदम् से इदा बनाया गया, उसी रीति त्यद् से त्या १११=स्या। त्ये। त्याः। तद् से सा। ते। ताः। यत् से या। ये। याः। वाच् ११८। ७८। १५८=वाक्। वाचौ। वाग्भ्याम् १०८ ११८ और

७८ १६३। वाचु। अप् शब्द सर्वदा बहुवचनान्त है प्रथमा के बहुवचन में दीर्घ होता है २२१ आप। द्वि० मे अपः। अप्+भिः।

३८६॥ अपो भि।७।४।४८। अपस्तकारो भादौ प्रत्यये। अद्भिः। अद्भ्यः। अपाम्। अप्सु। दिक्। दिग्। दिशः। दिग्भ्याम्। त्यदादिष्विति दृशेः क्विन् विधानादन्यत्रापि कुत्वम्। दृक्। दृग्। दृशौ। दृग्भ्याम्। त्विट् त्विड् त्विषौ त्विड्भ्याम्। ससजुषोरिति रुत्वम् सजूः। सजुषौ सजूर्भ्याम्। आशीः। आशिषौ। आशीर्भ्याम्। असौ उत्वमत्वे अमू। अमूः। अमुया। अमूभ्याम्। अमूभिः। अमुष्यै। अमूभ्यः। अमुष्याः। अमुयोः। अमूषाम्। अमुष्याम् अमूषु॥ इति॥

अप् शब्द के प् को त् आदेश होवे, जब कि उसके आगे ऐसा प्रत्यय रहे जिस के आदि में भ रहे। अप्+भिः=अत्+भिः ७८=अद्भिः। अद्भ्यः २। अपाम्। अप्सु दिश् ३२३,३२६, ७८ और १५८=दिक्-ग्। दिशौ। दिशः। दिग्भ्याम् १०८। दृश् धातु से क्विन् प्रत्यय ३२३ भया इस कारण इस के अन्त्य श् को ३२६ से कुत्व होकर ग् हुआ। दृक् ग्। दृशौ। दृग्भ्याम्। त्विष्। ७८ और १५८=त्विट्-ड्। त्विषौ त्विड्भ्याम्। सजुष्+सु १८३ सजुष् १२०=सजुर् ३०४=सजूर् १०८=सजूः (मित्र) सजुषौ। सजूर्भ्याम् १०८। इसी रीति आशिष्=आशीः। आशिषौ। आशीर्भ्याम्। अदस् ३०८,२३३=असौ। और विभक्तियों में उ और म भया ३८० अमू। अमूः। अमुया २८७। अमूभ्याम्। अमूभिः। अमुष्यै २३८। अमूभ्यः। अमुष्याः। अमुयोः २३७। अमूषाम् १६८। अमुष्याम् २१३। अमूषु।

॥ इति हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः॥

॥ अथ हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः॥

स्वमोर्लुक्। दत्वम्। स्वनडुत्। स्वनडुही। चतुरनडुहोरित्याम्। स्वनड्वांहि। पुनस्तद्वत्। शेषम्पुम्वत्। वाः। वारी। वारि। वारा। वार्भ्याम्। चत्वारि। किम्। के। कानि। इदम्। इमे इमानि॥

नपुंसक लिङ्ग के जो शब्द हैं तिन से परे जो सु और अम् हो तो उन का लोप होवे २६५ स्वनडुह् शब्द ह् को द् आदेश [illegible] अच्छा बैल जिस जगह

पर है वा जिस कुल में) स्वनडुही २१७ । स्वनडुांहि २८० १८ और ८१ । इसी रीति द्वितीया के भी रूप सिद्ध होते हैं । शेष रूपों को पुंलिङ्ग २८ के समान जानने । वार् । (जल) वा १ ८ । वारी २१४ । वारि २६० । वारा । वार्भ्याम् । चत्वारि । २७९ । प्रश्न वाचक सर्वनाम किम् शब्द के रूप लिखते हैं । किम् २६१ । के २१७ और २८२ । कानि २१९ और २८२ । सर्वनाम इदम् शब्द के रूप लिखते हैं । इदम् २६१ और २८१ इमे २ ० २८१-४ और २१४ इमानि २१७ २५८ ॥

२८७ (वा) एनदादेशो नपुंसके एनद्वक्तव्य । एनत् । एने । एनानि । एनेन । एनयोः । ब्रह्म । अह । विभाषा ङिश्योः । अह्नी । अहनी । अहानि ॥

अन्वादेश ६ १ की विवक्षा में रहने वाला जो एतद् शब्द तिस को नपुंसकलिङ्ग में एनत् आदेश होवे । एनत् २६१ । एने २ ८ । २८१ । और २१४ । एनेन । एनयोः । ब्रह्मन् । ब्रह्म २६१ और १८४ । अहन् से अह्नी वा अहनी २६८ । अहानि २६० । २६८ और १९१ ।

२८८ अहन् । ८ । २ । ६८ । अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते । अहोभ्याम् । दण्डि । दण्डिनी दण्डीनि । दण्डिभ्याम् । सुपथि । टिलोप सुपथी । सुपन्थानि । ऊर्क् । ऊर्जी । ऊर्न्जि । नरजानां संयोग तत् । ते । तानि । यत् । ये । यानि । एतत् । एते । एतानि । गवाक् । गोची । गवाञ्चि । पुनस्तद्वत् । गोचा । गवाग्भ्याम् । शकृत् । शकृती । शकृन्ति । ददत् ।

पदान्त में वर्तमान जो अहन् शब्द तिस के नकार को रु आदेश होवे । अहन्+भ्याम्=अहरु+भ्याम् १२१=अह+उभ्याम् ११=अहोभ्याम् । दण्डिन् से दण्डि २६१ और १८४ । दण्डिनी २१४ । दण्डीनि । २६० और १८१ दण्डिन्+भ्याम् १०८ और १८ दण्डिभ्याम् । सुपथिन् से सुपथि । द्विवचन में टि का लोप भया ११८=सुपथी । सुपन्थानि २१०,८ । २२६ । १८१ और २६० । ऊर्ज से ऊर्क् २१८ । ऊर्जी । ऊर्न्जि इस उदाहरण में न् र् और ज् इन तीन वर्णों का संयोग है । सर्वनाम तद् से तत् २६१ और १९८ । ते । तानि यद् से यत् । ये । यानि । एतद् से एतत् । एते एतानि । गोपूर्वक अञ्चु धातु से गवाक् जैसा गो+अञ्चु ११७=गो अच् १० और ११=गवाच् ११८=गवाक् गोची ११०-८ और २१८ । गवाञ्चि । गवाञ्चि २१८ । द्वितीया विभक्ति में भी ऐसे ही रूप होते हैं । गोचा । गवाग्भ्यामित्यादि । शकृत् (विष्ठा) शकृती शकृन्ति २१८ । ददत् (देनेवाला) ॥

३८९ ॥ वा नपुंसकस्य । ७ । १ । ७९ । अभ्यस्तात्परो यः शता तदन्तस्य क्लीवस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने । ददन्ति । ददति । तुदत् ॥

नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान अभ्यस्त संज्ञक जो शतृप्रत्ययान्त शब्द तिसको विकल्प से नुम् होवे जबकि उसके बाद सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहें। ददन्ति वा ददति । तुदत्+सु = २६५ तुदत् ॥

३९० ॥ आच्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० । अवर्णान्तात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा शीनद्योः । तुदन्ती । तुदती । तुदन्ति । भात् । भान्ती । भाती । भान्ति । पचत् ॥

शी २५४ नदी २०८परे रहते अकारान्त शब्द से शतृ प्रत्यय का अवयव जो त् सो जिस के अन्त रहे तिसे नुम् आगम होवे विकल्प से। तुदन्ती वा तुदती तुदन्ति । भात् । भान्ती वा भाती । भान्ति । पचत्+सु २६५ ॥

३९१ ॥ शप्श्यनोर्नित्यम् । ७ । १ । ८१ । शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् शीनद्योः। पचन्ती । पचन्ति । दीव्यत् । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति । धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः । नुम् विसर्जनीयेति षः । धनूंषि । धनुषा । धनुर्भ्याम् । एवं चक्षुर्हविरादयः । पयः । पयसी । पयांसि । पयसा । पयोभ्याम् । सुपुम् । सुपुंसी । सुपुमांसि । अदः । विभक्तिकार्य्यम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेषंपुवत् ॥

शप् (यह प्रत्यय भ्वादि गण के धातुओं के आगे लगाया जाता है) वा श्यन् (यह दिवादि गण के धातुओं के आगे लगाया जाता है) के अकार के आगे जो शतृ का त् सो है अन्त में जिसके तिसको नुम होवे। पचन्ती । यहां शप् के अकार से परे तकार है। पचन्ति इस रीति दिव्यत् यह श्यन् के आगे शतृ लगाकर बना है। दीव्यन्ती । दीव्यन्ति धनुष् से धनुः २६५ । १२० और १०८ । धनुषी १६३ । यह सकारान्त शब्द है इस कारण दीर्घ भया २६५ से। नुम् के व्यवधान में भी ३७५ से स को ष भया तब धनूंषि । धनुषा । धनुष्+भ्याम् १२० = धनुर्भ्याम् । इसी रीति चक्षुष् हविष् आदि शब्दों को भी जानना । पयस्+सु = २६५ । १२० और १८० पयः पयस्+भ्याम् १२०, २ और ३२ = पयोभ्याम् २६५ और २३ । सुपुम् २५४ सुपुंसी । सुपुमांसि ३०८,३११ और ३६६ अदस्-अद । प्रथम विभक्ति कार्य्य होकर उत्व मत्व होता है, २८० अमू । अमूनि । शेषरूप पुल्लिङ्ग के समान जानो ।

॥ इति हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

पर है वा जिस कुल में) स्वनडुही २४३। स्वनड्वांहि २८० १८ और ८२। इसी रीति द्वितीया में भी रूप सिद्ध होते हैं। शेष रूपों को पुलिङ्ग २८ के समान जानने। वार् । (जल) वा १ ८। वारी २४४। वारि २८०। वारा। वार्भ्याम्। चत्वारि। २८९ । प्रश्न वाचक सर्वनाम किम् शब्द के रूप दिखाते हैं। किम् २८४ । के २४४ और २८१। कानि २१९ और २८१। सर्वनाम इदम् शब्द का रूप दिखाते हैं। इदम् २६५ और २८१ इमे १० २८१न् और २४७ इमानि २१७ २१९॥

२८७ (वा) ष ण्यादेशे नपुंसके एनत्वसख्य । एनत्। एने। एनानि एनेन। एनयो । ब्रह्म। अह । विभाषा ङिश्योः । अह्नी । अहनी अहानि ॥

अन्वादेश २ १ की विवक्षा में रहने वाला जो एतद् शब्द तिस को नपुंसकलिङ्ग में एनत् आदेश होवे। एनत् २४१। एने २ ८। २८१। और २४७। एनेन। एनयो। ब्रह्म। ब्रह्म २४१ और १८७। अहन् से अह्नी वा अहनी २४८। अहानि २१०। २१८ और १८१।

२८८ अहन्। ८। २। ६८। अहन्निमित्तस्य रु पदान्ते। अहोभ्याम्। दण्डि। दण्डिनी दण्डीनि। दण्डिभ्याम्। सुपथि। टिलोप सुपथी। सुपथ्यानि। उर्क्। उर्ज्जी। उञ्जि। नरजानां संयोग तत् ते। तानि। यत्। ये। यानि। एतत्। एते। एतानि। गवाक्। गोची। गवाञ्चि। पुनस्तद्वत्। गोचा। गवाग्भ्याम्। शकृत्। शकृती। शकृन्ति। ददत्।

पदान्त में वर्तमान जो अहन् शब्द तिस के नकार को रु आदेश होवे। अहन्+भ्याम्=अहरु+भ्याम् १११=अह+उभ्याम् ११=अहोभ्याम्। दण्डिन् से दण्डि २६१ और १८७। दण्डिनी २४४। दण्डीनि। २१० और १८१ दण्डिन्+भ्याम् १०८ और १८ दण्डिभ्याम्। सुपथिन् से सुपथि। द्विवचन में टि का लोप यथा ११८=सुपथी। सुपथ्यानि २१०,८। २२६। १८१ और २१०। ऊर्ज् से ऊर्क् २२८। ऊर्जी। ऊञ्जि इस उदाहरण में न् र् और ज् इन तीन वर्णों का संयोग है। सर्वनाम तद् से तत् २६१ और २२८। ते। तानि त् में यत्। ये। यानि। एतद् से एतद्। एते एतानि। गोपूर्वक अञ्च् धातु है गवाक् जैसा गौ+अञ्च् ११०=गो अच् १० और ६१=गवाच् २२८=गवाक गाची ११०-८ और ११८। गवाञ्ची। गवाञ्चि ११८। द्वितीया विभक्ति में भी ऐसे ही रूप होते हैं। गोचा। गवाग्भ्यामित्यादि। शकृत् (विष्ठा) शकृती शकृन्ति ११८। ददत् (देनेवाला)॥

३८९ ॥ वा नपुंसकस्य । ७ । १ । ७९ । अभ्यस्तात्परो यः शता तदन्तस्य क्लीवस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने । ददन्ति । ददति । तुदत् ॥

नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान अभ्यस्त संज्ञक जो शतृप्रत्ययान्त शब्द तिसको विकल्प से नुम् होवे जबकि उसके बाद सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहें । ददन्ति वा ददति । तुदत्-।-सु = २६५ तुदत् ॥

३९० आच्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० । अवर्णान्तात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् वा शीनद्यो । तुदन्ती । तुदती । तुदन्ति । भात् । भान्ती । भाती । भान्ति । पचत् ॥

शी २५४ नदी २०९परे रहते अकारान्त शब्द से शतृ प्रत्यय का अवयव जो त् सो जिस के अन्त रहे तिसे नुम् आगम होवे विकल्प से । तुदन्ती वा तुदती तुदन्ति । भात् । भान्ती वा भाती । भान्ति । पचत्-।-सु २६५ ॥

३९१ ॥ शप्श्यनोर्नित्यम् । ७ । १ । ८१ । शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् शीनद्योः । पचन्ती । पचन्ति । दीव्यत् । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति । धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः । नुम् विसर्जनीयेति ष. । धनूंषि । धनुषा । धनुर्भ्याम् । एवं चक्षुर्हविरादयः । पय. । पयसी । पयांसि । पयसा । पयोभ्याम् । सुपुम् । सुपुंसी । सुपुमांसि । अद. । विभक्तिकार्य्यम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेषंपुंवत् ॥

शप् (यह प्रत्यय भ्वादि गण के धातुओं के आगे लगाया जाता है) वा श्यन् (यह दिवादि गण के धातुओं के आगे लगाया जाता है) के अकार के आगे जो शतृ का त् सो है अन्त में जिसके तिसको नुम होवे । पचन्ती । यहां शप् के अकार से परे तकार है । पचन्ति इस रीति दिव्यत् यह श्यन् के आगे शतृ लगाकर बना है । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति धनुः से धनुः २६५ । १२० और १०८ । धनुषी १६३ । यह सकारान्त शब्द है इस कारण दीर्घ भया २६५ से । नुम् के व्यवधान में भी २७५ से स को ष भया तब धनूंषि । धनुषा धनुष्-।-भ्याम् १२० = धनुर्भ्याम् । इसी रीति चक्षुष् हविष् आदि शब्दों को भी जानना पयस्-।-सु = २६५ । १२० और १८० पयः पयस्-।-भ्याम् १२०, २ और ३२ = पयोभ्याम् २६ और २३ । सुपुम् २५४ सुपुंसी । सुपुमांसि ३०८,३११ और ३६६ अदस्-अद. । प्रथम विभक्ति कार्य्य होकर उत्व मत्व होता है, ३८० अमू । अमूनि । शेषरूप पुल्लिङ्ग के समान जानो ।

॥ इति हलन्ताः नपुंसकलिङ्गाः ॥

॥ अथाव्ययानि ॥

३८२ ॥ स्वरादिनिपातमव्ययम् । १ । १ । ३७ ॥

जो शब्द स्वरादि गण में पढ़े हैं और जिनकी निपात संज्ञा होती है वे दोनों अव्यय कहावें ।

पहिले स्वरादि गण का अर्थ लिखते हैं—

स्वर् स्वर्गलोक वा परलोक । अन्तर् बीच में । प्रातर् प्रातःकाल । पुनर् फिर वा निश्चय । सनुतर् छिपाना । उच्चैस् । ऊंचा । नीचैस् नीचा । शनैस् धीरे धीरे । ऋधक् उचित वा स्वीकार । ऋते विना । युगपत् एककाल में । आरात् दूर वा समीप । पृथक् अलग । ह्यस् जो दिन बीतगया (कल)। श्वस् जो दिन आवैगा (कल)। दिवा दिन में । रात्रौ रात में । सायम् सायंकाल में । चिरम् देर में । मनाक् ईषत् अल्प । जोषम् आनन्द वा चुपचाप । तूष्णीम् चुपचाप । बहिस् अवस् बाहर की ओर समया । निकषा, समीप । स्वयम् आपही आप । वृथा निष्फल । नक्तम् रातमें । नञ् नहीं । हेतौ, निमित्त विषे । इद्धा साक्षात् । अद्धा साक्षात् वा स्वीकार । सामि आधा वा निन्दित वत् प्रत्ययान्त जो शब्द हैं वे भी स्वरादि गण में लिये गये हैं । ब्राह्मणवत् ब्राह्मण के समान । क्षत्रियवत् क्षत्री के समान । सना सनत् सनात् सदा, अथवा विभाग । तिरस् टेढ़ा छिपना वा पराजित होना अन्तरा बीच में, वा [illegible] अन्तरेण वर्जना । ज्योक् विलम्ब । प्रश्न शीघ्र वा इस समय कम् जल सुख निन्दा वा मस्तक शम् सुख सहसा अकस्मात् वा अविचारसे विना छोड़ कर, नाना । अनेक वा छोड़ कर, स्वस्ति मङ्गल । स्वधा इसका प्रयोग पितृसंबंधीदान में आता है । अलम् शोभा । भरपूर शक्ति वा रोकना । वषट्, श्रौषट् वौषट् ये तीनों शब्द देव संबंधी दान में आते हैं अन्यत् दूसरी रीति से अस्ति है उपांशु अप्रकट से क्षमा सहना । विहायसा आकाश से दोषा रात । मृषा मिथ्या झूठ मुधा व्यर्थ पुरा निरन्तर, पहिले से वा आसन्नभविष्य (जो भविष्य के समीप) मिथो, मिथस् एकान्त वा साथ प्रायस् विशेष करके मुहुस् अनेक बार, प्रवाहिका प्रवाहुकम् समान काल वा ऊपर । आर्यहलम् बलात्कार (जोरावरी करना) अभीक्ष्णम् बारम्बार, साकं सार्द्धम् साथ नमस् प्रणाम आदि । हिरुक् वर्जना । धिक् धिक्कार वा धमकाना । अथ अनन्तर । अम् शीघ्र वा अल्प । आम स्वीकार । प्रताम् ग्लानि (क्षीणहोना) प्रशान् शान्त, प्रतान बढ़ाना । मा वा माङ् निषेध वा प्रश्न ।

ये चादिगण हैं च और अथवा ह प्रसिद्ध । अह आदर एव निश्चय वा

केवल, एवम्, ऐसा। नूनम्, ठीक। शश्वत्, निरन्तर, युगपत्, एकही समय, भूयस् बारा बार वा अधिक, कूपत्—प्रश्न, कुवित्, अधिक। नत, सदेह, चेत् चण, यदि आच्चित्, आवश्यक। कामो का पूछना। यत्र, जहां। तत्र, तहा। नह, नही, हन्त, हर्ष वा शोक, (माकि माकिम्। नकिस्, नकि:) रोकना। यावत् तावत्, जितना वा तितना। त्वै है, न्वै वितर्क देना वा अनादर। श्रौषट्, वौषट्, घी का दान, स्वाहा, देवताओ के लिये देना। स्वधा, पितृ के लिये देना। तुस, तु, तथाहि, दिखाना, खलु, निषेध वा सचमुच। किल, लोकवार्ता वा झूठा। अथ, मङ्गल। सुष्ट, अच्छा रम, भृत, आदर, धिक्कार

उपसर्ग, विभक्ति वा स्वर के समान जिनका रूपहो और वे उपसर्ग विभक्ति व स्वर न रहें तब अव्यय कहावे। यहा उपसर्ग और विभक्ति के अर्थ का ग्रहण है परन्तु स्वर के शब्द ही का ग्रहण होता है क्योंकि उनका केवल कुछ अर्थ नही होसकता॥

(विदत्तस्, अवदत्तस्) यहां वि, और अव, उपसर्ग नही हैं यदि होते तो "अच उपसर्गात्तः" से (वित्तम्) (अवत्तस्) हो जाता, इसी प्रकार और भी जानो। (अहंयु') शुभंयु' (अस्तिक्षीरा) (अस्ति)। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, और औ, पशु—सुख शुकम्, तुरन्त यथा, कथा, तिरस्कार, पाट् प्याट्, अङ्ग, है, हे, भो' वा अये केवल विषु, इनका प्रयोग सम्बोधन में होता है। ह्य—इसका प्रयोग श्लोक के पाद पूरण में आता है अनेक, एकपदे, एक काल युत्, कुत्सित्, आत इस से भी॥

चादिरप्याकृतिगणः॥

इस गण को भी आकृति गण (आकार से जो लिया जाय) कहते हैं॥

तसिलादय· प्राक् पाशपः। शस् प्रभृतय प्राक् समासान्तेभ्य.। अम्। आम्। कृत्वोर्था तसिवती। नानाञौ। एतदन्तमप्यव्ययम्। अत इत्यादि॥

"जिस् तद्धित प्रत्ययान्त शब्द के आगे कोई विभक्तिया न आवें उन्हें अव्यय कहते हैं"। वे प्रत्यय ये हैं अष्टाध्यायी से पञ्चम्यास्तसिल्। ५। ३। ७॥ से लेकर याप्ये पाशप्। ५। ३। ४७॥ पर्य्यन्त जितने प्रत्यय हैं और बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यत रस्याम्। ५। ४। ४२॥ से लेकर समासान्ता। ५। ४। ६८॥ इस सूत्र पर्य्यन्त जितने प्रत्यय हैं और अमु च छन्दसि। ५। ४। १२॥ से अम् प्रत्यय, किमेत्तिङव्ययघादाम्व-द्रव्यप्रकर्षे। ५। ४। ११। से आम्। प्रत्यय। सङ्ख्याया क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्। ५। ४। १७॥ एकस्य सकृच्च। ५। ४। १८॥ इन तीनों से जो प्रत्यय होते हैं और तसि वत् ना और नञ् ये प्रत्यय जिनके अन्त में हो उनकी अव्यय सज्ञा होवे।

४८० क्त्वातोसुन्कसुनः । १ । १ । ३९ ॥ एतदन्तमव्ययम् ॥ स्मारम् । स्मारम् । जीवसे । पिबध्यै ॥

जो क्तमत्यय मान्त या एजन्त है वे जिनके अन्त में हों उन शब्दों की अव्यय संज्ञा होती है। स्मृ—णमुल् = स्मारम् स्मारम्। जीव—से = जीवसे। पिब—ध्यै = पिबध्यै।

४८१ क्त्वातोसुन्कसुनः । १ । १ । ४ । एतदन्तमव्ययम् । क्रत्वा। उदेतो । विसृप ॥

उन शब्दों की भी अव्यय संज्ञा होती है जिनके अन्त्य में क्त्वा या तोसुन् अथवा कसुन् प्रत्यय रहें। कृ—त्वा = कृत्वा। उदे—तोसुन् = उदेतो। विसृप्—कसुन् = विसृप ॥

४८२ अव्ययीभावश्च । १ । १ । ४१ । अधिहरि ॥

अव्ययीभाव समास से जो शब्द बनते हैं उनकी भी अव्यय संज्ञा होती है। हरि ङि—अधि = अधिहरि ॥

४८३ ॥ अव्ययादाप्सुपः । २ । ४ । ८२ । अव्ययादापस्सुपश्च लुक् तत्र शालायाम् ॥

अव्यय संज्ञक शब्द से परे जो आप् वा सुप् प्रत्यय तिस का लुक होय। तत् ङि त्रल् = तत्र+आ (टाप्) = तत्र शालायाम् (तिस शाला में) ॥

" सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम् । १ । ”

तीनों लिङ्गों (पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग) में और सब विभक्तियों में एकसा रहे और सब वचन (एक द्वि बहु) में विकार को भी न प्राप्त होय वह अव्यय कहाता है ॥ १ ॥

४८४ वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः । आपञ्चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा। २। अवगाह । वगाह । अपिधानम्। पिधानम्।

भागुरि आचार्य्य (अव) और (अपि) उपसर्ग के अकार का लोप और हलन्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के आगे टाप् की इच्छा करते हैं। उदाहरण वाच्+आ = वाचा। निश् आ = निशा । दिश् आ = दिशा ॥ २ ॥ अव+गाह = अवगाह वगाह । अपि+धानम् = अपिधानम् पिधानम् ॥

॥ इत्यव्ययानि ॥

॥ ओ३म् ॥

॥ लघुकौमुद्युत्तरार्धम् ॥

श्रीमद्वरदराजप्रणीतम्

श्रीमत्पञ्चनदीयमहाविद्यालयाध्यापकगोस्वामिपण्डित

गङ्गाविष्णु शास्त्रि सङ्कलित हिन्दी भाषा

विवरणसहितम्

आर्य्यधर्म्मोपदेशक

श्रीयुतपण्डितकृपारामशर्मणामाज्ञया

पञ्जाब एकोनोमीकल यन्त्रालये

लालालालमनाधिकारेण

मुद्रितम्।

सन् १८९७ ई०

लाहौर

प्रथमवार १००० प्रति   मूल्य २)

॥ ओ३म् ॥

॥ लघुकौमुद्याम् ॥

॥ भ्वादयः ॥

३९८ ॥ लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् । लुङ् । लृङ् । एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचर ॥

टीका—अब भू आदि में है जिनके उन (धातुओं) क्रियावाचकों का वर्णन किया जाता है। और क्रिया काल में होती है। तो इस व्याकरण शास्त्र में काल लकार से प्रकाशित (विदित) होता है। जैसे वर्तमान काल का प्रकाशक लट् लकार है। " परोक्ष अनद्यतन भूत " काल का प्रकाशक लिट् है। अनद्यतन भविष्यत् काल का प्रकाशक लुट् है। सामान्य भविष्यत् काल का प्रकाशक लृट् है। इन दश लकारों में से पञ्चम (लेट्) वेद में ही प्रेरणा अर्थ में आता है। आशीर्वाद और प्रेरणा अर्थ में लोट् आता है। अनद्यतन भूतकाल का प्रकाशक लङ् है। विधि और * निमन्त्रणादि अर्थों में लिङ्। सामान्य भूत काल का प्रकाशक लुङ् है। कार्यकारणभाव और क्रिया की असिद्धि के विदित होने पर भूत और भविष्यत् काल में लृङ् होता है ॥ ३९८ ॥

३९९ ॥ ल. कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य । ३ । ४ । ६९ । लकारा. सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्त्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्त्तरि च ॥

ऊपर लिखे लकार कर्त्ता वा कर्म अर्थ जतलाने के लिये सकर्मक धातु से होवें और कर्त्ता वा भाव अर्थ जतलाने के लिये अकर्मक धातु से होवें। "व्यापार जिस के अधीन रहता है उसको कर्त्ता कहते हैं" क्रिया के फल का जो आश्रय है उसको कर्म कहते हैं। उदाहरणम् (जैसे) देवदत्त चावल पकाता है। यहां पकाना देवदत्त के आधीन है। इस लिये देवदत्त कर्त्ता है। चावल कर्म है, क्योंकि पाकक्रिया का आश्रय है। यदि इसी वाक्य में कर्मवाच्य करना हो तो, देवदत्त से चावल पकाया जाता है, ऐसा लिखना। परन्तु यहां भी चावल ही कर्म हैं। इन दोनों का संस्कृत में रूप एकसा नहीं रहेगा। जैसे (पचति) पकाता है। यहां कर्त्ता का ही अर्थ प्रकाशित होता है। और कर्म में (पच्यते) पकाया जाता है, यहां कर्म का अर्थ ही प्रकाशित होता है, अकर्मक क्रिया में,

* "४५२" सूत्र की व्याख्या में देखो ॥

कर्म नहीं होता इस लिये लकार, दूसरी अवस्था में उस को (भाव) क्रिया को प्रकाश करता है। जैसे (भूयते) होना। कर्तृवाच्य में तो सकर्मक के तुल्य अकर्मक क्रिया भी कर्त्ता अर्थ को प्रकाश करती है। जैसे (भवति) होता है ॥ १८८ ॥

४० ॥ वर्त्तमाने लट् । ३ । २ । १२३ वर्त्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात् । अटावितौ । उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्वम् । भू सत्तायाम् । कर्तृविवक्षायाम् भू+ल् इति स्थिते ॥

वर्त्तमान काल में होने वाले कार्य के प्रकाश करने में जब धातु का व्यवहार हो तब उस से परे लट् लकार हो। लट् में अ और ट् इत् संज्ञक हैं। १८८ संख्यक सूत्र से ल् की भी इत् संज्ञा पाई, तब उस के निषेध के लिये यह युक्ति है कि इस व्याकरण शास्त्र में कोई भी वर्ण निरर्थक नहीं उच्चारण किया वा पढ़ा जाता और ल् की इत् संज्ञा करने से तो सम्पूर्ण लट् प्रत्यय नष्ट होजाता है तो उस के उच्चारण का कुछ भी फल न होगा इस लिये ल् की इत्संज्ञा नहीं होती ॥ ४० ॥

१ भू धातु जिसका अर्थ होना है उस की साधन प्रक्रिया लिखते हैं। जब उस से कर्त्तावाचक प्रयोग बनाने की इच्छा होती है तब भू+ल् ऐसा रूप होने पर।

४१ ॥ तिप् तस् झि सिप् थस् थ मिप् वस् मस् तातांझ थासाथांध्वमिड्वहि महिङ् ३ । ४ । ७८ । एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः ॥

नीचे लिखेहुए अठारह प्रत्यय ल् के स्थान में आदेश होवें।

परस्मैपद — आत्मनेपद

	प्रथम पुरुष	मध्यम पु	उत्तम पु ॥	प्रथम पु	मध्यम पु	उत्तम पुरुष
एक —	तिप्	सिप्	मिप्	त	थास्	इट्
द्वि —	तस्	थस्	वस्	आताम्	आथाम्	वहि
बहु —	झि	थ	मस्	झ	ध्वम्	महिङ्

४२ ॥ लः परस्मैपदम् १ । ४ । ९९ । लादेशाः परस्मैपद संज्ञाः स्युः ॥

ल् के स्थान में जो आदेश होते हैं उ १ आगम् । नमसु । मतु । यत् ये परस्मैपद संज्ञावाले होते हैं ॥ ४२ ॥

४०३ ॥ तङानावात्मनेपदम् १।४।१००। तङ् प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्सञ्ज्ञाः स्युः। पूर्वसंज्ञापवादः॥

जो प्रत्यय समूह तङ् प्रत्याहार से विदित होता है अर्थात (४०१) सङ्ख्यक सूत्रका दूसरा समूह त से लेकर महिङ् पर्यन्त सो और दो प्रत्यय जिनका केवल आन अवशिष्ट रहता है अर्थात् शानच् और कानच् ये सभ आत्मनेपद कहलावें, तङ् की जो परस्मैपदसञ्ज्ञा समझ पडतीथी सो इस सूत्र से निवृत्त भई और यह निश्चय हुआ कि परस्मैपद के कहने से केवल पहिले समूह के (९) नौं प्रत्यय तिप् से लेकर मस् पर्यन्त और क्वसु और शतृ जाने जाते हैं। और आत्मनेपद से दूसरे समूह के नौ (९) प्रत्यय त से लेकर महिङ् पर्यन्त शानच् और कानच् जाने जाते हैं॥ ४०३॥

४०४॥ अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १।३।१२। अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्॥

जिस धातुका अनुदात (८) अथवा ङ् इत् हो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय अर्थात् तङ् और शानच् कानच् होवे॥ ४०४॥

किस धातु का क्या इत् है इस का ज्ञान धातुपाठ में होता है॥

४०५॥ स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।३।७२। स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले॥

जिस धातुका स्वरित (९) अथवा ञ् इत् हो, "और जब (क्रिया) व्यापार का फल कर्त्ता को पहुचता हो" तब उक्त धातु से आत्मनेपद सञ्ज्ञक प्रत्यय होवें॥ ४०५॥

४०६॥ शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् १।३।७८। आत्मनेपदनिमित्तहीनाद्धातो कर्त्तरि परस्मैपदं स्यात्॥

जो धातु आत्मनेपदके (स्थापक) कारक निमित्तों से हीन हो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में होवे॥ ४०६॥

परस्मैपद कर्मको कभी नही दिखाता।

४०७॥ तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१ तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः॥

तिप् की ति और महिङ् के ङ् से बने हुए तिङ् प्रत्याहार में जो प्रत्यय अन्तर्गत हैं उन्के परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों समूहों की जो तीनर श्रेणीयें हैं सो क्रम से प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, और उत्तम पुरुष, कहलावें॥ ४०७॥

॥ ४ ८ ॥ तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकश । १ । ४ । १०२। लठस्त्रयमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादि संज्ञानि स्यु ॥

जिन तीनर तेवोयों की प्रथम आदि (४०) संज्ञा क्रमानुसार हुइ हैं तिन के प्रत्येक विषय में जो तीनर प्रत्यय जैसे तिप् तस् झि इत्यादि उन को क्रम से एकवचन द्विवचन और बहुवचन संज्ञा होवे ॥ ४ ८ ॥

४०९ ॥ युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १।४।१०५ तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मद्यप्रयुज्यमाने प्रयुज्यमाने च मध्यम ।

जिस कारक को अर्थात् कर्त्ता वा कर्म (४८८) को लकार अर्थात् तिङ (४१) दिखाता होवे उसी कारक को जो युष्मद् शब्द दिखावे और वह युष्मद् शब्दचाहे हो वा न हो तो लकार के स्थान में मध्यम पुरुष (४०) होय । उदाहरण 'तुम मुझ को देखते हो' अथवा केवल इतना ही कहें कि (मुझ को देखते हो) तो भी क्रिया का अन्त भाग कर्त्ता कारक ही को दिखाताहै और तुम शब्द भी कर्त्ता कारकही को दिखाता है इसलिये संस्कृत में ऐसी अवस्था रहते लकार के स्थान में मध्यम पुरुष होगा । और यदि ऐसा कहे कि "मैं तुम को देखता हूं" तो इस उदाहरण में क्रिया का शेष भाग जो "हूं" है सो तो कर्त्ता कारक को प्रकाश करता है 'तुम को' यह कर्म कारक को प्रकाश करता है इस हेतु से ऐसी अवस्था में लकार के स्थान में मध्यम पुरुष कभी नहीं (आता) होगा किन्तु वक्ष्यमाण रीति से उत्तम पुरुष होता है ॥ ४ ८ ॥

४१ ॥ अस्मद्युत्तम १।४।१०७। तथाभूते ऽस्मद्युत्तम ।

जब अस्मद् की अवस्था युष्मद् के तुल्य (४८) हो तब लकार के स्थान में उत्तम पुरुष ४१० होवे ॥ ४१ ॥

४११ ॥ शेषे प्रथम' १।४।१०८। भूति भूति आदि ।

जिन के विषय में युष्मद् और अस्मद् (४८) (४१) लिखे हैं उन को छोड़कर भिन्न अवस्था में लकार (४१) के स्थान में प्रथम पुरुष (४०) होवे भू+त् ४ इसप्रूप से और भू+ति ४१ इस से होता है ॥ ४११ ॥

४१२ ॥ तिङ् शित् सार्वधातुकम् । ३।४।११३। तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्यु ॥

धातो' ८१० इस सूत्र के अधिकार में उक्त जो तिङ् प्रत्यय ४०७ और जिसका शकार इत् सञ्ज्ञक होवे सो प्रत्यय सार्वधातुक कहलावे ॥ ४१२ ॥

४१३ ॥ कर्त्तरि शप् । ३ । १ । ६८ । कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् ॥

जब कर्त्ता अर्थ (वाची) वाचक सार्वधातुक ४१२ परे रहे तो धातु से परे शप् प्रत्यय हो १४८ और ३ से श्+प् इत् हैं, इस से श का केवल अ बचता है, और भू+अ +ति ऐसा रूप होता है ॥ ४१३ ॥

४१४ ॥ सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः । ७ । ३ । ८४ । अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः । अवादेशः । भवति । भवतः ॥

सार्वधातुक ४१२ वा आर्द्ध धातुक " ४३० " परे रहते जिस अङ्ग के अन्त में इक् हो उसको गुण २० आदेश होवे, इस सूत्र से भू का भो होता है, और २६ से ओ के स्थान में अव् करने पर भवति ऐसा पद बन जाता है, इसी रीति से भवतः बन जाता है, भवति = वह होता है, भवतः = वे दो होते हैं ॥ ४१४ ॥

४१५ ॥ झोऽन्तः । ७ । १ । ३ । प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः । अतोगुणे । भवन्ति । भवसि । भवथः । भवथ ॥

प्रत्यय का अवयव जो झ् उसके स्थान में अन्त् आदेश होवे, 'अतोगुणे' से भव के व में जो अ है, उसके और अन्त के अकार के स्थान मे अर्थात् दोनों को मिला कर एक अ हुआ तब 'भवन्ति' यह पद सिद्ध भया, भवन्ति = वे होते हैं । भवसि = तू होता है । भवथः = तुम दो होते हो । भवथ = तुम होते हो ॥ ४१५ ॥

४१६ ॥ अतो दीर्घो यञि । ७ । ३ । १०१ । अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके । भवामि । भवाव । भवाम । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथः । यूय भवथ । अहं भवामि । आवां भवाव । वयं भवामः ॥

यञादि सार्वधातुक परे रहते ह्रस्व अकारान्त अङ्ग को दीर्घ आदेश होवे, इस प्रकार से भव + मि = भवामि = मैं होता हुं । भवावः = हम दो होते हैं । भवामः = हम होते हैं ॥ ४१६ ॥

सर्वनाम के साथ से वर्तमान काल इस रूप का होता है यथा—

	॥ एक वचन ॥	॥ द्विवचन ॥	॥ बहु वचन ॥
प्रथम पु	स भवति	तौ भवतः	ते भवन्ति
	वह होता है।	वे दो होते हैं।	वे होते हैं।
मध्य पु	त्वं भवसि	युवां भवथः	यूयं भवथ
	तू होता है।	तुम दो होते हो।	तुम होते हो।
उत्त पु	अहं भवामि	आवां भवावः	वयं भवामः
	मैं होता हूं।	हम दो होते हैं।	हम होते हैं।

४१७ ॥ परोक्षे लिट् ३। २। ११५। भूतानद्यतनपरोक्षार्थ वृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः।

भूतानद्यतन * भूत काल ३८८ में जो बात (वा) क्रिया बिना देखी हो उस के प्रकाश करने के लिये जिस धातु का व्यवहार किया जाय उस से परे लिट् ३८८ होवे। लिट् में ट और इ इत् हैं और ल् के स्थान में तिप् आदि प्रत्यय ३। १ होते हैं ॥ ४१७ ॥

४१८ ॥ परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३। ४। ८२। लिटस्तिबादीनां णलादयः स्युः भू+अ इतिस्थिते॥

परस्मैपद में तिप् आदि जो प्रत्यय जो लिट् के स्थान में आदेश किये हैं उन के स्थान में णल् इत्यादि होवें। अर्थात् ॥ ४१८ ॥

	॥ एकवचन ॥	॥ द्विवचन ॥	॥ बहुवचन ॥
प्रथम पुरुष	णल्	अतुस्	उस्
मध्यम पुरुष	थल्	अथुस्	अ
उत्तम पुरुष	णल्	व	म

जब इन आदेशों को करते हैं तब ण् और ल् का लोप १९२। १। होता है और भू+अ ऐसा रहजाता है॥

---

* काल दो प्रकार का होता है अद्यतन और अनद्यतन व्यतीत आधीरात से लेकर आनेवाली आधीरात तक चौबीस घण्टे अद्यतन हैं इस के बाहिर का अनद्यतन है इस हेतु से विदित हुआ कि अद्यतन संज्ञा आज अविद्यमान् और वर्तमान को है। अतएव है और अनद्यतन कल्ह परसों और अविद्यमान् को दी गई जाती है॥

४१९ ॥ भुवो वुग्लुङ्लिटोः ६ । ४ । ८८ । अचि ॥

जिस के आदि में अच् है ऐसा जब लुङ् या लिट् का आदेश परे रहे तब भू धातु को वुक् का आगम होवे ॥ ४१९ ॥

वुक् का उ और क् दोनों इत् हैं, इस भांति से भू+अ=भूव्+अ ॥

४२० ॥ लिटि धातोरनभ्यासस्य ६ । १ । ८ । लिटि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्त आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् भूव् अ इतिस्थिते ॥

लिट् लकार के परे होने पर अनभ्यास (नहीं द्वित्व हुआ जिसको) धातु के एकाच् (एक स्वर वाले) प्रथम अवयव (भाग) को द्वित्व होवे परन्तु यदि उस प्रथम भाग के आदि में अच् होतो दूसरे एकाच् भाग को द्वित्व होवे, इस रीति से, भूव् यहां धातु का द्वितीय (दूसरा) भाग एकाच् है ही नहीं तो 'भूव्' के द्वित्व होने पर भूव+अ=भूव् भूव्+अ, यह स्वरूप हुआ तब ॥ ४२० ॥

४२१ ॥ पूर्वोऽभ्यास । ६ । १ । ४ । अत्र ये द्वे तयोः ॥

४२० से जो दो रूप हुए हैं, उन में से पहिले की अभ्यास संज्ञा होवे ॥ ४२१ ॥

४२२ ॥ हलादि शेषः ७ । ४ । ६० । अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्येहलोलुप्यन्ते ॥

अभ्यास का '४२' आदि (पहिला) हल् रह जावे और शेष हलों का लोप होय, इस सूत्र के लगाने से 'भूव् भूव्+अ'='भू भूव+अ' हुआ ॥ ४२२ ॥

४२३ ॥ ह्रस्वः ७ । ४ । ५९ । अभ्यासस्याचः ॥

अभ्यास ४२१ के अच् (स्वर) के स्थान ह्रस्व आदेश होवे, तब इस रीति से भू भूव्+अ=भु भुव्+अ हुआ ॥ ४२३ ॥

४२४ ॥ भवतेरः । ७ । ४ । ७३ । भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि ॥

भू धातु के अभ्यास के उ को अ होवे, जब लिट् परे रहे तो तब = "भु भूव्+अ" ='भ भूव्+अ' हुआ तब ॥ ४२४ ॥

४२५ ॥ अभ्यासे चर् च । ८ । ४ । ५४ । अभ्यासे झलां चरः स्युर्जशश्च । झशांजश खयांचर इतिविवेकः । बभूव बभूवतुः बभूवुः ॥

अभ्यास के भ्रम् के स्थान में वह और भ्रम् भी होवे अर्थात् भ्रम् के स्थान में भग् और वकी के स्थान में वह इस में इतना विचार है तब इस के लगाने सं भ भूव+ब =बभूव (वह हुआ) बभूवतु ४१८=वे दो हुए। बभुव =वे हुए ॥ ४२५ ॥

४२६ ॥ लिट् च । ३ । ४ । ११५ । लिडादेशस्तिङार्धधातुक संज्ञ स्यात् ।

लिट् लकार के स्थान में आदेश हुआ जो तिङ् ४ १ उसकी आर्धधातुक संज्ञा होवे ॥ २६ ॥

४२७॥ आर्धातुकस्येड् वलादे ७। २ । ३५। बभूविथ । बभूवथु बभूव । बभूव । बभूविव । बभूविम ॥

वल् प्रत्याहार है आदि में जिस के ऐसे आर्ध धातुक ४१ को इट् का आगम होवें । १ के अनुसार इट् का जो इ को आर्धधातुक प्रत्यय के आदि में धरा जावेगा। इस लिये बभूविथ-तू हुआ । बभूवथु तुम दो हुए । बभूव तुम हुए । बभूव मैं हुआ । बभूविव ४२० । हम दो हुए । बभूविम हम हुए ॥ ४२० ॥

४२८ ॥ अनद्यतने लुट् । ३ । ३ । १५ । भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट् ॥

अनद्यतन भविष्यत् १८८ काल में होने वाले कार्य के प्रकाश करने में धातु से परे लुट १८८ होवे ॥४२८॥

४२९ ॥ स्यतासी लृलुटो ३ । १ । ३३ । धातोरेतौ स्तो लृलुटौ परत । शबाद्यपवाद लृ इति लृङ्लृटोग्रहणम् ॥

लम् ल और लुट् परे रहे तो धातु को स्य और तास प्रत्यय क्रम से होवें । यह सूत्र शप् ४१७ और श्यन् आदि का अपवाद है यहां ल ऋ लड़ और लट दोनों लकारों का ग्रहण होता है ॥४२८॥

४३० ॥ आर्धधातुकं शेषः । ३ । ४ । ११४ । तिङ् शिभ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञ स्यात् ॥

तिङ् और शित् प्रत्यय ४१२ छोड़ कर शेष और प्रत्यय जो धातो ऐसा कह कर किये धातु से विहित होवे व आर्ध धातुक संज्ञा वाले होवें । यहां ४२० से इट का आगम होता है और ४२७ और ४२८ से मविता न होता है ॥ ४३ ॥

४३१ ॥ लुट प्रथमस्य डारौरसः २।४।८५। डित्व सामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोप.। भविता ॥

लुट् लकार के प्रथम पुरुष ४०७सञ्ज्ञक प्रत्यय के स्थानमें डा रौ और रस् आदेश क्रम से होवें। जब डित् (ड् है इत् जिसका) प्रत्यय परे रहताहै तब पूर्वले भ १७८ सञ्ज्ञक की टि २६२ का लोप होता है। परन्तु यहा भवितास्।की भ सञ्ज्ञा नहीं है इस लिये उस की टि का लोप ४९ भी न होवेगा, पर कोई वर्ण निरर्थक इत् नही होता तो यहा भी डकार की इत् सञ्ज्ञा निष्फल (निरर्थक) न हो जावे इस लिये भवितास् जिस की भ सञ्ज्ञा नही हुई उस की भी टि का लोप होगया। तब भवितास्=भवित्, और डा के आ में मिलाने से "भविता" सिद्ध भया। भविता वह होगा।। ४३१ ॥

४३२ ॥ तासस्त्योर्लोप ।७।४।५०। सादौ प्रत्यये ॥

तास् प्रत्यय और अस् धातु का लोप होवे सकारादि प्रत्यय परे रहते।

-यहा प्रकरण में इस सूत्र का कुछ फल नहीं है, विना अगले ४३३ सूत्र में अनुवृत्ति के इस लिये इस की अगले सूत्र ४३३ में अनुवृत्ति होती है ॥ ४३२ ॥

४३३ ॥ रिच।७।४।५१। रादौ प्रत्यये तथा। भवितारौ। भवितारः। भवितासि। भवितास्थ.। भवितास्थ। भवितास्मि। भवितास्व। भवितास्म ॥

तास् प्रत्यय और अस् धातु का लोप होवे जब उन से परे रादि (रेफ है आदि मे जिस के) प्रत्यय हो इस रीति से यह पद सिद्ध होते हैं ४३१ जैसे भवितारौ=वे दो होंगे भवितार.=वे होंगे। भवितासि=तू होगा। भवितास्थ.=तुम दो होगे। भवितास्थ तुम होगे, भवितास्मि। मै होऊंगा। भवितास्व।हम दो होगे। भवितास्म. हम होंगे॥४३३

४३४ ॥ लृट् शेषे च।३।३। १३। भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा। इट्। भविष्यति। भविष्यत। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथ। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः ॥

भविष्यत् अर्थ मे जो धातु लगाया जावे उस से परे लृट्३८५होय पर दूसरी क्रिया जो भविष्यत् कार्य के फल के लिये एक कार्य प्रकाश करती हो सो रहे वा न रहे ८८७

'वह पढने जाता है' इस उदाहरण में पढना जो क्रिया है, सो भविष्यत् काल की है, क्यों कि पढना अब तक हुआ नही है, किन्तु होने वाला है, इस कार्य से फल को

लिये जाना एक दूसरी क्रिया चाहे है इस दूसरी क्रिया को क्रियार्थी क्रिया कहते हैं ५८० संख्यक सूत्र से यह नियम किया है कि जब ऐसी क्रियार्थी क्रिया रहे तब भविष्यत् अर्थ में धातु से परे तुमुन् और ण्वुल् दो प्रत्यय स्थापन किये जावें परन्तु इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि ऐसी क्रिया रहे वा न रहे पर भविष्यत् अर्थ में धातु से परे लृट् होवे जब क्रियार्थी क्रिया रहेगी तब एक भविष्यत् क्रिया के दो रूप हो सकते हैं एक तो लृट् और दूसरा तुमुन् और ण्वुल् करके परन्तु लृट् कर्त्ता कर्म और भाव इन तीनों अर्थों में होता है और 'तुमुन्' और ण्वुल् प्रत्यय 'अव्यय कृतो भावे' और कर्तरि कृत् इन दोनों के अनुसार 'भाव और कर्त्ता' अर्थों में ही होते हैं लृट् लकार ४१८ और लृट् लकार ४१४ दोनों भविष्यत् अर्थ में (होते हैं) आते हैं इन में इतना ही केवल भेद है॥

अनद्यतन भविष्यत् में लुट लकार होता है और अनद्यतन भविष्यत् में लृट् होता है जैसे काशीं श्वः प्रयातासि कल्ह तू काशी जायगा और जब कुछ अवधि न रहे और केवल भविष्यत् काल प्रकाश करना हो तो लृट् लकार का प्रयोग होता है जैसे "रविस्तप्स्यति निदाघे" = सूर्य निदाघ में तपेगा + इस उदाहरण में कोई ऐसी अवधि नहीं है जैसे कि कल्ह की अवधि पूर्वोदाहरण में दी गई है॥

४२८ से स्य को और ४१० से इट् के होने से और १६१ से स् के स्थान में ष् आदेश के होने से ऐसे पद बन जाते हैं जैसे 'भविष्यति' = वह होगा भविष्यतः = वे दो होंगे भविष्यन्ति = वे होंगे भविष्यसि = तू होगा भविष्यथः = तुम दो होगे भविष्यथ = तुम होगे भविष्यामि = मैं हूंगा भविष्यावः = हम दो होंगे भविष्यामः = हम होंगे॥ ४३४॥

४३५॥ लोट् च। ३। ३। १६२। विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्॥

विधि आदि अर्थों में ४४३ धातु से परे लोट् ३८८ लकार होवे॥ ४३५॥

४३६॥ आशिषि लिङ्लोटौ। ३। ३। १७३।

आशीर्वाद अर्थ में धातु से परे लिङ् ४४१ और लोट् ४३१ लकार होवें॥ ४३६॥

४३७॥ एरुः। ३। ४। ८६। लोट इकारस्य उः। भवतु॥

लोट् ४३५ के स्थान में जो प्रत्यय आदेश हो उस के इकार के स्थान में उ होवे। यहां इतना जानना उचित है कि केवल तिप् और झि ४१ के इकार के स्थान में उकार होता है। तब भवति = ४३० से भवतु सिद्ध हुआ। भवतु वह होवे॥ ४३७॥

४३८॥ तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम्। ७। १। ३५।

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा। परत्वात्सर्वादेशः। भवतात्॥

आशिष् (आशीर्वाद) अर्थ में तु और हि को तातङ् आदेश विकल्प से होवे। तातङ् आदेश यद्यपि ङित् है "५६ से अन्त्यवर्ण को होना चाहिये तो भी सकल तु और

हि के स्थान मे होता है क्योंकि "अनेकाल् शित् सर्वस्य" यह सूत्र पर है "ङिच्च इस सूत्र से तो इस हेतु से (विप्रति०१२८) यह नियम लगकर, सम्पूर्ण आदेश को करता है, "भवतात्" ईश्वर करे वह होय॥ ४३८॥

४३९॥ लोटो लङ्वत्। ३।४।८५। लोटस्तामादयः सलोपः।

लङ् के सदृश लोट् को भी तामादि (ताम् आदि है जिन के) ४४० आदेश होवें और उस के स् का लोप भी होवे॥ ३३९॥

४४०॥ तस्थस्थमिपांतान्तन्तामः। ३। ४। १०१। ङितश्चतुर्णां तामादयः। भवताम्। भवन्तु॥

ङित् लकार अर्थात् लङ्, लिङ्, लुङ् और लृङ् के आदेश जो तस्, थस्, थ और मिप् हैं उन के स्थान में क्रम से ताम्,तम्, त और अम् होवें। तब इस रीति से भवतस् = भवताम् = वे दो होंय। भवन्तु = वे होंय॥ ४४०॥

४४१॥ सेर्ह्यपिच्च। ३। ४। ८७। लोटः सेर्हि सोऽपिच्च॥

लोट् के स्थान में जो सि उस को हि होवे सो पित् न होय॥ ४४१॥

४४२॥ अतो हेः। ६। ४। १०५। लुक्। भव। भवतात्। भवतम्। भवत॥

ह्रस्व अकार से परे जो हि ४४१ उसका लुक् '२०३' होवे, तब भव+हि = ४४२ से भव अथवा ४३८ से भवतात् = तू हो वा होवे, भवतम् = तुम दो होवो, भवत = तुम होवो॥ ४४२॥

४४३॥ मेर्निः। ३। ४। ८९। लोटः॥

लोट् लकार के स्थान में जो मि आदेश है, उसके स्थान में नि होवे॥ ४४३॥

४४४॥ आडुत्तमस्य पिच्च। ३। ४। ९२। लोडुत्तमस्याट् पिच्च। हिन्योरुत्वं न इकारोच्चारणसामर्थ्यात्। भवानि॥

लोट् के स्थान मे जो उत्तमपुरुष सञ्ज्ञक प्रत्यय आदेश होवें उनको आट् का आगम होवे, और वह आट् पित् मानना चाहीये, हि ४४१ और नि '४४३' के इकार के स्थान में ४३७ से उ नहीं होता, क्योंकि यदि उकार करना हो तो उन दोनों में इकार का उच्चारण व्यर्थ हो जावेगा, तब भव+मि = ४४३ से भव+नि = "४४४" से = भवानि, 'मैं होयु'॥ ४४४॥

४४५॥ ते प्राग्धातोः। १। ४। ८०। ते गत्युपसर्गसञ्ज्ञका धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः॥

जिन की *गति और †उपसर्ग संज्ञा है वे धातु से पूर्व ही लगाए जावें ॥ ४४५ ॥

४४६ ॥ आनि लोट् । ८ । ४ । १६ । उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य ण स्यात् । प्रभवाणि ॥

उपसर्गस्थ र् या ष् से परे जो लोट् का आनि ४४० " ४४४ उस के नकार को णकार होवे तब प्रभवाणि = प्रभवाणि = मैं समर्थ होऊं ॥ ४४६ ॥

४४७ ॥ दुर स्सत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधोवक्तव्य । दु स्थिति । दुर्भवानि ॥

जब स् को ष् और न् को ण् करने हों तो दुर शब्द को ४४ उपसर्ग संज्ञा का प्रतिषेध (निषेध) करना चाहिये इस वार्त्तिक के बल से यहां उपसर्ग संज्ञा के अभाव से दु:स्थिति = दुरवस्था यहां षत्व नहीं भया और दुर्भवानि से ण नहीं भया मैं दु:खी होऊं ॥ ४४७ ॥

४४८ ॥ अन्त शब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम् । अन्तर्भवाणि ॥

अन्तर् शब्द की उपसर्ग संज्ञा करनी चाहिये परन्तु यदि अङ और कि प्रत्यय का विधान और न् को ण् करना हो तो इस से अन्तर्भवाणि में णत्व हुआ । अन्तर्भवाणि मैं भीतर होऊं ॥ ४४८ ॥

४४९ ॥ नित्यं ङित । ३ । ४ । ९९ । सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्य लोप । अलोऽन्त्यस्येति सलोपः । अभवाव । अभवाम ॥

ङित् लकार में जो सकारान्त उत्तम पुरुष आदेश तिसका नित्य ही लोप होवे २४ से अन्त्य (अन्त में होने वाला) जो स् उस का लोप होता है । (छोटी बड़वत्) इस के बल से यह ४४८ लोट् में भी लगता है इस लिये भव + वस् = ४१८ से और ४४८ से भवाव इस दो जावें । ऐसी ही पूर्ववत् प्रक्रिया से ही भवाम-हम होवें ॥ ४४८ ॥

४५ ॥ अनद्यतने लङ् । ३ । २ । १११ । अनद्यतनभूतार्थवृत्ते धातोर्लङ् ॥

अनद्यतन भूत (अतीत) अर्थ में जो धातु तिस से लङ् लकार होवे ॥ ४५ ॥

४५१ ॥ लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्त । ६ । ४ । ७१ । एष्वङ्गस्याट् ।

* । २१६ । † । ४४ ।

लुङ् लकार ४६२ लङ् ४५० और लृङ् ४७७ लकार परे रहते अङ्ग को अट् का आगम होवे (और) उस अट् को उदात्त जानना ॥ ४५१ ॥

४५२ ॥ इतश्च । ३ । ४ । १०० । ङितोलस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तस्य लोपः । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम ॥

ङित् लकार के स्थान में जो इकारान्त परस्मैपद ४०२ आदेश हैं। अर्थात् ति, झि (अन्ति) मि तिन का लोप होवे इस से यहा "२४" अन्त्यवर्ण "इ" का लोप भया तब ये पद सिद्ध होते हैं, जैसे अभवत्, वह हुआ। अभवताम् ४४० वे दो हुए। अभवन् २३ वे हुए। अभवः १२० और १०८ तू हुआ। अभवतम् ४४० तुम दोनों हुए। अभवत, तुम हुए। अभवम् ४४० मैं हुआ। अभवाव, हम दोनों हुए। अभवाम हम हुए ॥ ४५२ ॥

४५३ ॥ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् । ३ । ३ । १६१ । एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् ॥

विधि अर्थात् प्रेरणा वा आज्ञा। "निमन्त्रण" भोजन आदिक कराने के लिये दौहित्र आदि का प्रवर्त्तन (निदेश) "आमन्त्रण" किसी को उस की इच्छानुकूल सम्मति देनी। "अधीष्ट" सत्कार पूर्वक 'व्यापार' (प्रेरणा) "सम्प्रश्न" पूछना। प्रार्थना मागना। इन अर्थों में धातु से परे लिङ् लकार होवे ॥ ४५३ ॥

४५४ ॥ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च । ३ । ४ । १०३ । लिङः परस्मैपदानांयासुडागमो ङिच्च ॥

लिङ् के स्थान में जो परस्मैपद सञ्ज्ञावाले आदेश तिन को यासुट् का आगम होवे सो यासुट् उदात्त और ङित् होवे ॥ ४५४ ॥

४५५ ॥ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य । ७ । २ । ७९ । सार्वधातुक-लिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः । इति प्राप्ते ॥

लिङ् के स्थान में जो सार्वधातुक आदेश ४१२ तिन के अवयव अनन्त्य (अन्त्य से न होने वाले) स् का लोप होवे। यह प्राप्त हुआ तब ॥ ४५५ ॥

४५६ ॥ अतो येयः । ७ । २ । ८० । अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय् । गुण ॥

ह्रस्व अवर्ण से परे जो सार्वधातुक का अवयव यास् ४५४ उस को इय् होवे। इस

से (भव+यास्+त्) के स्थान में (भव+इय्+त्) हुआ तदगुण किया तो भवेय्+त् ऐसा हुआ। तब ॥ ४४६ ॥

४५७ ॥ लोपो व्योर्वलि । ६ । १ । ६६ ॥ भवेत । भवेताम् ।

वल् प्रत्याहार (१) परे रहते व् और य् का लोप होवे "इस रीति से ये दो पद सिद्ध भए" जैसे भवेत् यह होवे। भवेताम् ये दोनों होवे ॥ ४४० ॥

४५८ ॥ झेर्जुस । ३ । ४ । १०८ । लिङ । भवेयु । भवे । भवेतम् । भवेत् । भवेयम् । भवेव । भवेम ॥

लिङ लकार की स्थान में जो झि तिस को जुस् होवे ॥ ४४८ ॥

तब भवेय्+जुस् हुआ १८२ । १२ । और १ ८ से भवेयु ये होवे। भवे नू होवे भवेयम में होवु। भवेव ४४८ इस दोनों होवें। भवेम ४४८ इस होवें ॥

४५९ ॥ लिङाशिषि । ३ । ४ । ११६ । आशिषि लिङस्तिङा र्धधातुकसंज्ञ स्यात् ॥

आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ् लकार, उस के स्थान में जोतथ तिबादिक प्रत्यय (तिङ) आदेश हैं उन की आर्धधातुक संज्ञा होवे ॥ ४४९ ॥

४६ ॥ किदाशिषि । ३ । ४ । १ ४ । आशिषि लिङो यासुट् कित् स्यात् । स्कोः संयोगाद्योरिति सलोप ।

आशीर्वाद अर्थ में हुआ जो लिङ् लकार उसको जो यासुट् आगम ४१ होय वह कित् होवे स्कोःसंयोगाद्योरन्तेच। इस सूत्र से यासुट के यास् में जो स् उसका लोप होता है ॥ ४६ ॥

४६१ ॥ क्ङिति च । १ । १ । ५ । गित्किन्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्त । भूयात् । भूयास्ताम् । भूयासु । भूया । भूयास्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म ॥

जिस निमित्त को मानकर इग्लक्षण गुण वा वृद्धि की प्राप्ति होय सो निमित्त यदि गित् (ग् जिसका इत् गया है) कित् (क् जिसका इत् है) अथवा ङित् (ङ जिसका इत् गया है) हो तो गुण अथवा वृद्धि न होवे इग् लक्षण का अभिप्राय यह है कि जिस सूत्र में गुण वा वृद्धि का विधान हो उस में इग् पद की "इकोगुणवृद्धी इस से उपस्थिति होती हो जैसे भू का ऊ जो इक् १ प्रत्याहार में है उसके स्थान में गुण ४३१ से पाया क्योंकि यासत् आर्धधातुक ४४९ प्रत्यय परे है परन्तु यासुट् ४६ से कित् माना गया है

इसी हेतु से गुण नहीं होता, तब भूयात् यह पद सिद्ध हुआ भूयात् = ईश्वर करे कि वह होवे, भूयास्ताम् = वे दो होवें, भूयासुः ४५८ १२० १०८ = वे होवें, भूयाः तू होवे, भूयास्तम् = तुम दो होवो, भूयास्त = तुम होवो, भूयासम् = मैं होवु, भूयास्व = हम दो होवें, भूयास्म = हम होवें ॥ ४६१ ॥

४६२ ॥ लुङ् ३ । २ । ११० । भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात् ॥

सामान्य अद्यतन भूतकाल के प्रकाश करने अर्थ में धातु से परे लुङ् लकार २९८, होवे, यहां इतना विचार है, कि अद्यतन भूत अर्थ में लुङ् ही होता है, और जब परोक्ष, अपरोक्ष, अद्यतन, वा अनद्यतन का विचार नहीं रहता किन्तु केवल भूतकाल का प्रकाश करना हो तो भी लुङ् लकार होता है, नहीं तो परोक्ष अनद्यतन भूत में लिट् और अपरोक्ष अनद्यतन भूत में लङ् ये दोनों क्रम से बाध लेते हैं ॥ ४६२ ॥

४६३ ॥ माङि लुङ् । ३ । ३ । १७५ । सर्वलकारापवादः ॥

माङ् उपपद रहते लुङ् लकार होवे । यह लुङ् सब (व) लकारों का अपवाद है। ऐसी अवस्था में वर्त्तमान आदि काल का निश्चय प्रसंग से होता है ॥ ४६३ ॥

४६४ ॥ स्मोत्तरे लङ् च । ३ । ३ । १७६ । स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ् ॥

जब माङ् से उत्तर (परे) स्म होय तब (स्म है परे जिसके ऐसे माङ् के उपपद रहते) लङ् लकार होवे चकारसे लुङ् लकार भी होवे, इन लङ् और लुङ् में से जिसका प्रयोग इष्ट हो उसीका प्रयोग करना चाहिये यह उदाहरण में ४६९ देख लेना ॥ ४६४ ॥

४६५ ॥ च्लि लुङि । ३ । १ । ४३ । शबाद्यपवादः ॥

लुङ् लकार परे रहते धातु से च्लि प्रत्यय होय । यह च्लि शप् ४१२ आदिका अपवाद है ॥ ४६५ ॥

४६६ ॥ च्लेः सिच् । ३ । १ । ४४ । इचावितौ ॥

च्लि. ४६५ के स्थान में जो सिच् हो * उस सिच् के इ की ३२ इस से और च् की (३) से इत् संज्ञा होती है ॥ ४६६ ॥

---

* कोई कहे कि यदि च्लि को सिच् करना था तो पहिले ही एक सूत्र पढ़कर सिच् करलेते च्लि का क्या फल हुआ, तो इस का यह समाधान है कि च्लि को सिच् से विना "अयादि" आदि में चिण् आदि आदेश भी होते हैं तो इस लिये च्लि का पृथक् करण किया है।

४६७ ॥ गातिस्थाघुपाभूभ्य सिच परस्मैपदेषु । २ । ४ । ७७ । लुक् । गापाविहैयादेशयिषती गृह्येते ॥

गाति (गा) स्था (ष्ठा) घु संज्ञक (दाधाघ्वदाप्) इस से निर्दिष्ट और पा और भू इन धातुओं से परे परस्मैपद में सिच् ४६६ का लुक् होय यहां गमन अर्थ में जो इन् धातु उस को जो गा आदेश होता है और पीने अर्थ में जो पा धातु जिस को पिब आदेश होता है उस का ग्रहण होता है ॥ ४६७ ।

४६८ ॥ भूसुवोस्तिङि । ७ । ३ । ८८ । भूसू एतयो सार्वधातुके तिङि गुणो न । अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभू । अभूतम् । अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम ॥

भू और सू इन दो धातुओं को गुण ४१४ न होय यदि सार्वधातुक तिङ् प्रत्यय परे रहे तो । तब भू+लुङ् ४६२ । ४ १ । ४६२ से अभूत् यह हुआ । अभूताम् ये दो हुए । ४४ अभूवन् ४१८ से हुए । अभू तू हुआ । अभूतम् तुम दो हुए । अभूत तुम हुए । अभूवम मैं हुआ । अभूव हम दो हुए । अभूम हम हुए ॥ ४६८ ॥

४६९ ॥ न माङ्योगे । ६ । ४ । ७४ । अडाटौ न स्त । मा भवान् भूत् । मास्म भवत् । मास्म भूत् ॥

तब धातु के पूर्व ४११ अट् और आट् ४०२ न होवें जब धातु का माङ् के साथ योग हो अर्थात् धातु माङ् के साथ रहे । मा भवान् भूत् तू न होवे (आप न होव) मास्मभवत् ४६२ और मास्म भूत्) यह न हो ॥४६९॥

४७ ॥ लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ । ३ । ३ । १३९ । हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्य । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव । अभविष्याम ॥ सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् ॥ भूत्यादि ध्येयम् ॥ अत सातत्यगमने २ अतति ॥

यहां लिङ् प्रकार के निमित्त (कार्यकारणभाव-विधि निमन्त्रणामन्त्रण ४१६

आदि) में से कोई हो तहां * भविष्यत् अर्थ में लृङ् लकार "३८२" स्थापन करो परन्तु जब क्रिया की असिद्धि समझी जाय ॥

तब भू धातु से परे इस लकार के होने पर यथा क्रम इसप्रकार के रूप होते हैं जैसे भू+लृङ्=भू+ल् होने से ४०१ । ४५२ । ४१४ । ४२८ । ४२७ । १६३, ४५१ । इन से अभविष्यत्, जो वह होय । अभविष्यताम् ४४० जो वे दो हों अविष्यन् ४५१ । ४५२ और और २३ जो वे हों । अभविष्यः, जो तू हो । अभविष्यतम्, जो तुम दो होवो । अभविष्यत् जो तुम हो । अभविष्यम्, जो मैं होवु । अभविष्याव,जो हम दोहों । अभविष्याम, जो हम हों ।

अब दूसरा अत धातु जिस का निरन्तर गमन अर्थ है उस का वर्णन (लकारों में साधन प्रक्रिया) लिखते हैं धातु पाठ में अत् का रूप अत है अन्तिम "अ" अनुबन्ध कहलाता है। अत् ३९८। ४०० । ४०१ । ४१३ । से अतति वह निरन्तर जाता है ॥ ४७० ॥

४७१ ॥ अत आदेः । ७ । ४ । ७० । अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः स्यात् । आत । आततु । आतुः । आतिथ । आतथु. । आत । आत । आतिव । आतिम । अतिता । अतिष्यति । अततु । अततात् ॥

अभ्यास के ४२१ आदि ह्रस्व अकार को दीर्घ होय । इस से लिट् में आत ४१८ वह गया । आततुः वे दो गए । आतिथ ४२७ तू गया । आतथुः, तुम दो गये । आत, तुम गये । आत, मैं गया । आतिव, हम दो गए । आतिम, हम गये ।

लुट् लकार में अतिता ४२८ । ४२८ और ४२१ । ४२७ से सिद्ध भया अतिता वह जायगा । इत्यादि जानने । और लृट् लकार में अतिष्यति ४३४ वह जायगा । और लोट् लकार में अततु । ४३७ वह जावे ॥ ४७१ ॥

४७२ ॥ आडजादीनाम् । ६ । ४ । ७२ । अजादेरङ्गस्याट् लुङ् लङ्लृङ्क्षु । आतत् । अतेत् । अत्यात् । अत्यास्ताम् । लुङि सिचि इडागमे कृते ॥

---

* यह लृङ् लकार भूत अर्थ में भी दीख पड़ता है, जैसे "अच्छी बारस हो तो बहुत धान भी हो" अथवा "जो अच्छी वृष्टि होती तो बहुत धान भी होता" इन उदाहरणों में कार्य की असिद्धि प्रकाश की गई है, और पहिले वाक्य में वृष्टि होने का लक्षण नहीं दीख पड़ता इस लिये बहुत धान का होना असम्भव है, दूसरे का "वृष्टि अच्छी नहीं हुई, इस लिये बहुत धान भी नहीं हुआ" यह आशय है, इस लिये वृत्ति में जो भविष्यत् काल में कहा है, वह अनित्य है ॥

अजादि अङ्ग को आट् का आगम होय जब लुङ् लङ् लृङ् इन में से कोई एक परे होय इस लिये लङ् में आतत् बनगया । लिङ् में अतेत् ४५० बन जावे । आशीर्वाद अर्थ के प्रकाश करने में अत्यात् ४५८ इत्यादि बने जो बन जावे। जब लुङ् ४६२ आवे तब सिच् ४६६ परे हो और इट् का आगम ४२० भी हो चुका हो तब ॥ ४०२ ॥

४०३ ॥ अस्तिसिचोऽपृक्ते । ७ । ३ । ९६ । विद्यमानात्सिचो ऽस्तेश्च परस्याऽपृक्तस्य हल ईडागमः ॥

विद्यमान सिच् अथवा विद्यमान अस् धातु से जो अपृक्त १८२ हल् (१) उस को ईट् का आगम होवे ॥ ४०३ ॥

४०४॥ इट ईटि । ८ । २ । २८ । इट परस्य सस्य लोपः स्यादीटि। सिज्लोपः एकादेशे सिद्धो वाच्यः । आतीत् । आतिष्टाम् ॥

इट् ४२० से परे जो स् उसका लोप होय परन्तु जब ईट् परे रहे तो यह सिच् लोप् (सिच् के स् का ४०४ से लोप) एकादेश के करने में सिद्ध समझना चाहिये। इस का यह फल हुआ कि "आतिस्+ईत्" यहां सिच् के स् का लोप करने के अनन्तर आति+ईत् में यदि कोई ३६ से त्रिपादी के स् लोप को ५२ दीर्घ एकादेश विधायक सूत्र की दृष्टि में असिद्ध होने पर सन्धि का निषेध करे तो उस को यह समाधान देना कि "एकादेश के करने पर सिच् का लोप सिद्ध समझना" तब इस से स का लोप सिद्ध मान ५२ से दीर्घ होने पर "आतीत्" सिद्ध भया। आतीत् बन गया। आतिष्टाम्—४४ । २६१ । ७८ से होगये ॥ ४०४ ॥

४०५ ॥ सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च । ३ । ४ । १०९ । सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङित्सम्बन्धिनो झेर्जुस् । आतिषुः । आतीः । आतिष्टम् । आतिष्ट । आतिषम् । आतिष्व । आतिष्म । आतिष्यत । षिध गत्याम् । ४ ॥

सिच् ४६६ अथवा अभ्यस्त संज्ञक धातु अथवा विद् धातु इन से परे ङित् लकार के स्थान में जो आदेश झि उस को जुस् होवे। तब आतिषुः बन गये। आतीः ४०३ ४०४ से बना। आतिष्टम् तुस् को तम् हो गये। आतिष्ट तुस् को त हो गये। आतिषम् मि को अम् बना। आतिष्व वस् को व हो गये। आतिष्म मस् को म बन गये। लृङ् लकार में आतिष्यत् ४० की तरह बन जाय। इत्यादि आगेभी जानो। अब गमन (चलना) अर्थवाले षिध् के रूप बनाने की प्रक्रिया लिखते हैं ॥ ४०५ ॥

४७६ ॥ ह्रस्वं लघु । १ । ४ । १० ।

ह्रस्व अच् की लघु सञ्ज्ञा होवे ॥ ४७६ ॥

४७७ ॥ संयोगे गुरु । १ । ४ । ११ ॥

संयोग १६ परे रहते ह्रस्व स्वर (अच्) की गुरु सञ्ज्ञा होवे ॥ ४७७ ॥

४७८ ॥ दीर्घं च । १ । ४ । १२ ॥

दीर्घ अच् की भी गुरु सञ्ज्ञा होवे ॥ ४७८ ॥

४७९ ॥ पुगन्तलघूपधस्य च । ७ । ३ । ८६ । पुगन्तस्य लघूपधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः । धात्वादेरिति सः । सेधति । षत्वम् । सिषेध ॥

जो अङ्ग पुगन्त अर्थात् जिस के अन्त में पुक् ७४२ से भया हो अथवा लघूपध (जिस की उपधा में १९० लघु ४७६ हो) उस के इक् को गुण ३० होवे परन्तु उस के परे सार्वधातुक वा आर्धधातुक प्रत्यय रहे तो इस में गुण किया तब २७५ से षिध धातु का प्रथम अक्षर जो ष् है उस को स् हुआ। सेधति, वह जाता है । आदेश रूप स् को १६३ से ष् हुआ इस लिये लिट् लकार में सिषेध = वह गया ४१८ ॥ ४७९ ॥

४८० ॥ असंयोगाल्लिट् कित् । १ । २ । ५ । असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् स्यात् । सिषिधतुः । सिषिधुः । सिषेधिथ । सिषिधथुः । सिषिध । सिषेध । सिषिधिव । सिषिधिम । सेधिता । सेधिष्यति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् । एवं चिती सञ्ज्ञाने । ४ । शुच शोके । ५ । गद व्यक्तायां वाचि । ६ । गदति ॥

लिट् ४१७ के स्थान में वह आदेश जो संयोग से परे नहो और पित् भी न हो सो कित् होवे (माना जाय) इस लिये ४६१ से सिषिधतु यहां गुण न भया । सिषिधतुः, वे दो गये । सिषिधु, तुम गये । सिषेध, मैं गया । सिषिधिव, हम दो गये । सिषिम, हमगये। और लकारो में ।

लकार	लुट्	लृट्	लोट्	लङ्	लिङ् वि० ।
रूप०	सेधिता,	सेधिष्यति,	सेधतु,	असेधत्,	सेधेत्,
अर्थ०	वह जायगा ।	वह जावेगा ।	वह जावे ।	वह गया ।	वहजावे ।
लकार—आशिषि लिङ् ।			लुङ् ।	लृङ् ।	
रूप०— सिध्यात्,			असेधीत्,	असेधिष्यत्,	
अर्थ—ईश्वरकरे कि वह जावे ।			वह गया ।	जो वह जावे ।	

चित् (चिती) चेतकरना। और शुष् (शुष्) शोष वा खेद करना। ये दोनों धातु भी पिच की तरह जानने।

गद (गद) धातु स्पष्टबोलने अर्थ में है उस के लट् में "गदति" १८८।४ । ४ १। ११ यह स्पष्ट बोलता है ॥ ४८ ॥

४८१ ॥ नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सा तिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च । ८ । ४ । १७ । उपसर्गस्था न्निमित्तात्परस्य नेर्णो गदादिषु परेषु । प्रणिगदति ॥

उपसर्ग में स्थित जो निमित्त (न को ण् करने के र् वा ष् रूप कारण) तिस से परे जो नि का न् तिस के स्थान में ण् होवे परन्तु जब गद आदि धातु परे रहें तब। गद आदि धातु ये हैं गद का अर्थ आचुका है। नद का अर्थ (नाद करना) (अव्यक्त शब्दे) वा पत गिरना। पद गमन (जाना) घुसंज्ञावाले ६६६ में कहे धातु। मा मापना। षो नष्ट होना। हन् मारना वा गति। या जाना। वा बहना जैसे वायु का। द्रा जाना भागना प्सा खाना। वप् बोना। वह लेजाना। शम् शान्त होना। चि चुनना। दिह उपचय (वृद्धि)। तब इस सूत्र से "प्रणिगदति" में ण् भया वह प्रकर्ष से स्पष्ट बोलता है ॥४८१॥

४८२ ॥ कुहोश्चुः । ७ । ४ । ६२ । अभ्यासकवर्गहकारयोश्च वर्गादेशः ॥

अभ्यास ४२१ के कवर्ग (क ख् ग् घ् ङ्) अथवा हकार (ह को) (चवर्ग) (च् छ् ज् झ् ञ्) आदेश होय ॥ ४८२ ॥

४८३ ॥ अत उपधायाः । ७ । २ । ११६ । वृद्धिः स्यात् ञिति णिति च प्रत्यये । जगाद । जगदतुः । जगदुः । जगदिथ । जगदथुः । जगद ॥

धातु की उपधा यदि अकार हो तो उस को वृद्धि होय जब ञित् वा णित् प्रत्यय परे रहे तब। गद गद्+णल् ४४२ से गगद्+अ। ४८२ स और ४८३ स जगाद सिद्ध हुआ वह स्पष्ट बोला। जगदतुः वे दो स्पष्ट बोले। जगदुः, व स्पष्ट बोले। जगदिथ ४२० तू स्पष्ट बोला। जगदथुः तुम दो स्पष्ट बोले। जगद तुम स्पष्ट बोले ॥ ४८३ ॥

४८४ ॥ णलुत्तमो वा । ७ । १ । ९१ । णित् स्यात । जगाद । जगद । जगदिव । जगदिम । गदिता । गदिष्यति । गदतुः । अगदत् । गदेत् । गद्यात् ॥

उत्तम पुरुष का णल् ४१० का णल् ४१८ विकल्प से णित् माना जाय। अर्थात् वहां वृद्धि आदि कार्य्य विकल्प सें होवें। इस से जगाद वा जगद, मैं स्पष्ट बोला। जगदिव, हम दो स्पष्ट बोले। जगदिम, हम स्पष्ट बोले।

लुट् लकार में गदिता ४२७। ४३१। वह स्पष्ट बोलेगा। लृट् में गदिष्यति, वह स्पष्ट बोलेगा। लोट् में गदतु ४४५। ४३७ वह स्पष्ट बोले। लङ् में अगदत्, वह स्पष्ट बोला। लिङ् मे गदेत्, वह स्पष्ट बोले। आशीर्लिङ् में गद्यात् ४६० ईश्वर करे कि वह स्पष्ट् बोले ॥ ४८४ ॥

४८५ ॥ अतो हलादेर्लघोः। ७। २। ७। हलादेर्लघोरत इड्वा इडादौ परस्मैपदे सिचि। अगादीत्। अगदीत्। अगदिष्यत्। णद अव्यक्ते शब्दे ॥ ७ ॥

हलादि (जिस के आदि में हल् हो) ऐसे धातु के लघु ४७६ संज्ञक अकार को विकल्प करके वृद्धि होय परन्तु जब इडादि इट् ४२० है आदि में जिस के ऐसा सिच् और परस्मै पद संज्ञा वाले प्रत्यय परे रहें तब लुङ् लकार मे अगादीत् वा अगदीत् ४७४ वह स्पष्ट बोला। लृङ् लकार में अगदिष्यत् ४७० जो वह स्पष्ट बोले। अब णद, (णद) धातु जिस का अस्पष्ट बोलना अर्थ है, उस के रूपों के साधन का प्रकार लिखते हैं ॥ ४८५ ॥

४८६ ॥ णो नः। ६। १। ६५। धात्वादेर्णस्य नः। णोपदेशास्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध्नन्दनक्कनॄनृत ॥

धातु के आदि मण् को न् होवे। नर्द,शब्द करना। नाटि, दीर्घ के योग्य चौरादिक नाचने अर्थ में नट् धातु नाथ् मागना। नाध्, मागना। नन्द, समृद्ध होना। नक्क, नाश होना। नॄ, लेजाना। नृत्, (नृती) नाचना इन आठ धातुओं को छोड कर और जितने धातु नकारादि (न् है आदि में जिन के) है उन सब को णोपदेश कहना। णोपदेशा. (उपदेश में णकार वाले) जानों ॥ ४८६ ॥

४८७ ॥ उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य। ८। ४। १४। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः। प्रणदति। प्रणिनदति। नदति। ननाद ॥

समास ६५५ न हो तौ भी उपसर्गस्थित निमित्त (र् वा ष्) से परे णोपदेश-धातु ४८६ के न् को ण् ४४६ होवे। प्रणदति, वह अच्छी रीति से शब्द करता है। प्रणिनदति

वह बहुत अच्छी भांति से शब्द करता है। उपसर्ग रहित केवल धातु के रूप ऐसे होते हैं जैसे "नदति वह अव्यक्त शब्द करता है। ननाद उसने शब्द किया ॥ ४८७ ॥

४८८ ॥ अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि । ६ । ४ । १२० ।
लिटिमनिमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गं तदवयवस्याऽसंयुक्तहल्मध्यस्थस्यात एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि ॥

कित् ४८ संज्ञक लिट् परे रहते लिट् निमित्तमानकर जिस अङ्ग के अभ्यास के आदि अक्षर के स्थान में आदेश ४८२ न हुए हों उस के अवयव असंयुक्त हलों के बीच में वर्त्तमान जो अकार उस को ए होय और अभ्यास का लोप होय ॥ ४८८ ॥

४८९ ॥ थलि च सेटि । ६ । ४ । १२१ । प्रागुक्तं स्यात् । नेदिथ । नेदथुः । नेद । ननाद । ननद । नेदिव । नेदिम । नदिता । नदिष्यति । नदतु । अनदत् । नदेत् । नद्यात् । अनादीत । अनदीत् । अनदिष्यत् । टुनदि । समृद्धौ ॥ ८ ॥

और जब सेट् (* इट् सहित) † थल प्रत्यय परे हो तो भी पूर्वोक्त कार्य (एत्वाभ्यासलोप) ४८८ होवें। तब नेदिथ तू ने शब्द किया। नेदथुः तुम दोनों ने शब्द किया। नेद तुम बोले। ४८८ से ननाद वा ननद मैंने शब्द किया। नेदिव ४८८ हम दोनों ने शब्द किया। नेदिम—हमने शब्द किया।

आगे लकारों के रूप इस क्रम से देखो—

लकार	लुट्	लृट्	लोट्	लङ्	वि लिङ्	आशीर्लिङ्
रूप	नदिता	नदिष्यति	नदतु	अनदत्	नदेत्	नद्यात्
अर्थ	वह शब्द करेगा।	वह शब्द करेगा।	वह शब्द करे।	उसने शब्द किया।	वह शब्दकरे।	ईश्वर करे वह शब्दकरे।

लकार	लुङ्	लृङ् ।
रूप	अनादीत् १८१,	अनदिष्यत् ।
अर्थ	उसने शब्द किया।	जो वह शब्द करे।

अब नन्द धातु जिस का अर्थ समृद्धि अर्थ है उस के रूपों का साधन लिखते हैं—
आदि ‡ उच्चारण में इस धातु का रूप टुनदि है।

४९ ॥ आदिर्ञिटुडवः । १ । ३ । ५ । उपदेशे धातोराद्या एते इतः स्युः ॥

* ४२० । † ४१८ । ‡ धातु पाठ में ।

उपदेश (आदिम उच्चारण) में धातु के आदि में जो ञि, टु, और डु, सो इत् होये॥ ४८०॥

४८१॥ इदितो नुम् धातोः। ७। १। ५८। नन्दति। ननन्द। नन्दिता। नन्दिष्यति। नन्दतु। अनन्दत्। नन्देत्। नन्द्यात्। अनन्दीत्। अनन्दिष्यत्। अर्च पूजायाम्॥ ६॥ अर्चति॥

इदित् धातु (जिस धातु का इकार इत् सञ्ज्ञक हो) उस को नुम् का आगम होय नन्दति २६० वह समृद्ध होता है। और लकारों के रूप नीचे देखो.—

लकार	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्	लङ्
रूप	ननन्द	नन्दिता	नन्दिष्यति	नन्दतु	अनन्दत्
अर्थ	वह समृद्ध-हुआ।	वह समृद्ध-होगा।	वह समृद्ध-होगा।	वह समृद्ध-होवे।	वह समृद्ध-हुआ।

लकार	वि॰ लिङ्	आशिर्लिङ्	लुङ्	लृङ्
रूप	नन्देत्	नन्द्यात्	अनन्दीत्	अनन्दिष्यत्
अर्थ	वह समृद्ध होवे।	ईश्वर करे कि वह समृद्ध होवे।	वह समृद्ध हुआ।	जो वह समृद्ध हो।

६म, अर्च धातु पूजा करने अर्थ मे है। अर्चति, वह पूजा करता है।

४९२॥ तस्मान्नुड्द्विहल॰। ७। ४। ७१। द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतात् परस्य नुट् स्यात्। आनर्च। आनर्चतु। अर्चिता। अर्चिष्यति। अर्चतु। आर्चत्। अर्चेत्। अर्च्यात्। आर्चीत्। आर्चिष्यत्। व्रज गतौ। १०। व्रजति। वव्राज। व्रजिता व्रजिष्यति। व्रजतु। अव्रजत्। व्रजेत्। व्रज्यात्॥

जिस धातु में दोर हल् हों उस के अभ्यास के ४७१ दीर्घ किये गये अच् से परे जो अच्चर हो उस को नुट् का आगम होवे। आनर्च १००। ४७१ और ४९२ वह पूजा करता हुआ। आनर्चतु वे दो पूजा करते हुए। "और लकारों मे रूप नीचे देखो":—

लकार	लुट्	लृट्	लोट्	लङ्
रूप	अर्चिता	अर्चिष्यति	अर्चतु	आर्चत् (४७२)
अर्थ	वह पूजा करेगा	वह पूजा करेगा	वह पूजा करे	उसने पूजा की

लकार	वि॰ लिङ्	आशिर्लिं॰	लुङ्	लृङ्
रूप	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्
अर्थ	वह पूजा करे	ईश्वर करे कि वह पूजा करे।	वह पूजा करता हुआ।	जो वह पूजा करे।

व्रज (व्रज्) धातु गति (चलने) अर्थ में है। उसके रूप नीचे लिखे जाते हैं-

लकार	लट्	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्
रूप	व्रजति	वव्राज	व्रजिता	व्रजिष्यति	व्रजतु
अर्थ	वह जाता है।	वह गया (४२२)।	वह जावेगा।	वह जावेगा।	वह जावे।

लङ् में अव्रजत् वह गया। विधिलिङ् में व्रजेत्। वह जावे। आशीर्लिङ् प्रकार में व्रज्यात् ईश्वर करे कि वह जावे॥

४८३ ॥ वदव्रजहलन्तस्याचः । ७।२।३ एषामचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु। अव्राजीत्। अव्रजिष्यत्। कटे वर्षावरणयोः ॥ ११ ॥ कटति। चकाट। कटिता। कटिष्यति। कटतु। अकटत्। कटेत्। कट्यात्।

वद स्पष्ट बोलना। व्रज, जाना। और हलन्त धातु इन की अच् (स्वर) को नित्य वृद्धि ४८२ आदेश होय परन्तु परस्मैपद प्रत्यय हैं परे जिस के ऐसा * सिच् परे रहे तो। अव्राजीत् वह गया। अव्रजिष्यत् जो वह जावे।

कटे (कट्) यह धातु वर्षा (बरसने) और आ वरण (घेरने) अर्थ में है। कटति = वह घेरता है या मेघ बरसता है। चकाट = ४८१ मेघ बरसा। कटिता ४२० मेघ कल बरसेगा। कटिष्यति = मेघ बरसेगा। कटतु = मेघ बरसे। अकटत् = मेघ बरसा। कटेत् = मेघ बरसे। कट्यात् = ईश्वर करे कि मेघ बरसे ॥ ४८३ ॥

४८४ ॥ ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् । ७।२।५ हमयान्तस्य क्षणादिण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ सिचि। अकटीत्। अकटिष्यत्। गुपू रक्षणे ॥ १२ ॥

जिन धातुओं के अन्त में " ह् म् य् " इन में से कोई एक रहे और क्षण् = मारना और श्वस् = श्वास लेना जागृ = जागना और † जिस " के अन्त में हो वि ७४१ वा ७९५ से हो। और श्वि = बढ़ना वा जाना और एदित् (जिसका एकार इत् गया हो) धातु इन सब को वृद्धि आदेश न होय इडादि ४२० सिच् पर रहते। अकटीत् = मेघ बरसा। अकटिष्यत् = यदि मेघ बरसे। गुपू (गुप्) धातु रक्षा करने अर्थ में है। उसकी साधन प्रक्रिया ऐसी है ॥ ४८४ ॥

४८५ ॥ गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः । ३।१।२८। स्वार्थे ॥

---

* ४६६ " प्रत्यय। † " धातु को णिच् प्रत्यय है।

गुपू, रक्षा करना। धूप, संताप करना। विच्छ, गमन। पण, स्तुति करना। पन, स्तुति करना, इन धातुओं से परे * स्वार्थ में आय् प्रत्यय होवे ॥ ४९५ ॥

४९६ ॥ सनाद्यन्ता धातव । ३ । १ । ३२ । सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषां ते धातु संज्ञकाः । धातुत्वाल्लडादयः । गोपायति ॥

सन् से लेकर कमेर्णिङ् (५५४) सूत्र के णिङ् पर्यन्त जो बारह १२ प्रत्यय हैं, उन में से कोई एक जिन के अन्त में हों वे प्रत्यय विशिष्ट धातु संज्ञा वाले होवें, उनको धातु संज्ञक होने पर ४०० आदि से उन से परे लट् आदिक लकार होते हैं, उन बारह सनादियों में से एक आय् भी है, परन्तु वह आय् गुप् के अन्त में है, इस लिये यहां आय् के आने से और उपधा गुण आदि कार्यों से गोपाय् की धातु संज्ञा हुई फिर लट् हुआ गोपायति (वह रक्षा करता है) सिद्ध हुआ ॥ ४९६ ॥

४९७ ॥ आयादय आर्धधातुके वा । ३ । १ । ३१ । आर्धधातुकविवक्षायामायादयो वा स्युः ॥

जब आर्धधातुक की ' विवक्षा ' (कहना इष्ट) हो तब आय् आदि बारहों विकल्प से होंय। यहां इतना विचार है, कि केवल बारहों में से आय् णिङ् (५५४) ईयङ् ये तीनों विकल्प करके होते हैं ॥ ४९७ ॥

४९८ ॥ कास्यनेकाच आम् वक्तव्य । लिटि । आस्कासोराम् विधानान्मस्य नेत्वम् ॥

कास् और अनेकाच् । (जिस में अनेक अच् हैं) ऐसे (वा इन) धातुओं से लिट् परे रहते आम् प्रत्यय होवे ऐसा कहना चाहिये। आस्, बैठना। और कास् चमकना इन से परे आम् प्र० विधान करने से आम् के म् को इत् संज्ञा नहीं होती। इस में ऐसी पर्य्यालोचना (विचार) है कि यदि आम् मित् हो तो (मिदचोन्त्यात्पर.) इस सूत्र के बल से आ-के अन्त में होगा। फिर दीर्घ होने से आस् और कास् का रूप वैसा ही रहेगा, आम् कथ् फल क्या हुआ कुछ नहीं व्यर्थ होने से ज्ञापन करता है, कि (आम्) मे मकार को इत् संज्ञा नहीं होती ॥ ४९८ ॥

---

* और कई एक " णिच्, सन् " आदि प्रत्यय ऐसे हैं कि उनके आगे आने से धातु का अर्थ बढ़ जाता है जैसे पिपठिषति (पढ़ने की इच्छा करता है) यहां केवल धातु का अर्थ पढ़न है, सन् के आने से इच्छा अर्थ बढ़ा, परन्तु " आय् " के आने से कुछ भी तो अर्थ नहीं बढ़ा यह स्वार्थ का आशय है ॥

४९९ ॥ अतो लोपः । ६ । ४ । ४८ । आर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोप आर्धधातुके ॥

जब आर्धधातुक (४१) होवे तब अदन्त (अकार है अन्त में जिस के) ऐसा जो धातु उस के अकार का आर्धधातुक परे रहते लोप होता है ॥ ४९९ ॥

५०० ॥ आमः । २ । ४ । ८१ । आमः परस्य लुक् ॥

आम् ४९८ से परे जो प्रत्यय उस का लुक् होवे ॥ ५०० ॥

५०१ ॥ कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि ३ । १ । ४० । आमन्ताल्लिट्परा कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते । तेषां द्वित्वादि ॥

आम् (४९८) जिस के अन्त में है ऐसे धातु से परे कृञ् (कृ करना । भू होना । अस् होना) ये तीन स्थापित किये जावें और इन के आगे लिट् होय । इन को द्वित्व (७२) सूत्र से और लिट् के सब काम होते हैं ॥ ५०१ ॥

५०२ ॥ उरत् ७ । ४ । ६६ । अभ्यासऋवर्णस्यात् । इति गोपायाञ्चकार । द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते ॥

अभ्यास के ऋवर्ण के स्थान में अकार हो। अत् को ६० से अर् हुआ और ४२१ से च हु अ रहा ४९२ और १८४ से वृद्धि करने पर और गोपायाम् को साथ मिलाने से गोपायाञ्चकार (उस ने रक्षा की) सिद्ध हुआ । प्रथम पुरुष के द्विवचन में गो च+अतुस् ऐसा रूप के बनाने पर ११८ से ऋकार के स्थान में १८ से यण् प्राप्त, क्योंकि द्वित्व से यण् पर है । द्वित्व ७२ विधायक सूत्र यण् कारक से पूर्व है ॥ ५०२ ॥

५०३ ॥ द्विर्वचनेऽचि । १ । १ । ५९ । द्वित्वनिमित्तेऽचि अच आदेशो न द्वित्वे कर्तव्ये । गोपायाञ्चक्रतुः । गोपायाञ्चक्रुः ॥

द्वित्व के निमित्त अजादि प्रत्यय के परे रहते पूर्व के अच् को कोई भी आदेश न होवे जब तक द्वित्व न हुआ हो परन्तु उसके होने की अपेक्षा रखे द्वित्व के होने पर तो आदेश होता ही है इस लिये—गोपायाञ्चक्रतु । उन दोनों ने रक्षा की। गोपायाञ्चक्रु। उन ने रक्षा की । सिद्ध हुए ॥ ५०३ ॥

५०४ ॥ एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् । ७ । २ । १० । उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च तत आर्धधातुकस्येण्न । अदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशी

स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभि । वृङ्वृञ्भ्यांश्चविनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः ॥ १ ॥

कान्तेषु शक्लेकः । चान्तेषु पच् मुच् रिच् वच् विच् सिचः षट् । छान्तेषु प्रच्छेकः । जान्तेषु त्यज्, निज्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्ज्, सञ्ज्, सृजः पञ्चदश । दान्तेषु अद् क्षुद् खिद् छिद् तुद् नुद् पद्य भिद् विद्य विनद् विन्द् शद् सद् स्विद्य स्कन्द् हदी षोडश । धान्तेषु क्रुध् क्षुध् बुध्य् बन्ध् युध् रुध् राध् व्यध् शुध् साध् सिध्य एकादश । नान्तेषु मन्यहनौ द्वौ ।

पान्तेषु आप् छिप् क्षुप् तप् तिप् तृप् दृप्य लिप् लुप् वप् शप् स्वप् सृपस्त्रयोदश । भान्तेषु यभ् रभ् लभस्त्रय । मान्तेषु यम् नम् गम् रमश्चत्वारः । शान्तेषु क्रुश् दंश् दिश् दृश् मृश् रिश् रुश् लिश् विश् स्पृशो दश । षान्तेषु कृष्, त्विष्, तुष् द्विष् दुष् पुष्य् पिष् विष् शिष् शुष् श्लिष् एकादश । सान्तेषु घस् वसती द्वौ । हान्तेषु दह् दिह् दुह् नह् मिह् रुह् लिह् वहोऽष्टौ । अनुदात्ता हलन्तेषु धातवस्त्र्यधिक शतम् । गोपायाञ्चकर्थ । गोपायाञ्चक्रथु । गोपायाञ्चक्र । गोपायाञ्चकार । गोपायाञ्चकर । गोपायाञ्चकृव । गोपायाञ्चकृम । गोपायाम्बभूव । गोपायामास । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः ।

उपदेश (आद्योच्चारण) में जो धातु एकाच् (एक स्वर वाला) और अनुदात्त हो तो उस से परे जो आर्धधातुक ४२६ । ४३० । प्रत्यय उस को इट् ४२७ का आगम न होवे । जिन धातुओं का ऊ, वा ॠ, इत् सञ्ज्ञक हो उन से और यु, मिलाना, आदि । रु, शब्द करना । क्ष्णु, तीक्ष्णकरना । शीङ्, सोना । स्नु, बहना । णु, स्तुतिकरना । क्षु, छींकना (छिंकनो)। श्वि, वृद्धि वा गमनकरना डीङ्, उडना । श्रि, सेवाकरणा। वृ, (वृङ्) सेवाकरना । वृ, (वृञ्) स्वीकारकरना । इन से विना और सब एकाच् और अजन्त धातु अनुदात्त हैं।

और जो एकाच् हलन्त धातुओं में सें ककारान्त एक ही शक्ल १ (शक्) समर्थ होना अनुदात्त है । और चकारान्त धातुओं में से पच् १ पकाना । मुच् २ छोडना । रिच् ३ अलग करना, वा जुलाब देना । वच् ४ कहना । विच् ५ अलग करना । सिच् ६ छिडकना । ये छै ६ धातु अनुदात्त हैं । और छकारात धातुओं मे सें, प्रच्छ १ पूछना यह एक ही अनुदात्त है, और जकागत धातुओं में से, त्यज् १ त्यागना । निज् २ शोधना वा पुष्ट करना । भज् ३ सेवाकरना । भञ्ज् ४ तोडना । भुज् ५ भोगना । भ्रस्ज् ६ भुन्नना । मस्ज् ७ शुद्धि वा डूबना । यज् ८ यज्ञ करना आदिक । युज् ९ जोडना । रुज् १० रोग । रञ्ज् ११ रङ्गना । विजिर् १२ (अलग करना) । स्वञ्ज् १३ सङ्गकरना वा गले लगाना । सञ्ज् १४ मिलना । सृज् १५ त्याग करना । ये १५ पचदश धातु अनुदात्त हैं । और दका-रान्त धातुओं मे से, अद् १ खाना । क्षुद् २ पीसना । खिद् ३ दुःखी होना । छिद् ४ काटना ।

तुद ५ पीड़ादेना । मुद् ६ प्रेरण करना । पद्य ७ (पद्)(१) गती (चलना) । भिद् ८ तोड़ना। विध (२) ८ होना । विनद्(३) १ विचारना । खिन्द(४) ११ खास होना। शद् १२ कुम्हलाना । सद् १३ जाना आदिक। स्विद (५) १४ पसीना आना । स्कन्द् १५ जाना या सूखना । हद् १६ मल त्याग करना । ये सोलह १६ अनुदात्त हैं।

धकारान्त धातुओं में से क्रुध १ क्रोध करना । क्षुध् २ भूख लगना । (६) बुध्य ३ जानना । बन्ध् ४ बान्धना । युध् ५ लड़ना । रुध् ६ घेरना । राध् ७ सिद्धि । व्यध् ८ ताड़नकरना । शुध् ८ स्वच्छहोना । साध् १ सिद्धकरना । (७) सिध्य ११ पूर्णहोना । ये ग्यारह ११ धातु अनुदात्त हैं। नकारान्त धातुओं सेंसें (८) मन्य १ मानना । हन् २मारना ये दो २ धातु अनुदात्त हैं।

पान्त धातुओं में से आप् १ व्याप्त होना । क्षिप् २ फेंकना । क्षुप् ३ होना ॥ तप ४ सन्ताप । तिप् ५ चोना । तप् ६ तृप्ति । (८)दृप्य ७ गर्व करना या हर्ष । लिप् ८ लेपना । लुप् ८ काटना । वप् १ बीज बोना । शप् ११ शापदेना । स्वप् १२ सोना । सृप् १३ चलना । ये तेरह १३ धातु अनुदात्त हैं। भकारान्त धातुओं में सें यम् १ मैथुन करना । रम् २ वेग करना । लभ् ३ लाभ । ये तीन धातु अनुदात्त हैं। मकारान्त धातुओं में से गम् १ जाना । नम् २ नमस्कार करना । यम् ३ (१) निवृत्त होना । और रम् ४ क्रीड़ा करना । ये चार धातु अनुदात्त हैं।

शकारान्त धातुओं में से क्रुश् १ पुकारना या रोना। दंश् २ डसना । दिश् ३ दान करना या दिखाना । दृश् ४ देखना । मृश ५ स्पर्श करना । रिश् ६ और रुश् ७ (हिंसा करना) । लिश् ८ घटजाना । विश् ८प्रवेश करना । स्पृश् १ छूना । ये दश १ धातु अनुदात्त हैं। षकारान्तों में से कृष् १ खैंचना । त्विष् २ चमकना । तुष् ३ तृप्त होना । द्विष् ४ (११)द्वेष करना । दुष् ५ बिगड़ना । (१२)पुष्य ६ पुष्ट करना । पिष् ७ पीसना । विष् ८ व्याप्त होना । शिष् ८ विशिष्ट करना । शुष् १ सूखना । श्लिष् ११ आलिङ्गन करना। ये ग्यारह ११ धातु अनुदात्त हैं। सकारान्त धातुओं में से घस १ खाना । वस् २ वास करना । ये (१३) दो २ अनुदात्त हैं।

हकारान्त धातुओं में से दह् १ जलाना । दिह् २ पोतना या वृद्धि । दुह ३ चोना।

---

(१)दिवादिगणका । (२) विद् दिवादिगणका धातु । (३) विद् रुधादिगण का धातु । (४) विद् तुदादि गण का धातु । (५) स्विद् दिवादि गण का धातु । (६) बुध् दिवादि गण का धातु । (७) सिध् दिवादि गण का धातु । (८) मन् दिवादि गण का । (८) दृप् दिवादि धातु है। (१) छट जाना। (११) दुसमनी । (१२) पुष दिवादि गण का धातु है। (१३)ग्ल (पर्याय धातु)।

नह् ४ बान्धना। मिह् ५ सिचना। रुह ६ उगना। लिह् ७ चाटना। वह् ८ लेजाना। ये आठ ८ धातु अनुदात्त हैं। इस प्रकार से (१) इनका योग एक सौ तीन हैं १०३॥

जिस लिये क्र धातु एकाच् और अनुदात्त है, इस लिये उक्त सूत्र से (५०४) सम्बन्ध वाला है, परन्तु लिट् परे रहते "क्र" को "५०८" सू० नियम से (२) इट् का आगम नहीं होता।

गोपायाम्चकर्थ (तूंने रचा की
गोपायाचक्रथुः (तुम दोनें ,,
गोपायाम्चक्र (तुमने ,,

गोपायाम्चकार, गोपायाम्चकर (मैंने रचा की)
गोपायाम्चक्रव (हम दोनें रचा की)।
गोपायाम्चक्रम (हम नें रचा की)।

इसी अर्थ में "गोपायामास, गोपायाम्बभूव" (उसने रचा की)। और "४९७" नियम से विकल्प से आय् हुआ तो, जुगोप, जुगुपतु', जुगुपु'। अर्थ पूर्ववत् जानों॥ ५०४॥

५०५॥ स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा।७।२।४४।

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात्। जुगोपिथ। जुगोप्थ। गोपायिता। गोपिता। गोप्ता। गोपायिष्यति। गोपिष्यति। गोप्स्यति। गोपायतु। अगोपायत्। गोपायेत्॥

स्व (शब्द करना)। (३)षू (उत्पन्न करना)। धूञ् (कापना)। इन से और ऊदित् धातुओं से परे वल् १ प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों में से कोई एक है आदि में जिस के ऐसा आर्धधातुक हो तो उस को इट् का आगम विकल्प करके होवे॥

गुपू धातु भी ऊदित् है इस लिये "थल् में" जुगोपिथ जुगोप्थ (तुमने रचा की) और लुट् में ४९७ "गोपायिता, गोपिता, गोप्ता" (वह रचा करेगा) लृट् मे भी वैसे ही "गोपायिष्यति, गोपिष्यति गोप्स्यति" (वह रचा करेगा)। लोट् में, गोपायतु (वह रचा करे)। लङ् में अगोपायत्, (उस ने रचा की)। वि० लिङ् में, गोपायेत् (वह रचा करे)॥ ५०५॥

५०६॥ नेटि।७।२।४। इडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न।

अगोपायीत्। अगोपीत्। अगोप्सीत्॥

इट् है आदि मे जिस के ऐसा सिच् परे रहे तो हलन्त धातु कों (४९३) से प्राप्त

---

(१) हलन्त धातुओं का। (२)"४२७" से जो पाया था इस का विस्तार पूर्वक वर्णन "५११" इस नियम में लिखा जावेगा। (३) सूति, सूयति, अदादि और दिवादि गण का षूङ् धातु है॥

इति न होय। आय् और इट् हुआ तो अगोपायीत्। आय् न हुआ और इट् हुआ तो अगोपीत्। और जब आय् और इट् दोनों न हुए तब अगोप्सीत्। उस ने रक्षा की ॥ ५ ६ ॥

५ ७॥ झलो झलि। ८। २। २६। झल परस्य सस्य लोपो झलि। अगोप्ताम्। अगोप्सुः। अगोप्सीः। अगोप्तम्। अगोप्त। अगोप्सम्। अगोप्स्व। अगोप्स्म। अगोपायिष्यत्। अगोपिष्यत्। अगोप्स्यत्। क्षि क्षये १२ क्षयति चिक्षाय। चिक्षियतुः। चिक्षियुः। एकाच इति निषेधे प्राप्ते।

यदि परे झल् हो तो झल् से परे जो स् तिस का लोप जावे अगोप्ताम् (उन दोने रक्षा की। अगोप्सुः=उनमें रक्षा की। अगोप्सीः तूने रक्षा की। अगोप्तम्=तुम दोने रक्षा की। अगोप्त=तुम ने रक्षा की। अगोप्सम्=मैंने रक्षा की। अगोप्स्व=हम दोने रक्षा की। अगोप्स्म हमनें रक्षा की।

लृङ् में। अगोपायिष्यत् अगोपिष्यत् अगोप्स्यत्=जो वह रक्षा करे। क्षि घटना या नाश। क्षयति वह घट 'ता' ता है। चिक्षाय=वह घटा। चिक्षियतु वे दो नष्ट हुए। चिक्षियुः=वे नष्ट हुए। यहां से ४२० वें से इट् का ५ ४ से निषेध पाया तो ॥ ५ ७॥

५ ८॥ कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि। ७। २। १३। क्रादिभ्य एव लिट इट् न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ॥

कृ करना। सृ चलना। भृ पालन पोषण करना। वृ स्वीकार करना। स्तु (ष्टु) स्तुति करनी। द्रु दौड़ना। स्रु चलना या चूना। श्रु सुनना। इन आठ ८ धातुओं से परे जो लिट् को * इट् न होवे। परन्तु और कोई धातु अनिट् भी हो तो भी उस से परे † लिट् को इट् हो ही जावे ॥ ५ ८॥

५०९॥ अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम्। ७। २। ६१। उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इट् न॥

जो धातु उपदेश में अजन्त है और ‡ तास् में नित्य ही अनिट् है उस से परे भी थल् को इट् न होवे ॥ ५ ९॥

५१०॥ उपदेशेऽत्वतः ७। २। ६२। उपदेशेऽकारवान् यस्तासौ नित्यानिट् ततः परस्य थल इट् न स्यात्॥

उपदेश में अकारवान् जो अजन्त धातु और तास् में नित्य अनिट् हो उस से परे जो थल् उस को इट् का आगम न होवे ॥ ५१० ॥

---

* (४२०) से आगम होता है। † क्रादि आर्धधातुक को। ‡ लुट् लकार का है।

५११ ॥ ऋतो भारद्वाजस्य । ७ । २ । ६३ तासौ नित्यानिट् ऋदन्तादेव थलो नेट् (इ) भारद्वाजस्य मते तेनान्यस्य स्यादेव ॥

॥ अयमत्र संग्रहः ॥

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड्भवेत् ।

चिक्षियिथ । चिक्षेथ । चिक्षियथु । चिक्षिय । चिक्षाय । चिक्षय । चिक्षियिव । चिक्षियिम । क्षेता । क्षेष्यति । क्षयतु । अक्षयत् । क्षयेत् ॥

भारद्वाजजी के मत में तास् में नित्य अनिट् ऋदन्त धातु से परे थल् को इट् को आगम न होवे । इस से ऋदन्तों से भिन्न धातुओं से परे थल् को इट् का आगम हो जावे । क्योंकि यह निषेध ऋदन्तों का ही है औरों का नहीं, इसी हेतु से ५०८ और ५१० सूत्रों से भी इट् का विकल्प ही प्रतीत होता है ।

इन (१ सूत्रों) का यहां ऐसा सङ्ग्रह (२) है । अच् है अन्तमें जिसके ऐसा धातु वा ऐसा हलन्त धातु कि जिस के (३) उपदेश में अकार हो वह धातु यदि तास् में नित्य ही अनिट् हो तब वह थल् । में विकल्प कर के इट् वाला होता है, परन्तु यदि ऐसा (४) ऋदन्त धातु हो तो वह नित्य ही अनिट् हो परन्तु कृ (५०८) आदि धातुओं को छोड कर, और धातु लिट् में सेट् हो जाते हैं, (५)चिक्षयिथ वा चिक्षेथ (तू घटा) चिक्षियथु (तुम दो घटे) चिक्षिय (तुम घटे) चिक्षाय वा चिक्षय (मैं घटा) चिक्षियिव (हम दो घटे) चिक्षियिम (हम घटे) लुट् में, क्षेता (वह घटेगा) लृट् में, क्षेष्यति (वह घटेगा) लोट् में, क्षयतु (वह घटे) लङ् में, अक्षयत् (वह घटा) वि० लिङ् मे, क्षयेत् (वह घटे) ॥ ५११ ॥

५१२ ॥ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ।७ । ४ । २५ । अजन्ताङ्गस्यदीर्घो यादौ प्रत्यये नतु कृत्सार्वधातुकयो । क्षीयात् ।

कृत् प्रत्यय (३२४) और सार्वधातुक इन से भिन्न जो (६)यादि प्रत्यय उस के परे होते, अजन्त अङ्ग को दीर्घ हो जावे, तब आ० लिङ् में क्षीयात् ईश्वर करे कि वह घटे ॥ ५१२ ॥

---

(१) इट् आगम सम्बन्धीय । (२) संक्षेपार्थ । (३) आद्योच्चारण । (४) ऋ जिस के अन्त में है । (५) यहां विकल्प कारक विधियों को भी स्मरण करना चाहिये । (६)यकार है, आदि में जिस के ऐसा ।

इट् न होय । आय् और इट् हुआ तो अगोपायीत् । आय् न हुआ और इट् हुआ तो अगोपीत् । और जब आय् और इट् दोनों न हुए तब अगौप्सीत् । उस ने रक्षा की ॥ ५ ६ ॥

५०७ ॥ झलो झलि । ८ । २ । २६ । झलः परस्य सस्य लोपो झलि । अगौप्ताम् । अगौप्सुः । अगौप्सीः । अगौप्तम् । अगौप्त । अगौप्सम् । अगौप्स्व । अगौप्स्म । अगोपायिष्यत् । अगोपिष्यत् । अगौप्स्यत् । श्वि १२ श्वयति शिश्वाय । शिश्वियतुः । शिश्वियुः । अलिएकाच इति निषेधे प्राप्ते ।

यदि परे झल् हो तो झल् से परे जो स् उस का लोप हो जावे अगौप्ताम् (उन दोनें रक्षा की । अगौप्सुः — उननें रक्षा की । अगौप्सीः तूने रक्षा की । अगौप्तम् — तुम दोनें रक्षा की । अगौप्त — तुम ने रक्षा की । अगौप्सम् — मैंने रक्षा की । अगौप्स्व — हम दोनें रक्षा की । अगौप्स्म हमनें रक्षा की ।

लृङ् में । अगोपायिष्यत् अगोपिष्यत् अगौप्स्यत् — जो वह रक्षा करे । श्वि घटना वा जाना । श्वयति वह घट 'जा' ता है । शिश्वाय — वह घटा । शिश्वियतुः वे दो नष्ट हुए । शिश्वियुः — वे नष्ट हुए । यहां से ४१० वें से इट् का ५ ० से निषेध पाया तो ॥ ५०७ ॥

५०८ ॥ कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि । ७ । २ । १३ । क्रादिभ्य एव लिट इट् न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ॥

कृ करना । सृ चलना । भृ पालन पोषण करना । वृ स्वीकार करना । स्तु (ष्टुञ्) स्तुति करनी । द्रु दौड़ना । स्रु बहना वा चूना । श्रु सुनना । इन आठ ८ धातुओं से परे ही लिट् को * इट् न होवे । परन्तु और कोई धातु अनिट् भी हो तो भी उस से परे † लिट् को इट् हो ही जावे ॥ ५०८ ॥

५०९ ॥ अचस्तास्वत् थल्यनिटो नित्यम् । ७ । २ । ६१ । उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इट् न ॥

जो धातु उपदेश में अजन्त है और ‡ तास् में नित्य ही अनिट् है उस में परे भी थल् को इट् न होवे ॥ ५०९ ॥

५१० ॥ उपदेशेऽत्वतः ७ । २ । ६२ । उपदेशेऽकारवान् यस्तासौ नित्यानिट् ततः परस्य थल इट् न स्यात् ॥

उपदेश में अकारवान् जो हलन्त धातु और तास् में नित्य अनिट् हो उस से परे जो थल् उस को इट् का आगम न होवे ॥ ५१० ॥

---

* (४१०) से आगम होता है । † अजादि आर्धधातुक का । ‡ शुद्ध अकार का है ।

क्रामतु (वह टहले)। लङ् में अक्राम्यत् वा अक्रामत् (वह टहला)। वि० लिङ् में क्राम्येत् वा क्रामेत्(वह टहले) (१)क्रम्यात् (ईश्वर करे कि वह टहले) लुङ् में अक्रमीत् (वह-टहला) लृङ् में अक्रमिष्यत् वह जो टहले। १६ "पा" धातु का पीना अर्थ है ॥ ५१५ ॥

५१६ ॥ पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः ।७।३। ७८। पादीनां पिबादयः स्युरित्संज्ञकशादौ प्रत्यये। पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः। पिबति।

पा आदि ग्यारह धातुओं को पिब आदिक ग्यारह आदेश क्रम से होते हैं यदि इत् श् है आदि जिस के ऐसा (२)प्रत्यय परे रहे तब वह क्रम ऐसा है, कि १पा, पिब (पीना) २घ्रा, जिघ्र (सूंघना)। ३ ध्मा, धम (फूकना)। ४ स्था, तिष्ठ (खड़ाहोना) ५ म्ना, मन (अभ्यास करना)। ६ दाण=यच्छ (देना)। ७ दृश्=पश्य,(देखना)। ८ ऋ, ऋच्छ(गमन)। ९ सृ, धौ (दौडना)। १० शद् शीय (मुरझाना)। ११ षद्, सीद (पीडा)। यहा पिब आदेश अकारान्त है इसी लिये ४७९ से गुण (३) नही होता। पिबति, वह पीता है ॥ ५१६ ।

५१७ ॥ आत औ णल· ।७।१।३४। पपौ ॥

आकार है अन्त में जिसके ऐसे धातु से परे जो णल् उसे औ होजावे पा+णल्(४)= पपौ (उसने पीया) ॥ ५१७ ॥

५१८ ॥ आतो लोप इटि च ।६।४।६४। अजाद्योरार्धधातुकयोः क्ङिदिटो· परयोरातोलोपः। पपतु । पपुः। पपिथ, पपाथ। पपथु । पप। पपौ। पपिव। पपिम। पाता। पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत् ॥

(५) कित् वा ङित् जो "(६)अजादि आर्धधातुक प्रत्यय" सो परे हो वा इट् परे हो तो धातु के (७) आकार का लोप होय। पपतु' (में ४८० से लिट् को कित् मान आ का लोप ५१८ से हुआ। पपतु सिद्ध भया=उन दोंने पिया। पपुः=उनने पिया। पपिथ, पपाथ तूने पिया। पपथुः=तुम दोंने पिया। पप=तुमने पिया। पपौ ५१७=मैंने पिया। पपिव= मह दोंने पिया। पपिम=हमने पिया ॥ ५१८ ॥

---

(१) आशीर्लिङ् में। (२) सार्वधातुक और शतृ, शानच्। (३) क्योंकि अकार के पूर्वले बकार की ही उपधा संज्ञा है गुण किसे हो। (४) णल् को ५१७ से औ हुआ पुन., वृद्धिः (५) क् है इत् जिस का । (६) अच् (स्वर) है आदि में जिस के। ४३० से हुई है संज्ञा। (७) आकारअन्त का ॥

५१३ ॥ सिचि वृद्धि परस्मैपदेषु । ७ । २ । १ । इग न्ताङ्गस्य वृद्धि स्यात् परस्मैपदे सिचि। अचैषीत्। अचेष्यत् । तप संतापे १४ । तपति । ततात । तेपतु । तेपु । तेपिथ। ततप्थ । तेपथु । तप्ता। तप्स्यति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम । अतप्स्यत् ॥ १५ क्रमु पादविक्षेपे ॥

सिच् परे होते परस्मैपद में (१)इगन्त अङ्ग को वृद्धि होय । अचैषीत् । वह चढ़ा। लृङ् में अचेष्यत् (जो वह चढ़े) तप् (तप) जलना (वा तपना) तपति वह जलता है। ततात (वह तपा था) । तेपतु ४८८ वे दो तपे । तेपु ४८८ वे तपे । तेपिथ ४८८, ११ वा १११ से ततप्थ (तू तपा था) । लुट् में तप्ता (वह तपेगा) तप्स्यति वह तपेगा । तपतु (वह तपे) । अतपत् (वह तपा) तपेत् (वह तपे) तप्यात् (ईश्वर करे कि वह तपे) । अताप्सीत् ४८२ (वह तपा) अताप्ताम् (वे दो तपे) । अतप्स्यत् जो वह तप । क्रमु (क्रम्) फिरना (टहलना १५) ॥ ५१३ ॥

५१४ ॥ वाभ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः । ३ । १ । ७ । एभ्य श्यन्वा कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे पक्षे शप् ॥

भ्राश भ्लाश् (चमकना) भ्रमु (फिरना) क्रमु (टहलना) क्लमु (दु खी होना) त्रस् (डरना) त्रुट् (टूटना) लष् (चाहना) इन आठ धातुओं से परे श्यन् ४४१ विकल्प करके होवे परन्तु जब (२)कर्त्रर्थक सार्वधातुक परे हो तब (३)पक्ष में शप् ४११ होता है ॥ ५१४ ॥

५१५ ॥ क्रमः परस्मैपदेषु । ७ । ३ । ७६ । क्रमो दीर्घः परस्मैपदे शिति । क्राम्यति । क्रामति । चक्राम । क्रमिता । क्रमिष्यति । क्राम्यतु । क्रामतु । अक्राम्यत् । अक्रामत् । क्राम्येत् क्रामेत् । क्रम्यात् । अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् । पा पाने ॥ १६ ॥

परस्मैपद पद है परे जिस को ऐसे । शित् प्रत्यय परे हो तो क्रम धातु के अच् को दीर्घ होवे । क्राम्यति (५१४ । ५१५) वा क्रामति वह टहलता है । चक्राम (४८२ । ४८२) वह टहलता था । लुट् में क्रमिता । लृट् में क्रमिष्यति (वह टहलेगा । लोट् में क्राम्यतु वा

(१) "इ उ ऋ लृ" है अन्त में जिस के । (२)कर्ता अर्थ को बतलाने वाला (कर्तृ बोधक) । (३) जिस में श्यन् न होना ।

क्रामतु (वह टहले)। लङ् में अक्राम्यत् वा अक्रामत् (वह टहला)। वि० लिङ् में क्राम्येत् वा क्रामेत्(वह टहले) (१)क्रम्यात् (ईश्वर करे कि वह टहले) लुङ् में अक्रमीत् (वह-टहला) लृङ् में अक्रमिष्यत् वह जो टहले। १६ "पा" धातु का पीना अर्थ है ॥ ५१५ ॥

५१६ ॥ पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्छधौशीयसीदाः ।७।३। ७८। पादीनांपिबादयः स्युरित्संज्ञकशादौ प्रत्यये। पिबादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः। पिबति।

पा आदि ग्यारह धातुओ को पिब आदिक ग्यारह आदेश क्रम से होते हैं यदि इत् श् है आदि जिस के ऐसा (२)प्रत्यय परे रहे तब वह क्रम ऐसा है, कि १पा, पिब (पीना) २घ्रा, जिघ्र (सूंघना)। ३ ध्मा, धम (फूंकना)। ४ स्था, तिष्ठ (खडाहोना) ५ म्ना, मन (अभ्यास करना)। ६ दाण=यच्छ (देना)। ७ दृश्=पश्य,(देखना)। ८ ऋ, ऋच्छ (गमन)। ९ सृ, धौ (दौडना)। १० शद् शीय (मुरझाना)। ११ षद्, सीद (पीडा)। यहां पिब आदेश अकारान्त है इसी लिये ४७९ से गुण (३) नहीं होता। पिबति, वह पीता है ॥ ५१६ ।

'५१७ ॥ आत औ णल ।७।१।३४। पपौ ॥

आकार है अन्त में जिसके ऐसे धातु से परे जो णल् उसे औ होजावे पा+णल्(४)= पपौ (उसने पीया) ॥ ५१७ ॥

५१८ ॥ आतो लोप इटि च ।६।४।६४। अजाद्योरार्धधातुकयो क्ङिदिटो परयोरातोलोपः। पपतु। पपुः। पपिथ, पपाथ। पपथु। पप। पपौ। पपिव। पपिम। पाता। पास्यति। पिबतु। अपिबत्। पिबेत् ॥

(५) कित् वा ङित् जो "(६)अजादि आर्धधातुक प्रत्यय" सो परे हो वा इट् परे हो तो धातु के (७) आकार का लोप होय। पपतु' (में ४८० से लिट् को कित् मान आ का लोप ५१८ से हुआ। पपतु सिद्ध भया=उन दोंने पिया। पपुः=उनने पिया। पपिथ, पपाथ तूने पिया। पपथु.=तुम दोंने पिया। पप=तुमने पिया। पपौ ५१७=मैंने पिया। पपिव= मह दोंने पिया। पपिम=हमने पिया ॥ ५१८ ॥

---

(१) आशीर्लिङ् में। (२) सार्वधातुक और शतृ, शानच्। (३) क्योंकि अकार के पूर्वले बकार की ही उपधा संज्ञा है गुण किसे हो। (४) णल् को ५१७ से औ हुआ पुनः, वृद्धि' (५) क् है इत् जिस का। (६) अच् (स्वर) है आदि में जिस के। ४३० से हुई है संज्ञा। (७) आकारअन्त का ॥

लुट् में पाता } वह पियेगा ।
लृट् में पास्यति }

{ लोट् में (१) पिबतु = वह पिये ।
लङ् अपिबत् = उस ने पिया ।
वि लिङ् में पिबेत् = वह पिये ।

५१८ ॥ एर्लिङि । ६ । ४ । ६७ । घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि । पेयात् । गातिस्थेति सिचो लुक् । अपात् । अपाताम् ॥

कित् आर्धधातुक लिङ् परे रहे तब घु संज्ञावाले ४६६ और मा स्था आदिक ५१८ धातुओं के अच् को ए होवे पेयात् वे ईश्वर वह पिये । ४६० से सिच् का लुक होता है तब अपात् = उस ने पिया । अपाताम् = उन दोनों ने पिया ॥ ५१८ ॥

५२० ॥ आतः । ३ । ४ । ११० । सिज्लुकोराकारान्तादेव झेर्जुस् ।

सिच् के लुक् के (४६० से) होने पर आकारान्त धातु से ही परे झि को जुस् होवे ॥ ५२० ॥

५२१ ॥ उस्यपदान्तात् । ६ । १ । ९६ । अपदान्तादकारादुसि पररूपमेकादेशः । अपुः । अपास्यत् । ग्लै हर्षक्षये । १० । ग्लायति ॥

(१) अपदान्त अकार से परे उस् हो तो दोनों के स्थान में पर का रूप होता है । अपा+झि ५२० = अपा+उस् = ५२१ से अपुः उसने पिया लुङ् में । अपास्यत् वो वह पिये । ग्ला १० । ग्लै = ग्लानि करना । ग्लायति २६ वह ग्लानि करता है ॥ ५२१ ॥

५२२ ॥ आदेच उपदेशेऽशिति । ६ । १ । ४५ । उपदेश एजन्तस्य धातोरात्वं न तु शिति । जग्लौ । ग्लाता । ग्लास्यति । ग्लायतु । अग्लायत् । ग्लायेत् ॥

उपदेश में (१) एजन्त धातु को आकार होवे परन्तु (२) शित् प्रत्यय परे हो तो नहीं होता । (३) जग्लौ वह ग्लानि करता था । लुट् में ग्लाता वह ग्लानि करेगा लृट् में ग्लास्यति । अब पूर्ववत् । ग्लायतु वह ग्लानि करे । लङ् में अग्लायत् वह ग्लानि करता हुआ । विधि लिङ् में ग्लायेत् अब लोट् वत् ॥ ५२२ ॥

---

(१) एच् के अन्त में न होने वाला (२) एच् (ए ऐ ओ औ) है अन्त में जिस के । (३) सार्वधातुक में शप् । (४) लिट् में शप् नहीं आता इसी से ऐ को आ हुआ तो ११७ से अन् को औ हुआ । (५) २६ से संयोग संज्ञा जानी है ॥

५२३ ॥ वान्यस्य संयोगादेः। ६।४। ६८। घुमास्था-देरन्यस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वार्धधातुके किति लिङि। ग्लेयात्। ग्लायात्॥

घुसञ्ज्ञक और मा स्था आदि धातुओं से भिन्न जो हैं, और (१) सयोग है, आदि में जिन के ऐसे धातुओं के आ को विकल्प करके ए होता है, जब कित् लिङ् के स्थान में आर्धधातुक प्रत्यय परे रहे। ग्लेयात्, ग्लायात्, ईश्वर करे कि, वह ग्लानि करे॥ ५२३॥

५२४ ॥ यमरमनमातां सक् च। ७। २। ७३। एषां सक्स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु। अग्लासीत्। अग्लास्यत्। ह्वृ कौटिल्ये। १८। ह्वरति॥

यम्=निवृत्त होना। रम्=क्रीडा करनी। नम्= नमस्कार करनी। इन को और आकार है, अन्त में जिन के ऐसे धातुओं को सक् का आगम होय। और उस से परे जो सिच् उसको इट् का आगम होवे जब परस्मैपद परे रहे तो। अग्लासीत् ४७२=उस ने ग्लानि की। अग्लास्यत् जो वह ग्लानि करे। ह्वृ=कुटिलता करनी। १८। ह्वरति ४१४= वह कुटिलता करता है॥ ५२४॥

५२५ ॥ ऋतश्च संयोगादेर्गुणः। ७। ४। १०। ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि। उपधाया वृद्धिः। जह्वार। जह्वरतुः। जह्वरुः। जह्वर्थ। जह्वरथुः। जह्वर। जह्वार। जह्वर। जह्वरिव। जह्वरिम। ह्वर्ता॥

सयोग है आदि मे जिस के ऐसे ऋदन्त अङ्ग को लिट् परे हो तो गुण होवे। उपधा को (२) वृद्धि हुई तब जह्वार=उसने कुटिलता की॥ ५२५॥

जह्वरतुः (उन दो ने कुटिला की)
जह्वरुः (उन नें ,, ,,)

मध्यम पु०
जह्वर्थ= (तूने कुटिलता की)
जह्वरथुः (तुम दो ने ,, ,,)
जह्वर (तुमने ,, ,,)

उत्तम पु०
जह्वार, जह्वर (मैंने कुटिलता की)
जह्वरिव (हम दो ने ,, ,,)
जह्वरिम (हम ने ,, ,,)
लुट् लकार में ह्वर्ता, वह कुटिलता करेगा।

(१) ५१६ में पित् आदेश हुआ। (२) अत उपधायाः (४८३) से॥

लुट् में पाता } वह पियेगा ।
लृट् में पास्यति }

लोट् में (१) पिबतु—वह पिये ।
लङ् अपिबत्—उस ने पिया ।
वि लिङ् में पिबेत्—वह पिये ।

५१९ ॥ एर्लिङि । ६ । ४ । ६७ । घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्वं स्यादार्धधातुके किति लिङि । पेयात् । गातिस्थेति सिचोलुक् । अपात् । अपाताम् ॥

कित् आर्धधातुक लिङ् परे रहे तब घु संज्ञावाले ४९४ और मा स्था आदिक ५१८ धातुओं के अच् को ए होवे पेयात् के ईश्वर वह पिये । ४९० से सिच् का लुक होता है तब अपात्—उस ने पिया । अपाताम्—उन दोनों पिया ॥ ५१९ ॥

५२ ॥ आतः । ३ । ४ । ११० । सिज्लुगादन्तादेव झेर्जुस् ।

सिच् के लुक् के (४९० में) होने पर आकारान्त धातु से ही परे झि को जुस् होवे ॥ ५२ ॥

५२१ ॥ उस्यपदान्तात् । ६ । १ । ९६ । अपदान्तादकारादुसि पररूपमेकादेशः । अपुः । अपास्यत् । ग्लै हर्षक्षये । १० । ग्लायति ॥

(२) अपदान्त अकार से परे उस् हो तो दोनों के स्थान में पर का रूप होता है । अपा+झि ५२—अपा+उस्—५२१ से "अपुः" उसने पिया भूत में । अपास्यत् जो वह पिये । ग्लै १० । ग्लै—ग्लानि करना । ग्लायति २६ वह ग्लानि करता है ॥ ५२१ ॥

५२२ ॥ आदेच उपदेशेऽशिति । ६ । १ । ४५ । उपदेशे एच्-न्तस्य धातो रात्वं नतु शिति ।जग्लौ । ग्लाता । ग्लास्यति। ग्लायतु। अग्लायत । ग्लायेत ॥

उपदेश में (३) एजन्त धातु को आकार होवे परन्तु (४) शित् प्रत्य परे हो तो नहीं होता । (५) जग्लौ, वह ग्लानि करता था । लुट् में ग्लाता वह ग्लानि करेगा लृट् में ग्लास्यति । भव पूर्ववत् । ग्लायतु वह ग्लानि करे । लङ् में अग्लायत् वह ग्लानि करता हुआ । विधि लिङ् में ग्लायेत् यह लोट् वत् ॥ ५२२ ॥

---

(१) पद के अन्त में न होने वाला (२) एच् (ए ओ ऐ औ) है अन्त में जिस के । (३) सार्वधातुक में शप् । (४) लिट् में शप् नहीं होता इसी से ऐ को आ हुआ तो ११७ से अन् को औ हुआ । (५) २६ में संयोग संज्ञा जानो ॥

शृणोषि = तू सुनता है	... .	शृणुथ, तुम सुनते हो	
शृणुथः = तुम दो सुनते हो		शृणोमि, मैं सुनता हूं	

५३१ ॥ लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः । ६ । ४ । १०७ । असंयोगपूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा म्वोः परयोः । शृण्वः । शृणुवः । शृण्मः । शृणुमः । शुश्राव । शुश्रुवतुः । शुश्रुवुः । शुश्रोथ । शुश्रुवथुः । शुश्रव शुश्राव । शुश्रुव । शुश्रुम । श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु । शृणुताम् । शृण्वन्तु ॥

नहीं है संयोग पूर्व जिस के ऐसा जो प्रत्यय का "उ" तिसका म् वा व् परे रहते विकल्प करके लोप होवे । शृण्व , शृणुवः, हम दो सुनते हैं । शृण्मः, शृणुमः, हम सुनते हैं ।

	॥ एकवचन ॥	॥ द्विवचन ॥	॥ बहुवचन ॥
प्रथम पु०	१ शुश्राव, उसने सुना ।	शुश्रुवतुः, उन दोनों ने सुना ।	शुश्रुवुः, उनने सुना ।
म० पु०	२ शुश्रोथ, तूने सुना ।	शुश्रुवथुः, तुम दोनों ने सुना ।	शुश्रुव, तुमने सुना ।
उ० पु०	३ शुश्राव, मैंने सुना ।	शुश्रुव, हम दोनों सुना ।	शुश्रुम, हमने सुना ।

लुट् में "श्रोता" । लृट् में "श्रोष्यति" वह सुनेगा । लोट् में शृणोतु, वह सुने । शृणुताम्, वे दो सुने । शृण्वन्तु, वे सुने ॥ ५३१ ॥

५३२ ॥ उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् । ६ । ४ । १०६ । असंयोगपूर्वात्प्रत्ययोतो हेर्लुक् । शृणु । शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत । गुणावादेशौ । शृणवानि । शृणवाव । शृणवाम । अशृणोत् । अशृणुताम् । अशृण्वन् । अशृणोः । अशृणुतम् । अशृणुत । अशृणवम् । अशृण्व अशृणुव । अशृण्म । अशृणुम । शृणुयात् । शृणुयाताम् । शृणुयुः शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणुयाव । शृणुयाम । श्रूयात् । अश्रौषीत् । अश्रोष्यत् । गम्लृ गतौ ॥ २० ॥

संयोग पूर्व नहीं है जिसके ऐसा जो प्रत्यय का उकार तिस से परे (१) हि हो तो उस हि का लुक् होवे । शृणु, तुम सुनो । शृणुतात्, ईश्वर करे कि तू सुने ।

शृणुतम्, तुम दो सुनो ।	शृणवाणि, मैं सुनू ।	यहां ४१४ से गुण और २६ से अव् होते हैं
शृणुत, तुम सुनो ।	शृणवाव, हम दो सुने ।	
	शृणवाम, हम सुने ।	

---

(१) (४४१) से जो-सि को होवे ॥

५२६ ॥ ऋद्धनोः स्ये । ७ । २ । ७० । ऋतो हन्तेश्च स्यस्येट् । ह्वरिष्यति । ह्वरतु । अह्वरत् । ह्वरेत् ॥

ऋकारान्त धातु और हन् धातु से परे जो (१) स्य तिसको इट् का आगम होवे । ह्वरिष्यति — वह कुट् गत् । अह्वरत् वह कुटिलता करता हुआ ॥ ५२६ ॥ ह्वरतु (वह कुटिलता करे) ह्वरेत् (,,)

५२७ ॥ गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः । ७ । ४ । २९ । अर्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणो यकि यादावार्धधातुके लिङि च । ह्वर्यात् । अह्वार्षीत् । अह्वरिष्यत् । श्रु श्रवणे । १९ ॥

ऋ — गमन और संयोगादि ऋदन्त धातु को गुण होवे जब (२)यक वा (३) यादि (४) आर्धधातुक लिङ् परे हो तो । ह्वर्यात् — ईश्वर करे कि वह कुटिलता करे । अह्वार्षीत् — उसने कुटिलता की । अह्वरिष्यत् — जो वह कुटिलता करे । श्रु — सुनना १९ ॥ ५२७ ॥

५२८ ॥ श्रुवः शृ च । ३ । १ । ७४ । श्रुवः शृ इत्यादेशः स्यात् श्नुप्रत्ययश्च । शृणोति ॥

श्रु धातु को शृ आदेश होवे और उस से परे श्नु प्रत्यय भी होवे । शृणोति ११८ वह सुनता है ॥ ५२८ ॥

५२९ ॥ सार्वधातुकमपित् । १ । २ । ४ । अपित्सार्वधातुकं ङिद्वत् । शृणुतः ॥

(५) अपित् जो सार्वधातुक प्रत्यय सो ङित् के सदृश ४६१ होवे इस से शृणुतः में गुण न भया शृणुतः वे दो सुनते हैं ॥ ५२९ ॥

५३० ॥ हुश्नुवोः सार्वधातुके । ६ । ४ । ८७ । हुश्नुवोरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्योवर्णस्य यण् स्यादचि सार्वधातुके । शृण्वन्ति । शृणोषि । शृणुथः । शृणुथ । शृणोमि ॥

हु — (हवि को खाना) के और "श्नु प्रत्यय है अन्त में जिस के ऐसा जो अनेक अचों वाला अङ्ग" उस के "(६) असंयोग पूर्व" उवर्ण को यण् होवे अजादि सार्वधातुक परे रहे तब । शृण्वन्ति — वे सुनते हैं ॥ ५३० ॥

---

(१) "४२८" में आता है । (२) ७८१ में होगा । (३) य् है आदि में जिस के (४) आशीर्लिङ् । (५) जिस का प् इत् नहीं गया होवे । (६) संयोग जिसके पहिले नहीं है ।

गमिष्यति, वह जावेगा। लोट् में ५३२ से छ हुआ, गच्छतु, वह जावे। लङ् में अगच्छत्, वह गया। वि० लिङ् में गच्छेत्, वह जावे। आ० लिङ् में गम्यात्, ईश्वर करे कि वह जावे ॥ ५३५ ॥

५३६ ॥ पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु। ३। १। ५५। श्यन्-विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु। अगमत् अगमिष्यत् ॥ ॥ इति परस्मैपद प्रक्रिया ॥

श्यन् ६६३ विकरण (दिवादि गण के) पुष् (पुष्ट करना) आदि धातुओं से परे और द्युत्, (दीप्ति करना) आदि से परे और जिनका लृ (१) इत् गया है, उन से परे जो च्लि तिस को अङ् होवे परस्मैपद से। अगमत्, वह गया। अगमिष्यत्, ५३५ जो वह जावे ॥ ५३६ ॥ ॥ भ्वादिगण के परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ॥

॥ एध वृद्धौ ॥ १ ॥

५३७ ॥ टित आत्मनेपदानां टेरे। ३। ४। ७९। टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्। एधते ॥

आत्मनेपद में १—एध धातु बढना अर्थ में है, उस की साधन प्रक्रिया ऐसे है। टित जो लकार ३८८ उस के स्थान मे जो आत्मने पद सञ्ज्ञक (२) प्रत्यय उनकी टि को ए होवे (एध्+त) = ४१२ से = (एध+त) ४३७ ए हुआ। तब एधते, वह बढता है ॥ ५३७।

५३८। अतोङितः। ७ २। ८१। अतः परस्यङितामाकारस्य-इय् स्यात्। एधेते। एधन्ते ॥

अकार से परे जो ङित् प्रत्यय उसके आकार को इय् होवे। (३)एधेते, वेदो बढते हैं एधन्ते, (४१५) वे बढते हैं ॥ ५३८ ॥

५३९। थासः से। ३। ४। ८०। टितो लस्य थासः से स्यात्। एधसे। एधेथे। एधध्वे। अतोगुणे। एधे। एधावहे। एधामहे॥

टित् लकार के स्थान में जो थास् तिसको से आदेश होवे। एधसे, तू बढता है॥ एधेथे, तुम दो बढते हो। एधध्वे, तुम बढते हो। एध+ए (४)अतोगुणे से पर रूप, एधे, मैं बढता हू। एधावहे, ५३७। ४१५ हम दो बढते हैं। एधामहे, हम बढते हैं ॥ ५३९ ॥

---

(१)इत् सञ्ज्ञक। (२) आदेशरूप (३) यहां "एध+इय् ताम्" (एधेय् ताम्) "लोपो व्योर्वलि" से य् का लोप होने पर और ५३७ एधेते सिद्ध हुआ। (४)यहां पहिले एध+इ) ५३७ से = एध+ए।

	॥ प्रथम पुरुष ॥	॥ मध्यम पुरुष ॥	॥ उत्तम पुरुष ॥
लुङ् में	१ अशुश्रोत् उसने सुना	अशुश्रोः तूने सुना	अशुश्रवम् मैंने सुना
	२ अशुश्रुताम् उन दोनों ने	अशुश्रुतम् तुम दोनों ने	(१)अशुश्रुव हम दोनों ने ,,
	३ अशुश्रुवन् उनने	अशुश्रुत तुमने सुना	(२)अशुश्रुम हम ने
आशीर्लिङ् में	श्रूयात् वह सुने	श्रूयाः तू सुने	श्रूयासम् मैं सुनूं
	श्रूयास्ताम् वे दो ,,	श्रूयास्तम् तुम दो	श्रूयास्व हम दो सुनें
	श्रूयासुः वे ,,	श्रूयास्त तुम ,,	श्रूयास्म हम सुनें

आशीर्लिङ् में श्रूयात् (११८) इत्यादि करे कि वह सुने। लुङ् लकार में अश्रौषीत् (११३) से सिद्ध उसने सुना। लृङ् में अश्रोष्यत् जो वह सुने। गम् (गम्लृ) जाना (२) ॥ ५३२ ॥

५३३ ॥ इषुगमियमां छः । ७ । ३ । ७७ । एषां छः शिति । गच्छति । जगाम ॥

इषु इच्छा करनी । गम् जाना । यम् निवृत्त होना । इन धातुओं से परे शित् प्रत्यय होय तो इन तीनों के अन्त में होने वाले अक्षर को छ आदेश होवे । गच्छति वह जाता है । लिट् में ४८२, ४८१ जगाम वह गया ॥ ५३३ ॥

५३४ ॥ गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि । ६ । ४ । ९८ । एषामुपधाया लोपोऽजादौ क्ङिति न त्वङि । जग्मतुः । जग्मुः । जगमिथ, जगन्थ । जग्मथुः । जग्म । जगाम । जगम । जग्मिव । जग्मिम । गन्ता ॥

गम् जाना । हन् मारना । जन् (३) उत्पन्न होना । खन् खोदना । घस् खाना इन धातुओं की उपधा का लोप होवे जब अजादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे रहे तो परन्तु अङ परे हो तो नहीं । (४) जग्मतुः वे दो गये । जग्मुः वे गये । जगमिथ जगन्थ तू गया । जग्मथुः तुम दो गए । जग्म तुम गए । जगाम जगम मैं गया था । जग्मिव हम दो गए । जग्मिम हम गए । लुट में गन्ता ४ ४ से इट निषेध और ८१ ८९ इन से अनुस्वार पर सवर्ण हुए । वह जावेगा ॥ ५३४ ॥

५३५ ॥ गमेरिट् परस्मैपदेषु । ७ । २ । ५८ । गमेः सादेरार्धधातुकस्येट् परस्मैपदेषु । गमिष्यति । गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् ॥

गम् से परस्मैपद में (५) सादि आर्धधातुक परे हो तो इट् का आगम होवे ।

---

(१)पक्ष में अशुश्रुव । (२)पक्ष में अशुश्रुम । (३)पदा । (४)जगम् अतुस् तब गकार से परे अकार का लोप हुआ ११७ से जग्मतु सिद्ध भया । (५)स् है आदि में जिसके ।

गमिष्यति, वह जावेगा। लोट् में ५३३ से छ हुआ, गच्छतु, वह जावे। लङ् में अगच्छत्, वह गया। वि० लिङ् में गच्छेत्, वह जावे। आ० लिङ् में गम्यात्, ईश्वर करे कि वह जावे॥ ५३५॥

५३६॥ पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु। ३। १। ५५। श्यन्-विकरणपुषादेर्द्युतादेर्ॢदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु। अगमत् अगमिष्यत्॥ ॥ इति परस्मैपद प्रक्रिया॥

श्यन् ६६३ विकरण (दिवादि गण के) पुष् (पुष्ट करणा) आदि धातुओं से परे और द्युत्, (दीप्ति करना) आदि से परे और जिनका ॡ (१) इत् गया है, उन से परे जो च्लि तिस को अङ् होवे परस्मैपद में। अगमत्, वह गया। अगमिष्यत्, ५३५ जो वह जावे॥ ५३६॥ ॥ भ्वादिगण के परस्मैपदी धातु समाप्त हुए॥

॥ एध वृद्धौ॥ १॥

५३७॥ टित आत्मनेपदानां टेरे। ३। ४। ७९। टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्। एधते॥

आत्मनेपद में १—एध धातु बढना अर्थ में है, उस की साधन प्रक्रिया ऐसे है। टित जो लकार ३९८ उस के स्थान मे जो आत्मने पद सञ्ज्ञक (२) प्रत्यय उनकी टि को ए होवे (एध्+त)=४१२ से=(एध+त) ४३७ ए हुआ। तब एधते, वह बढता है॥ ५३७।

५३८। अतोङितः। ७ २। ८१। अत परस्यङितामाकारस्य इय् स्यात्। एधेते। एधन्ते॥

अकार से परे जो ङित् प्रत्यय उसके आकार को इय् होवे। (३)एधेते, वेदो बढते हैं एधन्ते, (४१५) वे बढते हैं॥ ५३८॥

५३९। थास से। ३। ४। ८०। टितो लस्य थासः से स्यात्। एधसे। एधेथे। एधध्वे। अतोगुणे। एधे। एधावहे। एधामहे॥

टित् लकार के स्थान में जो थास् तिसको से आदेश होवे। एधसे, तू बढता है॥ एधेथे, तुम दो बढते हो। एधध्वे, तुम बढते हो। एध+ए(४)अतोगुणे सें पर रूप, एधे, मैं बढता हू। एधावहे, ५३७। ४१५ हम दो बढते हैं। एधामहे, हम बढते हैं॥ ५३९॥

---

(१)इत् सञ्ज्ञक। (२) आदेशरूप (३) यहा "एध+इय् ताम्" (एधेय् ताम्) "लोपो व्योर्वलि" सें य् का लोप होने पर और ५३७ एधेते सिद्ध हुआ। (४)यहा पहिले एध+इ) ५३७ से=एध+ए।

५४० ॥ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः । ३ । १ ।३६। इजादेर्धातोर्गुरुमतोऽनृच्छत्यस्य आम् स्याल्लिटि।

इच् प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों में से कोई एक हो आदि में जिसके और ४७७ । ४७८ से गुरु संज्ञक स्वर वाला जो "ऋच्छ" को छोड़कर और कोई धातु उस से लिट् में आम् प्रत्यय होवे ॥ ५४० ॥

५४१ । आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य । १ । ३ । ६३ । आम् प्रत्ययो यस्मात् इत्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात्कृञोऽप्यात्मनेपदम् ।

५३८ ५४० से आम् प्रत्यय विधान किया है। जिस से उसे (१)आम् प्रत्ययान्त कहते हैं (यहां (२)अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है) अर्थात् आम् की प्रकृति के समान कृञ् धातु से भी आत्मनेपद होवे इस का यह "भाव" है कि "जिस धातु से आम् आया है यदि वह धातु आत्मने पदी हो तो कृञ् से भी आत्मने पद होवे नहीं तो नहीं आम् के आने से उसके आगे के प्रत्यय का ... से लुक होता है" ॥ ५४१ ॥

५४२ ॥ लिटस्तझयोरेशिरेच् । ३ । ४ । ८१ । लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेचौ स्तः । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे ॥

लिट् के स्थान में आदेश जो त और झ तिन को एश् और इरेच् आदेश क्रम से होते हैं एधाञ्चक्रे वह बढ़ा। एधाञ्चक्राते वे दो बढ़े। एधाञ्चक्रिरे, वे बढ़े। एधाञ्चकृषे तू बढ़ा। एधाञ्चक्राथे तुम दो बढ़े ॥ ५४२ ॥

५४३ । इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् । ८ । ३ । ७८ । इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः । एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास । एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे॥

---

(१) आम् प्रत्ययान्त (२)बहुव्रीहि समास दो प्रकार का है १म तद्गुण संविज्ञान (जहां जिन वाचक से पदार्थ का बोध हो सो उस में हो और तद्विशिष्ट पदार्थ का बोध अभीष्ट हो) यथा (लम्बकर्ण मानय लम्बे कान वाले को ला और दूसरा अतद्गुण संविज्ञान इस से विरुद्ध है यथा दृष्टसागर मानय (जिसने सागर देखा हो उसे ला ॥

(१) इणन्त अङ्ग से परे जो "षीध्व और लुङ्, लिट्" इन के धकार को ढकार होवे, एधाञ्चकृढ्वे, तुम बढे। एधाञ्चक्रे, मैं बढा। एधाञ्चकृवहे, हम दो बढे। एधाञ्चकृमहे, हम बढे। एधाम्बभूव, ५०१ और एधामास ये भी इसी काल के रूप हैं। लुट् में, एधिता, वह बढेगा। एधितारौ, वे दो बढेंगे। एधितारः, वे बढेंगे। एधितासे ५३९ तू बढेगा। एधितासाथे, तुम दो बढोगे। ५४३॥

५४४॥ धि च।८।२।२५। धादौ प्रत्यये सस्य लोपः। एधिताध्वे॥

ध् है, आदि में जिसके ऐसा प्रत्यय परे रहे तो स् का लोप होवे, एधिताध्वे, तुम बढोगे॥ ५४४॥

५४५॥ ह एति।७।४।५२। तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे। एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे।

तास् प्रत्यय के और अस् धातु के स् को ह् होवे, परन्तु जब एकार परे होय तो एधिताहे, मैं बढूंगा। एधितास्वहे, हम दो बढेंगे। एधितास्महे, हम बढेंगे। लृट् में एधिष्यते। एधिष्येते ५३८। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे, ५३९। एधिष्येथे, ५३८। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे। अर्थ इन सब के लुट् के समान हैं॥ ५४५॥

५४६॥ आमेतः।३।४।९०। लोट एत आम्। एधताम्। एधेताम्। एधन्ताम्।

लोट् लकार के स्थान में जो आदेश तिसका अवयव जो एकार ५३७ तिसको आम् होवे। एधताम्, वह बढे। एधेताम्, ५३८ वे दो बढें। एधन्ताम्, वे बढें॥ ५४६॥

५४७॥ सवाभ्यां वामौ।३।४।९१। सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वामौ स्तः। एधस्व। एधेथाम्। एधध्वम्।

स् और व् से परे जो लोट् का एकार तिस को क्रम से व और अम् होवें। एधस्व, तू बढे। एधेथाम्। ५४६। तुम दो बढो। एधध्वम् (५३७) तुम बढो॥ ५४७॥

५४८॥ एत ऐ।३।४।९३। लोडुत्तमस्य। एधै। एधावहै।

(१) इण् प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों में से कोई एक है, अन्त में जिस के॥

५४० ॥ इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ।३।१।३६। इजादिर्यो धातुर्गुरुमानृच्छत्यन्यस्तत आम् स्याल्लिटि।

इच् प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों में से कोई वर्ण हो आदि में जिसके और १००। १०८ से गुरु संज्ञक स्वर वाला हो "ऋच्छ" को छोड़कर और कोई धातु उस से लिट में आम् प्रत्यय होवे ॥ ३६ ॥

५४१ । आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य ।१।३।६३। आम् प्रत्ययो यस्मात् इत्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात्कृञोऽप्यात्मनेपदम् ।

४८९, ५० में आम् प्रत्यय विधान किया है। जिस से उसे (१)आम् प्रत्ययवत् कहते हैं (यहां (२)अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है) अर्थात् आम् की प्रकृति के समान कृञ् धातु से भी आत्मनेपद होवे इस का यह "भाव" है कि "जिस धातु से आम् आया है यदि वह धातु आत्मने पदी हो तो कृञ् से भी आत्मने पद होवे नहीं तो नहीं आम् के आने से उसके आगे के प्रत्ययका लुक होता है" ॥ ५४१ ॥

५४२ ॥ लिटस्तझयोरेशिरेच् । ३ । ४ । ८१ । लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेचौ स्तः । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राथे ॥

लिट् के स्थान में आदेश जो त और झ तिन को एश् और इरेच् आदेश क्रम से होते हैं एधाञ्चक्रे वह बढ़ा। एधाञ्चक्राते वे दो बढ़े। एधाञ्चक्रिरे, वे बढ़े। एधाञ्चकृषे तू बढ़ा। एधाञ्चक्राथे तुम दो बढ़े ॥ ५४२ ॥

५४३ । इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्। ८ । ३ । ७८। इण्णन्तादङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः ।एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे। एधाञ्चकृवहे । एधाञ्चकृमहे । एधाम्बभूव । एधामास । एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे॥

---

(१) आम् प्रत्ययान्त (२)बहुव्रीहि समास दो प्रकार का है १म तद्गुण संविज्ञान (जहां जिस समास से पदार्थ का बोध हो वो भी उस में हो और तद्भिन्न पदार्थका बोध अभीष्ट हो) यथा (लम्बकर्ण मानय लम्बे कान वाले को ला और दूसरा अतद्गुण संविज्ञान इस से विरुद्ध है यथा दृष्टसागर मानय (जिसने सागर देखा हो उस को ला ॥

(१) इणन्त अङ्ग से परे जो "षीध्व और लुङ्, लिट्" इन के धकार को ढकार होवे, एधाञ्चकृढ्वे, तुम बढे। एधाञ्चक्रे, मैं बढा। एधाञ्चकृवहे, हम दो बढे। एधाञ्चकृमहे, हम बढे। एधाम्बभूव, ५०१ और एधामास ये भी इसी काल के रूप हैं। लुट् में, एधिता, वह बढेगा। एधितारौ, वे दो बढेंगे + एधितारः, वे बढेंगे। एधितासे ५३९ तू बढेगा। एधितासाथे, तुम दो बढोगे। ५४३॥

५४४॥ धि च। ८। २। २५। धादौ प्रत्यये सस्य लोपः। एधिताध्वे॥

ध् है, आदि मे जिसके ऐसा प्रत्यय परे रहे तो स् का लोप होवे, एधिताध्वे, तुम बढोगे॥ ५४४॥

५४५॥ह एति। ७। ४। ५२। तासस्त्योः सस्य ह स्यादेति परे। एधिताहे। एधितास्वहे। एधितास्महे। एधिष्यते। एधिष्येते। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे। एधिष्येथे। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे।

तास् प्रत्यय के और अस् धातु के स् को ह् होवे, परन्तु जब एकार परे होय तो एधिताहे, मैं बढूगा। एधितास्वहे, हम दो बढेंगे। एधितास्महे, हम बढेंगे। लृट् मे एधिष्यते। एधिष्येते ५३८। एधिष्यन्ते। एधिष्यसे, ५३९। एधिष्येथे, ५३८। एधिष्यध्वे। एधिष्ये। एधिष्यावहे। एधिष्यामहे। अर्थ इन सब के लुट् के समान हैं॥ ५४५॥

५४६॥ आमेतः। ३। ४। ९०। लोट एत आम्। एधताम्। एधेताम्। एधन्ताम्।

लोट् लकार के स्थान में जो आदेश तिसका अवयव जो एकार ५३७ तिसको आम् होवे। एधताम्, वह बढे। एधेताम्, ५३८ वे दो बढें। एधन्ताम्, वे बढें॥ ५४६॥

५४७॥ सवाभ्यां वामौ। ३। ४। ९१। सवाभ्यां परस्य लोडेतः क्रमाद्वामौ स्तः। एधस्व। एधेथाम्। एधध्वम्।

स् और व् से परे जो लोट् का एकार तिस को क्रम से व और अम् होवे। एधस्व, तू बढ। एधेथाम्। ५४६। तुम दो बढो। एधध्वम् (५३७) तुम बढो॥ ५४७॥

५४८॥ एत ऐ। ३। ४। ९३। लोडुत्तमस्य। एधै। एधावहै।

---

(१) इण् प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों में से कोई एक है, अन्त में जिस के॥

एधामहे। (भाटऽच) ऐधत। ऐधेताम। ऐधन्त। ऐधथाः। ऐधेथाम्।
ऐध॰म्। ऐधे। ऐधावहि। ऐधामहि।

लोट् प्रकार के उत्तम पुरुष के ए को ऐ होय। एधै मैं बढ़ूं। एधावहै हम दो बढ़ें। एधामहै हम बढ़ें। लङ् में ४०२ से आट् आ+एधत ३१२ से वृद्धि होने पर ऐधत वह बढ़ा। ऐधेताम् वे दो बढ़े। ऐधन्त ३१२ वे बढ़े। ऐधथाः तू बढ़ा। ऐधेथाम् तुम दो बढ़े। ऐधध्वम् तुम बढ़े। ऐधे मैं बढ़ा। ऐधावहि हम दो बढ़े। ऐधामहि हम बढ़े॥ ५४८॥

५४९॥ लिङः सीयुट्। ३। ४। १०२। सलोपः। एधेत। एधेया
ताम्।

लिङ को सीयुट् का आगम होवे ५११ से स् का लोप हुआ और ३१० से य् का लोप होने पर। एधेत वह बढ़े। एधेयाताम् वे दो बढ़ें॥ ५४९॥

५५०। झस्य रन्। ३। ४। १०५। लिङः। एधेरन्। एधेथाः। एधे
याथाम्। एधेध्वम्।

लिङ् के झ को रन् होय। एधेरन् वे बढ़ें। एधेथाः तू बढ़। एधेयाथाम् तुम दो बढ़ो। एधेध्वम् तुम बढ़ो॥ ५५०॥

५५१॥ इटोऽत्। ३। ४। १०६। लिङादेशस्य। एधेय। एधेवहि।
एधेमहि।

लिङ् प्रकार में जो उत्तम पुरुष का इट् तिसको अकारादेश। एधेय मैं बढ़ूं। एधेवहि हम दो बढ़ें। एधेमहि हम बढ़ें॥ ५५१॥

५५२॥ सुट् तिथोः। ३। ४। १०७। लिङन्तयोः सुट्। यलोपः।
आर्धधातुकत्वात् सलोपो न। एधिषीष्ट। एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्।
एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि।
एधिषीमहि। ऐधिष्ट। ऐधिषाताम्।

[illegible] त् थ् को सुट् का आगम होय [illegible] (१) [illegible] ११० से [illegible] य् का लोप [illegible] आर्धधातुक [illegible] होने से [illegible] सकार का लोप नहीं होता। [illegible]
(१) [illegible]

(१) [illegible]

प्रथम पु०	एधिषीयास्ताम्, ईश्वर करे कि वेदो वढे / एधिषीरन् ५५० " वे "	उत्तम पुरुष	एधिषीय ईश्वर करे मैं वढूं। / एधिषीवहि, ईश्वरक० हमदो वढें / एधिषीमहि ईश्वरक० हमवढें॥
मध्यम पुरुष	एधिषीष्ठाः " तू वढ / एधिषीयास्थाम् " तुमदो वढो / एधिषीध्वम् " तुम "		

लुङ् मे ऐधिष्ट (४७२) (४६५) (४६६) (४२७) वह वढा ऐधिषाताम् वेदो वढे।

५५३॥ आत्मनेपदेष्वनतः। ७। १। ५। अनकारात्परस्यात्मनेपदेषु झस्यात्स्यात्। ऐधिषत। ऐधिष्ठाः। ऐधिषाथाम्। एधिढ्वम्। ऐधिषि॥ ऐधिष्वहि। ऐधिष्महि। ऐधिष्यत। ऐधिष्येताम्। ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः। ऐधिष्येथाम्। ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये। ऐधिष्यावहि। ऐधिष्यामहि॥ कमु कान्तौ॥ २॥

आत्मनेपद में यदि झ् अकार से परे न हो तो उसे अत् होवे। ऐधिषत वे वढे।

मध्यम पुरुष	ऐधिष्ठाः, तू वढा। / ऐधिषाथाम्, तुमदो वढे / (१)ऐधिढ्, तुम वढे।	उत्तम पुरुष	ऐधिषि, मैं वढा। / ऐधिष्वहि, हम दो वढे / ऐधिष्महि, हम वढे

॥ लृङ् में ॥

॥ प्रथम पुरुष ॥	॥ मध्यम पुरुष ॥	॥ उत्तम पुरुष ॥
ऐधिष्यत, यदि वह वढे	ऐधिष्यथा, जो तू वढ	ऐधिष्ये, जो मैं वढू।
(२)ऐधिष्येताम् वेदोवढे	ऐधिष्येथाम्, तुमदो वढो	ऐधिष्यावहि, जो हमदो वढे
ऐधिष्यन्त, वे दो वढे	ऐधिष्यध्वम्, तुम वढो	ऐधिष्यामहि, हम वढे।

२। धा० कमु (कम्) इच्छा करनी॥

५५४॥ कमेर्णिङ्। ३। १। ३०। स्वार्थे। ङित्वात्तङ्। कामयते।

कम् धातु से परे णिङ् प्रत्यय स्वार्थ में होवे। "४९६" से णिङ् प्रत्ययान्त (काम्) की धातु संज्ञा हुई। णिङ् प्रत्यय ङित् है, इसी लिये ४०१ से आत्मने पद होता है॥ कामयते, में ४८२ से वृद्धि, और ४१४ अय् होते हैं वह इच्छा करता है। ५५४॥

५५५॥ अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु। ६। ४। ५५। णेरय्। कामयाञ्चक्रे। आयादय-इतिणिङ् वा। चकमे। चकमाते। चकमिरे।

(१)"५४४" (५४३) (२)५२८, ५१८, ४५७, ॥

एधामहे । (आटश्च) ऐधत । ऐधेताम । ऐधन्त । ऐधथा । ऐधेथाम् । ऐधध्वम् । ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि ।

लोट् लकार के उत्तम पुरुष के ए को ऐ होय । एधै मैं बढ़ूं । एधावहै हम दो बढ़ें । एधामहै हम बढ़ें । लङ में ४०२ से आट् आ+एधत २१२ से वृद्धि होने पर ऐधत वह बढ़ा । ऐधेताम् वे दो बढ़े । ऐधन्त ४११ वे बढ़े । ऐधथाः तू बढ़ा । ऐधेथाम् तुम दो बढ़े । ऐधध्वम् तुम बढ़े । ऐधे मैं बढ़ा । ऐधावहि हम दो बढ़े । ऐधामहि हम बढ़े ॥ ५४८ ॥

५४९ ॥ लिङः सीयुट् । ३ । ४ । १०२ । सलोपः । एधेत । एधेयाताम् ।

लिङ को सीयुट् का आगम होवे ५११ से स् का लोप हुआ और ५१० से य् का लोप होने पर । एधेत वह बढ़े । एधेयाताम् वे दो बढ़ें ॥ ५४९ ॥

५५० । झस्य रन् । ३ । ४ । १०५ । लिङः । एधेरन् । एधेथाः । एधेयाथाम् । एधेध्वम् ।

लिङ के झ को रन् होवे । एधेरन् वे बढ़ें । एधेथाः तू बढ़ । एधेयाथाम् तुम दो बढ़ो । एधेध्वम तुम बढ़ो ॥ ५५० ॥

५५१ ॥ इटोऽत् । ३ । ४ । १०६ । लिङादेशस्य । एधेय । एधेवहि । एधेमहि ।

लिङ लकार में जो उत्तम पुरुष का इट् तिसको अकार होवे । एधेय मैं बढ़ूं । एधेवहि हम दो बढ़ें । एधेमहि हम बढ़ें ॥ ५५१ ॥

५५२ ॥ सुट् तिथोः । ३ । ४ । १०७ । लिङस्तयोः सुट् । यलोपः । आर्धधातुकत्वात् सलोपो न । एधिषीष्ट । एधिषीयास्ताम् । एधिषीरन् । एधिषीष्ठाः । एधिषीयास्थाम् । एधिषीध्वम् । एधिषीय । एधिषीवहि । एधिषीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिषाताम् ।

त् थ् के त थ को सुट् का आगम होय यदि वे (त् थ्) लिङादेश के अवयव हों तो ५१० से सीयुट् हुआ था—५१० से उसके य् का लोप हुआ । ५३८ से आशिष् अर्थ में लिङ आर्धधातुक है इसीलिये ५११ से स का लोप नहीं हुआ । अब एध+सी+स्त—(१) एधिषीष्ट इत्यादि रूप बनते हैं ॥ ५५२ ॥

(१) ६६९—७० ।

५५८ ॥ णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः । ७ । ४ । १ । चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः ।

५५६ चङ् परे है जिसके ऐसी णि परे हो तो अङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है॥ इस से "काम्+अत" = "कम्+अत" ॥ ५५८ ॥

५५९ ॥ चङि । ६ । १ । ११ । अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाच: प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य ।

"चङ् परे होतो" (१)अनभ्यास धातुका जो अवयव एकाच् (२) प्रथम भाग उसे द्वित्व होवे परन्तु यदि (३) अजादि हो तो द्वितीय (दूसरे) एकाच भाग (अग्र) को द्वित्व होवे। इससे और ४२२ "कम्+अत" = "ककम्+अत"। ४८२ से "चकम्+अत" हुआ।५५९

५६०॥ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे। ७ । ४ । ९३ । चङ्परे णौ यदङ्ग तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्यान्नावग्लोपेऽसति ।

चङ् परे है जिसके ऐसीणि जिस अङ्ग से परे हो उसका(४) जो "लघुपरे है जिसके" ऐसा अभ्यास उसको (५) "सन् ७४६ परे होते जो कार्य होता है" वैसा कार्य होवे परन्तु यदि णिको निमित्तमान किसी अक् प्रत्याहार सम्बन्धी वर्ण का लोप न हुआ हो तव ॥ ५६० ॥

५६१ ॥ सन्यतः । ७ । ४ । ७९ । अभ्यासस्यात इत्सनि ।

सन् परे रहते अभ्यास के अकार को इकार होवे । इससे "चकम्+अत" = चिकम्+अत ॥ ५६१ ॥

५६२ ॥ दीर्घोलघो । ७ । ४ । ९४ । लघोरभ्यासस्य दीर्घ: सन्वद्भावविषये । अचीकमत। णिङभावपक्षे ।

"सन्वद्भाव ५६० के विषय में" (जिसमें ५६० से सन्वद्भाव हुआ हो) अभ्यासके लघु को दीर्घ होवे । तब "चिकम्+अत" = "चीकम्+अत" ४५१ से अट् अचीकमत उसने इच्छा की जिस पक्ष में णिङ् नहीं होता ४९७ उस पक्ष में अगला वार्त्तिक लगता है॥ ५६२ ॥

५६३ ॥ कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः । अचकमत । अकामयिष्यत। अकमिष्यत । अयगतौ । ३ । अयते ।

---

(१) जिस को द्वित्त नहीं हुआ । (२)एक स्वर वाला। (३)अच् (स्वर) है आदिमें जिस के। (४) अङ्गका १४६ । (५) अभ्यास को ।

चकमिषे । चकमाथे । चकमिध्वे, चकमिढ्वे । चकमे । चकमिवहे । चकमिमहे । कामयिता । कामयितासे । कमिता । कामयिष्यते । कमिष्यते । कामयताम् । अकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट । कमिषीष्ट ।

जब आम् ४९८ । अन्त । आलु । आय्य । इत्नु । और इष्णु । इन प्रत्ययों में से कोई प्रत्यय धातु से परे हो तब णि को अय् होवे। कामयाञ्चक्रे उसने इच्छा की। (१)आर्धधातुक में ४८० के नियमानुसार णिङ् विकल्प करके होता है। तब चकमे। चकमे उसने इच्छा की ॥ ५५५ ॥

॥ प्रथम पुरुष ॥	॥ मध्यम पुरुष ॥	॥ उत्तम पुरुष ॥
	चकमिषे तूने इच्छा की ।	चकमे मैंने इच्छा की ।
चकमाते उन दोनों ने इच्छा की	चकमाथे तुम दोनों ने इच्छा की	चकमिवहे हम दोनों ने इच्छा की
चकमिरे, उनने इच्छा की	(२)चकमिढ्वे / चकमिध्वे तुमने इच्छा की	चकमिमहे हमने इच्छा की

लुट् { कामयिता / कमिता । } वह इच्छा करेगा | कामयितासे तू इच्छा करेगा ।

लृट् { कामयिष्यते / कमिष्यते । } वह इच्छा करेगा | लोट् में कामयताम् वह इच्छा करे । लङ् में अकामयत उस ने इच्छा की ॥

विधि लिङ् में कामयेत वह इच्छा करे ॥

आ लिङ् में { कामयिषीष्ट । कमिषीष्ट । } ईश्वर करे की वह इच्छा करे ।

५५६ ॥ णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् । ३ । १ । ४८ । ण्यन्तात् श्र्यादिभ्यश्च च्लेश्चङ् कर्त्रर्थे लुङि । कामि चङ् इति स्थिते ।

(३) ण्यन्त से परे और श्रि (श्रिञ्) - सेवा करनी । द्रु - दौड़ना जाना । स्रु - बहना । इन धातुओं से परे जो च्लि (५४१) तिस को "कर्त्ता अर्थ में लुङ् हो तो" चङ् होवे । (कामि + चङ्) ऐसे स्थित होने पर ॥ ५५६ ॥

५५७ ॥ णेरनिटि । ६ । ४ । ५१ । अनिडादावार्धधातुके णेर्लोपः ।

इट् ११० आदिमें नहीं जिसके ऐसा आर्धधातुक परे हो तो णि का लोप होता है। इस से णि का लोप होने पर "कामि + चङ्" = काम् + चङ्" ॥ ५५७ ॥

---

(१) लिट् लुट् लृट् आ लिङ् लुङ् लङ् ये छः प्रकार आर्धधातुक हैं । यहां
(२) जिस पक्ष में इट् को छोड़ इण् प्रत्याहार लिया है वहां चकमिध्वे और जिस पक्ष में सामान्य इण् प्रत्याहार का ग्रहण है वहां चकमिढ्वे । (३) णि है अन्त में जिसके ॥

५५८ ॥ णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः । ७ । ४ । १ । चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः ।

५५६ चङ् परे है जिसके ऐसी णि परे हो तो अङ्ग की उपधा को ह्रस्व होता है ॥ इस से "काम्+अत" = "कम्+अत" ॥ ५५८ ॥

५५९ ॥ चङि । ६ । १ । ११ । अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य ।

"चङ् परे होते" (१)अनभ्यास धातुका जो अवयव एकाच् (२) प्रथम भाग उसे द्वित्व होवे परन्तु यदि (३) अजादि हो तो द्वितीय (दूसरे) एकाच भाग (अश) को द्वित्व होवे। इससे और ४२२ "कम्+अत" = "ककम्+अत" । ४८२ से "चकम्+अत" हुआ ।५५९

५६० ॥ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे । ७ । ४ । ९३ । चङ्परे णौ यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्यान्नावग्लोपेऽसति ।

चङ् परे है जिसके ऐसी णि जिस अङ्ग से परे हो उसका(४) जो "लघुपरे है जिसके" ऐसा अभ्यास उसको (५) "सन् ७४६ परे होते जो कार्य होता है" वैसा कार्य होवे परन्तु यदि णिको निमित्तमान किसी अक् प्रत्याहार सम्बन्धी वर्ण का लोप न हुआ हो तब ॥ ५६० ॥

५६१ ॥ सन्यतः । ७ । ४ । ७९ । अभ्यासस्यात इत्सनि ।

सन् परे रहते अभ्यास के अकार को इकार होवे । इससे "चकम्+अत" = चिकम्+अत ॥ ५६१ ॥

५६२ ॥ दीर्घो लघोः । ७ । ४ । ९४ । लघोरभ्यासस्य दीर्घः सन्वद्भावविषये । अचीकमत। णिङभावपक्षे ।

"सन्वद्भाव ५६० के विषय में" (जिसमें ५६० में सन्वद्भाव हुआ हो) अभ्यास के लघु को दीर्घ होवे । तब "चिकम्+अत" = "चीकम्+अत" ४५१ से अट् अचीकमत उसने इच्छा की जिस पक्ष में णिङ् नहीं होता ४९७ उस पक्ष में अगला वार्त्तिक लगता है॥ ५६२ ॥

५६३ ॥ कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः । अचकमत । अकामयिष्यत। अकमिष्यत । अयगतौ । ३ । अयते ।

---

(१) जिस को द्वित्त नहीं हुआ । (२)एक स्वर वाला । (३)अच् (स्वर) है आदिमें जिस के । (४) अङ्गवा १४६ । (५) अभ्यास को ।

आम् से परे णि को यक ही ऐसा कहना चाहिये। यक्षकमत ५१८ इससे इच्छा की अक्षामयिष्यत अक्षमिष्यत ४८१ यदि वह इच्छा करे।१। अय् (अय) धातु गमन अर्थ में है उसका लट में ४११ ५१० अयते वह जाता है॥ ५६३ ॥

५६४ ॥ उपसर्गस्यायतौ। ८। २। १९। अयतावुपसर्गस्थरेफस्य लत्वम्। प्लायते। पलायते।

अय् धातु परे हो तो (१) उपसर्गस्थ रेफ को लकार हो वे। प्र+अयते (२)प्लायते वह भागता है। परा+अयते=पलायते=वह भागता है॥ ५६४॥

५६५ ॥ दयायासश्च। ३। १। ३७। एभ्य आम् लिटि। अया-ञ्चक्रे। अयिता। अयिष्यते। अयताम्। आयत। अयेत। अयिषीष्ट॥

दय=देना। अय=जाना। आस=बैठना। इन तीन धातुओं से पर आम् होवे लिट में। अयाञ्चक्रे=वह गया। लुट् में अयिता=वह जावेगा। लृट में अयिष्यते=वह जावेगा। लोट् में अयताम्=वह जावे। लङ में आयत=वह गया। वि लिङ् में अयेत वह जावे। अयिषीष्ट ११२ है ईश्वर वह जावे॥ ५६५॥

५६६ ॥ विभाषेटः। ८। ३। ७९। इणः परो य इट् तत परेषां षीध्वलुङ्लिटां धस्य वा ढः। अयिषीढ्वम्। अयिषीध्वम्। आयिष्ट। आयिढ्वम्। आयिध्वम्। आयिष्यत। द्युत, दीप्तौ। ४। द्योतते।

इण् प्रत्याहार से परे जो इट् उससे परे जो "षीध्वम् और लुङ् वा लिट् इन के ध् को विकल्प करके ढ् होवे। अयिषीढ्वम्" अयिषीध्वम=ईश्वर करे कि तुम जाओ। लुङ् में आयिष्ट ४०१ ४६६ वह गया। (३)आयिढ्वम् आयिध्वम् तुम गए। आयिष्यत जो वही जावे४। द्युत् (द्युत) धातु दीप्ति (प्रकाश) अर्थ में है। (४)द्योतते वह चमकता है॥५६६॥

५६७ ॥ द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम्। ७। ४। ६७। अनयोरभ्या-सस्य सम्प्रसारणं स्यात्। दिद्युते।

द्युत=चमकना। ष्वापी=सोलाना। इन दो धातुओं के अभ्यास ४११ को सम्प्रसारण २०५ होवे दिद्युते=वह चमका॥ ५६७॥

---

(१) उपसम में जो वर्तमान है। (२) पर से दीर्घ करना। (३) ये दोनों लङ् के मध्यम [illegible] बचन के रूप हैं। (४) ४१२ से शप् और ४०८ से गुण। (५) यह लिङ्लृङ् का लिङ् में रूप है॥

५६८॥ द्युद्भ्योलुङि । १ । ३ । ६१ । द्युतादिभ्य. परस्मैपदं वा लुङि । पुषादित्यङ् । अद्युतत् । अद्योतिष्ट । अद्योतिष्यत । एवं श्विता, वर्णे । ५ । ञिमिदा, स्नेहने । ६ । ञिष्विदा, स्नेहनमोचनयो. । ७ । मोहनयोरित्येके । ञिक्ष्विदा, चेत्येके । रुच, दीप्तावभिप्रीतौच । घुट, परिवर्त्तने । ८ । शुभ, दीप्तौ । १० । क्षुभ, सचलने । ११ णभ तुभ हिंसायाम् । १२ । १३ ।

स्रंसु, भ्रंसु, ध्वंसु, अवस्रंसने, । १४, १५, १६ । ध्वंसु, (१) गतौ । १७ । स्रम्भु विश्वासे । १८ । वृतु वर्त्तने । १९ । वर्तते । ववृते । वर्त्तिता । (२) द्युतादि धातुओं से परे लुङ् लकार में परस्मैपद विकल्प करके होवे ५३६ वें सूत्र से च्लि ४६५ को अङ् हुआ । अद्युतत्, अद्योतिष्ट (४६६, ४२७, ४६३) वह चमका । अद्योतिष्यत जो वह चमके । इसी तरह (प्रकार) से आगे लिखे धातु सिद्ध किये जाते हैं। ५। श्विता (श्वित्) = श्वेत होना । ६ । ञिमिदा (मिद्) = चिकना करना । ७ । ञिष्विदा-(ष्विद्) = चिकना वा त्यागकरना। कई एक आचार्यों, के मत में यह धातु चिकना करना वा मोहित करना अर्थ में है। कई आचार्य ञिष्विदा के स्थान में ञिक्ष्विदा धातु कहते है ८ । रुच (रुच्) = दीप्ति वा प्रीति करना । ९ । घुट (घुट्) घोटना । १० । शुभ (शुभ्) शोभित होना । ११ । क्षुभ (क्षुभ) = घवरा के कापना । १२ । णभ (णभ्) मारना । १३ । तुभ (तुभ्) = हिंसा करनी । १४ । स्रंसु (स्रंस्) = गिरना । १५ । भ्रंसु (भ्रंस्) = गिरना । १६ ॥ ध्वंसु (ध्वंस्) = गिरना । १७ । और ध्वंसु (ध्वंस्) = चलना । १८। स्रम्भु (स्रम्भ्) = विश्वास करना । १९ । वृतु (वृत्) = होना । लट् में वर्त्तते वह है । लिट् मे ववृते ४४२, वह था। लुट् में वर्त्तता "४२७, ४७९" वह होगा ॥ ५६८ ॥

५६९ । वृद्भ्य. स्यसनोः । १ । ३ । ९२ । वृतादिभ्य. पञ्चभ्यो वा परस्मैपदं स्ये सनि च ।

वृत् (वृतु) इत्यादि ५ पाच धातुओं से परे परस्मैपद विकल्प से होवे स्य ४२९ और सन् ७४६ परे (३)होतो ॥ ५६९ ॥

५७० ॥ न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः । ७ । २ । ५९ । वृतुवृधुशृधुस्यन्दूभ्यः सादेरार्धधातुकस्येट् न तङानयोरभावे । वर्त्स्यति, वर्त्तिष्यते । वर्त्त

(१) "च" इत्यधिक. क्वचित्पाठ (२) द्युत धातु है आदिमें जिन के । (३) स्य, वा-सन् स्थापन करने का विषय होतो ।

आम् से परे लिट् को अट् ही ऐसा कहना चाहिये । अचकमत ५१८ उसने इच्छा की अकामयिष्यत अकमिष्यत ४८१ यदि वह इच्छा करे । ३ । अय् (अय) धातु गमन अर्थ में है उसका लट् में ४११ ३१० अयते वह जाता है ॥ ५६३ ॥

५६४ ॥ उपसर्गस्यायतौ । ८ । २ । १९ । अयतावुपसर्गस्थरेफस्य लत्वम् । प्लायते । पलायते ।

अय् धातु परे हो तो (१) उपसर्गस्थ रेफ को लकार हो वे । प्र + अयते (२)प्लायते वह भागता है । परा + अयते = पलायते = वह भागता है ॥ ५६४ ॥

५६५ ॥ दयायासश्च । ३ । १ । ३७ । एभ्य आम् लिटि । अयाञ्चक्रे । अयिता । अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिषीष्ट ॥

दय = देना । अय = जाना । आस = बैठना । इन तीन धातुओं से परे आम् होवे लिट् में । अयाञ्चक्रे = वह गया । लुट् में अयिता = वह जावेगा । लृट् में अयिष्यते = वह जावेगा । लोट् में अयताम् = वह जावे । लङ् में आयत = वह गया । वि लिङ् में अयेत वह जावे । अयिषीष्ट ५१२ से ईश्वर करे वह जावे ॥ ५६५ ॥

५६६ ॥ विभाषेटः । ८ । ३ । ७९ । इणः परो य इट् ततः परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य वा ढः । अयिषीढ्वम् । अयिषीध्वम् । आयिष्ट । आयिढ्वम् । आयिध्वम् । आयिष्यत । द्युत, दीप्तौ । ४ । द्योतते ।

इण् प्रत्याहार से परे जो इट् उससे परे जो 'षीध्वम्' और लुङ् वा लिट् इन के ध् को विकल्प करके ढ् होवे । अयिषीढ्वम्" अयिषीध्वम् = ईश्वर करे कि तुम जाओ । लुङ् में आयिष्ट ४७२ ५६१ वह गया । (३)आयिढ्वम् आयिध्वम् तुम गए । आयिष्यत जो वही जावे । । द्युत् (द्युत) धातु दीप्ति (प्रकाश) अर्थ में है । (४)द्योतते वह चमकता है ॥ ५६६ ॥

५६७ ॥ द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् । ७ । ४ । ६७ । अनयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं स्यात् । दिद्युते ।

द्युत = चमकना । ञि स्वापी = सोनाना । इन दो धातुओं के अभ्यास ४११ को सम्प्रसारण २०५ होवे दिद्युते = वह चमका ॥ ५६७ ॥

---

(१) उपधम में जो वर्तमान है । (२) पर में दीर्घ करना । (३) ये दोनों लुङ् के मध्यम बहु वचन के रूप हैं । (४) ४११ से शप् और ४०८ से गुण । (५) यह लिट्लप् का लिट् में रूप है ॥

तॄ, पार करना। फल, फलना। भज, सेवा करनी। त्रप्, लज्जा करणी। इन ४ चार धातुओं के अकार को एकार होवे और अभ्यास का लोप भी होवे, जब कित् लिट् ४८० और सेट् (इट् युक्त) थल् परे होतो। तब लिट् में त्रेपे वह लज्जित हुआ था। लुट् में ५०५ से इट् विकल्प से हुआ तब त्रपिता "वा" त्रप्ता, वह लज्जित होगा। लृट् में भी ५०५ त्रपिष्यते, वा त्रप्स्यते वह लज्जित होगा॥

लोट् में त्रपताम्, वह (१) लज्जित होवे वि० लिङ् में त्रपेत=वह ,,	लङ् मे अत्रपत, वह लज्जित हुआ।

आ० लिङ् में त्रपिषीष्ट ५०५ त्रप्सीष्ट ईश्वर करे कि वह लज्जित होवे। लुङ् में अत्रपिष्ट वा अत्रप्त (५०५) वह लज्जित हुआ। लृङ् में ५०५ अत्रपिष्यत, वा अत्रप्स्यत यदि वह लज्जित होवे। लघु कौमुदीमें,भ्वादिगण के आत्मनेपदी धातुसमाप्तहुए ५७२॥

५७३॥ श्रिञ् सेवायाम्। १। श्रयति, श्रयते। शिश्राय, शिश्रिये। श्रयिता। श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। श्रयतु, श्रयताम्। अश्रयत्, अश्रयत। श्रयेत्, श्रयेत। श्रीयात्, श्रयिषीष्ट। चङ्। अशिश्रियत्, अशिश्रियत। अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत। भृञ् भरणे। २। भरति, भरते। बभार। बभ्रतु। बभ्रु। बभर्थ। बभृव, बभृम। बभ्रे। बभृषे। भर्त्तासि। भर्त्तासे। भरिष्यति, भरिष्यते। भरतु, भरताम्। अभरत्, अभरत। भरेत्, भरेत।

अब जिन धातुओं कि साधन प्रक्रिया लिखेंगे उन में ४०५, ४०६ इन सूत्रो से आत्मनेपद ओर परस्मैपद दोनों प्रकार के प्रत्यय होते हैं। १। श्रिञ्,सेवा करणी। इस का लट् में श्रयति, श्रयते ४१३, ४१४, और २६, वह सेवा करता है। लिट् मे शिश्राय, वा शिश्रिये, वह सेवा करता हुआ।

॥ परस्मैपद ॥	॥ आत्मनेपद ॥	
लुट्में श्रयिता,	श्रयिता, वहसेवाकरेगा	लङ् मे अश्रयत् वा अश्रयत वह सेवाकरता हुआ।
लृट् में, श्रयिष्यति,	श्रयिष्यते ,, ,,	
लोट्, में श्रयितु,	श्रयताम्, ,, करे	
वि० लिङ्में श्रयेत्,	श्रयेत, ,, ,,	

आ० लिङ् में, श्रीयात् ५१२, वा श्रयिषीष्ट ५५२, ईश्वर करे कि वह सेवाकरे। लुङ्

(१) शरमिन्दा।

ताम् । अवर्त्तत । वर्त्तेत । वर्त्तिषीष्ट । अवर्त्तिष्ट । अवर्त्स्यत्, अवर्त्तिष्यत । दद दाने । २ । ददते ।

(१) लङ और (२)धातु के अभाव में वृतु होगा । वृधु = बढ़ना । शृधु = कुत्सित शब्द करना । और स्यन्दू = बहना । इन चार धातुओं से परे (३)सादि आर्धधातुक को इट् का आगम ४२० न होवे । इस लिये लृट् में (४)(वर्त्स्यति वर्त्तिष्यते वह होगा । लोट में वर्त्तताम् वह वर्ते । लङ् में अवर्त्तत वह था विधि लिङ् में वर्त्तेत = वह होवे । आशीर्लिङ् में वर्त्तिषीष्ट = १५२ ईश्वर करे कि वह होवे । लुङ में अवर्त्तिष्ट वह था । लृङ् में ११८, ५० अवर्त्स्यत् अवर्त्तिष्यत यदि वह होवे । २ । दद (दद्) देना इसमें ददते वह देता है ॥ ११८ ॥

५०१ ॥ न शसददवादिगुणानाम् । ६ । ४ । १२६ । शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन विहितोयोऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न । दददे । दददाते । दददिरे । ददिता । ददिष्यते । ददताम् । अददत । ददेत । ददिषीष्ट । अददिष्ट अददिष्यत । त्रपूष् लज्जायाम् । २१ । त्रपते ।

शस = हिंसा करनी । दद = देना । और १ आदि धातु । और गुण शब्द करके विहित जो अकार "१४०" । इन सब को एकार और अभ्यास का लोप न होवे । (४८८) । दददे = उसने दिया । दददाते = उन दोनों ने दिया । दददिरे = उनने दिया ॥ [illegible] ॥

लुट् में ददिता = वह देगा	लोट् में ददताम् = वह देवे ।
लृट् में ददिष्यते वह देगा ।	लङ् में अददत देता हुआ ।

आशि लिङ् में ददिषीष्ट ईश्वर „ „ { लुङ् में अददिष्ट उसने दिया ।
वि „ ददेत वह देवे । { लृङ् „ अददिष्यत यदि वह देवे ।

२१ । त्रपूष् (त्रप) लज्जा करनी । त्रपते वह लज्जा करता है ॥ ५०१ ॥

५०२ ॥ तॄफलभजत्रपश्च । ६ । ४ । १२२ । एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि सेटि थलि च । त्रेपे । त्रपिता, त्रप्ता । त्रपिष्यते, त्रप्स्यते । त्रपताम् । अत्रपत । त्रपेत । त्रपिषीष्ट, त्रप्सीष्ट । अत्रपिष्ट, अत्रप्त । अत्रपिष्यत, अत्रप्स्यत ॥ इत्यात्मनेपद प्रक्रिया ।

---

(१) प्रत्याहार से आत्मनेपद सम्बन्ध प्रत्ययों का (२) शानच् और कानच् का । (३)स् से आदि जिसके (४)११८ से परस्मैपद ५० से इट् निषेध ।

भृषीष्ट, ईश्वर करे वह पाले। भृषीयास्ताम्, वे दो पालें। लुङ् में अभार्षीत् ४५१, ४६५, ४६६, वह पालता हुआ॥ ५७५॥

५७६॥ ह्रस्वादङ्गात्। ८। २। २७। सिचोलोपोझलि। अभृत। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। हृञ् हरणे (३) हरति, हरते। जहार, जह्रे। जहर्थ। जह्रिव। जह्रिम। जह्रिषे। हर्त्ता। हरिष्यति, हरिष्यते। हरतु, हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्, हरेत। ह्रियात्, हृषीष्ट। ह्रिषीयास्ताम्। अहार्षीत्। अहृत। अहरिष्यत्, अहरिष्यत॥

धृञ् धारणे। ४। धरति, धरते। णीञ् प्रापणे ५ नयति, नयते। डुपचष् पाके ६ पचति, पचते। पपाच, पेचिथ, पपक्थ। पेचे पक्ता। भज सेवायाम् ७ भजति, भजते। बभाज भेजे। भक्ता भक्ष्यति, भक्ष्यते अभाक्षीत्, अभक्त। अभक्षाताम्। यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु ८। यजति, यजते। झल् परे हो तो ह्रस्व अङ्ग से परे जो सिच् तिसका लोप होवे। अभृत, उसने पाला। लृङ् मे अभरिष्यत्, अभरिष्यत जो (यदि) वह पाले। हृञ् (हृ) हरलेना। हरति, हरते, वह हर लेता है जहार, जह्रे, उसने हर लिया। जहर्थ, तूने हर लियाथा जह्रिव, हम दोनें हर लिया। जह्रिम, हमने हर लिया था। जह्रिषे, तूने हर लिया था।

हर्त्ता हरिष्यति हरिष्यते	वह हर लेगा	हरतु, हरताम्, वह हर लेवे अहरत्, अहरत, वह हरता हुआ	

वि० लिङ् मे हरेत्, हरेत वह हरले। ह्रियात् (५७४, ३३१) वा हृषीष्ट (५४८ ५५२) ईश्वरकरे कि वह हरले। हृषीयास्ताम् ईश्वरकरे कि वेदो हरले। अहार्षीत्, अहृत ५७६, वह हरता हुआ। अहरिष्यत्, अहरिष्यत यदि वह हरले। ४। धृञ् (धृ) धारण करणा धरति, धरते, वह धारण करता है। ५। णीञ् (णी), लेजाना। नयति, नयते, वह लेजाता है। ६। डुपचष् (पच्), पकाना। पचति, पचते, वह पकाताहै। पपाच, उसने पकाया पेचिथ, पपक्थ, तूने पकाया। पेचे ५८८, उसने पकाया। पक्ता, वह पकावेगा। ७। भज (भज्), सेवा करणी। भजति, भजते, वह सेवा करता है। बभाज ६८७, भेजे ५७२, उसने सेवा करी। भक्ता, भक्ष्यति, भक्ष्यते, वह सेवा करेगा। अभाक्षीत्, ४९७ अभक्त, ५०७, वह सेवा करता हुआ। अभक्षाताम्, उन दोनें सेवा को॥ ८। यज (यज्), देवताओ की पूजा करणी वा सग करणा वा दान करणा। यजति, यजते, वह पूजा करता है॥ ५७६॥

५७७॥ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्। ६। १। १७। वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं लिटि। इयाज।

वच्यादि (वच् आदिक ५७८) और ग्रह आदि ६६८ धातुओं के अभ्यास को ४२१ सम्प्रसारण होवे परन्तु जब लिट् लकार परे हो तब। (५७७, २७८, ४८३,) इयाज, उसने पूजाकी॥ ५७६॥

में ४५६ से क्सि को अट् किया तब अशिश्रियत् अशिश्रियत वह सेवा करता हुआ। लङ् में अश्रयिष्यत् अश्रयिष्यत यदि वह सेवा करे ॥ ५०३॥

२। भृञ् (भृ) पालना करना। इस के रूप आगे में देखो—

॥ परस्मै पद ॥		॥ आत्मने पद ॥	
लट्	भरति।	भरते	वह पालता है।
लिट्	(१)बभार।	(२)बभ्रे	वह पालता हुआ।
लुट्	(३)भर्तासि।	भर्तासे	तू पालेगा।
लृट्	भरिष्यति।	भरिष्यते	वह पालेगा।
लोट्	भरतु।	भरताम्	वह पाले।
लङ्	अभरत्।	अभरत	उसने पाला।
वि लिङ्	भरेत्।	भरेत्	वह पाले।

५०४ ॥ रिङ् शयग्लिङ्क्षु। ७। ४। २८। शे यकि यादावार्ध-धातुके लिङि ऋतोरिङ्। रीङि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न। भ्रियात्॥

ऋकार को रिङ् हो श १८० वा यक् ७८१ परे रहे अथवा यादि (यकार है आदिमें जिस के ऐसा 'आर्धधातुक का लिङ्' (आ लिङ्) परे हो तब। (४) प्रकृत रीङ् के होने पर पुनः रिङ के विधान करने की सामर्थ्य से ५१२ से दीर्घ नहीं होता। भ्रियात् ईश्वर करे कि वह पालना करे॥ ५०४॥

५०५ ॥ उश्च। १। २। १२। ऋवर्णान्तात्परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि। भृषीष्ट। भृषीयास्ताम् अभार्षीत्।

ऋवर्णान्त से परे झल् है आदि में जिस के ऐसा जो लिङ् और सिच् वे कित् होवें तङ् (आत्मनेपद) परे हो तब। जब कित् होने पर ४६१ से गुण का निषेध किया तब

---

(१) (इस के आगे) बभ्रतुः उन दोने पालना करी। बभ्रुः—उनने पालना की। बभर्थ—तूने पालना की बभ्रथुः—तुम दोने पालना की। बभर—उसने पालना की। यह भी जानने। (२) इस के आगे बभृषे—तूने पालना करी। (३) म पुरु से भर्ता वह पालेगा।

(४) इसका यह भाव है यदि कोई यहां फिर ५१२ से दीर्घ को कहे तो उसके प्रति यह समाधान है। कि अष्टाध्यायी में क्रम से इस के पूर्व सूत्र में ११९८ से रीङ् की अनुवृत्ति इस सूत्र में कर लेते और ५१२ दीर्घ विधि की इसमें भी न करना पड़ता और इस रिङ् के पढ़ने में लाघव भी होता पुनः रिङ विधान क्यों किया उसका विधान ही सामर्थ्य कल्पना करता है कि यहां दीर्घ नहीं होता।

भृषीष्ट, ईश्वर करे वह पाले। भृषीयास्ताम्, वे दो पाले। लुङ् मे अभार्षीत् ४५१, ४६५, ४६६, वह पालता हुआ॥ ५७५॥

५७६॥ ह्रस्वादङ्गात्। ८। २। २७। सिचोलोपोझलि। अभृत। अभरिष्यत्, अभरिष्यत। हृञ् हरणे (३) हरति, हरते। जहार, जह्रे। जहर्थ। जह्रिव। जह्रिम। जह्रिषे। हर्ता। हरिष्यति, हरिष्यते। हरतु, हरताम्। अहरत्, अहरत। हरेत्, हरेत। ह्रियात्, हृषीष्ट। ह्रिषीयास्ताम्। अहार्षीत्। अहृत। अहरिष्यत्, अहरिष्यत॥

धृञ् धारणे। ४। धरति, धरते। णीञ् प्रापणे ५ नयति, नयते। डुपचष् पाके ६ पचति, पचते। पपाच, पेचिथ, पपक्थ। पेचे पक्ता। भज सेवायाम् ७ भजति, भजते। बभाज भेजे। भक्ता भक्ष्यति, भक्ष्यते अभाक्षीत्, अभक्त। अभक्षाताम्। यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु ८। यजति, यजते। झल् परे हो तो ह्रस्व अङ्ग से परे जो सिच् तिसका लोप होवे। अभृत, उसने पाला। लृङ् मे अभरिष्यत्, अभरिष्यत जो (यदि) वह पाले। हृञ् (हृ) हर-लेना। हरति, हरते, वह हर लेता है जहार, जह्रे, उसने हर लिया। जहर्थ,तूने हर लियाथा जह्रिव, हम दोनें हर लिया। जह्रिम, हमने हर लिया था। जह्रिषे, तूने हर लिया था।

हर्ता हरिष्यति हरिष्यते	वह हर लेगा	हरतु, हरताम्, वह हर लेवे अहरत्, अहरत, वह हरता हुआ	

वि० लिङ् मे हरेत्, हरेत वह हरले। ह्रियात् (५७४, ३३१) वा हृषीष्ट (५४९ ५५७) ईश्वरकरे कि वह हरले। हृषीयास्ताम् ईश्वरकरे कि वेदो हरले। अहार्षीत्, अहृत ५७६, वह हरता हुआ। अहरिष्यत्, अहरिष्यत यदि वह हरले। ४। धृञ् (धृ) धारण करणा धरति, धरते, वह धारण करता है। ५। णीञ् (णी), लेजाना। नयति, नयते, वह लेजाता है। ६। डुपचष् (पच्), पकाना। पचति, पचते, वह पकाताहै। पपाच, उसने पकाया पेचिथ, पपक्थ, तूने पकाया। पेचे ५८८, उसने पकाया। पक्ता, वह पकावेगा। ७। भज (भज्), सेवा करणी। भजति, भजते, वह सेवा करता है। बभाज ६८७, भेजे ५७२,उसने सेवा करी। भक्ता, भक्ष्यति, भक्ष्यते, वह सेवा करेगा। अभाक्षीत्, ४९७ अभक्त, ५०७, वह-सेवा करता हुआ। अभक्षाताम्, उन दोने सेवा की॥ ८। यज (यज्), देवताओ की पूजा करणी वा सग करणा वा दान करणा। यजति, यजते, वह पूजा करता है॥ ५७६॥

५७७॥ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्। ६। १। १७। वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारणं लिटि। इयाज।

वच्यादि (वच् आदिक ५७८) और ग्रह आदि ६६९ धातुओ के अभ्यास को ४२१ सम्प्रसारण होवे परन्तु जब लिट् लकार परे हो तब। (५७७, २७८, ४८३,) इयाज, उसने पूजाकी॥ ५७६॥

में ५५६ से भिन्न को यह क्रिया तब अशिशयिषत् अशिशयिषत "वह सेवा करता हुआ । लङ में अशिश्रयिष्यत् अशिश्रयिष्यत यदि वह सेवा करे ॥ ५०२॥

२ । भृञ् (भृ) पालना करना । इस के रूप यहां में देखो—

	॥ परस्मै पद ॥	॥ आत्मने पद ॥	
लट्	भरति ।	भरते	वह पालता है ।
लिट्	(१)बभार ।	(२)बभ्रे	वह पालता हुआ ।
लुट्	(३)भर्तासि ।	भर्तासे	तू पालेगा ।
लृट्	भरिष्यति ।	भरिष्यते,	वह पालेगा ।
लोट्	भरतु ।	भरताम्	वह पाले ।
लङ	अभरत् ।	अभरत	उसने पाला ।
वि लिङ	भरेत् ।	भरेत्	वह पाले ।

५०४ ॥ रिङ् शयग्लिङ्क्षु । ७ । ४ । २८ । शे यकि यादावार्धधातुके लिङि च ऋतोरिङ् । रीङि प्रकृते रिङ्विधानसामर्थ्याद्दीर्घो न । भ्रियात् ॥

ऋकार को रिङ् हो जब श (५८० का यक् ७८१ परे रहे अथवा यादि (यकार है आदिमें जिस के ऐसा "आर्धधातुक का लिङ" (आ लिङ) परे हो तब । (४) प्रकृत रीङ के स्थान पर पुनः रिङ के विधान करने की सामर्थ्य से ५१२ से दीर्घ नहीं होता । भ्रियात् ईश्वर करे कि वह पालना करे ॥ ५०४ ॥

५०५ ॥ उश्च । १ । २ । १२। ऋवर्णात्परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि । भृषीष्ट । भृषीयास्ताम् अभार्षीत् ।

ऋवर्णान्त से परे झल् है आदि में जिस के ऐसा जो लिङ और सिच् वे कित् होंय तङ (आ यादार) पर हो तब । जब कित् होने पर ४६१ से गुण का निषेध किया तब

---

(१) (इस का आगे) बभ्रतुः उन दो ने पालना करी । बभ्रुः—उननें पालना की । बभर्थ—तूने पालना की बभ्रव—हम दोनों पालना की । बभृम—हमने पालना की । यह भी जानना । (२) इस के आगे बभृषे—तूने पालना करी । (३)म पुरुष में भर्ता । वह पालेगा ।

(४) इसका यह भाव है यदि कोई यहां फिर ५१२ से दीर्घ को कहे तो उसके प्रति यह समाधान है । कि अष्टाध्यायी के क्रम से इस के पूर्व्वले सूत्र में ११९८ से रीङ की अनुवृत्ति इस सूत्र में कर सकते और ५१२ दीर्घ विधि को स्मरण भी न करना पड़ता और जब रिङ् न पढ़ने से कार्य भी होता पुनः रिङ विधान क्यों किया उसका विधान ही सामर्थ्य कल्पना करता है कि यहां दीर्घ नहीं होता ।

ऊहे। वोढा। वक्ष्यति। अवाक्षीत्। अवोढाम्। अवाक्षुः। अवाक्षीः। अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म। अवोढ। अवक्षाताम्। अवक्षत। अवोढाः। अवक्षाथाम्। अवोढ्वम्। अवक्षि। अवक्ष्वहि। अवक्ष्महि।

॥ इति भ्वादयः ॥

सह्, सहना। वह (लेजाना)। इन दो धातुओं के अवर्ण को ओकार होवे जब ढ् का लोप ५८१ से हो चुका हो। उवोढ, तू लेगया था। ऊहे, वह लेगया वह्+ता=२७१, ५८०, ७५, ५८१, ५८२, वोढा, वह ले जाएगा। वह्+स्यति=(२७१, ५७९, १६३) वक्ष्यति, वह लेजावेगा। अवाक्षीत्, वह लेगया। अवोढाम्, ५८२ वे दो लेगए। अवाक्षुः, वे लेगए। अवाक्षीः, तू लेगया। अवोढम्, तुम दो लेगए। अवोढ, तुम लेगए। अवाक्षम्, मैं लेगआ। अवाक्ष्व, हम दो लेगए। अवाक्ष्म, हम लेगए।

आत्मनेपद के लुङ् मे (२७१, ५८०, ७५, ५८१, ५८२) अवोढ वह लेगया। अवक्षाताम् (२७१,५७९,) वे दो लेगए। अवक्षत (५५३) वे लेगए। अवोढाः, तू लेगया। अवक्षाथाम्, तुम दो लेगए। अवोढ्वम्, तुम लेगए। अवक्षि, मैं लेगया। अवक्ष्वहि, हम दो लेगए। अवक्ष्महि, हम लेगए। लघुकौमुदी में भ्वादिगण के धातु समाप्त हुए॥ ५८२ ॥

॥ भ्वादि गण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ–अदादयः ॥

॥ अद भक्षणे ॥ १ ॥

५८३ ॥ अदिप्रभृतिभ्यः शपः। २। ४। ७२। लुक् स्यात्। अत्ति। अत्तः। अदन्ति। अत्सि। अत्थ। अत्थ। अद्मि। अद्वः। अद्मः।

अब, अद् है आदिमें जिन के उन धातुओं का वर्णन किया जाता है। १। अद्=खाना। अद् आदि धातुओं से परे जो शप् ४१४ तिस का लुक होवे। अद्+शप्+तिप्=(५८३) अद्+ति ८७ से द् को त् पुनः, "अत्ति" वह खाता है। अत्तः (वेदोखाते हैं)। (१) अदन्ति, वे खाते हैं। अत्सि ८७, तू खाता है। अत्थः, तुम दो खाते हो। अत्थ, तुम खाते हो। अद्मि, मैं खाता हु। अद्वः, हम दो खाते है। अद्मः, हम खाते हैं॥ ५८३ ॥

---

(१) ४१५।

५७८ ॥ वचिस्वपियजादीनां किति । ६ । १ । १५ । वचिस्वप्योर्यजादीनां च सम्प्रसारणं किति । ईजतुः ईजुः । इयजिथ, इयष्ठ । ईजे यष्टा ॥

वच् बोलना स्वप् सोना । और यज् आदि जो धातु उनको सम्प्रसारण होवे कित् (१) प्रत्यय परे होय तब इस से (२) ईजतुः उन दोने पूजा की । ईजुः उनने पूजा की । इयजिथ इयष्ठ तूने पूजा करी । (३) ईजे उसने पूजा की । यष्टा १२८ से ष और ७१ से ट् मिला ने से यष्टा वह यज्ञ करेगा ॥ ५७८ ॥

५७९ ॥ षढोः कः सि । ८ । २ । ४१ । षस्य ढस्य च कः स्यात्सकारे परे । यक्ष्यति, यक्ष्यते । इज्यात्, यक्षीष्ट । अयाक्षीत्, अयष्ट । वह प्रापणे ।८। वहति, वहते उवाह ।ऊहतुः । ऊहुः । उवहिथ ।

सकार परे हो तो, ष् और ढ् को क होवे । प्रथम १२८ से ष् पुनः १०८ से उसको क (१६६) यक्ष्यति यक्ष्यते वह यज्ञ करेगा । इज्यात् १०८ २०८, वा यक्षीष्ट ईश्वर करे कि वह पूजा करे । अयाक्षीत् (४८१ १२८, १०८) वा अयष्ट ५ ० उसने यज्ञ किया ॥ ८ । वह (वह्) लेजाना । वहति वहते वह ले जाता है । लिट् लकार में उवाह (५००, २०८ ४८१) वह लेगया था । ऊहतुः १०८ से दो ले गये थे । ऊहुः वे लेगए । उवहिथ तू ले गया था ॥ ५७९ ॥

५८० ॥ झषस्तथोर्धोऽधः । ८ । २ । ४ । झषः परयोस्तयोर्धः स्यान्नतु दधातेः ॥

(४) धा धातु के अवयव से भिन्न जो झष् तिस से परे प्रत्यय का अवयव जो त् वा थ् तिस को ध् होवे वह्+थ—(११) से इट् का अभाव । २०१ से ह् को ढ् और १८ से थ् को ध् और उसे ७१ से ढ् हुआ तब ॥ १८ ॥

५८१ ॥ ढो ढे लोपः । ८ । ३ । १३ ॥

जब ढ् परे रहे तब पूर्व ढ् का लोप होता है ॥ ५८१॥

५८२ ॥ सहिवहोरोदवर्णस्य ।६ । ३ । ११२ । ढलोपे । उवोढ

(१) ५८ से कित् होता है । (२) इसकी साधन प्रक्रिया ऐसी है प्रथम यज्+अतुस्—(५०८ २०८ ४२२, ६२) ईजतुः । (३) आत्मनेपद में (५०८ २०८, आदि और ५३२) इस सूत्र से इजे । (४) झुषाम् धारण करना वा पालना ।

ऊहे। वोढा। वक्ष्यति। अवाक्षीत्। अवोढाम्। अवाक्षुः। अवाक्षीः। अवोढम्। अवोढ। अवाक्षम्। अवाक्ष्व। अवाक्ष्म। अवोढ। अवक्षाताम्। अवक्षत। अवोढाः। अवक्षाथाम्। अवोढ्वम्। अवक्षि। अवक्ष्वहि। अवक्ष्महि। ॥ इति भ्वादयः ॥

सह्, सहना। वह (लेजाना)। इन दो धातुओं के अवर्ण को ओकार होवे जब ढ् का लोप ५८१ से। हो चुका हो। उवोढ, तू लेगया था। ऊहे, वह लेगया वह्+ता=२७१, ५८०, ७५, ५८१, ५८२, वोढा, वह ले जाएगा। वह्+स्यति=(२७१, ५७८, १६३) वक्ष्यति, वह लेजावेगा। अवाक्षीत्, वह लेगया। अवोढाम्, ५८२ वे दो लेगए। अवाक्षुः, वे लेगए। अवाक्षीः, तू लेगया। अवोढम्, तुम दो लेगए। अवोढ, तुम लेगए। अवाक्षम्, मैं लेगआ। अवाक्ष्व, हम दो लेगए। अवाक्ष्म, हम लेगए।

आत्मनेपद के लुङ् में (२७१, ५८०, ७५, ५८१, ५८२) अवोढ वह लेगया। अवक्षाताम् (२७१,५७८,) वे दो लेगए। अवक्षत (५५३) वे लेगए। अवोढाः, तू लेगया। अवक्षाथाम्, तुम दो लेगए। अवोढ्वम्, तुम लेगए। अवक्षि, मैं लेगया। अवक्ष्वहि, हम दो लेगए। अवक्ष्महि, हम लेगए। लघुकौमुदी में भ्वादिगण के धातु समाप्त हुए॥ ५८२ ॥

॥ भ्वादि गण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ—अदादयः ॥

+॥ अद भक्षणे ॥ १ ॥+

५८३ ॥ अदिप्रभृतिभ्यः शपः । २ । ४ । ७२ । लुक् स्यात्। अत्ति। अत्तः। अदन्ति। अत्सि। अत्थः। अत्थ। अद्मि। अद्वः। अद्मः।

अब, अद् है आदिमें जिन के उन धातुओं का वर्णन किया जाता है। १। अद्=खाना। अद् आदि धातुओं से परे जो शप् ४१४ तिस का लुक् होवे। अद्+शप्+तिप्=(५८३) अद्+ति ८७ से द को त् पुन, "अत्ति" वह खाता है। अत्तः (वेदोखाते हैं)। (१) अदन्ति, वे खाते हैं। अत्सि ८७, तू खाता है। अत्थः, तुम दो खाते हो। अत्थ, तुम खाते हो। अद्मि, मैं खाता हु। अद्वः, हम दो खाते हैं। अद्मः, हम खाते हैं॥ ५८३ ॥

---

(१) ४१५।

५८४ ॥ लिट्यन्यतरस्याम् । २ । ४ । ४० । अदो घस्लृ स्यात् । जघास । उपधालोप । घस्य षत्वम् ॥

लिट् लकार में अद् धातु को घस्लृ (घस्) आदेश विकल्प करके होवे। इस से अद्=घस्=घस्+णल्=(४२ ४२२ ४८२ ४८३) जघास=उसने खाया। द्विवचन में ५११ स घस् की उपधा के अ का लोप होता है तब घ को ८० से *क् होता है ॥ ५८४ ॥

५८५ ॥ शासिवसिघसीनां च । ८ । ३ । ६ । इण्कुभ्यामेषां सस्य षः । जक्षतुः । जक्षुः । जघसिथ । जक्षथुः । जक्ष । जघास । जघस । जक्षिव । जक्षिम । आद । आदतुः । आदुः ॥

इण् प्रत्याहारान्तर्गतवर्ण वा कवर्ग (क् ख् ग् घ् ङ्) से परे शास् (शिक्षाकरनी) वस् (बसना) घस (खाना) इन तीन धातुओं के स् को ष् होवे। जक्षतुः=वे दो खागए। जक्षुः=वे खात हुए। जघसिथ=तूने खाया। जक्षथुः (तुम दो ने खाया) जक्ष (तुमने खाया) जघास ४८३ जघस ४८ =मैंने खाया। जक्षिव (हम दो ने खाया) जक्षिम (हमने खाया) ५८४ के अनुसार दूसरे पक्ष में आद (४०१) आदतुः आदुः सर्व इनके पूर्व वत् जानने।

५८६ ॥ रुदस्यत्तिव्ययतीनाम् । ७ । २ । ६६ । अद् ऋ व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात् । आदिथ । अत्ता । अत्स्यति । अत्तु । अत्तात् । अत्ताम् । अदन्तु ॥

अद् (खाना) ऋ (चलना) व्येञ् (आच्छादन करना) इन तीन धातुओं से परे जो थल् उस को नित्यही इट् (इ) होवे। आदिथ=तूने खाया। लुट् में अत्ता ८०=वह खायगा। लृट् मे अत्स्यति=वह खायगा। लोट् में (५८० ४४०, ८०) अत्तु=वह खाय। अत्तात् ४१८ इत्यादि करे वह खाय। अत्ताम्=वे दो खावे अदन्तु=वे खावें ॥ ५८६ ॥

५८७ ॥ हुझल्भ्यो हेर्धिः । ६ । ४ । १०१ । अद्धि । अत्तात् । अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ॥

हु=(होम करना वा खाना) धातु और † झलन्त धातुओं से परे जो 'हि ४४१' तिसको धि होवे। अद्धि=तू खावे। अत्तात् ४१० इत्यादि करे कि तू खावे। अत्तम् (तुम दो खाओ) अत्त (तुम खाओ) अदानि मैं खाऊं। अदाव (हम दो खावें) अदाम (हम खावें) ॥ ५८७ ॥

---

* घ् को क् होता है। † झल प्रत्याहारान्तर्गतवर्णों में से कोई वर्ण है अन्त में जिस के ॥

५८८॥ अदः सर्वेषाम्। ७। ३। १००। अदोऽपृक्तसार्वधातुकस्याट् स्यात्। आदत्। आत्ताम्। आदन्। आदः। आत्तम्। आत्त। आदम्। आद्व। आद्म। अद्यात्। अद्याताम्। अद्युः। अद्यात्। अद्यास्ताम्। अद्यासुः॥

सब व्याकरण के आचार्यों के मत मे, अद् धातु से परे (१) अपृक्त सार्वधातुक हो तो उसे अट् का आगम होवे। आदत् ४७२ = उसने खाया। (२) आत्ताम् = उन दो ने खाया। आदन् = उनने खाया। आदः (४७२, ५८८, १२०, १०८) = तूने खाया। आत्तम् = तुम दो ने खाया। आत्त = तुमने खाया। आदम् = मैंने खाया। आद्व ४४८ = हम दोने खाया। आद्म = हमने खाया। या वि० लिङ् से अद्यात् ४५५ वह खावे। अद्याताम् = वे दो खावें। अद्युः (४५८, ५२१) = वे खावें। अद्यात् २७१। ईश्वर करे वह खावे। अद्यास्ताम् = ईश्वर करे कि वे दो खावें। अद्यासुः = वे खावें॥ ५८८॥

५८९॥ लुङ्सनोर्घस्लृ। २। ४। ३७। अदः। अङ्। अघसत्। आत्स्यत्। हन हिंसागत्योः। २। हन्ति॥

जब लुङ् और सन् ७४६। परे हो तो अद् धातु को घस्लृ (घस्) आदेश होवे। च्लि ४६५ को ५३६ से अङ् हुआ। तब। अघसत् = वह खाता हुआ। आत्स्यत् = यदि वह खावे। २। हन् (मारना) वा (जाना) हन्ति (५८३, ९२, ९३) = वह मारता है॥ ५८९॥

५९०॥ अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति। ६। ४। ३७। अनुनासिकान्तानामेषां लोपः क्ङिति झलि। यमिरमिनमिगमिहनिमन्यतयोऽनुदात्तोपदेशाः। तनुक्षणुक्षिणुऋणुतृणुघृणुवनुमनुतनोत्यादयः। हतः। घ्नन्ति। हंसि। हथः, हथ। हन्मि। हन्वः। हन्मः। जघान। जघ्नतुः। जघ्नुः॥

(३) अनुदात्तोपदेश जो धातु हैं और वन् (मागना) तन् (फैलाना) इत्यादि जो धातु हैं ये यदि (४) अनुनासिकान्त हों तो इन के अनुनासिक का लोप होता है। जब झलादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे हो तो। यम् (निवृत्त होना) रम् (क्रीडा करणे) नम् (नमस्कार करणे) गम् (जाना) हन् (चलना, मारना) और (५) मन्य (मानना जानना) ये छः

(१) एक अल् रूप वाले प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं (१९२ में देखो। (२) ४७२, ८७॥ (३) उपदेश मे अनुदात्त जो धातु है। (४) अनुनासिक वर्ण है अन्त में जिन के॥ (५) दिवादि गण का मन् धातु॥

धातु अनुनासिकान्त और – उपदेश में अनुदात्त १ ४ हैं। तन् (फैलना) क्षणु (मारना) क्षिणु (मारना) ऋणु (जाणु) – जाना। तृणु – खाना। घृणु (चमकना) वन् (मांगना) मन (मानना) ये आठ ८ धातु तन् इत्यादि अनुनासिकान्त हैं। तब हन् + तस् – ११८ से कित् और १८ से यहां न् का लोप करने पर। हतः सिद्ध हुआ वे दो मारते हैं। घ्नन्ति (४११ ११४ १ ८, ८२, ८१) – वे मारते हैं। हंसि ८२ तू मारता है। हथः १८० – तुम दो मारते हो। हथ – तुम मारते हो। हन्मि – मैं मारता हूं। हन्वः – हम दो मारते हैं। हन्मः – हम मारते हैं। अघान (१ ८, ४८२ ४८१) – उसने मारा। अघ्नताम् ११४ – उन दो ने मारा। अघ्नन् (उनने मारा) ॥ १८ ॥

५६१ ॥ अभ्यासाच्च । ७ । ३ । ५५ । हन्तेर्हस्य कुत्वम् । जघनिथ । जघन्थ । जघ्नथुः । जघ्न । जघान । जघन । जघ्निव । जघ्निम । हन्ता । हनिष्यति । हन्तु । हतात् । हताम् । घ्नन्तु ॥

अभ्यास से परे हन् धातु के ह् को कवर्ग होवे। जघनिथ (१११ ११) जघन्थ तू ने मारा। जघ्नथुः (११४) तुम दोन मारा। जघ्न तुमने मारा। जघान वा (१) जघन (मने मारा) जघ्निव १ ८ हम दोने मारा। जघ्निम ११४ हमनें मारा।

{ लुट में हन्ता १ ४ वह मारेगा }
{ लृट में हनिष्यति ११६ }

लोट् में। हन्तु हताम् (४१८ १८) इत्यादि करे वह मारे। हताम् १८ वे दो मारें। घ्नन्तु (११४ १ ८, ८२ ८१) वेमारें॥ १८१ ॥

५६२ ॥ हन्तेर्जः ६ । ४ । ३६ । हौ ॥

जब हि परे हो तब "हन् धातु को "ज आदेश होवे ॥ हन् + हि – ज + हि जब ४४२ से हि का लोप पाया तब ॥ १८२ ॥

५६३ । असिद्धवदत्राभात् । ६ । ४ । २२ । इत उर्ध्वमापाद समाप्तेराभीयम्। समानाश्रये तस्मिन् कर्तव्ये तदसिद्धम्। इति जस्या सिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जहि। हतात्। हतम्। हत। हनानि। हनाव। हनाम। अहन्। अहताम्। अघ्नन्। अहः। अहतम्। अहत। अहनम्। अहन्व। अहन्म। हन्यात् ॥

---

(१) (४८४ ४८२ ४८१)।

इस सूत्र से लेकर ६ छठे अध्याय के ४ चतुर्थ पाद की समाप्ति पर्य्यन्त जितने सूत्र हैं वे सभी आभीय सज्ञा वाले हैं। जब एक आभीय का कार्य किसी निमित्त को मान कर प्रयोग में हो चुका हो और दूसरे आभीय का कार्य उसी निमित्त को मान उसी प्रयोग में होने लगे तो प्रथम आभीय का कार्य असिद्ध हो जावे। (१)इस से ज ५९२ के असिद्ध होने पर हि का लुक् नही होता। जहि, तू मार। हतात् ४३८, ५९० ईश्वर करे तू मारे। हतम्, तुम दो मारो। हत, तुम मारो। हनानि, मैं मारूं। हनाव, हम दो मारें। हनाम, हम मारें। लङ् में, अहन् (४५२, १९३) उसने मारा। अहताम् ५९० उन दो ने मारा। अघ्नन्=उन ने मारा। अहन्=तूने मारा। अहतम्=तुम दो ने मारा। अहत ५९० तुम ने मारा। अहनम् (मैं ने मारा) अहन्व=हम दोने मारा अहन्म। हमने मारा। हन्यात् ४५५=वह मारे।

५९४ ॥ आर्धधातुके। २। ४। ३५। इत्यधिकृत्य ॥

सम्भव के होने पर (२)जिनकार्यों का आर्धधातुक निमित्त हो वहा इस का अधिकार है।

५९५ ॥ हनो वध लिङि। २। ४। ४२॥

(३) आर्धधातुक लिङ् परे हो तो हन् धातु को वध आदेश होवे ॥५९५॥

५९६ ॥ लुङि च। २। ४। ४३। वध्यात्। वध्यास्ताम्। अवधीत्। अहनिष्यत्। यु मिश्रणामिश्रणयो॰। ३॥

और जब लुङ् लकार परे हो तब भी हन् को वध ५९५ आदेश होवे। वध्यात्। (३३२)=ईश्वर करे कि वह मारे। वध्यास्ताम्=ईश्वर करे कि वे दो मारें। अवधीत् (४७३, ४७४)=उसने मारा। अहनिष्यत् "५२६" जो वह मारे। ३ यु (मिलाना वा अलग करणा) ॥ ५९६ ॥

५९७ ॥ उतो वृद्धिर्लुकि हलि। ७। ३। ८९। लुग्विषये उतो वृद्धि॰ पिति हलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य। यौति। युत। युवन्ति। यौषि। युथ। युथ। यौमि। युव॰ युम। युयाव। यविता। यविष्यति। यौतु। युतात्। अयौत्। अयुताम्। अयुवन्। युयात्। इहवृद्धिर्न। "भाष्ये"

---

(१) जहि, ऐसे स्थित होने पर, हि, का अतोहे: से लोप नहीं होता क्योंकि ज ५९२ से असिद्ध है। जैसे कि ५९२ सूत्र ६। ४। ३६। प्रकृति प्रत्यय को निमित्तमान जिस प्रयोग में हुआ है उसी प्रयोग में वही निमित्तमान ४४२सूत्र ६। ४। १०५ से हि का लुक् पाया तो (ज) ५९२ से असिद्ध होगया तब अकारान्त के अभाव से हि का ४४२ से लुक् नही होता। (२) या सूत्रों का। (३) आशिष् में लिङ् ॥

पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्नेति व्याख्यानात्।युयाताम् । युयु । यूयात्। यूयास्ताम् । ययासु । अयावीत । अयविष्यत् । या प्रापणे । ४। याति। यात । यान्ति । ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात । अयाताम् ॥

युष् के विषय में (१)(अष् है) आदि में जिस के ऐसे पित् (प् है इत् जिसका) सार्व धातुक के परे रहते उकार को वृद्धि होवे परन्तु अभ्यस्त संज्ञक को न होवे। यु+शप्+तिप् (१८१ १८०) यौति वह मिलाता है युत' वेदो मिलाते हैं युवन्ति २१४ से उवङ् वे मिलाते हैं। यौषि(तू मिलाता है)युथ' तुमदो मिलाते हो युथ तुम मिलातेहो। यौमि मैं मिलाता हूं। युव' हमदो मिलाते हैं। युम' हम मिलाते हैं।युयाव(१८६ २६) वह मिलाता "हुआ"(था)। यविता (४२० ४१४ २६) वह मिलावेगा(ऐसेही) यविष्यति, वह मिलावेगा। यौतु (१८१ १८१)वह मिलावे। युतात् ईश्वर करे कि वह मिलावे। अयौत् (१८१ । १८१ । ४५२)—उसने मिलाया। अयुताम्—उन दो ने मिलाया (२)अयुवन्—उनने मिलाया। २१४ । विधि लिङ् में "युयात्" (४५१ ४५४ ४५५, ४५२)—वह मिलावे। यहां युयात् में १८० से वृद्धि नहीं होती क्योंकि महाभाष्य में पतञ्जलि जी ने 'पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्न" (पित् जो है सो ङित् नहीं होता और ङित् जो है सो पित् नहीं होता) यह कहा है तो इस महर्षि के वचन से यासुट को ४५४ सूत्र से ङित् कहा है पुन' वह पित् नहीं होसक्ता और पित् रूप निमित्त के न होने से १८० सूत्र की प्राप्ति भी नहीं है वृद्धि जिस से हो। युयाताम् ४४ ४६५ (वे दो मिलावें) युयु' (४६८ १७१)—वे मिलावें। यूयात् ११२ से दीर्घ और ११२ से स् का लोप)—ईश्वर करे कि वह मिलावे। यूयास्ताम्—ईश्वर, करे कि वेदोमिलावें। यूयासु' ईश्वर करे कि वे मिलावें बहुसे अयावीत्(११९ २६) उसने मिलाया। बहुसे अयविष्यत् (४२०,४१४ २६) यदि वह मिलावे। ४ या (जाना) याति १८१ 'वह' जाता है यात' वे दो जाते हैं। यान्ति वे जाते हैं। ययौ। (४२ ४२९, ११०) वह गया। याता (वह जावेगा) यास्यति वह जावेगा। यातु (वह जावे अयात्—वह गया। अयाताम्—वे दो गये ॥ १८० ॥

५८८ ॥ लङः शाकटायनस्यैव । ३ । ४ । १११॥ आदन्तादस्य झोर्जुस् वा । अयुः । अयान् । यायात् । यायाताम् । यायु । यायात् । यायास्ताम् । यायासु । अयासीत् । अयास्यत् ॥

एवं 'वा' गतिगन्धनयो' । ५ । भा दीप्तौ । ६ । ष्णा शौचे । ७ । श्रा पाके । ८ । द्रा कुत्सायां गतौ । ९ । प्सा भक्षणे । १० । रा दाने । ११ । ला आदाने । १२ । दाप् लवने । १३ । ख्या प्रकथने । १४ । प्रा' सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्य । मिलाने । १५ ।

---

(१) अच् प्रत्याहारान्तगत और एक वर्ण है । (२)४५१ ४५२ ॥

केवल शाकटायन आचार्य के मत में आकारान्त धातु से परे जो लङ् के स्थान में झि, उस को विकल्प करके जुस् होवे। अया+झि=अया+जुस् १४२ से=अया+उस् ५२१ से=अयुस् १२०, १०८=अयुः=वा अयान् (४१५, ४४२, २३)=वे गये। वि० लिङ् मे यायात् ४५५, ४५२)=वह जावे। यायाताम्=वे दो जावें। यायुः (५२१) वे जावें यायात् ३३२ ईश्वर करे कि वह जावे। यायास्ताम्=ईश्वर करे कि वे दो जावें। यायासुः=ईश्वर करे कि वे जावें। अयासीत् (५२४, ४७३, ४७४)=वह गया। अयास्यत् (जो वह जावे) इस "या" धातु की साधन प्रक्रिया के तुल्य इन, आगे आने वाले आकारान्त धातुओं की भी साधन प्रक्रिया जाननी, वे धातु ये हैं यथा— ५ वा (जाना वा सूचन) ६ भा (चमकना) ७ ष्णा (पवित्र होना=नहाना) ८ श्रा पकाना) ९ द्रा (बुरीगति) १०प्सा (खाना) ११ रा (देना) १२ ला (लेना) १३दा (काटना) १४ ख्या कथन, वा, वर्णन करणा। ख्या धातु का केवल सार्वधातुक में ही प्रयोग होता है। १५। विद (विद्), जानना॥ ५९८॥

५९९॥ विदोलटोवा। ३। ४। ८३। वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा। वेद। विदतुः। विदुः। वेत्थ। विदथुः। विद। वेद। विद्व। विद्म। पक्षे। वेत्ति। वित्तः। विदन्ति॥

विद् धातु से परे जो परस्मैपद के तिवादिक ४०१ उनको णलादिक ४१८ प्रत्यय विकल्प करके होते हैं। विद्+तिप्=विद्+णल्(४७९, ८७) वेद, वह जानता है॥५९९॥

	॥ प्रथम पुरुष ॥	॥ मध्यम पुरुष ॥	॥ उत्तम पुरुष ॥
लट् एकव०	वेद, वह जानता है।	वेत्थ तू जानता है	वेद, मैं जानताहु।
लट् द्विव०	विदतु, वे दो जानते हैं	विदथु, तुमदो जानते हो	विद्व हमदो जानते हैं।
लट् बहुव०	विदु, वे जानते हैं	विद तुम जानते हो	विद्म हम जाते हैं।

॥ दूसरे पक्ष में ॥

* (वेत्ति ४७९, ८७)। वित्त, ४६१। विदन्ति ४१५।)

६००॥ उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम्। ३। १। ३८। एभ्यो लिटयाम् वा। विदेरदन्तत्वप्रतिज्ञानादामि न गुणः। विदाञ्चकार। विवेद। वेदिता। वेदिष्यति॥

उष (जलाना) विद (जानना) जागृ (जागना) इन तीन धातुओं से आम् प्रत्यय हो वे लिट् परे हो तब। इस सूत्र में विद की अकारान्त प्रतिज्ञा करने से

* इन के अर्थ पहिले के सदृश हैं।

(विद को अकारान्त पढ़ने से) ३७८ से गुण (१) नहीं होता । विदाञ्चकार (३ । ३१ ३ २, ४२ ४८२ और १८६) या विवेद ३७८, उसने जाना । लुट् में वेदिता (३१७,३७८) और लृट् में वेदिष्यति (वह जान लेगा) ॥ ६ ॥

६०१ ॥ विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् । ३ । १ । ४१ । वेत्तेर्लोट्याम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते । विदाङ्करोतु ॥

विद् धातु से लोट् में आम् विकल्प करके होवे गुण ३७८ का अभाव अर्थात् उपधा को गुण न होवे और लोट् का लुक् हो जावे और लोट् जिस के अन्त में है ऐसे करोति (कृ) अर्थात् करोतु आदिकों का उस के अनन्तर प्रयोग होवे (यह सब कार्य निपात से होते हैं) । पुरुष और वचन की यहां (२) विवक्षा नहीं है । विदाङ्करोतु यह जाने ॥ ६ १ ॥

६०२ ॥ तनादिकृञ्भ्य उः । ३ । १ । ७९ । शपोऽपवादः ।

तन् (विस्तार करना) आदि धातु ०१६, को से और कृ धातु से परे उ प्रत्यय होवे । यह सूत्र शप् ३११ का अपवाद है ॥ ६ २ ॥

६ ३ ॥ अत उत् सार्वधातुके । ६ । ४ । ११० । उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत् सार्वधातुके क्ङिति । विदाङ्कुरुतात् । विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु । विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाणि । अवेत् । अविताम् । अविदुः ॥

(उ) प्रत्यय ६ २ है अन्त में जिस के ऐसा कृञ् (कृ) धातु के अकार को उकार होवे । विदाङ्कुरु + तात् = विदाङ्कुरुतात् । ईश्वर करे कि वह जाने । विदाङ्कुरुताम् वे दो जानें । विदाङ्कुर्वन्तु (६ १ ६ २, ६ २) वे जानें । विदाङ्कुरु (६ १ ६ २ ६ ३, ३१२) तू जान ।

---

(१) क्योंकि उपधा में लघु है तो भी नहीं गुण किसे हो । (२) इस का यह आशय है कि (विदाङ्कुर्वन्तु) इत्यादि प्रयोग बहुत स्थानों में देखे पड़ते हैं परन्तु इन के साधने के लिये बिना इस सूत्र ६ १ के और कोई पाणिनि जी ने युक्ति नहीं लिखी और यहां भी सिद्ध रूप ही सिद्ध किया है और पक्ष में (वेत्तु) आदिक का निर्देश भी किया है और विदाङ्करोतु विदाङ्कुरुतात् विदाङ्कुरुताम् विदाङ्कुरु इत्यादि रूपों के साधनार्थ यह सूत्र ही युक्ति है । तो यह सिद्ध हुआ कि सूत्र में जो प्रथम पुरुष और बहुवचन है यह कोई नियम कारक नहीं है अविवक्षित होने से अर्थात् और पुरुषों में और और वचनों में भी यह सभी निपात से कार्य होते हैं ।

विदाङ्करवाणि (४४२, ४४४, ४१४) मैं जानूं। अवेत् (४५२,४७८, १९३) उसने जाना। अवित्ताम्, उन दोने जाना। अविदुः (४७५) उन ने जाना ॥ ६०३ ॥

६०४ ॥ दश्च । ८ । २ । ७५ । धातोर्दस्यपदान्तस्य सिपि रुर्वा । अवेः । अवेत् । विद्यात् । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्यत् । अस भुवि । १६ । अस्ति ॥

धातु के "पद के अन्त में होने वाले" (पदान्त) द् को विकल्प करके रु होवे यदि सिप् परे हो तब। अवेः १०८ वा अवेत् (तूने जाना) आ० लिङ् में विद्यात्, ईश्वर करे कि वह जाने। विद्यास्ताम् ईश्वर करे कि वे दो जानें। लुङ् में अवेदीत् ४२७, ४७३, ४७४ और ४७९ से गुण करणा उसने जाना। लृङ् में अवेदिष्यत्, यदि वह जाने। १६ अस (अस्) होना। अस्ति, वह है ॥ ६०४ ॥

६०५ ॥ श्नसोरल्लोप । ६ । ४ । १११ । श्नस्यास्तेश्चातो लोपः सार्वधातुके क्ङिति। स्तः । सन्ति । असि। स्थ । स्थ। अस्मि । स्वः । स्म• ॥

श्नम् ७०८ प्रत्यय के और अस् धातु के 'अ' का लोप होवे जब कित् वा ङित् सार्वधातुक परे हो तब। (स्तः) में ५२९ से तस् ङित् हुआ और ६०५ से अलोप हुआ स्त', वे दो हैं। सन्ति (वे हैं) असि ४३२ (तू है) स्थः (तुम दो हो स्थ (तुम हो) अस्मि मैं हु) स्व. (हम दो हैं) स्मः (हम हैं) ॥ ६०५ ॥

६०६ ॥ उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्पर· । ८ । ३ । ८७। उपसर्गेणः प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे। निष्यात् । प्रनिषन्ति। प्रादु षन्ति । यच्पर. किम्। अभिस्तः ॥

(उपसर्गस्थ इण्) (१) के आगे वा प्रादुस् अव्यय के आगे जो अस् धातु उसके स् को ष् होवे जब य् (वा) अच् परे रहे तब। निष्यात्, यहां उपसर्गस्थ इण् के आगे ष् हुआ। निष्यात्, वह निकल जावे। प्रनिषन्ति, वे बाहिर जाते हैं। यहाभी उपसर्गस्थ इण् के आगे ष् हुआ है। प्रादु षन्ति, यहा प्रादुस् के आगे ष् हुआ है। (वे प्रकट होते हैं) यहां (इस सूत्र में) "य् वा अच् परे हो" यह क्यों कहा ? इस प्रश्न का समाधान यह है। कि (यच् पर) न करते तो (अभिस्तः) में भी 'अभि' उपसर्गस्थ इण् के आगे स् को ष् हो

(१) उपसर्ग में स्थित जो इण् प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों में से कोई एक वर्ण।

(विद को अकारान्त पढ़ने से) ४०८ से गुण (१) नहीं होता। विदाञ्चकार (६ । १ । ४२ ६ । २ । ४२ ४८२ और १८६) या विवेद ४०८, उसने जाना। लुट् में वेदिता (४२०,४०८) और लट् में वेदिष्यति (वह जान लेगा) ॥ ६ ॥

६०१ ॥ विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् । ३ । १ । ४१ । वेत्ते र्लोटयाम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगश्च निपात्यते। पुरुषवचने न विवक्षिते । विदाङ्करोतु ॥

विद् धातु से लोट् में आम् विकल्प करके होवे गुण ४०८ का अभाव अर्थात् उपधा को गुण न होवे और लोट् का लुक् हो जावे और लोट् जिस के अन्त में है ऐसे करोति (कृ) अर्थात् करोतु आदिकों का उस के अनन्तर प्रयोग, होवे (यह सब कार्य निपात से होते हैं)। पुरुष और वचन की यहां (२) विवक्षा नहीं है। विदाङ्करोतु वह जाने॥ ६ १ ॥

६ २ ॥ तनादिकृञ्भ्य उ । ३ । १ । ७९ । शपोऽपवादः ।

तन् (विस्तार करना) आदि धातु ७११ वों से और कृ धातु से परे उ प्रत्यय होवे। यह सूत्र शप् ४११ का अपवाद है॥ ६ २ ॥

६ ३ ॥ अत उत् सार्वधातुके । ६ । ४ । ११० । उप्रत्ययान्तस्य कृञोऽत उत् सार्वधातुके क्ङिति । विदाङ्कुरुतात् । विदाङ्कुरुताम् । विदाङ्कुर्वन्तु। विदाङ्कुरु। विदाङ्करवाणि । अवेत् । अविताम् । अविदुः ॥

(उ) प्रत्यय ६ २ है अन्त में जिस के ऐसा कृञ्(कृ)धातु के अकार को उकार होवे। विदाङ्कु+तात्=विदाङ्कुरुतात्। ईश्वर करे कि वह जाने। विदाङ्कुरुताम् वे दो जानें। विदाङ्कुर्वन्तु (६ १ ६ २ ६ ३) वे जानें। विदाङ्कुरु (६ १ ६ २, ६ ३ ११२)तू जान।

---

(१) क्योंकि उपधा में लघु है तो नहीं गुण किसे हो। (२) इस का यह आशय है कि (विदाङ्कुर्वन्तु) प्रभृति प्रयोग बहुत स्थानों में लोग पढ़ते हैं परन्तु इन के साधने के लिये बिना इस सूत्र ६ १ के और कोई पाणिनि जी ने युक्ति नहीं लिखी और यहां भी सिद्ध रूप ही लिख दिया है और पद में (वेत्तु) आदिक का निर्देश भी किया है और विदाङ्करोतु विदाङ्कुरुतात् विदाङ्कुरुताम् विदाङ्कुरु इत्यादि रूपों के साधनार्थ यह सूत्र की युक्ति है। तो यह सिद्ध हुआ कि सूत्र में जो प्रथम पुरुष और बहुवचन है यह कोई नियम कारक नहीं है अविवक्षित जाने स अर्थात् और पुरुषों में और और वचनों में भी यह सभी निपात से कार्य होते हैं।

६११॥ दीर्घ इणः किति। ७। ४ । ६९ । इणोऽभ्यासस्य दीर्घः किति लिटि। ईयतु । ईयु: । इययिथ । इयेथ । एता । एष्यति । एतु । ऐत्। ऐताम् । आयन् । इयात् । ईयात् ॥

कित् ४८० लिट् परे होतो इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होवे। ईयतु', वे दो गए, ईयु:=वे गए। इययिथ (५११) वा इयेथ (५०९, ४१४, ६१०) तू=गया। एता (वह जावेगा) एष्यति (४१४)=वह जाएगा। एतु (४२७ वह जावे) (१) ऐत्, वहगया । (ऐताम् वे दो गए) आयन् (२६) वेगए। वि० लि० इयात्,वह जावे। आ० लिङ् में ईयात् (५१२) ईश्वर करे कि वह जावे॥६११॥

६१२॥ एतेर्लिङि। ७। ४। २४। उपसर्गात्परस्य इणोऽणोह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि। निरियात्। उभयत आश्रयणे नान्तादिवत् अभीयात्। अणः किम्। समेयात्॥

उपसर्ग से परे इण् धातु का जो अण् उसको ह्रस्व होवे, परन्तु जब आर्ध धातुक सञ्ज्ञावाला कित् ४६० लिङ् (२)परे हो तो। निर्+ईयात्=निरियात्, ईश्वर करे कि वह निकल जावे । किसी कार्य के लिये जब प्रयोगमें पूर्वभाग, और परभाग, का आश्रयण एक में किया जावे वहा (३) (अन्तादिवच्च) नही लगता है। इसी कारण से "अभीयात्" में ह्रस्व नहीं होता क्योंकि अभि+ईयात् यहां जब ५२ से दीर्घ एका देश किया तब अभीयात् के ईकार को पूर्व और पर का अवयव एक समय ही नहीं मान सकते, तो ६१२ की प्राप्ति भी नहीं हो सकती

६१३॥ इणो गा लुङि । २। ४। ४५। गातिस्थेति सिचोलुक्। अगात्। ऐष्यत्। शीङ् स्वप्ने। १८॥

लुङ् लकार में इण् धातु को गा आदेश होता है। ४६७, से सिच्४६६, का लुक् होता है। अगात्, वह गया। लृङ् में ऐष्यत् (४७२, २१२) यदि वह जावे। १८। शीङ् (सोना) सोजाना॥ ६१३॥

इस सूत्र की वृत्ती मेंअण् क्योंकहा ? ऐसा कोई प्रश्न करे तो उस को उत्तर देता है, (समेयात्) अण् ग्रहण न करें तो सम्+आ+ईयात् यहा प्रथम गुण करने पर सम्+एयात्=ऐसे रूप में ह्रस्व हो जावेगा तो समेयात् नहीं बनेगा। परन्तु अण् ग्रहण करने से समेयात्, में ह्रस्व नही होता॥ ६१२॥

---

(१) इण् का, लङ के प्रथम पुरुष एक वचन में (४७२, २१२) ऐत्। (२) आशिष् में जो लिङ् है। (३) एकादश पूर्व के अन्त के सदृश और पर के आदि के सदृश होता है॥

आवेगा । यही दोष पड़ेगा परन्तु (यण् पर) बाहने से तो यहां "श्रमिरुत" में सकार के आगे न तो 'य्' है न 'अण्' है इसीलिये य् नहीं होता। श्रमिरत ये दो सम प्रकार से हैं।

६ ७ ॥ अस्तेर्भूः । २ । ४ । ५२ । आर्धधातुके । बभूव । भविता । भविष्यति । अस्तु । स्तात् । स्ताम् । सन्तु ।

आर्धधातुक परे हो तो अस् को भू आदेश हो जावे । (१) बभूव वह था ॥

{ भविता वह होगा । | लोट् में अस्तु वह होवे ।
{ भविष्यति वह होगा । | स्तात् ४१८ ६ ५ वह होवे ।

स्ताम् वे दो होवें । सन्तु (वे होवें) ॥ ६ ७ ॥

६०८ ॥ घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ।६। ४ । ११९ । घोरस्तेश्चेत्वं स्यात् हौ अभ्यासलोपश्च । एधि । स्तात् । स्तं । स्त । असानि । असाव । असाम । आसीत् । आस्ताम् । आसन् । स्यात् । स्याताम् । स्युः । भूयात् । अभूत् । अभविष्यत् । इण गतौ । १० । एति । इतः ॥

"हि (४४१) परे होते" घु संज्ञक धातुओं को ६५८ और अस् धातु को एकार होवे और अभ्यास का लोप होवे । ६८७ में हि को धि हुआ एधि तू हो । स्तात् (४१८ ६ ५) ईश्वर कर कि तू हो । स्तं तुम दो होवो । स्त ८ ६ तुम होवो । असानि मैं होऊं । असाव (हम दो होवें) असाम (हम होवें) । लङ् में आसीत् (४०२ ४०१) वह था । आस्ताम् (वे दो थे) आसन् (वे थे) । वि लिङ् में स्यात् (६ ५) वह होवे । स्याताम् । वे दो होवें स्युः (वे होवें) । आ लिङ में (६ ७) भूयात् ईश्वर करे वह होवे । लुङ् में (६ ७) से भू आदेश । अभूत् वह हुआ था । लृङ् में अभविष्यत् यदि वह होवें । १० । इण् (चलना जाना) एति(४१४) वह जाता है । इतः वे दो जाते हैं ॥६ ८॥

६ ८ ॥ इणो यण् । ६ । ४ । ८१ । अजादौ प्रत्यये परे । यन्ति ॥

जिस के आदि में अच् (स्वर) हो ऐसा प्रत्यय परे हो तो इण् को यण् होवे । यन्ति वे जाते हैं ॥ ६ ८ ॥

६१ ॥ अभ्यासस्यासवर्णे । ६ । ४ । ७८ । इवर्णयोरियङुवङौ स्तोऽसवर्णेऽचि ।। इयाय ॥

अभ्यास के ४११ इवर्ण और उवर्ण को क्रम से इयङ् और उवङ् होते हैं । (२)असवर्ण अच् परे हो तो । इयाय (४२ १८६ ४१ २६) वह गया ॥ ६१ ॥

---

(१) इस की सिद्धि प्रथम लिख आए हैं भू धातु पर की । (२) जो समान न हो (विषमरूपी) ।

६११॥ दीर्घइणः किति। ७। ४ । ६९ । इणोऽभ्यासस्य दीर्घः किति लिटि। ईयतुः। ईयुः। इययिथ। इयेथ। एता। एष्यति। एतु। ऐत्। ऐताम्। आयन्। इयात्। ईयात्॥

कित् ४८० लिट् परे होतो इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होवे। ईयतु', वे दो गए, ईयु'=वे गए। इययिथ (५११) वा इयेथ(५०९, ४१४, ६१०)तू=गया। एता (वह जावेगा) एष्यति (४१४)=वह जाएगा। एतु (४३७ वह जावे) (१) ऐत्, वहगया। (ऐताम् वे दो गए) आयन् (२६) वेगए। वि० लि० इयात्,वह जावे। आ० लिङ् में ईयात् (५१२) ईश्वर करे कि वह जावे॥६११॥

६१२॥ एतेर्लिङि। ७। ४। २४। उपसर्गात्परस्य इणोऽणोह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि। निरियात्। उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्। अभीयात्। अणः किम्। समेयात्॥

उपसर्ग से परे इण् धातु का जो अण् उसको ह्रस्व होवे, परन्तु जब आर्ध धातुक सज्ञावाला कित् ४६० लिङ् (२)परे हो तो। निर्+ईयात्=निरियात्, ईश्वर करे कि वह निकल जावे। किसी कार्य के लिये जब प्रयोगमें पूर्वभाग, और परभाग, का आश्रयण एक में किया जावे वहा (३) (अन्तादिवच्च) नही लगता है। इसी कारण से "अभीयात्" में ह्रस्व नही होता क्योंकि अभि+ईयात् यहा जब ५२ से दीर्घ एका देश किया तब अभीयात् के ईकार को पूर्व और पर का अवयव एक समय ही नहीं मान सकते, तो ६१२ को प्राप्ति भी नही हो सकती

६१३॥ इणो गा लुङि। २। ४। ४५। गतिस्थेति सिचोलुक्। अगात्। ऐष्यत्। शीङ् स्वप्ने। १८॥

लुङ् लकार में इण् धातु को गा आदेश होता है। ४६७, से सिच्४६६, का लुक् होता है। अगात्, वह गया। लृङ् मे ऐष्यत् (४७२, २१२) यदि वह जावे। १८। शीङ् (सोना) सोजाना॥ ६१३॥

इस सूत्र की वृत्ती मेंअण् क्योंकहा ? ऐसा कोई प्रश्न करे तो उस को उत्तर देता है, (समेयात्) अण् ग्रहण न करें तो सम्+आ+ईयात् यहा प्रथम गुण करने पर सम्+एयात्=ऐसे रूप में ह्रस्व हो जावेगा तो समेयात् नही बनेगा। परन्तु अण् ग्रहण करने से समेयात्, में ह्रस्व नहीं होता॥ ६१२॥

---

(१) इण् का, लङ के प्रथम पुरुष एक वचन में (४०२, २१२) ऐत्। (२) आशिष् में जो लिङ् है। (३) एकादश पूर्व के अन्त के सदृश और पर के आदि के सदृश होता है॥

५१४ ॥ शीङः सार्वधातुके गुणः । ७ । ४ । २१ । शेते शयाते ॥

शीङ्धातुकोगुण होवे जब सार्वधातुक प्रत्यय परे रहे तब । शेते (११०) वह सोता है । शयाते (११०—२६) वे दो सोते हैं ॥ ५१४ ॥

५१५ ॥ शीङो रुट् । ७ । १ । ६ । शीङो झादेशस्यातो रुट् । शेरते । शेषे । शयाथे शेध्वे । शये । शेवहे । शेमहे । शिश्ये । शिश्याते । शिश्यिरे । शयिता । शयिष्यते । शेताम् । शयाताम् । शेरताम् । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । अशयिष्ट । अशयिष्यत । इङ् अध्ययने १९ इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः । अधीयते । अधीयाते । अधीयते ॥

शीङ् धातु से परे झ् के स्थान में आदेश जो अत् (११२) उस को रुट् (९) का आगम होवे । शेरते (११२ ११०) वे सोते हैं । शेषे (तू सोता है) ॥

२	शयाथे तुम दो सोते हो ।	उ० १	शये ५१४—२६—मैं सोता हूं ।
१	शेध्वे तुम सब सोते हो ।	२	शेवहे—५१४—२० हम दो सोते हैं
		३	शेमहे ,, हम सोते हैं

॥ लिट् में ॥

शिश्ये (४२ १९२) वह सोया था । शिश्याते वे दो सोये थे शिश्यिरे वे सोये १४२ । लुट् में शयिता (४२० ५१४ २६) लट् में शयिष्यते वह सोवेगा । लोट् में शेताम् ५१४ १४६ वह सोवे । शयाताम् व दो सोवें । शेरताम् (५१४ ११२ ५१५) वे सोवें । लङ् में अशेत १४ वह सोया । अशयाताम् (२६) वे दो सोये । अशेरत (११२ ५१५) वे सोये । विधि लिङ् में 'शयीत' (५१४ २४८, ३१५, ४२०, २६) वह सोवे । शयीयाताम् वे दो सोवें । शयीरन् (११) वे सोवें । आशीर्लिङ् में शयिषीष्ट (११२ ४२०) ईश्वर करे कि वह सोवे । लुङ् में अशयिष्ट (४१४ ४६६ ४२०, २६) वह सोगया । लृङ् में अशयिष्यत् (५१४ ४२८ ४२० २६) यदि वह सोजावे । १९ । इङ् (इ) अध्ययन (पठन) अर्थ में है । इङ् और इक् (स्मरण) ये दो धातु अधि उपसर्ग से भिन्न नहीं हो सकते (इन का प्रयोग 'अधि' सहित ही आता है) । लट् में अधि+इ+त (११०, १२) अधीते (वह अध्ययन करता) (पढ़ता है) । अधीयाते (११०, ३१४) व दो अध्ययन करते हैं । अधीयते (११२ ३१४) व अध्ययन करते हैं ॥ ५१५ ॥

६१६ ॥ गाङ् लिटि । २ । ४ । ४९ । इङः । अधिजगे । अध्येता । अध्येष्यते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् । अधीष्व । अधीयाथाम् । अधीध्वम् । अध्ययै । अध्ययावहै । अध्ययामहै । अध्यैत । अध्यैयाताम् । अध्यैयत । अध्यैथाः । अध्यैयाथाम् । अध्यैध्वम् । अध्यैयि । अध्यैवहि । अध्यैमहि । अधीयीत अधीयीयाताम् । अधीयीरन् । अध्येषीष्ट ।

लिट् परे हो तो इङ् को गाङ् आदेश होवे । (१) अधिजगे (५४२, ५१८) उसने अध्ययन किया था । लुट् से अध्येता (४१४ से गुण और "१८" से यण्) = वह अध्ययन करेगा । लृट् में अध्येष्यते (४१४ से गुण और "१८" से यण्) = वह अध्ययन करेगा । लोट् में अधीताम् (५४६) वह अध्ययन करे ॥

॥ प्रथम पुरुष ॥	॥ मध्यम पुरुष ॥
एकव० अधीताम्, ५४६ वह अध्ययन करे	अधीष्व, (५३९, ५९७) तू पढे
द्वि० अधीयाताम्, ५४६, २१४, २६ वेदो ,,	अधीयाथाम्, तुम दो अध्य०
बहु० अधीयताम्, ५५३, २१४, २६ वे ,,	अधीध्वम्, ५४७ तुम अध्यय०

॥ उत्तम पुरुष ॥

लोट् में — { (२) अध्ययै, मैं अध्ययन करूं | अध्ययावहै, हमदो अध्ययन करें | अध्ययामहै, हम अध्ययन करें }

॥ लङ् में ॥

प्रथम पुरुष { अध्यैत = (४७२, २१२, १८) उसने अध्ययन किया | अध्यैयाताम् (४७२, २१२, १८) उन दोनें अध्ययन किया | अध्यैयत, ५५३ (४७२, २१२, १८) उनने अध्ययन किया }

मध्यम पुरुष { अध्यैथाः = (४७२, २१२, १८) तूने अध्ययन किया | अध्यैयाथाम् = (४७२, २१२, १८) तुम दोने अध्ययन किया | अध्यैध्वम् = (४७२, २१२, १८) तुम ने अध्ययन किया }

उत्तम पुरुष { अध्यैयि = (२७२, २१२, १८) मैंने अध्ययन किया | अध्यैवहि = (२७२, २१२, १८) हम दोने अध्ययन किया | अध्यैमहि = (२७२, २१२, १८) हमने अध्ययन किया }

विधि लिङ् में (अधीयीत ५४९, ४५५, ४५७, २१४, ५२) वह अध्ययन करे

(१) यहा गाङ् (गा) को ४२० से द्वित्व, और ४२३ से अभ्यास को ह्रस्व, और ४८२ से उसको ज, ये भी कार्य करलेने । (२) ५३७, ५४८, ४१४, २६, १८ ॥

अधीयीयाताम्—वेदो अध्ययन करें। अधीयीरन् (११) वे अध्ययन करें। आशिष् लिङ् में अध्येषीष्ट—(१७८, ११२ ४१०) ईश्वर करे कि वह अध्ययन करे।

६१७ ॥ विभाषा लुङ्लृङोः । २ । ४ । ५० । इङो गाङ् ॥

लुङ् और लृङ् परे होतो इङ् धातु को गाङ् (६१६) आदेश विकल्प करके होवे ॥६१७॥

६१८ ॥ गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् । १ । २ । १ । गाङादेशात्कुटादिभ्यश्चाञ्णितः प्रत्यया ङित स्युः ॥

गाङ् ६१६ ६१७ आदेश से और "कुटादियों" से परे जो प्रत्यय ञित् वा णित् नहीं है वे ङित् होवें ॥

६१९ ॥ घुमास्थागापाजहातिसां हलि । ६ । ४ । ६६ । एषामात ईत् स्याद्धलादौ क्ङित्यार्धधातुके। अध्यगीष्ट। अध्यैष्ट। अध्यगीष्यत। अध्यैष्यत। दुह प्रपूरणे। २ । दोग्धि। दुग्ध। दुहन्ति। धोक्षि। दुग्धे। दुहाते। दुहते। धुक्षे। दुहाथे। धुग्ध्वे। दुहे। दुह्वहे। दुह्महे। दुदोह। दुदुहे। दोग्धा। धोक्ष्यति। धोक्ष्यते। दोग्धु। दुग्धात्। दुग्धाम्। दुहन्तु। दुग्धि। दुग्धात्। दुग्धम्। दुग्ध। दोहानि। दुग्धाम्। दुहाताम्। दुहताम्। धुक्ष्व। दुहाथाम्। धुग्ध्वम्। दोहै। दोहावहै। दोहामहै। अधोक्। अदुग्धाम्। अदुहन्। अदोहम्। अदुग्ध। अदुहाताम्। अदुहत। अधुग्ध्वम्। दुह्यात्। दुहीत ॥

घु (६१४) संज्ञा वाले धातुओं के और मा (मापना) स्था (ष्ठा) (खड़ा होना) गा (अध्ययन करना) पा (पीना) जहाति (हा) छोड़ना। षो (नाश करना) इन धातुओं के आकार को ईकार होवे जब हल् है आदि में जिस के ऐसा कित् वा ङित् आर्धधातुक परे हो तो। जब लुङ् में ६१७ से गा हुआ तो (अध्यगीष्ट) दूसरे पक्ष में अध्यैष्ट (४०२, २११ १८) वह अध्ययन करता हुआ। लृङ् में अध्यगीष्यत (६१०, ६१८) वा अध्यैष्यत (४०२ २१२, १८) यदि वह अध्ययन करे। २ । दुह (दुहना) (दुह्+शप्+तिप्) (५८१ ४०८, २०१ ५८ २२) दोग्धि वह दुहता है। दुग्ध (१) (५६१) वे दो दुहते हैं। दुहन्ति वे दुहते हैं। धोक्षि ४०८ से (गुण) २०२ से (घ्) २०१ से (ह्) को घ् धोघ्+सि=धुग १६१ ८०, धोक्षि (तू दुहता है)। (२) दुग्धे ११० से

(१) ५६१ का (तस्) में विकृति से गुण निषेध की विशेष है और सभी कार्य एक वचन के तुल्य ही होते हैं। (२) आत्मने पद के रूपों को भी परस्मैपद के समान जानने ॥

(टि को एकार और गुण भाव) अन्यत् पूर्ववत्। दुहाते ५३०। दुहते ५५१ से झ् को अत् धुक्षे (२७२, २७३, १६३, ८७)। दुहाथे, तुम दो दुहते हो। धुग्ध्वे (२७२, २७३, २२) तुम दुहते हो। दुहे (मैं दोहता हुं)। दुह्वहे हम दो दुहते हैं। दुह्महे, हम दुहते हैं।

॥ परस्मैपद ॥	॥ आत्मने पद में ॥	
लिट्-दुदोह (४२०, ४२३) ४७८ (उसने दुहा)	दुदुहे (४२०, ४२३, ५४२)	वह दोहेगा।
लुट्-दोग्धा, (२७२, ५८०, २२) वह दोहेगा	दोग्धा, (४२०, ४२३, ५४२)	
लृट्-धोक्ष्यति, (४७८, २७२, २७३, १६३, ८७)	धोक्ष्यते, वह दो हेगा।	

लोट् प्र० पु० {
१—दोग्धु = (१) दुग्धात्) (४७८, २७२, ५८०, २२)
२—दुग्धाम् = (२७२, ५८०, २२) = वे दो दुहें
३—दुहन्तु = (४१५, ४३०) वे दुहें।
}

मध्यम पु० {
दुग्धि, दुग्धात् (२७२, ५८७। ४३८) तू दुहले
दुग्धम् (२७२, ५८०, २२) = तुम दोहो।
दुग्ध (२७२, ५८०, २२) तुम दो दोहो।
} ईश्वर करे तू दोहे। दोहानि मैं दोहुं।

आत्मने पद में लोट् के रूप नीचे देखो।—

॥ प्रथम पुरुष ॥	॥ मध्यम पुरुष ॥	॥ उत्तम पुरुष ॥
दुग्धाम् (५४६, २७२, ५८०, वह दुहे)	धुक्ष्व २७३, ८७, ६३ तू दुह।	दोहै ५४६ मैं दोहूं
दुहाताम् (वे दो दोहें) ५४६।	दुहाथाम् ५४६, तुम दो दोहो	दोहावहै हम दो०
दुहताम् (५४६, ५५१,) वे दुहें।	धुग्ध्वम् २७२, २७३ तुम दोहो	दोहामहै हम०

॥ परस्मैपद लङ् में ॥

अधोक् (४७८, ४५२, १९३, २७२, २७३, ८७) वह दुहता हुआ। अदुग्धाम्, उन दोने दुहा अदुहन्, उनने दुहा। अदोहम्, ४७८, (मैं ने दुहा)॥

॥ आत्मने पद के लङ् में ॥

अदुग्ध, (२) (२७२, ५८०, २२) अदुहाताम्, (४५१) अदुहत, (५५३) अधुग्ध्वम्, (४५१, २७२, २७३, २२) तुमने दुहा। वि० लिङ् में (दुह्यात्, (वा) दुहीत, वह दुहे ५४९॥६१९॥

६२० ॥ लिङ्सिचावात्मनेपदेषु। १। २। ११। इकसमीपाद्धलः परौ झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तङि। धुक्षीष्ट ॥

इक् के समीप जो हल् उस से परे जो 'झलादी' (३) लिङ् लकार और सिच् वे

(१) वह दुहे, ४३८ ईश्वर करे कि वह दुहे। (२) इनके, अर्थ, परस्मैपद के समान हैं। (३) झल् है आदि में जिन के ऐसे।

कित् होवे (१) तङ परे होतो। युधोच्छ ६२ से कित् और ४६१ से गुण निषेध हुआ (२०१ २०१ ८०) इत्यादि कार्य कि सब हुये॥ ६२ ॥

६२१ ॥ शल इगुपधादनिटः क्स । ३ । १ । ४५ । इगुपधो यः शलन्तस्तस्मादनिटश्च्लेः क्सादेशः । अधुक्षत् ॥

इक् (इ उ ऋ लृ) ही उपधा में जिसके ऐसा जो शलन्त शल् (श ष स ह) ही अन्त में जिस के ऐसा धातु उससे परे जो अनिट् च्लि उसको (क्स) आदेश होवे। अधुक्षत् (२०१, २०१ ८०, ६२ ४११ ११२) इसने इहा॥ ६२१॥

६२२ ॥ लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये । ७ । ३ । ७३ । एषां क्सस्य लुग्वा दन्त्ये तङि । अदुग्ध । अधुक्षत ॥

दुह (दुहना)। दिह लिम्पना करना। लिह (चाटना) और गुह ढकना। इन धातुओं के क्स (६२१) का विकल्प करके लुक् होवे परन्तु जब दन्त्यादि दन्त्य (२) (तथ द ध न) वर्णों में से कोई एक आदि में है जिसके ऐसा तङ (आत्मने पद) प्रत्यय परे हो तो अदुग्ध (१०२, ५८) वा अधुक्षत ६२१ इसने दुहा॥

६२३ ॥ क्सस्याचि । ७ । ३ । ७२ । अजादौ तङि क्सस्य लोपः । अधुक्षाताम् । अधुक्षन्त । अदुग्धाः । अधुक्षथाः । अधुक्षाथाम् । अधुग्ढ्वम् । अधुक्षध्वम् । अधुक्षि । अधुक्षावहि । अधुक्षामहि । अधोक्ष्यत ॥ एवं दिह उपचये । २१ । लिह आस्वादने । २२ । लेढि । लीढः । लिहन्ति । लेक्षि । लीढे । लिहाते । लिहते । लिक्षे । लिहाथे । लीढ्वे । लिलेह । लिलिहे । लेढासि । लेढासे । लेक्ष्यति । लेक्ष्यते । लेढु । लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लेहानि । लीढाम् । अलेट् । अलेढ् । अलिक्षत् । अलिक्षत । अलीढ । अलेक्ष्यत् । अलेक्ष्यत । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि । २४ ॥

अजादि (अच् है आदि में जिसके ऐसा) तङ् परे हो तो क्स का लोप होता है। अधुक्षाताम् (२०२, २०१ ८०) उन दोनों दुहा। अधुक्षन्त ६२१ उनने दुहा। अदुग्धा (६२२ १०२ ५८ २२) वा "अधुक्षथा" (६२१) तूने दुहा। अधुक्षाथाम्—तुम दोनो दुहा। अधुग्ध्वम् "वा" अधुक्षध्वम्। ६२२ तुमने दुहा। अधुक्षि ६२३ से क्स का लोप और (२०२, १८ २०१ ८०) मैंने दुहा। अधुक्षावहि हम दोनों दुहा। अधुक्षामहि हमने दुहा।

१) आत्मने पद में। (२) तु (त थ द ध न)।

लृङ् में। अधीद्यत्, अधीच्यत, जो वह दोहे। ऐसी रीति से, २१। दिह (वृद्धि, राशिकरणा) धातु की भी साधन प्रक्रिया जाननी ॥ २२। लिह् (चाटना) लेढि (४७८, २७१, ५८०, ७५, ५८१) वह चाटता है। लीढ. (२७१, ५८०, ७५, ५८१, १२७) वे दो चाटते हैं। लिहन्ति, वे चाटते हैं। लेक्षि (२७१, ५७८, १६३) तू चाटता है। (१) लीढे ५२७, लिहाते, लिहते ५५३, लिक्षे (२७१, ५७८) लिहाथे, तुम दो चाटते हो। लीढ्व (२७१, ७५, ५८१, १२७) तुम चाटते हो॥

लिट् में प० लिलेह आ० लिलिहे = वह चाटता (था) हुआ। लोट् में, (२) लेढासि (३) लेढासे, तू चाटेगा। लृट् में, प० लेक्ष्यति। आ० लेक्ष्यते, वह चाटेगा। लोट् में प० लेढु, लीढात्, वह चाटे। लीढाम्, वे दो चाटें। लिहन्तु, वे चाटें। लीढि (४४१) ५८७ तू चाट। लेहानि (४४३, ४४४) मैं चाटूं। आ० लोट् में लीढाम् ५८८, ५८१, १२७ वह चाटे। लङ् में, अलेट् २७१, १८३, १५८ वा अलेड्, वह चाटता हुआ। लुङ् में प०६२१ अलिक्षत् ६२२ आ० अलीढ, अलिक्षत २७१, ५७८ उस ने चाटा। लृङ् में प० अलेक्ष्यत् आ० में अलेक्ष्यत २७१, ५७८ यदि वह चाटे। ब्रूञ् (ब्रू) = स्पष्टबोलना॥

६२४ ॥ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः। ३। ४। ८४। ब्रुवो-लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः। आह। आहतुः। आहुः॥

ब्रू धातु से परे जो लट् के स्थान में तिबादि पांच (१ तिप्, २ तस्, ३ झि, ४ सिप्, ५ थस्) इन को णलादि पांच (१ णल्, २ अतुस्, ३ उस्, ४ थल्, ५ अथुस्) आदेश क्रम से होवें, और ब्रू को आह आदेश होवे। ब्रू + तिप् (आह + णल्) तो आह = वह कहता है। आहतु, वे दो कहते हैं। आहु., वे कहते हैं॥

६२५ ॥ आहस्थः। ८। २। ३५। झलि। चर्त्वम्। आत्थ। आहथुः॥

जब झल् परे हो तब आह ६२४ के अन्तिम वर्ण को थ, होवे। पुनः खरि च से थ् को त् किया आत्थ, तू कहता है। आहथु', तुम दो कहते हो॥

६२६ ॥ ब्रुव ईट्। ७। ३। ९३। ब्रुवो हलादेः पित ईट्। ब्रवीति। ब्रूत.। ब्रुवन्ति। ब्रूते। ब्रुवाते। ब्रुवते॥

---

(१) आत्मने पद में "अर्थ" परस्मैपद के समान जानने। (२) परस्मै पद में मध्यम पु० एकवचन में ५८०, ५८१। (३) आत्मनेपद में मध्यम पु० एकवचन में ५८०, ५८१॥

ब्रूञ् (ब्रू) धातु से परे जो हलादि (१) पित् प्रत्यय उस को ईट् का आगम होवे। ब्रवीति ३१३ २६ यह बोलता है। ब्रूत' ५९८ वे दो बोलते हैं। ब्रुवन्ति (२१७) वे बोलते हैं। आत्मने पद में लट् के ब्रूते १९० ब्रुवाते ब्रुवते सर्व पूर्ववत् ॥

६९७ ॥ ब्रुवो वचि । २ । ४ । ५३ । आर्धधातुके। उवाच, ऊचतु, ऊचुः, उवचिथ, उवक्थ, "ऊचे" "वक्ता" "वक्ष्यति" वक्ष्यते, ब्रवीतु, ब्रूतात्, ब्रूताम्, ब्रुवन्तु, ब्रूहि, ब्रवाणि, "ब्रूताम्" "ब्रवै" "अब्रवीत्, अब्रूत"। "ब्रूयात्, ब्रुवीत" "उच्यात्, वक्षीष्ट" ॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे रहे तो ब्रू को वच् आदेश होय। लिट् में उवाच (४१ ४२२, ६०७, २०८, ४७२) वह बोला। ऊचतु' (५०८) वे दो बोले। ऊचु वे बोले। उवचिथ १११ (वा) उवक्थ (१०७) (२२८) तू बोलाथा। आत्म लिट् में ऊचे ६०७ ५०८। लुट् में वक्ता ११८ लृट् में वक्ष्यति। आ में वक्ष्यते १२८ वह बोलेगा। लोट् में ब्रवीतु ४२६ ४२४ २६ ४२७ (वा) ब्रूतात् वह बोले ब्रूताम वह दो बोलें। ब्रुवन्तु २१७ ४६० वे बोलें। ब्रूहि ब्रूतात् तू बोले। ब्रवाणि मैं बोलूं। आत्मने पद में ब्रूताम्(२) ब्रवै। लङ् में अब्रवीत् ४२६ आ में अब्रूत वह बोला। वि लिङ् में ब्रूयात् (आ में) ब्रुवीत वह बोले। आशिष् लिङ में उच्यात् ६०८ (आ में) वक्षीष्ट ११८ वे ईश्वर! वह बोले॥

६९८ ॥ अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् । ३ । १ । ५२ । च्लेः ॥

अस् फेंकना। वच् बोलना। ख्या कहना। इन तीन धातुओं से परे जो च्लि ४६६ उसको अङ होवे॥

६९९ ॥ वच उम् । ७ । ४ । २०। अङि परे। अवोचत्, 'अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत' ॥

अङ ६९८ परे हो तो वच् धातु को उम् का आगम होय। लुङ् में अवोचत्। वह बोला। लृङ् में अवक्ष्यत् १२८ (आ में) अवक्ष्यत यदि वह बोले॥

६१ ॥ चर्करीतं च। चर्करीतमिति यङ्लुगन्तं तददादौ बोध्यम्

२४ ऊर्णुञ्। आच्छादने ॥

चर्करीत यह यङ् (१) लुगन्त की प्राचीनों के मत में संज्ञा है उसको भी अदादि ११८ गण में जान लेना। २४ ऊर्णुञ् (ऊर्णु) आच्छादन (ढक लेना ॥ ६१ ॥

— ६९१ ऊर्णोतेर्विभाषा । ७ । ३ । ९० । हलिईंशादौ पिति सार्व

* (१) तिप् सिप् मिप्। (२) प्र प ब्रूताम् है। उ प ब्रवै है (३)। ७१८ में होगा॥

धातुके। ऊर्णौति, ऊर्णोति, ऊर्णुतः। ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुते, ऊर्णुवाते, ऊर्णुवते॥

जब हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो ऊर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे। लट् में ऊर्णौति वा ऊर्णोति ४१४ वह ढकता है। ऊर्णुत वे दो ढ० ऊर्णुवन्ति, वे ढकते हैं आत्मनेपद के लट् में प्रथम पु० ए० ऊर्णुते द्वि० ऊर्णुवाते, अर्थ परस्मै० की तरह है॥६३१॥

६३२॥ ऊर्णोतेराम्नेति वाच्यम्॥*॥

ऊर्णु धातु से आम् ५४० न हो ऐसा कहना चाहिये॥६३२॥

६३३॥ नन्द्राः संयोगादयः। ६। १। ३। अचः परः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति। नुशब्दस्य द्वित्वम्। ऊर्णुनाव। ऊर्णुनुवतुः, ऊर्णुनुवुः॥

अच् से परे संयोग के आदि में "न्, द्, र्" इन में से कोई एक हो तो उसे द्वित्व न होवे। इस नियम के लगने से ऊ से परे र् को द्वित्व न हुआ किन्तु 'नु' मात्र को ही द्वित्व हुआ। तो लिट् के प्र० ए० ऊर्णुनाव, १८६, २६ उसने ढका था। ऊर्णुनुवतुः, उन दोनें ढ०। ऊर्णुनुवुः, उनने ढका था॥६३३॥

६३४॥ विभाषोर्णोः। १। २। ३। इडादिप्रत्ययो ङित् ऊर्णुनुविथ, ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता, ऊर्णविता। ऊर्णुविष्यति, ऊर्णविष्यति। ऊर्णौतु ऊर्णोतु। ऊर्णवानि। ऊर्णवै॥

इट् है आदि में जिसके ऐसा प्रत्यय ऊर्णुञ् (ऊर्णु) धातु से परे हो तो वह विकल्प करके ङित् होवे। जहां ङित् हुआ वहां २१४ से उवङ् हुआ, तो ऊर्णुनुविथ सिद्ध हुआ। और दूसरे पक्ष में गुण हो २६ से अव हुआ तो ऊर्णुनविथ सिद्ध हुआ तूने ढका था। लुट् में (१) ऊर्णुविता, ऊर्णविता। लृट् में ऊर्णुविष्यति, ऊर्णविष्यति, वह ढकेगा। लोट् में ऊर्णौतु, (२) ऊर्णोतु, वह ढके। लो० उ० ए० में ऊर्णवानि, ऊर्णवै, मैं ढकु॥६३४॥

६३५॥ गुणोऽपृक्ते। ७। ३। ९१। ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। और्णोत् और्णोः। ऊर्णुयात्। ऊर्णुयाः। ऊर्णुवीत। ऊर्णूयात्, ऊर्णुविषीष्ट। ऊर्णविषीष्ट॥

ऊर्णु धातु को गुण होवे जब अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो। लङ् में

(१) लुट् में अर्थ लृट् के समान है। (२) ६३१ से वृद्धि विकल्प हुआ॥

पौर्णात् (४५१ ४०२, २१२) उससे ठक्। पौर्णो तू ने ठक्। विधि लिङ में ऊर्णुयात् यह ठवे। ऊर्णुया तू ठक्। ऊर्णुवात यह ठवे। या लि में ऊर्णयात ११२ ऊर्णुविपीष्ट ६१४ ऊर्णविपोष्ट इत्यादि करे कि यह ठवे ॥ ६११ ॥

६२६ ऊर्णोतेर्विभाषा ।७।२।६। इडादौ परस्मैपदे सिचि वृद्धिः। पक्षे गुणः। और्णावीत्, और्णवीत्, और्णुवीत्, और्णाविष्टाम्, और्णविष्टाम्, और्णुविष्टाम्। और्णविष्ट, और्णुविष्ट, और्णविष्यत्, और्णुविष्यत ॥ ॥ इत्यदादय ॥

यद् ४२० है आदि में जिस के ऐसा सिच् परे होतो 'ऊर्णु' धातु को वृद्धि विकल्प करके होवे। दूसरे पक्ष में ४१४ गुण होता है और्णावीत् ४०२—४३१ ३०४ और्णवीत् (४१४ ३०४ और्णुवीत् ६१४ उससे ठक्। और्णाविष्टाम् और्णविष्टाम् और्णुविष्टाम् उन दोनें ठक्। आत्म में लुङ् में और्णविष्ट ६१४ और्णुविष्ट उससे ठक्। लङ् में और्णुविष्यत् ६१४ यदि यह ठवे ॥ गम ॥ ६११ ॥ अदादिगण समाप्त भया ॥

अथ जुहोत्यादय. ॥

॥ १ ॥ हुदानादनयो ॥

६३७ । जुहोत्यादिभ्यः श्लु ।२।४।७५। शपः ॥

'अथ हु (यज्ञ करना) है आदि मे जिन के उनका वर्णन किया जाता है। १। हु (विधि पूर्वक हवि को अग्नि में फेंकना वा खाना) है आदि में जिन के उन धातुओं के आगे जो शप् तिसका श्लु होवे ॥ ६३७ ॥

६३८ । श्लौ ।६।१।१०। धातोर्द्वे स्तः। जुहोति। जुहुतः ॥

जब श्लु की विषयता हो तब धातु का द्वित्व होवे। जुहोति—४०२—४१४ यह यज्ञ करता है। जुहुत वे दो यज्ञ करते हैं ॥ ६३८ ॥

६३९ ॥ अदभ्यस्तात् ।७।१।४। झस्य। हुश्नुवोरिति यण्। जुह्वति।

अभ्यस्तसंज्ञक धातुओं से परे झ को अत् होवे। ३१ से यण् हुआ। जुह्वति वे यज्ञ करते हैं ॥ ६३९ ॥

६४० ॥ भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ।३।१।३९। एभ्यो लिटयाम्वा स्यादामि श्लाविव कार्यं च। जुहवाञ्चकार। जुहाव। होता। होष्यति। जुहोतु जुहुतात्। जुहुताम्। जुह्वतु। जुहुधि। जुहवानि। अजुहोत्। अजुहुताम्।

भी, डरना। ह्री, लज्जा करनी। भृ, पालना। हु, यज्ञ करना। इन धातुओं से परे आम् होता है लिट् ल० मे विकल्प करके। और आम् के होने पर श्लु के परे होने से जो कार्य होता है वह भी होवे अर्थात् ६३८ से द्वित्व हो। जुहवाञ्चकार (५०१, ४२० ५०२, ४२२, ४८२, १९६) वा जुहाव उसने यज्ञ किया। लुट् मे होता,। लृट् में होष्यति लोट् मे जुहोतु, जुहुतात्। जुहुताम्। जुह्वतु। ६३९। ५३० (हि का) जुहुधि ५८७ जुहवानि मैं यज्ञ करूँ। लङ् में अजुहोत् ६३८। द्विवच० में अजुहुताम् ॥ ६४० ॥

६४१ ॥ जुसि च। ७। ३। ८३। इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि। अजुहवुः। जुहुयात्। हूयात् अहौषीत्। अहोष्यत्। ञिभी भये। २ बिभेति ॥

इक् (इ उ ऋ लृ) है अन्त में जिसके ऐसे अङ्ग को गुण हो, अच् है आदि जिस के ऐसा जुस् ४७५ परे हो तब। अजुहवुः उनने यज्ञ किया। वि० लिङ् में जुहुयात् आशि लिङ् में हूयात् ५१२, ईश्वर करे कि वह यज्ञ करे। लुङ् मे अहौषीत् ५१२ उसने यज्ञ किया लृङ् में अहोष्यत्, यदि वह यज्ञ करे। २। ञिभी (भी) डरना लट् प्र०, ए० में बिभेति। (६३८, ४२२,)४२५ वह डरता है ॥ ६४१ ॥

६४२ ॥ भियोऽन्यतरस्याम्। ६। ४। ११५। इ॰ स्याद्धलादौ क्ङिति सार्वधातुके। बिभितः। बिभीतः। बिभ्यति। बिभयाञ्चकार। बिभाय। भेता। भेष्यति। बिभेतु। बिभितात्। बिभीतात्। अबिभेत्। बिभियात्। बिभीयात्। भीयात्। अभैषीत्। अभेष्यत्। ३। ह्री लज्जायाम्। जिह्रेति, जिह्रीतः। जिह्रियति। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। ह्रेता। ह्रेष्यति। जिह्रेतु। अजिह्रेत्। जिह्रीयात्। ह्रीयात्। अह्रैषीत् अह्रेष्यत्। ४ पॄ पालनपूरणयोः ॥

भी धातु को इकार हो जब हलादि कित् वा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो बिभितः, बिभीतः, वे दो डरते हैं। बिभ्यति, वे डरते हैं। लिट् में बिभयाञ्चकार, बिभाय ६४०से आम्का विकल्प हुआ। वह डरा। लुट् में(१)भेता, लृट् में भेष्यति। लोट् में बिभेतु बिभितात् ४३८ से तातङ् और ६४२ से इकार, पक्ष में बिभीतात्, ईश्वर करे वह डरे। लङ् में अबिभेत्। वि० लिङ् मे बिभियात् ६४२ बिभीयात्, वह डरे। आ० लिङ् मे भीयात्, ईश्वर करे कि वह डरे। लुङ् में (२) अभैषीत् (४७३, ५१३) लृङ् में अभेष्यत् यदि वह डरे। ३। ह्री, लज्जा करणो ॥

---

(१) लुट् और लृट् में वह डरेगा। (२) अर्थ लिट् के समान है।

॥ प्र प ॥ ॥ प्र वि ॥ ॥ प्र ब ॥

लट्-क्रिणेति वह बन्धा करता है ॥ क्रिणीत ये दो ॥ क्रिक्रियसि ६१८ वे बन्धाकरते हैं ॥

लिट् में । क्रिक्रयाञ्चकार, क्रिक्राय वह बन्धित हुआ ॥

(१) { लुट में लट् में लोट् में लङ में वि लिङ् में आ लिङ् में | क्रेता क्रेष्यति, क्रिणेतु अक्रिणेत् क्रिणीयात् क्रीयात् }

लुङ् में अक्रैषीत् ३६६, ४०२ ३११ वह बन्धित हुआ। लङ् में अक्रेष्यत् यदि वह बन्धित होवे । प पालना करना वा पूरा करना ॥ ६४२ ॥

६४३ ॥ अर्त्तिपिपर्त्योश्च । ७ । ४ । ७७ । अभ्यासस्य इः स्यात् श्लौ । पिपर्ति ॥

श्लु ६१० परे हो तो ऋ और पृ धातु के अभ् को इ होवे । पिपर्ति ६१०, ६१८ वह पालता है । ६४३ ॥

६४४ ॥ उदोष्ठ्यपूर्वस्य । ७ । १ । १०२ । अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो यऋत्तदन्तस्याङ्गस्य उ ॥

अङ्ग का अवयव जो ओष्ठ स्थानीय (२) वर्ण वह है पूर्व जिस के ऐसा ऋ है अन्त में जिस के उस अङ्ग को उ ३३ हो ॥ ६४४ ॥

६४५ ॥ हलि च । ८ । २ । ७७ । रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि । पिपूर्तः । पिपुरति । पपार ॥

(रेफ) रकार वा वकार है अन्त में जिस के ऐसे धातु की उपधा के इक् को दीर्घ होवे । पिपूर्तः ६३४ वे दो (पालते) पूरा करते हैं । पिपुरति ६१८, वे पूरा करते हैं । लिट में पपार (३२ ३ २ ४२१ १८६ ९७) उसने पूरा किया ॥ ६४५ ॥

६४६ ॥ शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा ७ । ४ । १२ । किति लिटि पप्रतुः ।

शॄ मारना । दॄ फाड़ना । पॄ पालना । इन धातुओं को विकल्प करके ह्रस्व हो जब कित् लिट् परे होय तब । (१) पप्रतुः उन दो ने पूरा किया ॥ ६४६ ॥

६४७ ॥ ऋच्छत्यृताम् । ७ । ४ । ११ । तौदादिकस्यर्च्छेर्ऋधातो ऋदन्तानां च गुणो लिटि । पपरतुः । पपरुः ॥

(१) इन के अब बन्धित अब अधिक लगा कर पूर्ववत् कर लेने । (२) (पु) पु फ ब भ म इन पांचों का ग्रहण होता है और मैं सम्भव भी नहीं (३) यहां ह्रस्व कर के १८ से यण् कर लेना ।

तुदादि गण की ऋच्छ धातु को और 'ऋ' धातु को और ऋदन्त धातुओं को गुण होवे जब लिट् परे हो तब। अतः जिस पक्ष में ६४६ से। ह्रस्व न हुआ वहां इस से गुण हो पपरतुः सिद्ध हुआ पपरुः, उनने पूरा किया॥ ६४७॥

६४८॥ वृतो वा। ७। २। ३८। वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्नतु लिटि। परिता, परीता। परिष्यति, परीष्यति। पिपर्तु। अपिपः अपिपूर्ताम्। अपिपरुः। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपारीत्।

वृङ्, सेवा करणी। वृञ्, स्वीकार करणा। और ऋदन्त धातु। इन से परे जो इट् ४३७ तिस को विकल्प कर के दीर्घ होवे। परन्तु यह दीर्घ लिट् में न होवे। लुट् में परिता, परीता। लृट् में परिष्यति, परीष्यति, वह पूर्ण करेगा॥
लोट् में पिपर्तु, वह पूरा करे। लङ् में अपिपः ४५२, ४१४,। १९३,। १०८ उसने पूरा किया अपिपूर्ताम् ६४३—६४४—६४५, उन दोनो ने पूरा किया। अपिपरुः, उन ने पूरा किया। वि० लिङ् में पिपूर्यात् ६४३, ६४४, ६४५, वह पूरा करे। आशिर्लिङ् में पूर्यात् ईश्वर करे की वह पाले लुङ् में अपारीत् ५१२ उस ने पूरा किया॥ ६४८॥

६४९॥ सिचि च परस्मैपदेषु। ७। २। ४० अत्र वृत इटो न दीर्घ.। अपारिष्टाम्। अपरिष्यत्। अपरीष्यत्॥ ओहाक् त्यागे। जहाति॥

'वृङ्' 'वृञ्' और ऋदन्त जो धातु इनको दीर्घ न हो परस्मैपद के सिच् परे होते। अपारिष्टाम्, उन दोने पूर्ण किया। लृङ् मे अपरिष्यत्, अपरीष्यत् ६४८, यदि वह 'पालना' या 'पूर्ण' करे। ५। ओहाक् (हा) त्याग करणा। लट् में जहाति ६३८, ४२३, ४८२, वह त्याग करता है॥ ६४९॥

६५०॥ जहातेश्च ६। ४। ११६। इद्वास्याद्धलादौ क्ङिति हलि सार्वधातुके। जहितः।

कित् वा ङित् सार्वधातुक परे हो तो हा धातु को इ विकल्प करके होवे। जहितः वे दो त्याग करते हैं॥ ६५०॥

६५१॥ ई हल्यघो। ६। ४। ११। श्नाभ्यस्तयोरात ईत् सार्वधातुके क्ङिति हलि। जहीत.।

घु ६५६ सञ्ज्ञकों से भिन्न जो अभ्यस्त सञ्ज्ञक धातु उस के और श्ना ७२४ के

॥ प्र ए ॥ ॥ प्र द्वि ॥ ॥ प्र ब ॥

क्रद्-चिक्रेति वह खरीदा करता है ॥ चिक्रीत वे दो ॥ चिक्रियति ६१८ वे खरीदा करते हैं ॥

लिट् में। विक्रयाञ्चकार, विक्राय यह लक्षित हुआ ॥

(१) { लुट् में लृट् में लोट् में लङ् में वि लिङ् में आ लिङ् में }
{ क्रेता, क्रेष्यति, विक्रेतु, अविक्रेत् विक्रीयात् क्रीयात् }

लुङ में अक्रैषीत् ३६६ ४०१ ५११ यह लक्षित हुआ। लङ् में अक्रेष्यत् यदि वह लक्षित होवे। प पालना करनो वा पूरा करना ॥ ६४२ ॥

६४३ ॥ अर्तिपिपर्त्योश्च । ७ । ४ । ७७ । अभ्यासस्य इ: स्यात् । श्लौ । पिपर्ति ॥

श्लु ६१० परे हो तो ऋ और पृ धातु के अभ् को इ होवे । पिपर्ति ६१०, ६१८ वह पालता है । ६४३ ॥

६४४ ॥ उदोष्ठ्यपूर्वस्य । ७ । १ । १०२ । अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋत् तदन्तस्याङ्गस्य उ ॥

अङ्ग का अवयव जो ओष्ठ स्थानीय (२) वर्ण वह है पूर्व जिस के ऐसा ऋ है अन्त में जिस के उस अङ्ग को उ हो ॥ ६४४ ॥

६४५ ॥ हलि च । ८ । २ । ७७ । रेफवान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो हलि । पिपूर्तः । पिपुरति । पपार ॥

(रेफ) रकार वा वकार है अन्त में जिस के ऐसे धातु की उपधा के इक को दीर्घ होवे । पिपूर्त ६४४ वे दो (पालते) पूरा करते हैं । पिपुरति ६१८, वे पूरा करते हैं । लिट में पपार (४२ १ २, ४२१ १८८ ३३) उसने पूरा किया ॥ ६४५ ॥

६४६ ॥ शृदृप्रां ह्रस्वो वा ७ । ४ । १२ । किति लिटि पप्रतु ।

शृ मारना । दृ फाड़ना । प पालना । इन धातुओं को विकल्प करके ह्रस्व हो जब कित् लिट् परे होय तब । (३) पप्रतु:, उन दो ने पूरा किया ॥ ६४६ ॥

६४७॥ ऋच्छत्यृताम् । ७ । ४ । ११ । तौदादिकऋच्छेर्ऋधातो ॠदन्तानां च गुणो लिटि । पपरतु । पपरुः ॥

---

(१) इन के अब लक्षित पद अधिक लगा कर पूर्ववत् कर लेन । (२) (उ) प फ ब भ म इन वर्णों का ग्रहण होता है और मैं सम्भव हो नहीं (३) यहां ह्रस्व कर के १८ से यण् कर लेना ।

तुदादि गण की ऋच्छ धातु को और 'ऋ' धातु को और ऋदन्त धातुओं को गुण होवे जब लिट् परे हो तब। अतः जिस पक्ष में ६४६ से। ह्रस्व न हुआ वहां इस से गुण हो पपरतुः सिद्ध हुआ पपरुः, उनने पूरा किया॥ ६४७॥

६४८॥ वॄतो वा। ७। २। ३८। वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्नतु लिटि। परिता, परीता। परिष्यति, परीष्यति। पिपर्तु। अपिपः अपिपूर्ताम्। अपिपरुः। पिपूर्यात्। पूर्यात्। अपारीत्।

वृङ्, सेवा करणी। वृञ्, स्वीकार करणा। और ॠदन्त धातु। इन से परे जो इट् ४३७ तिस को विकल्प कर के दीर्घ होवे। परन्तु यह दीर्घ लिट् में न होवे। लुट् में परिता, परीता। लृट् में परिष्यति, परीष्यति, वह पूर्ण करेगा॥
लोट् मे पिपर्तु, वह पूरा करे। लङ् में अपिपः ४५२, ४१४,। १९३,। १०८ उसने पूरा किया अपिपूर्ताम् ६४३—६४४—६४५, उन दोनो ने पूरा किया। अपिपरु., उन ने पूरा किया। वि० लिङ् में पिपूर्यात् ६४३, ६४४, ६४५, वह पूरा करे। आशिर्लिङ् में पूर्यात् ईश्वर करे की वह पाले लुङ् में अपारीत् ५१३ उस ने पूरा किया॥ ६४८॥

६४९॥ सिचि च परस्मैपदेषु। ७। २। ४० अत्र वृत इटो न दीर्घः। अपारिष्टाम्। अपरिष्यत्। अपरीष्यत्॥ ओहाक् त्यागे। जहाति॥

'वृङ्' 'वृञ्' और ॠदन्त जो धातु इनको दीर्घ न हो परस्मैपद के सिच् परे होते। अपारिष्टाम्, उन दोने पूर्ण किया। लृङ् मे अपरिष्यत्, अपरीष्यत् ६४८, यदि वह 'पालना' वा 'पूर्ण' करे। ५। ओहाक् (हा) त्याग करणा। लट् में जहाति ६२८, ४२३, ४८२, वह त्याग करता है॥ ६४९॥

६५०॥ जहातेश्च ६। ४। ११६। इद्वास्याद्धलादौ क्ङिति हलि सार्वधातुके। जहितः।

कित् वा ङित् सार्वधातुक परे हो तो हा धातु को इ विकल्प करके होवे। जहितः वे दो त्याग करते हैं॥ ६५०॥

६५१॥ ई हल्यघोः। ६। ४। ११३। श्नाभ्यस्तयोरात ईत् सार्वधातुके क्ङिति हलि। जहीतः।

घु ६५६ सञ्ज्ञको से भिन्न जो अभ्यस्त सञ्ज्ञक धातु उस के और श्ना ७२४ को

भाकार को इकार होवे जब हलादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे रहे तब। जहीत (१) ये दो त्याग करते हैं ॥ ६५१ ॥

६५२ ॥ श्नाभ्यस्तयोरात ६।४।११२। लोप क्ङिति सार्वधातुके। जहति। जहौ। हाता। हास्यति। जहातु। जहितात्, जहीतात्।

जब कित् वा ङित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तब श्ना ६२४ प्रत्यय के और अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार (आ) का लोप होवे। जहति ६१८, ६५२ वे त्यागते हैं लिट् में जहौ ४२० ४२१ ४२२ ४८९, ५१० उसने त्यागा ॥

॥ लुट् में ॥ ॥ लट में ॥ ॥ लोट् में ॥

॥ हाता वह त्यागेगा ॥ ॥ हास्यति (२) ॥ ॥ जहातु वह त्याग करे ॥

जहितात् ६५ जहीतात् ६५१ ईश्वर करे कि वह त्याग करे ॥ ६५२ ॥

६५३ ॥ आ च हौ। ६।४।११७। जहातेः। आदिदीतौ। जहाहि, जहिहि, जहीहि। अजहात्, अजहुः ॥

जब हि परे हो तब हा धातु के आकार को आकार होवे आकार से इकार वा ईकार होवे। जहाहि। जहिहि ६५। जहीहि ६५१। तू त्याग कर। लङ् में अजहात् वह त्याग ता हुआ। अजहुः, उनने त्यागा ॥ ६५३ ॥

६५४ ॥ लोपो यि। ६।४।११८। जहातेरालोपो, यादौ सार्वधातुके। जह्यात्। हाधिङि। हेयात्। अहासीत्। अहास्यत् ॥ ६ ॥ माङ् माने शब्दे च ॥

य् है आदि में जिस के ऐसा सार्वधातुक परे हो तब हा (ओहाक्) धातु के आ का लोप होवे। वि लिङ में "जह्यात्" आशिर्लिङ् में घुमास्था से आ को एकार हुआ तो हेयात् (ईश्वर करे कि वह त्यागे) सिद्ध हुआ। लुङ् में अहासीत् ६२४ ४०१ ४०४ उस ने त्याग किया। लङ् में अहास्यत् जो वह त्याग करे। ६। माङ् (मा) मापना वा शब्द करना ॥ ६५४ ॥

६५५ ॥ भृञामित्। ७।४।७६। भृञ् माङ् ओहाङ् एषामभ्यासस्येत्स्यात् श्लौ। मिमीते। मिमाते। मिमते। ममे। माता। मास्यते मिमीताम्। अमिमीत। मिमीत। मासीष्ट। अमास्त। अमास्यत।७।

---

(१) जब ६५ को पक्षान्तर का रूप है तस में। (२) जब लुट् वत् ॥

ओहाङ् गतौ। जिहीते। जिहाते। जिहते। जहे। हाता हास्यते। जिहीताम्। अजिहीत। जिहीत। हासीष्ट। अहास्त। अहास्यत॥ ८। डुभृञ् धारणपोषणयोः। बिभर्ति। बिभृतः। बिभ्रति। बिभृते। बिभ्राते। बिभ्रते। बिभराञ्चकार। बभार। बभर्थ बभृव। बिभराञ्चक्रे। बभ्रे। भर्ता। भरिष्यति। भरिष्यते। बिभर्तु बिभराणि। बिभृताम्। अबिभः अबिभृताम्। अबिभरुः। बिभृयात्। बिभ्रीत। भ्रियात्। भृषीष्ट। अभार्षीत्। अभृत। अभरिष्यत्। अभरिष्यत। डुदाञ् दाने। ददाति। दत्त। ददति। दत्ते। ददाते। ददते। ददौ। ददे। दाता। दास्यति। दास्यते। ददातु॥

भृञ् (भृ) पालना। माङ् (मा) मापना। ओहाङ् (हा) जाना। इन धातुओं के अभ्यास के अच् को इकार होवे, जब शप् को श्लु हुआ हो, लट् में = मिमीते ६५१- वह मापता है। मिमाते ६५२ वे दो मापते हैं। मिमते ६३८, ६५२ वे मापते हैं। लिट् में ममे ५४२, ४२०, ५१८ वह मापता था। लुट् में माता, वह मापेगा लृट् में, मास्यते = वह मापेगा।

लोट् में मिमीताम् (६५१) वह मापे। लङ् में अमिमीत = उस ने मापा। वि० लिङ् में मिमीत = ६५२ वह मापे। आशीर्लिङ् में मासीष्ट = ईश्वर करे कि वह मापे। लुङ् में अमास्त ४६६ उस ने मापा। लृङ् में अमास्यत यदि वह मापे। ओहाङ् (हा) जाना = लट् में (१) जिहीते, जिहाते, जिहते = वे जाते हैं। लिट् मे, जहे = वह गया। लुट् में, हाता। लृट् मे हास्यते = वह जाएगा। लोट् में जिहीताम् = वह जावे। लङ् में, अजिहीत = वह गया विधि लि० में जिहीत। आ० लिङ् मे हासीष्ट = वह जावे। लुङ् में अहास्त = वह गया। लृङ् में अहास्यत = यदि वह जावे।

डुभृञ् (भृ) धारण करना वा पालना। लट् मे (२) बिभर्त्ति बिभृत' बिभ्रति = वे पालते हैं। आ० लट् प्र० पु० में (३) बिभृते, बिभ्राते, बिभ्रते = वे पालते हैं।

लिट् प्र० पु० एक वचन में ६४० से आम् विकल्प हुआ = बिभराञ्चकार, बभार ५०२ और १८६ से वृद्धि हुई। उस ने पाला। बभर्थ = तूने पाला। बभृव = हम दोंने पाला।

---

(१) यहां ६३७, ६३८, ६५५, ४८२, ६५१, वह कार्य कर लेने यह जाता है।

(२) यहां ६५५, से अभ्यास को इकार और अभ्यासेचर्च से अभ्यास के भ् को ब कर लेना और प्र० पु० बहु वचन मे ६३८ से झि के भ् को अत् और इकोयणचि से यण् कर लेना। और वह पालता है इत्यादि इन के अर्थ जानने।

आत्मने प्र पु एक वचन में बिभराम्बभूव बभ्रे ४८२ उस ने पाला। लुट् में भर्त्ता लृट् में भरिष्यति ४२६ वा भरिष्यते—वह पालेगा। लोट् में बिभर्तु। बिभराणि मैं पालूं। वा लोट् में बिभृताम्। लङ् में अबिभः ४१४ से गुण—१८१ से त् का लोप और १०८ से र की विसर्ग हुई—वह पालता हुआ। अबिभृताम्—उन दोनो पाला। अबिभरुः—यहां ४०१ से "जुस" और ४४१ गुण हुआ। उनने पाला। (बिभृयात् (१) वा बिभ्रीत) आशिष् में लिङ् यथा भ्रियात् ५०४ वा भृषीष्ट—ईश्वर करे कि वह पाले। लुङ् में अभार्षीत् ५११ वा (२) अभृत—उसने पाला। लङ् में अभरिष्यत् वा अभरिष्यत—यदि वह पाले।

डुदाञ् (दा)—देना। लट् में ददाति ४१८। ४२१ वह देता है। दत्तः यहां ४५२ से आ का लोप और चरिच से द् को त् कर लेगा। (ददति ४१८, ४५२)—वे देते हैं। वा लट् में दत्ते ददाते ददते। लिट् में ददौ ५१० वा ददे ५१८ ४८२ उसने दिया। लुट् में दाता लृट् में दास्यते—वह देगा। लोट् में ददातु—वह देगा॥ ४५५॥

४५६॥ दाधाघ्वदाप्। १। १। २०। दारूपाधारूपाश्च धातवो घुसंज्ञा स्युर्दाप्दैपौ विना। घ्वसोरित्येत्वम्। देहि। दत्तम्। अददात्। अदत्त। दद्यात्। ददीत। देयात्। दासीष्ट। अदात्। अदाताम्। अदुः।

(दाप्) काटना और दैप्—शोधन करना इन से विना (३) दा वा धा रूप और धा के रूप वाले धातु घु संज्ञा वाले हों। घु संज्ञा वाले से परे जब हि हो तो ६०८ से एकार और अभ्यास का लोप भी होता है तो देहि—तू दे। दत्तम्—तुम दो देवो। लङ् में अददात् "वा" अदत्त ४५२ वह देता हुआ। विधि लिङ् में दद्यात् वा ददीत ४१८-४५२ वह देवे। वा लिङ् में देयात् ५१८ वा दासीष्ट—ईश्वर करे कि वह देवे। लुङ् में अदात् ४६० उस ने दिया। अदाताम्—उन दोनो दिया अदुः। (४२०-४२१) उन ने दिया॥

४५७॥ स्थाघ्वोरिच्च १। २। १७। अनयोरिदन्तादेशः सिच्च किदात्मनेपदे। अदित। अदास्यत्, अदास्यत। १ डुधाञ् धारणपोषणयो। दधाति॥

आत्मनेपद में स्था और घु संज्ञकों के अन्त्यवर्ण को इकार होवे और सिच् कित् होवे। अदित—उसने दिया। लङ् में अदास्यत् वा अदास्यत यदि वह देवे। १ । डुधाञ् (धा)—धारणकरना वा पोषण करना। दधाति—वह धारण करता है॥

४५८॥ दधस्तथोश्च। ८। २। ३८। द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो

(१) विधि लिङ् में वह पाले। (२) इसकी सिद्धि स्थादिगण में आ चुकी है। (३) दा—देना। दो—खण्डन करना। दे—प्रत्यपकरना। धा—धारण करना। धे—पीना।

वशो भष् तथोः स्ध्वोश्च परतः। धत्तः। दधति। दधासि। धत्थ। धत्ते। दधाते। दधते। धत्से। धद्ध्वे। ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च। धेहि अदधात्। अधत्त। दध्यात्। दधीत। धेयात्। धासीष्ट। अधात्। अधित। अधास्यत्। अधास्यत। ११ णिजिर् शौचपोषणयोः॥

द्वित्व किया गया झष् प्रत्याहारान्त जो धा धातु तिस के बश् को भष् होय जब त्, थ्, स्, ध्व् इन में से कोई परे रहे तब। धत्तः ६५२ से आलोप् और खरिच से त् हुआ=वे दो धारण करते हैं। दधति=वे धारण करते हैं। दधासि=तू धारण करता है। धत्थ.=तुम धारण करते हो॥

॥ आत्मनेपद में लट्॥

धत्ते=वह धारण करता है। दधाते=वे दो धारण करते हैं। दधते=वे धारण करते हैं। धत्से=तू धारण करता है। धद्ध्वे। तुमधारण करते हो। ६०८ एकार और अभ्यास का लोप हुआ। धेहि=तू धारण करता हैं। लङ् (१)में अदधात् "वा" अधत्त उस ने धारण किया। वि० लि० में दध्यात् "वा" दधीत्=वह धारण करे। आ० लि० मे धेयात् "वा" धासीष्ट, ईश्वर करे कि वह धारण करे। लुङ् में अधात् वा अधित=उस ने धारण किया। लृङ् में अधास्यत् वा अधास्यत यदिवह धारण करे। ११ णिजिर् (णिज्) शुद्ध करना वा पोषण करना॥

६५९. इर इत्संज्ञा वाच्या॥

इर् की इत्संज्ञा कहनी चाहिये॥

६६०॥ निजां त्रयाणां गुणः श्लौ।७।४।७५। निजविजविषामभ्यासस्य गुणः श्लौ। नेनेक्ति। नेनिक्तः। नेनिजति। नेनिक्ते। निनेज निनिजे। नेक्ता। नेक्ष्यति। नेक्ष्यते। नेनेक्तु। नेनिग्धि॥

श्लु की विषयता में १ णिज्=शुद्ध करना। २ विज=भिन्न करना। ३ विष्=व्याप्त होना। इन तीन धातुओं के अभ्यास को गुण होवे। नेनेक्ति ४७९-३२८=वह शुद्ध करता है। नेनिक्तः=वे दो शुद्ध करते हैं। नेनिजति=वे शुद्ध करते हैं। नेनिक्ते=वह शुद्ध करता है। लिट् में निनेज वा निनिजे=वह शुद्ध करता हुआ। लुट् में नेक्ता, लृट् में नेक्ष्यति, नेक्ष्यते=वह शुद्ध करेगा। लोट् में नेनेक्तु ६६०-४७९-३२८ वह शुद्ध करे। नेनिग्धि ५८७-३२८ तू शुद्ध कर॥६६०॥

---

(१) इन में दा के तुल्य सूत्र लगाने।

६६१ ॥ नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७ । ३ । ८७ । लघूपधगुणो न । नेनिजानि । नेनिजाम् । अनेनेक् । अनेनिजाम् । अनेनिजु । अनेनिजम । अनेनिज । नेनिज्यात् । नेनिजीत । निज्यात् । निक्षीष्ट ॥

अजादि पित् सार्वधातुक परे हो तो अभ्यस्त संज्ञावाले धातु की उपधा के लघु को गुण न हो । नेनिजानि मैं शुद्ध करूं । नेनिजाम् १४६ वह शुद्ध करे । लङ् में अनेनेक् । अनेनिजाम् अनेनिजु —उन ने धोया । अनेनिजम् —मैं ने शुद्ध किया । आ लिङ् में अनेनिज—उसने शुद्धकिया वि लि नेनिज्यात् "वा' नेनिजीत। आ लि में निज्यात् "वा" निक्षीष्ट—११२-४२ और ६६१ से गुण निषेध—ईश्वर करे कि वह शुद्ध करे ६६१ ॥

६६२ ॥ इरितो वा । ३ । १ । ५७ । इरितोधातोश्च्लेरङ् वा परस्मैपदेषु । अनिजत् । अनैक्षीत् । अनिक्त । अनेक्ष्यत, अनेक्ष्यत ॥

॥ इति जुहोत्यादय ॥

जिस धातु का इर् इत् ६२८ से हो उस को च्लि को अङ हो परस्मैपद में । लुङ् में अनिजत् अनैक्षीत् "वा" अनिक्त १ ०—उस ने शुद्ध किया । लृङ् में अनेक्ष्यत् —"वा" अनेक्ष्यत—यदि वह शुद्धकरे ।

॥ इति जुहोत्यादि गण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ दिवादय ॥

(१) दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु

१ दिवु दिव्—खेलना जीतने की इच्छा करना व्यापार करना प्रकाश स्तुति करना हर्षकरना उन्मत्त होना । सोना इच्छाकरना चलना ।

६६३ ॥ दिवादिभ्य श्यन् ३ । १ । ६९ । शपोऽपवादः । हलिचेति दीर्घ । दीव्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । एवं २ षिवु तन्तुसन्ताने । ३ नृती गात्रविक्षेपे । नृत्यति । ननर्त्त । नर्तिता ।

दिवादि धातुओं से श्यन् हो, यह शप् का ४१२ का अपवाद है । ४७४ से उपधा को

---

(१) यहां ४८१ से वृद्धि कर देनी ।

दीर्घ हुआ। दीव्यति=वह क्रीडा करता है। लिट् में दिदेव ४७९=उस ने क्रीडा की लुट् में, देविता। लृट्, मे देविष्यति=वह क्रीडा करेगा। लोट् से दीव्यतु ६४५ वह क्रीडा करे। लङ् में अदीव्यत् ६४५-४५१-४५२ उस ने क्रीडा की। वि० लिङ् में दीव्येत्-आ० लि० में दीव्यात्=ईश्वर करे कि वह क्रीडा करे। लुङ् में ४७३-४७४ अदेवीत्, उसने क्रीडा करी। लृङ् में, अदेविष्यत्=यदि वह क्रीडा करे, इसी रीति से २ षिवु (षिव्) =सीवना —धातु के रूप साधलेने। ३ नृती (नृत्)=नाचना। लट् में नृत्यति, वह नाचता है। लिट् मे ननर्त्त ५०२, ४७९ वह नाचताथा। लुट् में, नर्त्तिता=वह नाचेगा।

६६४॥ सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः। ७। २५७। एभ्यः सिज्भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड्वा। नर्त्तिष्यति। नर्त्स्यति। नृत्यतु। अनृत्यत्। नृत्येत्। नृत्यात्। अनर्त्तीत्। अनर्त्तिष्यत्। अनर्त्स्यत्। ४ त्रसी उद्वेगे। वा भ्राशेतिश्यन् वा। त्रस्यति। त्रसति। तत्रास॥

कृत्=काटना। चृत्=मारना। छृद्=चमकना। तृद्=मारना वा अनादर करना। नृत्=नाचना। इन धातुओं से परे सिच् को छोड़ सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय हो तो उसे इट् विकल्प करके होवे। लृट् में, नर्त्तिष्यति 'वा' नर्त्स्यति=वह नाचेगा। (१) लोट् में नृत्यतु। लङ् में, अनर्त्यत्। वि० लि० में नृत्येत्। आशीर्लिङ् में नृत्यात्। लुङ् से अनर्तीत् ४७३-४७४। लृङ् मे अनर्त्तिष्यत् 'वा' अनर्त्स्यत्। त्रसी (त्रस्) घबराना 'वा' डरना। ५१४ से इस धातु को श्यन् का विकल्प हुआ। लट् में त्रस्यति 'वा' त्रसति ४१२=वह डरता है। लिट् में, तत्रास=४८३ वह डरा।

६६५॥ वा जॄभ्रमुत्रसाम्। ६। ४। १२४। एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा। त्रेसतुः। तत्रसतुः। त्रेसिथ। त्रसिता। ५। शो तनूकरणे॥

जॄ=पुराणा होना। भ्रमु=फिरणा। त्रस्=डरना। इन धातुओं के अकार को एकार विकल्प करके होवे जब कित्, लिट् वा इट् युक्त थल् परे हो तब। त्रेसतु 'वा' तत्रसतु, वेदो डरते थे। त्रेसिथ 'वा' तत्रसिथ=तू डरता था। त्रसिता=वह डरेगा। ५ शो=पतला करना।

६६६॥ ओतः श्यनि। ७। ३। ७१। लोपः स्यात् श्यनि। श्यति। श्यतः। श्यन्ति। शशौ। शशतुः। शशुः। शाता। शास्यति॥

---

(१) यहां से लृङ् पर्यंत ये सभी प्रथम पुरुष के एक वचन के रूप जान लेने।

ओकार का लोप होवे जब श्यन् परे रहे तब । लट् में—(१)श्यति श्यतः, श्यन्ति । लिट् में (२) शशौ १२२, ११० । शशतुः ११८ । शशुः । लुट में शाता १२१ । लृट् में शास्यति —वह पतला करेगा ।

६६७ ॥ विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः २।४।७८ । एभ्य सिचो लुग्वा परस्मैपदेषु । अशात् । अशाताम् । अशुः ॥

घ्रा—सूंघना । धेट्—पीना । शा—शो—पतला करना । छो—काटना । और सा—षो—नाश करना । इन धातुओं से परे जो सिच् तिस का विकल्प करके लुक् होवे । लुङ् में अशात्—उस ने पतला किया । अशाताम्—उन दो ने पतला किया । अशुः १२१ ९२० उन ने पतला किया ।

६६८ ॥ यमरमनमातां सक् च ७।२।७३ । एषां सक् एभ्य सिच इट् परस्मैपदेषु । इट्सकौ । अशासीत् । अशासिष्टाम् । ६ । छो छेदने । छ्यति । ७ । षो अन्तकर्मणि । स्यति । ससौ । ८ । दो अव खण्डने । द्यति । ददौ । देयात् । अदात् । ९ । व्यध ताडने ।

यम्—निवृत्त होना । रम्—क्रीडा करनी । नम्—नमस्कार करनी । इन धातुओं को और आकारान्त धातुओं को सक् का आगम होवे और इन से परे जो सिच् तिस को इट् होवे । परस्मैपद में अशासीत्—उस ने पतला किया । अशासिष्टाम्—उन दोनों पतला किया । ६ छो—काटना । लट में छ्यति ६६६—वह काटता है । ७ । षो—नाश करना । लट में स्यति—(२०१) (६६६) वह नाश करता है । लिट् में ससौ १२२ ४१ उस ने नाश किया ८ दो—काटना—द्यति (६६६)—वह काटता है । लिट् में ददौ—उस ने काटा । आशीर्लिङ में देयात्—(११८)ईश्वर करे कि वह काटे । लुङ् में अदात्(६६७) उस ने काटा । ९ व्यध—ताडन करना ।

६६९ ॥ ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६।१।१६ । एषां संप्रसारणं स्यात् किति ङिति च । विध्यति विव्याध । विविधतुः । विविधुः । विव्यधिथ । विव्यद्ध । व्यद्धा । व्यत्स्यति विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् । १० । पुष पुष्टौ । पुष्यति । पुपोष ।

---

(१) यहां से तीनों लट के प्रथम पुरुष के रूप हैं, (२) यहां से तीन रूप लिट के प्रथम पुरुष के हैं ।

पुपोषिथ। पोष्टा। पोक्ष्यति। पुषादीत्यङ्। अपुषत्। ११। शुष शोषणे शुष्यति। शुशोष। अशुषत् १२ णश अदर्शने। नश्यति। ननाश। नेशतुः॥

ग्रह्=लेना। ज्या=बूढा होना। वय्= बुनना। व्यध्=ताडन करना। वश्= इच्छाकरणी। व्यच्=ठगना। व्रश्च=काटना। प्रच्छ=पूछना। भ्रस्ज्=भुनना। इन धातुओं को कित् वा ङित् प्रत्यय परे रहे, तो सम्प्रसारण होवे। ५२८ से श्यन् भी ङित् है तो व्यध को सम्प्रसारण हुआ। लट् में=विध्यति=वह विन्हता है। लिट् में विव्याध ५७७ उस ने ताडन किया। विविधतुः=उन दो ने ताडन किया। विव्यधिथ 'वा' विव्यद्ध ५१७-५८० तूने ताडन किया। लुट् में व्यद्धा ५८०। लृट् में व्यत्स्यति=वह ताडन करेगा वि० लिङ् में विध्येत्, आशिष् में विध्यात्, ईश्वर करे कि वह ताडन करे। लुङ् मे अव्यात्सीत्। ४७३, ४८३ उस ने ताडन किया, १० पुष्=पुष्ट करणा। लट् मे पुष्यति=वह पुष्ट करता है। लिट् में पुपोष ४७९=उस ने पुष्ट किया। पुपोषिथ=तूने पुष्ट किया। लुट् में पोष्टा। लृट् में पोक्ष्यति। ५७९ वह पुष्ट करेगा।

लुङ् में ५२६ से इस धातु की च्लि को अङ् हुआ, अपुषत् उस ने पुष्ट किया। ११ शुष्=सूखना। लट् में शुष्यति=वह सूखता है। लिट् में, शुशोष ४६९ वह सूखगया १२। (१) णश्=नष्ट होना। लट् में नश्यति=वह नष्ट होता है। लिट् में ननाश= ४८३ वह नष्ट हुआ था। नेशतु' ४७८ वे दो नष्ट हुए थे।

६७०॥ रधादिभ्यश्च। ७। २। ४५। वलाद्यार्धधातुकस्य वेट्। नेशिथ॥

रध्=आदि धातुओं से परे आर्धधातुक यदि वलादि होतो उसे इट् विकल्प करके होवे। नेशिथ (४८९)=तू नष्ट हुआ।

६७१॥ मस्जिनशोर्झलि। ७। १। ६०। नुम्। ननंष्ठ। नेशिव। नेश्व। नेशिम। नेश्म। नशिता। नंष्टा। नशिष्यति। नङ्क्ष्यति। नश्यतु अनश्यत्। नश्येत्। नश्यात्। अनशत्। १३। षूङ् प्राणिप्रसवे। सूयते सुषुवे। क्रादिनियमादिट्। सुषुविषे। सुषुविवहे। सुषुविमहे। सोता। सविता। १४। दूङ् परितापे। दूयते। १५। दीङ् क्षये। दीयते॥

मस्ज्=डूबना। नश् इन दोनों को झल् परे होतो नुम् का आगम होवे तो ६७० के पक्षांतर में ननंष्ठ ३२९ से ष् और ७५ से ठ् हुआ वह नष्ट हुआ था। नेशिव ४८८ वा

(१) यहां ण् को न् ४८६ से प्रथम ही करलेना।

नेशव हम दो नष्ट हुए थे। नेशिम १० ४८८ वा नेशम हम नष्ट हुए थे। लुट् में नशिता वा नंष्टा लृट में नशिष्यति वा नंक्ष्यति २२८-२०८ वह नष्ट होगा। लोट में नश्यतु। लङ् में अनश्यत। विधि लिङ में नश्येत्। आ लिङ में नश्यात् हे ईश्वर वह नष्ट होवे। लुङ् में अनशत् २३३ वह नष्ट हुआ। १२ षूङ् (षू)—प्राणि को उत्पन्न करना। लट् में सूयते—वह उत्पन्न करता है। लिट् में सुषुवे २१४ उस ने उत्पन्न किया था। क्रादि नियम से इट को इट हुआ तो सुषुविषे—तू ने उत्पन्न कियाथा। सुषुविवहे—हम दोने उत्पन्न किया था। सुषुविमहे—हमने उत्पन्न कियाथा। लुट् में सविता वा १ १ सोता—वह उत्पन्न करेगा। १४। दूङ् (दू)—दुःखी होना। लट् में—दूयते वह दुःखी होता है। १५। दीङ् (दी)—क्षय होना। लट् में—दीयते—वह क्षीण होता है।

६०२ ॥ दीङोयुडचि क्ङिति । ६ । ४ । ६३ । दीङः परस्याऽऽदेः क्ङिदाधधातुस्य युट् ॥

अजादि कित् वा ङित् आर्धधातुक परे हो तो दीङ् धातु को युट् का आगम् होवे।

६०३ ॥ वा । वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ। दिदीये ॥

उवङ् वा यण् करना हो, तो वुक् और युट् सिद्ध कहने चाहिं (१)दिदीये—वह क्षीण हुआ ॥

६०४ ॥ मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च । ६ । १ । ५ । एषामात्वं स्यात् ल्यपि चादशित्येज्निमित्ते । दाता । दास्यते । अदास्त । १६ । डीङ् विहायसागतौ । डीयते । डिड्ये । डयिता । १७ । पीङ् पाने । पीयते । पेता । अपेष्ट । १८ । माङ् माने । मायते । ममे । १९ जनी प्रादुर्भावे ।

मीञ्—हिंसा करनी। डु मिञ्—फेंकना। और दीङ् इन धातुओं को (१) ल्यप् परे होते आकार होवे। एकार व निमित्त शित् भिन्न और ल्यप् करने का निमित्त परे होते। लट् में दाता लृट में दास्यते—वह क्षीण होगा। लुङ् में अदास्त वह क्षीण हुआ, १६ डीङ् (डी)—उड़ना। लट् में डीयते—वह उड़ता है। लिट् में डिड्ये—वह उड़ाथा। लुट् में डयिता—वह उड़ेगा। १७ पीङ् (पी) पीना लट् में पीयते—वह पीता है। लुट् में १ ४ से इट् का निषेध है। पेता—वह पीवेगा। लुङ् में अपेष्ट—उसने पिया। १८। माङ् (मा)—मापना। लट् में मायते—वह मापता है। लिट् में ममे—उसने मापा १९ जनी (जन्)—प्रकट होना।

---

(१) यहां अचित्वहवाभात् ४४७ से युट् अचित होता तो यण् होजाता परन्तु ६०१ के नियम से युट् सिद्ध है इस लिये यण् नहीं हुआ (१) ८११ से न आ।

६७५ ॥ ज्ञाजनोर्जा। ७। ३। ७९। शिति। जायते। जज्ञे। जनिता जनिष्यते ॥

'ज्ञा' जानना। और जन् इन धातुओं को शित् प्रत्यय परे होते 'जा' होवे। लट् में जायते = वह प्रगट होता है। लिट् मे (४२०, ५३४, ७२) जज्ञे = वह प्रगट हुआ था। लुट् मे, जनिता। लृट् मे, जनिष्यते = वह प्रगट होगा।

६७६ ॥ दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३। १। ६१ एभ्यश्च्लेश्चिण् वा एकवचनतशब्दे परे ॥

दीप = चमकना। जन् = उत्पन्न होना। बुध् = जानना। पूर् = भरणा। ताय् = फैलाना। प्याय् = वृद्धि इन धातुओं से परे जो च्लि तिसे चिण् विकल्प करके होवे जब एकवचन का त प्रत्यय परे होतो ॥

६७७ ॥ चिणोलुक्। ६। ४। १०४। चिणः परस्य लुक् ॥

चिण् ६७६ से परे जो प्रत्यय तिस का लुक् होवे।

६७८ ॥ जनिवध्योश्च। ७। ३। ३५ अनयोर्न वृद्धिश्चिणि ञ्णिति कृति च। अजनि। अजनिष्ट। २०। दीपी दीप्तौ। दीप्यते। दिदीपे। अदीपि। अदीपिष्ट। २१। पद गतौ। पद्यते। पेदे। पत्ता। पत्सीष्ट ॥

जन् = प्रगट होना। और वध = मारना। इन को वृद्धि न होवे, जब चिण् अथवा ञित् वा णित्, कृत् प्रत्यय परे हो, तब लुङ् में, अजनि वा अजनिष्ट = वह प्रगट हुआ। २०। दीप् = दीप्ति। लट् मे दीप्यते = वह चमकता है। लिट् में = दिदीपे = वह चमका। लुङ् में, अदीपि ६७६ वा अदीपिष्ट = वह चमका। २१ पद (जाना) लट् में पद्यते वह जाता है। लिट् मे = पेदे ४८८ वह गया। लुट् में, पत्ता = वह जावेगा। आशिष् लि० में पत्सीष्ट = हे ईश्वर वह जावे।

६७९ ॥ चिण् ते पदः। ३। १। ६०। पदश्च्लेश्चिण् ते परे। २२। विद सत्तायाम्। विद्यते। वेत्ता। अवित्त। २३। बुध अवगमने। बुध्यते। बोद्धा। भोत्स्यते। भुत्सीष्ट। अबोधि। अबुद्ध। अभुत्साताम्। २४। युध संप्रहारे। युध्यते। युयुधे। योद्धा। अयुद्ध। २५। सृज विसर्गे। सृज्यते। ससृजे। ससृजिषे ॥

एक वचन के 'त' परे होने पर पद धातु की च्लि को चिण् होवे। लुङ् में अपादि ६७७ = वह गया। अपत्साताम् = वे दो गये। अपत्सत = वे गये २२। विद = होना।

लट् में विद्यते । लुट में वेत्ता । लुङ् में अवित्त—वह था । २३ बुध—जानना । लट् में, बुध्यते । लुट में बोद्धा १८—वह समझेगा । लृट् में भोत्स्यते २०१ ८० वह जानेगा । आ लि में भुत्सीष्ट—हे ईश्वर वह जाने । लुङ् में अबोधि (६०६ ६००) वा अबुद्ध ६२० वह समझता हुआ । अभुत्साताम्—उन दोनें समझा । २४ युध—लड़ाई करनी । लट में युध्यते—वह लड़ता है । लिट् में युयुधे—वह लड़ाथा । लुट् में योद्धा १८ वह लड़ेगा । लुङ में अयुद्ध—वह लड़ा २५ । सृज—त्यागना । लट् में सृज्यते—वह त्यागता है । लिट् में ससृजे—उस ने त्यागा । ससृजिषे—तू ने त्याग किया था ।

६८० ॥ सृजिदृशोर्झल्यमकिति । ६ । १ । ५८ । अनयोरम् झलादावकिति । स्रष्टा । स्रक्ष्यते । सृक्षीष्ट । असृष्ट । असृक्षाताम् । २६ । मृष तितिक्षायाम् । मृष्यति । मृष्यते । ममर्ष । ममर्षिथ । ममृषिषे मर्षितासि । मर्षितासे । मर्षिष्यति । मर्षिष्यते । २७ णह बन्धने । नह्यति । नह्यते । ननाह । ननद्ध । नेहिथ । नेहे । नद्धा । नत्स्यति । अनात्सीत् । अनद्ध ॥

॥ इति दिवादयः ॥

सृज्—छोड़ना । दृश्—देखना । इन धातुओं को अम् आगम होवे जब झलादि और कित् रहित प्रत्यय परे होय तब । लुट् में स्रष्टा १२८ लृट् में स्रक्ष्यते १२८ १०८ वह त्यागेगा । आ लिङ में सृक्षीष्ट—हे ईश्वर वह छोड़े। लुङ् में असृष्ट १०० —वह त्यागता हुआ । असृक्षाताम्—उन दोनें त्याग किया । २६ मृष (मृष्) सहारना । लट् में मृष्यति वा मृष्यते वह सहारता है । लिट् में ममर्ष ४०८ उसने सहा । ममर्षिथ वा ममृषिषे तू ने सहा । लुट म प मे (मर्षितासि मर्षितासे) तू सहारेगा । लृट में मर्षिष्यति वा मर्षिष्यते—वह सहेगा । २७ णह (नह्) बान्धना । लट् म प मे नह्यति नह्यते ४८६ । लिट् में ननाह—उसने बांधा । (१) ननद्ध वा नेहिथ आ लिट् म प नेहे । लुट् में नद्धा । लृट् में नत्स्यति वह बांधेगा । लुङ में अनात्सीत् (वा) अनद्ध—वह बांधता हुआ ।

॥ दिवादिगण समाप्तमभूत् ॥

---

(१) यहां नहोधः से ह को ध् और १८ से ध् को द् जानेगा—तूने बांधा था।

॥ स्वादयः ॥

१ ॥ षुञ् अभिषवे ॥

६८१ ॥ स्वादिभ्यः श्नु । ३ । १ । ७३ । शपोऽपवादः । सुनोति । सुनुत । हुश्नुवोरिति यण् । सुन्वन्ति । सुन्वः । सुनुवः । सुनुते । सुन्वाते । सुन्वते । सुन्वहे । सुनुवहे । सुषाव । सुषुवे । सोता । सुनु । सुनवानि । सुनवै । सुनुयात् । सूयात् ॥

१ । षुञ् (सु) स्नान करणा, सोमलता को कुटना । और मद्य बनाना । सु आदि धातुओं से परे श्नु होवे यह शप् का अपवाद है । लट् में सुनोति = वह स्नान करता है । सुनुतः वे दो स्ना० । सुन्वन्ति = वे स्ना०, यहा ५३० से यण् कर लेना । सुन्वः, सुनुवः, ५३१ हम दो स्ना० । आ० लट् में प्र० ए० सुनुते द्वि० सुन्वाते । वह ७० सुन्वते = वे स्ना० । सुन्वहे, सुनुवहे ५३१ । लिट् मे 'सुषाव' 'वा' सुषुवे वह स्नान करता था । लुट् में सोता वह सोम को पीडेगा । लोट् मध्य० ए० में सुनु ५३२ । लो० उत्त० सुनवानि 'वा' सुनवै में नहाउ । वि० लिङ् में सुनुयात् । आ० लि० में सूयात् ५१२ हे ईश्वर वह नह लाए ॥

६८२ ॥ स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु । ७ । २ । ७२ । एभ्यः सिच इट् । असावीत् । असोष्ट । २ । चिञ् चयने । चिनोति । चिनुते ॥

स्तु = स्तुति करणा । सु = स्नान० । धूञ् कम्पना । इन धातुओं से सिच् को इट् आगम होय जब परस्मैपद प्रत्यय परे रहे । असावीत् 'वा' असोष्ट = वह स्नान० । २ । चिञ् (चि) इकट्ठा करणा । लट् में चिनोति 'वा' चिनुते = वह इकट्ठा करता है ॥

६८३ विभाषा चेः । ७ । ३ । ५८ । अभ्यासाच्चेः कुत्वं वा सनि लिटि च । चिकाय । चिचाय । चिक्ये । चिच्ये । अचैषीत् । अचेष्ट । ३ स्तृञ् आच्छादने । स्तृणोति । स्तृणुते ॥

अभ्यास से परे जो चि तिसके च् के स्थान में (१) कुत्व विकल्प करके होवे जब सन् 'वा' लिट् परे होवे तब । चिकाय 'वा' चिचाय । आत्म० में चिक्ये 'वा' चिच्ये उस ने एकट्ठा किया । लुङ् मे अचैषीत् 'वा' अचेष्ट । ३ । स्तृञ् (स्तृ) ढकना । लट् मे स्तृणोति 'वा' स्तृणुते वह ढकता है ॥

६८४ ॥ शर्पूर्वाः खयः ७ । ४ । ६१ । अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते

(१) कवर्ग (क् ख् ग् घ् ङ्)

ऽन्ये । इसीषुप्यन्ते । तस्तार तस्तरतु । तस्तरे । गुणोऽर्तीतिगुणः । स्तर्यात् ।

अट् से पूर्व जिस के ऐसा जो अभ्यास का शय् सो बचे और शर्षों का लोप होवे । तस्तार १८६—उसने ढका । तस्तरतु १२१ उन दोनों ने ढका । तस्तरे—उसने ढका । आ॰ लिङ् में स्तर्यात् १२०—इश्वर करे कि वह ढके ॥

६८५ ॥ ऋतश्च संयोगादेः । ७ । २ । ४३ । ऋदन्तात्संयोगादे र्लिङ्सिचोरिड्वा । स्तरिषीष्ट । स्तृषीष्ट अस्तरिष्ट । अस्तृत । ४ । धूञ् कम्पने । धूनोति धूनुते । दुधाव । अधरोति । वेट् । दुधविथ । दुधोथ ।

जिस धातु के अन्त में ऋ हो और आदि में संयोग हो उस से परे जो लिङ् और सिच् तिन को इट् का आगम हो विकल्प करके । स्तरिषीष्ट स्तृषीष्ट के इश्वर वह ढके लुङ् में अस्तरिष्ट, अस्तृत १०१—१०६ उस ने ढका । ४ । धू—कम्पना अर्थ में धूनोति धूनुते—वह कांपता है । लिट् में दुधाव वह कांप्या था । १ १ से इट् विकल्प हुआ तो दुधविथ दुधोथ—तू कांपा था ॥

६८६ ॥ श्र्युकः किति ७ । २ । ११ । श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिट् न इति प्राप्ते । क्रादिनियमान्नित्यमिट् । दुधुवे । अधावीत् । अधविष्ट । अधोष्ट । अधविष्यत् । अधोष्यत् । अधविष्यताम् अधोष्यताम् । अधविष्यत । अधोष्यत ॥ इति स्वादयः ॥

श्रि धातु का उक प्रत्याहारान्त एकाच् धातु से परे जब गित् वा कित् प्रत्यय हो तब उस को इट का आगम न होवे । इस से इट् का निषेध पाया तो ८ के अनुसार नित्य ही इट् हुआ तब दुधुविव उस को कांपे । दुधुवे—वह कांपा । लुङ् में अधावीत् ८८२ और अधविष्ट १ १ अधोष्ट वह कांपा । लृङ् में अधविष्यत् अधोष्यत् १ १ वा अधविष्यत् अधोष्यत—यदि वह कांपे ॥ स्वादिगण समाप्त हुआ ॥

॥ तुदादय॰ ॥

१ ॥ तुद व्यथने ॥

६८७ ॥ तुदादिभ्यः शः । ३ । १ । ७७ । शपोऽपवादः । तुदति । तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत् अतुत्त । २ । णुद प्रेरणे । नुदति नुदते नुनोद । नोत्ता । ३ । भ्रस्ज पाके । ग्रहिज्येति संप्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन शः । शस्य जश्त्वेन जः । भृज्जति भृज्जते ॥

तुदादि गण के धातुओं का वर्णन। १। तुद=पीडादेनी। तुद आदि धातुओं से परे श प्रत्यय होवे यह शप् ४१३ का अपवाद है। लट् मे (१) तुदति, तुदते=वह पीडा देता है। लिट् में तुतोद उस ने पीडा दी। तुतोदिथ=तू ने पीडा दी 'वा' तुतुदे। लुट् में तोत्ता=वह पीडा देगा। लुङ् में अतौत्सीत् ४९३ 'वा' अतुत्त उसने पीडा दी। २। णुद प्रेरणा करणी। लट् में नुदति वा नुदते=वह प्रेरता है। लिट् में नुनोद ४७९=उसने प्रेरणा की। लुट् में नोत्ता=वह प्रेरेगा। ३। भ्रस्ज=भुन्नना (भूनना)। यहां ६६९ से सम्प्रसारण (र् को ऋ) और ७२ वे से 'स् को श्' २२ वें से 'श् को ज्' किया तो भृज्जति 'वा' भृज्जते वह भूनता है॥

६८८॥ भ्रस्जो रोपधयोरमन्यतरस्याम्। ६। ४। ४७। भ्रस्जो-रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वार्धधातुके। मित्वादन्त्यादचः परः स्थानषष्ठीनिर्देशाद्रोपधयोर्निवृत्तिः। बभर्ज। बभर्जतुः। बभर्जिथ। बभर्ष्ठ। बभ्रज्ज। बभ्रज्जतुः। बभ्रज्जिथ। स्कोरिति सलोपः। व्रश्चेति षः। बभ्रष्ठ। बभर्जे। बभ्रज्जे। भर्ष्टा। भ्रष्टा। भर्क्ष्यति। भ्रक्ष्यति। क्ङिति रमागमं बाधित्वा संप्रसारणम्। पूर्वविप्रतिषेधेन। भृज्ज्यात्। भृज्ज्यास्ताम्। भृज्ज्यासुः। भर्क्षीष्ट। भ्रक्षीष्ट। अभार्क्षीत्। अभ्राक्षीत्। अभर्ष्ट। अभ्रष्ट। ४। कृष विलेखने। कृषति। कृषते। चकर्ष। चकृषे।

भ्रस्ज धातु के रेफ और उपधा के स्थान में रम् आगम विकल्प से हो जब आर्ध धातुक परे हो तब, यह रम् २६० के अनुसार अन्त्य अच् से परे होता है। स्थान (२) षष्ठी निर्देश से रेफ और उपधा की निवृत्ति हुई। इस लिये लिट् में बभर्ज—उसने भूना। बभर्जतु=उन दो ने भूना। बभर्जिथ 'वा' बभर्ष्ठ=तू ने भूना। दूसरे पक्ष में बभ्रज्ज, बभ्रज्जतु' बभ्रज्जिथ इट् के अभाव पक्ष में ३३२ से स् का लोप और ३२९ से अन्त्यवर्ण को ष् हुआ तो बभ्रष्ठ तूने भूना। आत्म० लिट् प्र० ए० में बभर्जे 'वा' बभ्रज्जे। लुट् में भर्ष्टा, भ्रष्टा लृट् में भर्क्ष्यति, भ्रक्ष्यति=वह भूनेगा। जब कित् वा ङित् प्रत्यय परे हो तब रमागम को बाध कर ६६९ से सम्प्रसारण होता है पूर्वविप्रतिषेध से। भृज्ज्यात्=ईश्वर करे कि

---

(१) यहां श को अपित् सार्वधातुक होने से गुण का निषेध हुआ। (२) यहां यह विचार है कि ६७८ सूत्र में धातुमात्र के उच्चारण से रम् आगम हो सकता था पुन' षष्ठी युक्त रेफ और उपधा के निर्देश से यह सिद्ध हुआ कि रम् आदेश है इसी से रेफ और उपधा को टाल कर हुआ क्योंकि स्थान षष्ठी का यही आशय है कि किसी के स्थान मे दूसरे का होना।

ऽग्ये । इसीसुप्यन्ते । तस्तार तस्तरतु । तस्तरे । गुणोऽर्त्तीतिगुणः । स्तर्यात् ।

यह है पूर्व जिस के ऐसा जो अभ्यास का ऋत् सो बचे और झयों का लोप होवे । तस्तार १८६ — ढपने ढका । तस्तरतु १२१ उन दोमें ढका । तस्तरे — ढपने ढका । आशिष में स्तर्यात् १२० — ईश्वर करे कि वह ढके ॥

६८५ ॥ ऋतश्च संयोगादेः । ७ । २ । ४३ । ऋदन्तात्संयोगादे लिङ्सिचोरिड्वा । स्तरिषीष्ट । स्तृषीष्ट अस्तरिष्ट । अस्तृत । ४ । धूञ् कम्पने । धूनोति धूनुते । दुधाव । स्वरतीति । वेट् । दुधविथ । दुधोथ ।

जिस धातु के अन्त में ऋ हो और आदि में संयोग हो उस से परे जो लिङ् और सिच् तिन को इट् का आगम हो विकल्प करके । स्तरिषीष्ट स्तृषीष्ट है ईश्वर वह ढ के लुङ् में अस्तरिष्ट, अस्तृत १०१—१०६ उस ने ढका । ४ । धू — कम्पना लट् में धूनोति धूनुते — वह कांपता है । लिट् में दुधाव वह कांप्या था । १. १ से इट् विकल्प हुआ तो दुधविथ दुधोथ — तू कांपा था ॥

६८६ ॥ श्र्युकः किति ७ । २ । ११ । श्रिञ एकाच उगन्ताच्च गित्कितोरिट् न स्यात् प्राप्ते । क्रादिनियमान्नित्यमिट् । दुधुवे । अधावीत् । अधविष्ट । अधोष्ट । अधविष्यत् । अधोष्यत् । अधविष्यताम् अधोष्यताम् । अधविष्यत । अधोष्यत ॥ इति स्वादयः ॥

श्रि धातु वा उक् प्रत्याहारान्त एकाच् धातु से परे जब गित वा कित् प्रत्यय हो तब उस को इट् का आगम न आवे । इस से इट् का निषेध पाया तो १. ८ के अनुसार नित्य ही इट् हुआ तब दुधुविव हम दो कांपे । दुधुवे — वह कांपा । लुङ् में अधावीत् ६८१ और अधविष्ट १. १ अधोष्ट वह कांपा । लृङ् में अधविष्यत् अधोष्यत् ५. १ वा अधविष्यत् अधोष्यत — यदि वह कांपे ॥ स्वादिगण समाप्त हुआ ॥

॥ तुदादय ॥

१ ॥ तुद व्यथने ॥

६८७ ॥ तुदादिभ्यः शः । ३ । १ । ७७ । शपोऽपवादः । तुदति । तुदते । तुतोद । तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत् अतुत्त । २ । णुद प्रेरणे । नुदति नुदते नुनोद । नोत्ता । ३ । भ्रस्ज पाके । ग्रहिज्येति संप्रसारणम् । सस्य श्चुत्वेन शः । शस्य जश्त्वेन जः । भृज्जति भृज्जते ॥

लट् में मुञ्चति 'वा' मुञ्चते=वह त्यागता है। लुट् में मोक्ता। आशीर्लिङ् में, मुच्यात् 'वा' मुक्षीष्ट हे ईश्वर वह छोडे। लुङ् में, अमुचत् ५२६ 'वा' अमुक्त=उसने त्यागा। अमुक्षाताम् उन दोनों छोडा। ७। लुप्लृ (लुप) काटना। लुम्पति 'वा' लुम्पते=वहकाटता है। लुट् में लोप्ता ४७८=वह काटेगा। लुङ् में, अलुपत् ५२६ वा अलुप्त=उसने काटा ८। विदॢ (विद्)=लभना। लट् में, विन्दति वा विन्दते=वह लभता है लिट् में, विवेद ४७८ वा विविदे=वह पाता हुआ। व्याघ्रभूति के मत में यह धातु सेट् है तब लुट् में, वेदिता। महाभाष्यकार के मत में अनिट् है, तब परिवेत्ता=वह बडे भाई से प्रथम स्त्री लभेगा। ९। षिच्। सिच्=सींचना। लट् में सिञ्चति वा सिञ्चते=वह सींचता है।

६९२॥ लिपिसिचिह्वश्च। ३। १। ५३। एभ्यश्च्लेरङ्। असिचत्

लिप्, सिच्, और ह्वेञ्=स्पर्धा करणी। इन से परे जो च्लि तिसे अङ् होवे लुङ् मे। असिचत्=उस नें सींचा।

६९३॥ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्। ३। १। ५४। लिपिसिचिह्वः परस्य च्लेरङ् वा। असिचत। असिक्त १० लिप उपदेहे। उपदेहो वृद्धिः। लिम्पति। लिम्पते। लेप्ता। अलिपत्। अलिपत। अलिप्त॥

॥ इत्युभयपदिनः॥

आत्मने पद में, लिप्, सिच्, और ह्वेञ्, इन धातुओं कि च्लि को अङ् विकल्प से होवे। असिचत वा असिक्त= उसने सींचा। १०। लिप्=पोचना। उपदेह का अर्थ वृद्धि है। लट् में, लिम्पति या लिम्पते=वह लेपता है। लुट् में, लेप्ता वह लिपेगा। लुङ् में, अलिपत् ६९२ वा अलिपत। अलिप्त ६९३=उसने लिपा। (१)उभयपदि धातु समाप्त हुए।

६९४॥ ११ कृती छेदने। कृन्तति। चकर्त्त। कर्तिता। कर्तिष्यति कर्त्स्यति। अकर्त्तीत्। १२। खिद परिघाते। खिन्दति। चिखेद। खेत्ता १३ पिश अवयवे। पिंशति। पेशिता। १४ ओव्रश्चू छेदने। वृश्चति। वव्रश्च वव्रश्चिथ। वव्रष्ठ। व्रश्चिता। व्रष्टा। व्रश्चिष्यति व्रक्ष्यति। वृश्च्यात्। अव्रश्चीत्। १५। व्यच व्याजीकरणे। विचति। विव्याच। विविचतुः। व्यचिता। ।व्यचिष्यति। विच्यात्। अव्याचीत्। अव्यचीत्। व्यचेः कुटादित्वमनसीतितु न प्रवर्त्तते। अनसीति पर्युदासेन कृन्मात्र-

(१) जो परस्मैपद और आत्मने पद में धातु हों।

षष भूने। मृज्ज्यास्ताम्। मृज्ज्यासु। भास्स म य सर्वोष्ठि 'वा' भवीष्ट ईश्वर करे षि षव भूने। लुङ् में षमार्षीत् षभ्राषीत् 'वा षमर्ष्ट षषष्ट वस ने भूना। ४। कृष कृष जोतना या खेंचना। लट में कृषति कृषते लिट् में चकर्ष चकृषे—उसने खेंचा।

६८९ ॥ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्। ६। १। ५९। उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्याम् वा झलादावकिति क्राष्टा, कर्ष्टा। क्राक्षीष्ट ॥

जो धातु उपदेश में अनुदात्त हो और ऋदुपध (जिसकी उपधा ऋ हो) जिसको अम् आगम विकल्प से हो जब कित् से भिन्न झलादि आर्धधातुक परे हो। तब लुट् में क्राष्टा 'पक्षमें' कर्ष्टा। आशीर्लिङ् म प में क्राक्षीष्ट वे ईश्वर सब खेंचे।

६९० ॥ वा०। स्पृशमृशकृषतृपदृपेश्च्लेः सिज्वा वाच्य। अक्राक्षीत्। अकार्क्षीत्। अकृक्षत्। अक्राष्ट। अक्राक्षाताम्। अकृक्षत। ५ मिष सेचने। मिषति। मिषते। मिमेष। मेषिता। अमेषीत्। ६। मुच्लृ मोचने।

स्पृश्—छूना। मृश्—छूना। कृष्—खेंचना। तृप्—तृप्त होना। दृप्—अभिमान करना। इन धातुओं से परे जो च्लि उसे सिच् विकल्प करके हो ऐसा कहना चाहिये। लुङ् में म ए अक्राक्षीत् अकार्क्षीत् ९८९ अकृक्षत् ६११ 'वा' अक्राष्ट। वि में अक्राक्षाताम् वन दोने खेंचा। अकृक्षत ११२—उनने खेंचा ॥ ५ मिष्—सिचना। लट् में मिषति मिषते। लिट् में मिमेष। लुट में मेषिता। लुङ् में अमेषीत्। ४०८, ४०, यह सिचा। ६ मुच्ल (मुच्) छोड़ना ॥

६९१ ॥ शे मुचादीनाम्। ७। १। ५९। मुच्लिप्विद्लुप्सिच्कृत्खिद्पिशां नुम्। मुञ्चति। मुञ्चते। मोक्ता। मुच्यात्। मुक्षीष्ट। अमुचत्। अमुक्त। अमुक्षाताम्। ७। लुप्लृ छेदने। लुम्पति। लुम्पते। लोप्ता। अलुपत्। अलुप्त। ८। विद्लृ लाभे। विन्दति। विन्दते। विवेद। विविदे। व्याघ्रभूतिमते सेट्। वेदिता। भाष्यमतेऽनिट्। परिवेत्ता ९। षिचर् क्षरणे। सिञ्चति। सिञ्चते ॥

मुच्—छोड़ना। लिप्—लेपना। विद्—पाना। लुप्—काटना। सिच्—सींचना। कृत्—काटना। खिद—दीनता देना। पिश्—पीसना। इन धातुओं को श परे होते नुम् हो

६६५ ॥ तीषसहलुभरुषरिषः ७ । २ । ४८ । इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् । लोभिता । लोब्धा । लोभिष्यति । २०, २१ तृपतृम्फ तृप्तौ । तृपति । ततर्प । तर्पिता । अतर्पीत् । तृम्फति ॥

इष् = इच्छा करणी, सह् = सहना, लुभ = लुभाना, रुष = मारणा, रिष = मारणा । इन धातुओं से परे तादि आर्धधातक को इट् विकल्प करके होवे । लुट् में, लोभिता । लोब्धा = वह लुभावेगा । लृट् में, लोभिष्यति = वह लोभावेगा । २०, २१, तृप, तृम्फ = तृप्त होना । लट् में, तृपति = वह तृप्त होता है । लिट् में, ततर्प ४७९ = वह तृप्त हुआ था । लुट् से, तर्पिता = वह तृप्त होगा । लुङ् मे, अतर्पीत् ४७९ = वह तृप्त हुआ । (ऐसे) तृम्फति = वह तृप्त होता है ॥

६६६ ॥ शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः । आदिशब्दः प्रकारे तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः । ततृम्फ । तृफ्यात् २२, २३ मृडपृड । सुखने मृडति पृडति । २४ । शुन गतौ । शुनति । २५ । इषु इच्छायाम् । इच्छति । एषिता एष्टा एषिष्यति । इष्यात् । ऐषीत् । २६ । कुट कौटिल्ये । गाङ्कुटादीति ङित्वम् । चकुटिथ । चुकोट । चुकुट कुटिता । २७ । पुट संश्लेषणे । पुटति । पुटिता । २८ । स्फुट विकसने । स्फुटति । स्फुटिता । २९, ३० स्फुर स्फुल संचलने । स्फुरति स्फुलति ॥

जब श (६८७) परे हो तब तृम्फादि धातुओं को नुम् होवे । यहां मूल में आदि शब्द प्रकार का वाचक है, इस लिये तृम्फ के सदृश प्रकार वाले वे धातु हैं जिनकी उपधा में नकार है । लिट् में, ततृम्फ = वह तृप्त हुआ । आ० लिङ् में तृफ्यात् = हे ईश्वर वह तृप्त हो ॥ २२-२३ । मृड् पृड् = सुखीकरना । लट् में, मृडति, पृडति = वह सुखी करता है २४ । शुन् = जाना । लट् में, शुनति = वह जाता है । २५ । इष् = इच्छा करणी । लट् मे, इच्छति ५२३ = वह इच्छा करता है । लुट् में, एषिता वा एष्टा ६६५ = लृट् में, एषिष्यति वह इच्छा करेगा । आ० लिङ् मे, इष्यात् । लुङ् में,(१) ऐषीत् = उसने इच्छा करी । २६ । कुट् — कुटिलता करणी । इस धातु से परे जो प्रत्यय ञित् वा णित् न हो वे ६१८ से ङित् माने जाते है । लिट् म० पु० ए० में, चुकुटिथ = तूने कुटिलता की । यहां ही उत्तम पु० ए० में. ४८४ से णित्व विकल्प हुआ तो चुकोट वा चुकुट = मैने कुटिलता की । लुट् में

(१) यहां ४७२ से आट् और (आटश्च से वृद्धि करलेनी ।

विषयत्वात्। १६। उछि उञ्छे। उञ्छति। कणश आदानं कणिशाद्य
र्जनं शिलमिति यादवः। १७। ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु। ऋच्छ
ति। ऋच्छत्यृतामिति गुणः। लिट्यभ्यासस्यानेकहलुपलक्षणत्वान्नुट्।
आनर्च्छ। आनर्च्छतुः। ऋच्छिता। १८। उज्झ उत्सर्गे। उज्झति। १९
लुभ विमोहने। लुभति॥

११ कृती (कृत्)—काटना। लट में कृन्तति ४९१—वह काटता है। लिट् में चकर्त—उसने काटा। लुट में कर्तिता—वह काटेगा। लृट् में कर्तिष्यति कर्त्स्यति ४९७ वह काटेगा। लुङ में अकर्तीत् ४७८—उसने काटा। १२ खिद पीड़ा देनी। लट् म प में खिन्दति। लिट में चिखेद—उसने पीड़ा दी। लुट् म प्र में खेत्ता १३ पिश्—पीसना। लट् में पिंशति—वह पीसता है। लुट् में पेशिता—वह पीसेगा। १४। ओव्रश्चू (व्रश्च्)—काटना। लट् में वृश्चति ४६८—वह काटता है। लिट् में वव्रश्च ४२, ५०७ ५ २ और ४२२—उसने काटा। वव्रश्चिथ वव्रष्ठ ५, १—तूने काटा था।

लुट् में व्रश्चिता व्रष्टा ५, १। लृट् में व्रश्चिष्यति व्रक्ष्यति ११२ ३२८ ५०८ पुनः ५—वह काटेगा। आशीर्लिङ में वृश्च्यात् ४६८। लुङ में अव्रश्चीत्—उसने काटा १५ व्यच्—ठगना। लट् में विचति ४६८, २०८—वह ठगता है। लिट् में विव्याच ५०७—उस ने ठगा। विविचतुः ४६८, उन दो ने ठगा। लुट् में व्यचिता। लृट् में व्यचिष्यति—वह ठगेगा। आशीर्लिङ में विच्यात् ४६८—ईश्वर करे कि वह ठगे। लुङ में अव्याचीत् ४८१, अव्यचीत्—उस ने ठगा। व्यच् धातु अच् रूप अत् प्रत्यय और अन्य प्रत्यय परे होते कुटादि माना जावे। इस वार्तिक की प्रवृत्ति यहां ङित् निषेध के लिये नहीं होती क्योंकि यहां 'अनसि' में नञ् पर्युदास (उस से भिन्न उसके तुल्य का ग्राहक) है इस लिये असुन् प्रत्यय मात्र ही इस वार्तिक का विषय है। १६ उछि (उञ्छ)—दाना २ चुगना। यहां यादव कोष में ऐसा लिखा है कि उञ्छ के अर्थ दाना २ कर चुगना। और कणिशादिकों का एकत्र करना लिखा हुआ है। १७ ऋच्छ्—जाना इन्द्रियों से विकल होना और मूर्त होना। लट् में ऋच्छति—वह जाता है। लिट् में ४६० से गुण हुआ। और ४८२ में लिट् अभ्यास को अनेक हलों का उपलक्षण होने पर ४८२ से (१) नुट्। आनर्च्छ—वह गया। आनर्च्छतुः—वे दो गए। लुट् में ऋच्छिता—वह जाएगा १८ उज्झ—त्याग करना। लट् में उज्झति—वह छोड़ता है। १९, लुभ्—लुभाना मोहयेना। लट् में लुभति—वह लोभाता है॥

---

(१) तस्मान्नुड्द्विहलः इस सूत्र में दो हलों से अनेक हल् भी अभिमत हैं।

६९५ ॥ तीषसहलुभरुषरिषः ७।२।४८। इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात्। लोभिता। लोब्धा। लोभिष्यति। २०, २१ तृपतृम्फ तृप्तौ। तृपति। ततर्प। तर्पिता। अतर्पीत्। तृम्फति ॥

इष् = इच्छा करणी, सह् = सहना, लुभ = लुभाना, रुष = मारणा, रिष = मारणा। इन धातुओं से परे तादि आर्धधातुक को इट् विकल्प करके होवे। लुट् में, लोभिता। लोब्धा = वह लुभावेगा। लृट् में, लोभिष्यति = वह लोभावेगा। २०, २१, तृप, तृम्फ = तृप्त होना। लट् में, तृपति = वह तृप्त होता है। लिट् में, ततर्प ४७९ = वह तृप्त हुआ था। लुट् मे, तर्पिता = वह तृप्त होगा। लुङ् मे, अतर्पीत् ४७८ = वह तृप्त हुआ। (ऐसे) तृम्फति = वह तृप्त होता है ॥

६९६ ॥ शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः। आदिशब्दः प्रकारे तेन येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः। ततृम्फ। तृफ्यात् २२, २३ मृडपृड। सुखने मृडति पृडति। २४। शुन गतौ। शुनति। २५। इषु इच्छायाम्। इच्छति। एषिता एष्टा एषिष्यति। इष्यात्। ऐषीत्। २६। कुट कौटिल्ये। गाङ्कुटादीति ङित्वम्। चकुटिथ। चुकोट। चुकुट कुटिता। २७। पुट संश्लेषणे। पुटति। पुटिता। २८। स्फुट विकसने। स्फुटति। स्फुटिता। २९, ३० स्फुर स्फुल संचलने। स्फुरति स्फुलति ॥

जब श (६८७) परे हो तब तृम्फादि धातुओं को नुम् होवे। यहां मूल में आदि शब्द प्रकार का वाचक है, इस लिये तृम्फ के सदृश प्रकार वाले वे धातु हैं जिनकी उपधा में नकार है। लिट् में, ततृम्फ = वह तृप्त हुआ। आ० लिङ् में तृफ्यात् = हे ईश्वर वह तृप्त हो ॥ २२-२३। मृड् पृड् = सुखीकरना। लट् में, मृडति, पृडति = वह सुखी करता है २४। शुन् = जाना। लट् में, शुनति = वह जाता है। २५। इष् = इच्छा करणी। लट् में, इच्छति ५२३ = वह इच्छा करता है। लुट् में, एषिता वा एष्टा ६९५ = लृट् में, एषिष्यति वह इच्छा करेगा। आ० लिङ् मे, इष्यात्। लुङ् में, (१) ऐषीत् = उसने इच्छा करी। २६। कुट् — कुटिलता करणी। इस धातु से परे जो प्रत्यय ञित् वा णित् न हो वे ६१८ से ङित् माने जाते है। लिट् म० पु० ए० में, चुकुटिथ = तूने कुटिलता की। यहां ही उत्तम पु० ए० में ४८४ से णित्व विकल्प हुआ तो चुकोट वा चुकुट = मैंने कुटिलता की। लुट् में

(१) यहां ४७२ से आट् और (आटश्च से वृद्धि करलेनी।

कुटिता। २७। पुट्—आलिङ्गन करना। लट् में पुटति। लुट् में पुटिता ६१८—वह आलिङ्गन करेगा। २८। स्फुट्—फूलना। लट् में स्फुटति—वह फूलता है। लुट में स्फुटिता ६१८—वह फूलेगा। २९। स्फुर स्फुल्—फुरकना। लट् में स्फुरति स्फुलति—वह फरकता है॥

६९७॥ स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः।८।३।७६। षत्वं वा। निष्फुरति। निस्फुरति ॥ ३१ णू स्तवने। परिणूतगुणोदयः। नुवति। नुनाव। नुविता। ३२। टुमस्जो शुद्धौ। मज्जति। ममज्ज। मस्जिनशोरिति नुम्।

निर् नि और वि उपसर्ग से परे स्फुर् और स्फुल् धातु के स् को ष् विकल्प से होवे। लट में निष्फुरति निस्फुरति—वह खूब फुरकता है। ३१। णू स्तुति करनी। यहां दीर्घ ही ऊकार है जैसे परिणूतगुणोदय—जिसके गुणों का उदय स्तुत है। इस पद्य चरण में यदि ह्रस्व होता तो छन्द टूट जाता। लट में नुवति। लिट् में नुनाव। लुट् में नुविता—वह स्तुति करेगा। ३२। टुमस्जो—स्नान शुद्ध करना। लट् में (१) मज्जति—वह शुद्ध करता है। लिट् में ममज्ज—वह शुद्ध करता था। ६०१ से झल् परे होते इस धातु को नुम होता है।

६९८॥ वा। मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम् वाच्यः। संयोगादिलोप। ममङ्क्थ ममज्जिथ। मङ्क्ता। मङ्क्ष्यति। अमाङ्क्षीत्। अमाङ्क्ताम्। अमाङ्क्षुः। ३३। रुजो भङ्गे। रुजति। रोक्ता। रोक्ष्यति। अरौक्षीत्॥ ३४। भुजो कौटिल्ये। रुजिवत्। ३५। विश प्रवेशने। विशति। ३६। मृश आमर्शने। आमर्शनं स्पर्शः। अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्। अम्राक्षीत्। अमार्क्षीत्। अमृक्षत्। ३७। षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु। सीदतीत्यादि। ३८। शद्लृ शातने।

मस्ज धातु के अन्त्य अक्षर से पूर्व नुम् हो ऐसा कहना चाहिये। और ३३२ से स् का लोप हुआ। तब ममङ्क्थ २१ ३२८ वा ममज्जिथ—तूने शुद्ध किया। लुट में मङ्क्ता ६०१ ६८९, ३३२ ३२८ ८९, ८६—वह शोधेगा। लृट् में मङ्क्ष्यति। लुङ्में (२) अमाङ्क्षीत्—अमाङ्क्ताम्। अमाङ्क्षुः। ३३। रुज्—तोड़ना। लट् में रुजति वह तोड़ता है। लुट् म पु प में रोक्ता। लृट् में रोक्ष्यति। लुङ् में अरौक्षीत् ४८२ उस ने तोड़ा। ३४। भुज्—कुटिल करना। इसके रूप रुज के समान पाये जाते हैं। ३५। विश्—प्रवेश करना। लट् में विशति—वह प्रवेश करता है। ३६। मृश—छूना—६९८ से अम् विकल्प से हुआ। तब

(१) यहां स्तोःश्चुनाश्चुः से श्चुत्व और झलांजश् झशि से जश् कर लेने।
(२) यहां से तीनों लुङ के प्रथम पुरुष के रूप हैं।

लुङ् में अस्राक्षीत् ३२६, ५७६, वा अमार्क्षीत् वा ६९० अमृक्षत् ६२१ = उसने छूआ ॥ ३७ ॥ षद्लृ (सद्) = विशीर्ण होना वा जाना वा दुःखी होना। लट् में, ५१६ सीदति इसी प्रकार के और रूप भी जान लेने ॥ ३८। शद् = विशीर्ण होना ॥

६९९। शदेः शितः। १।३।६०। शिद्भाविनोऽस्मात्तङानौ स्तः। शीयते। शीयताम्। शीयेत। अशीयत। शशाद। शत्ता। शत्स्यति अशदत्। अशत्स्यत् ॥ ३९। कॄ विक्षेपे ॥

शद् धातु से जब शित् प्रत्यय होने वाला हो तब तङ्, और आन, होवे = लट् में शीयते, ५१६ वह विशीर्ण होता है। लोट् में, (१)शीयताम्। वि, लिङ् में,शीयेत। लङ् में, अशीयत। शित् प्रत्यय के अभाव से, लिट् में ४८१(२)शशाद। लुट् में शत्ता ५०४। लृट् में, शत्स्यति। लुङ् में, अशदत् ५३६। लृङ् में, अशत्स्यत् ॥ ३९। कॄ = फेंकना ॥

७००। ऋत इद्धातोः। ७।१।१००। किरति। चकार। चकरतुः चकरुः। करिता करीता। कीर्यात् ॥

ऋकारान्त धातु को इकार होवे। लट् में, किरति ७००, ३४ = वह फेंकता है। लिट् में, चकार ६४७, ४८३ = उस ने फेंका। चकरतुः = उन दोने फेंका। चकरुः = उन ने फेंका। लुट् मे, करिता, करीता ६४८ = वह फेंकेगा। आ० लिङ् में, कीर्यात् ७०० ६४५ हे ईश्वर वह फेंके ॥

७०१। किरतौ लवने। ६।१।१०४। उपात् किरतेः। सुट् छेदने। उपस्किरति ॥

काटने अर्थ में उपसे परे जो कॄ धातु उसे सुट् आगम होवे। उपस्किरति = वह काटता है

७०२। अड्भ्यासव्यवायेऽपि। ६।१।१३६।

जब अट् वा अभ्यास का व्यवधान हो तो भी ७०१ से सुट् हो ॥

७०३॥ वा। सुट्कात्पूर्व इति वक्तव्यम्। उपास्किरत्। उपचस्कार।

धातु के क् से पूर्व सुट् हो यह कहना चाहिये, उपास्किरत् ७०१, ७०२। उपचस्कार = उस ने काटा ॥

७०४। हिंसायां प्रतेश्च। ६।१।१४१। उपात्प्रतेश्च किरतेः

---

(१) यहां से तीनों प्रथम पुरुषों के रूप हैं (२) यहां से लृङ् पर्यन्त प्रथम पुरुषों के एक वचन के रूप हैं।

सुट् हिंसायाम् । उपस्किरति । प्रतिस्किरति ॥ ४० गॄ निगरणे ॥

हिंसा अर्थ में उप और प्रति परे क धातु को सुट् हो। उपस्किरति वा (१)प्रतिस्किरति ॥ ४ । गॄ—निगल लेना ॥

७०५ । अचि विभाषा । ८ । २ । २१ । गिरते रेफस्य लोऽजादौ प्रत्यये । गिलति । गिरति । जगाल । जगार । जगलिथ । जगरिथ । गलिता । गलीता । गरिता । गरीता । ४१ । प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् । ग्रहिज्येति ॥ सम्प्रसारणम् । पृच्छति । पप्रच्छ । पप्रच्छतुः । पप्रच्छुः प्रष्टा । प्रक्ष्यति अप्राक्षीत् ॥ ४२ । मृङ् प्राणत्यागे ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो गॄ धातु के रेफ को ल् हो विकल्प करके । लट् में गिरति—वह निगलता है । लिट् में जगाल वा जगार—वह निगलता था । थल् में जगलिथ वा जगरिथ । लुट् में गलिता गलीता ५७८ वा गरिता गरीता—वह निगलेगा । ४१ । प्रच्छ—पूछना । लट् में ६६८ से सम्प्रसारण हुआ तो पृच्छति—वह पूछता है । लिट् में पप्रच्छ—उसने पूछा । पप्रच्छतुः उन दोनों पूछा । पप्रच्छुः—उनने पूछा । लुट् में प्रष्टा ३२८ ७१ वह पूछेगा । लट् में प्रक्ष्यति । लुङ् में अप्राक्षीत्—उसने पूछा । ४२ । मृ—मरना ॥

७ ६ । म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च । १ । ३ । ६१ । लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतान्मृङस्तङानौ नान्यत्र । रिङ् । इयङ् । म्रियते ममार । मर्ता मरिष्यति । मृषीष्ट । अमृत । ४३ । पृङ् व्यायामे । प्रायेणायं व्याङ् पूर्वः । व्याप्रियते । व्यापप्रे व्यापप्राते । व्यापरिष्यते । व्यापृत । व्यापृषाताम् । ४४ । जुषी प्रीतिसेवनयोः । जुषते । जुजुषे । ४५ । ओविजी भयचलनयोः । प्रायेण उत्पूर्वः । उद्विजते ॥

मृ धातु से आत्मने पद प्रत्यय होवें जब लुङ् लिङ् और शित् प्रत्यय को विषय ता रहे तब अन्यत्र नहीं । लट् में १०७ से रिङ् (रि) और २१७ से इयङ् (इय्) हुए । म्रियते—वह मरता है । लिट् में ममार—वह मर गया था । लुट् में मर्ता । लट् में मरिष्यति । ३२६—वह मरेगा । आ. लिङ् में, मृषीष्ट १०७ से ईश्वर वह मरे । लुङ् में अमृत १०१ १३६ ३६१ वह मरा ॥ ४३ । पृ (उद्यम करना) । इस के पूर्व वि और आङ् प्रायः करके हो रहते हैं । लट् में व्याप्रियते । लिट् में व्यापप्रे । व्यापप्राते उन दोनों उद्यम किया था

(१) वह हिंसा करता है ॥

लृट् में व्यापरिष्यते। लुङ् में, व्यापृत=उसने उद्यम किया। व्यापृषाताम्=उनदो नें उद्यम किया॥ ४४। जुष्=प्रेम और सेवा अर्थ में है। लट् में, जुषते लिट् प्र० पु, ए, में जुजुषे=उसने सेवा की॥ ४५। ओविजी (विज्)=डरना वा काम्पना। प्राय. यह धातु (१) (उत् पूर्व) ही रहता है। लट् में उद्विजते=वह डरता है॥

७०७॥ विज इट् १। २। २। विजे· पर इडादि· प्रत्ययो ङिद्वत्

उद्विजिता॥ ॥ इति तुदादय· ॥

इट् है आदिमें जिसके यदि ऐसा प्रत्यय विज धातु से परे हो तो वह प्रत्यय ङित् के सदृश हो। लुट् में, उद्विजिता=वह काम्पेगा॥ ॥ तुदादिगण समाप्त हुआ॥

॥ अथ रुधादय: ॥

१। रुधिर् आवरणे।

७०८॥ रुधादिभ्यः श्नम्। ७। १। ७८ शपोऽपवाद·। रुणद्धि। श्नसोरल्लोप । रुन्द्ध·। रुन्धन्ति। रुणत्सि। रुन्द्धः। रुन्द्ध। रुणध्मि। रुन्ध्वः। रुन्ध्म·। रुन्द्धे। रुन्धाते। रुन्धते। रुन्त्से। रुन्धाथे। रुन्ध्वे रुन्धे। रुन्ध्वहे। रुन्ध्महे। रुरोध। रुरुधे। रोद्धा। रोत्स्यति। रोत्स्यते रुणद्धु। रुन्द्धात्। रुन्द्धाम्। रुन्धन्तु। रुन्धि। रुणधानि। रुणधाव। रुणधाम। रुन्द्धाम्। रुन्धाताम्। रुन्धताम्। रुन्त्स्व। रुणधै। रुणधावहै। रुणधामहै। अरुणत्। अरुणद्। अरुन्द्धाम्। अरुन्धन्। अरुन्द्ध। अरुन्धाताम्। अरुन्धत। रुन्ध्यात्। रुन्धीत। रुध्यात्। रुत्सीष्ट। अरुधत्। अरौत्सीत्। अरोत्स्यत्। अरोत्स्यत। २ भिदिर् विदारणे। ३। छिदिर् द्वैधीकरणे। ४। युजिर् योगे। ५। रिचिर् विरेचने। रिणक्ति। रिङ्क्ते। रिरिच। रेक्ता। रेक्ष्यति। अरिणक्। अरिचत्। अरैक्षीत् अरिक्त। ६। विचिर् पृथग्भावे। विनक्ति। विङ्क्ते। ७। क्षुदिर् संपेषणे। क्षुणत्ति। क्षुन्ते। क्षोत्ता। अक्षुदत्। अक्षौत्सीत्। अक्षुत्त। ८। उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः। छृणत्ति। छृन्ते। चच्छर्द। सेसिचीतिविट्। चच्छृत्से

---

(१) उत् है पूर्व जिस के॥

अच्छृदिषे। छर्दिता। छर्दिष्यति। छर्त्स्यति। अच्छृदत्। अच्छर्दीत्। अच्छर्दिष्ट। ९ उतृदिर् हिंसानादरयोः। तृणत्ति। तृन्ते। १० कृती वेष्टने। कृणत्ति। ११, १२ तृह हिसि हिंसायाम्॥

अब रुधादि गण की धातुओं का वर्णन किया जाता है। रुधिर् (रुध्) आवरण करना घेरना (१) रुधादि धातुओंसे परे श्नम् होवे। यह शप् का अपवाद है। लट् में रुणद्धि १११ ५८ २२ वह घेरता है। ६ ६ में अकार का लोप हुआ तो रुन्धः ५८ २२ ८९, ८१ वेदो घेरते हैं। रुन्धन्ति वे घेरते हैं। रुणत्सि ८०, तू घेरता है। रुन्धः ५८ तुम दो घेरते हो। रुन्ध तुम घेरते हो। रुणध्मि मैं घेरता हूं। रुन्ध्वः हम दो घेरते हैं। रुन्ध्मः हम घेरते हैं। (२) रुन्धे ५८। रुन्धाते ८२, ८१। रुन्धते ५९२। रुन्त्से ८०। रुन्धाथे। रुन्ध्वे। रुन्धे। रुन्ध्वहे। रुन्ध्महे। लिट् में रुरोध वा रुरुधे उसने घेरा। लुट् में रोद्धा ४०८, ५८ २२। लृट् में रोत्स्यति ८० वा रोत्स्यते वह घेरेगा। लोट् में रुणद्धु १११ ५८ २२, वह घेरे। रुन्धात् ४१८ ईश्वर करे कि वह घेरे। रुन्धाम्। (३) रुन्धन्तु। रुन्द्धि ५८, ८२ तू घेर। रुणधानि १११ मैं घेरूं। रुणधाव हम दो घेरें। रुणधाम हम घेरें। वा (४) रुन्धां ५८ ८२, ८१ रुन्धाताम्। रुन्धताम् ५९२। रुन्त्स्व ८०। रुणधै ३८८। रुणधावहै। रुणधामहै। लङ् में अरुणत् वा अरुणद् १११८, उसने घेरा। अरुन्धाम् ६ ६ ५८ २२, ८१ ८१ उन दोनों घेरा। अरुन्धन् उनने घेरा वा आ में अरुन्ध अरुन्धाताम्। अरुन्धत उनने घेरा। वि लिङ् में रुन्ध्यात् वा रुन्धीत वह घेरे। आशीर्लिङ् में रुध्यात् वा रुत्सीष्ट ये ईश्वर वह घेरे। लुङ् में अरुधत् ४४२। अरौत्सीत् ४८१, उसने घेरा। लृङ् में अरोत्स्यत् वा अरोत्स्यत ४०८ यदि वह घेरे। २ भिदिर् (भिद्) — तोड़ना। ३ छिदिर् — छिद दो टुकड़े करने। ४। युजिर् (युज्) — मिलाना। इन धातुओं की (रुधिर्) के समान साधना। ५। रिचिर् (रिच्) — खाली करना। लट् में रिणक्ति वा रिङ्क्ते ६ ६, ८२, ८१ — वह खाली करता है। लिट् में रिरेच — उसने खाली किया। लुट् में रेक्ता ४०८। लृट् में रेक्ष्यति — वह खाली करेगा। लङ् में अरिणक् १८१। लुङ् में अरिचत् ४४२ वा अरैक्षीत् आत्मने पद में अरिक्त (४२ ५ ०) उसने खाली किया ६ विचिर् (विच्) पृथक — भिन्न होना। लट् में विनक्ति वा विङ्क्ते — वह भिन्न होता है। ७ क्षुदिर् (क्षुद्) पीसना लट् में क्षुणत्ति वा क्षुन्ते — वह पीसता है। लुट् में क्षोत्ता — वह पीसेगा। लुङ् में अक्षुदत् ४४२

---

(१) रुध् घेरना है आदिमें जिनके। (२) यहां से आगे ८ रूप आत्मनेपद में लट् के हैं। (३) यह तीनों लोट् के प्र पु द्वि बहुवचन के रूप हैं। (४) यहां से ९ आत्मने पद में लोट् के प्रथम पुरुष ३, पुरुष १ मध्यम का एकवचन व पुरु० ३ तीन उत्तम के रूप हैं।

अचौत्सीत् ४९२ वा अक्षुत्त५०७=उसने पीसा। ८ उछृदिर् (छृद्)=चमकना वा खेलना लट् में छृणत्ति वा छृन्ते=वह खेलताहै। लिट्में चच्छर्द=उसने खेला। स् परे होते ६६४ से इट् विकल्प करके हुआ तब। चच्छृत्से, चच्छृदिषे=तूं चमका। लुट्में छर्दिता। लृट्में छर्दिष्यति, छर्त्स्यति ६६४=वह खेलेगा। लुङ् मे अच्छृदत्, अच्छर्दीत् वा अच्छर्दिष्ट ९ उतृदिर् (तृद्)=मारणा वा अनादर करना। लट् मे=तृणत्ति वा तृन्ते=वह हिंसा करता है। १० कृती कृत्=घेरना (लपेटना) लट् मे कृणत्ति=वह लपेटता है। ११, १२ तृह (तृह) और (हिंस्)=हिंसा करणी।

७०९॥ तृणह इम्। ७। ३। ९२। तृह. श्नमि कृते इम् हलादौ पिति। तृणेढि। तृण्ढः। ततर्ह। तर्हिता। अतृणेट्। श्नान्नलोपः। हिनस्ति। जिहिंस। हिंसिता १३। उन्दी क्लेदने। उनत्ति उन्तः। उन्दन्ति उन्दाञ्चकार। औनत्। औन्ताम्। औन्दन्। औनः। औनदम्। १४ अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। अनक्ति। अङ्क्तः। अञ्जन्ति। आनञ्ज। आनञ्जिथ। आनङ्क्थ। अञ्जिता। अङ्क्ता। अङ्धि। अनजानि आनक्॥

हलादि पित् प्रत्यय परे हो तो तृह् को इम् का आगम होवे, जब श्नम् ७०८ से स्थापन किया जावे (१) तब लट् मे तृणेढि (७०८, ७०९, ३२, २७१, ५८०, ७५, ५८१)=वह मारता है। तृण्ढः (६०५, २७१, ५८०, ७५, ५८१, ९२, ९३)=वे दो मारते हैं। लिट् में ततर्ह ४७९=उस ने हिंसा की। लुट् में तर्हिता=वह हिंसा करेगा। लङ् मे अतृणेट् ३२, १९२, २७१, ७९=उसने मारा। हिंसि धातु को ४९१ से नुम् हुआ। और ७११ से उसका लोप हुआ तो लट् में हिनस्ति=वह हिंसा करता है। लिट् में जिहिंस ४८२=उसने मारा लुट् में हिंसिता=वह हिंसा करेगा। १३ उन्दी (उन्द्)=गीला करणा (भिगोना) लट् में उनत्ति ७११ वह भिगोताहै। उन्त. ७११, ६०५, ८६, ९२, ९३=वे दो भिगोतेहैं। उन्दन्ति ७११, ६०५=वे भिगोते हैं। लिट् में उन्दाञ्चकार ५४० उसने भिगोयाथा। लङ् में औनत् ७११, ४७२, २१२ उसने भिगोया। औन्ताम् ७११, ६०५, ८६, ९२, ९३=उन दो ने गीला किया। औन्दन् ६०५=उनने गीला किया। औन=तूने भिगोया। औनदम्=मैंने गीला कियाथा। १४ अञ्जू (अञ्ज्) प्रकाश करणा, तेलादिमर्दन, सुन्दर होना, और गमन करणा। लट् में अनक्ति ७११, ३२८=वह जाता है। अङ्क्तः ७११, ६०५ वेदो जाते हैं। अञ्जन्ति=वे प्रकाश करते हैं। लिट् में आनञ्ज ४२०, ४२१, ४७१, ४९२=उसने प्रकाश किया। आनञ्जिथ वा आनङ्क्थ ५०५ तूने प्रकाश किया। लुट् में अञ्जिता वा अङ्क्ता

(१) अर्थात् जब तृह का (तृणह्) ऐसा रूप हो जावे तब।

५, ५ — वह प्रकाश करेगा। लोट म पु ए में अङ्ग्धि १८० — तू प्रकाश कर। अनजानि — मैं प्रकाश करूं। लङ में आनक् ७११ — उसने प्रकाश किया।

७१० ॥ अञ्जेः सिचि। ७ । २ । ७१ । अञ्जेः सिचो नित्यमिट्। आञ्जीत्। १५ तञ्चू संकोचने। तनक्ति। तङ्क्ता, तञ्चिता। १६ ओविजी भयचलनयोः। विनक्ति। विङ्क्तः। विजइडिति ङित्वम्। विविजिथ। विजिता। अविनक्। अविजीत्। १७ शिष्लृ विशेषणे। शिनष्टि। शिंष्टः। शिंषन्ति। शिनक्षि। शिशेष। शिशेषिथ। शेष्टा। शेक्ष्यति। हेर्धिः। शिण्ढि। शिनषाणि। अशिनट्। शिंष्यात्। शिष्यात्। अशिषत्। एवं १८ पिष्लृ सञ्चूर्णने। १९ भञ्जो आमर्दने ॥

अञ्जू धातु से परे जो सिच् उसको इट आगम नित्य होवे। लुङ् में आञ्जीत् (७०१) (७०४) — उसने प्रकाश किया। १५। तञ्चू (तञ्च्) — संकुचित होना। लट में ७११ १२८ तनक्ति — वह संकुचित होता है। लुट् में तङ्क्ता 'वा' तञ्चिता ५, ५, वह सुकड़ेगा। १६। ओविजी (विज) — भय करना 'वा' कांपना। लट् में विनक्ति — वह कांपता है। विङ्क्तः — वे दो कांपते हैं। ५०० से इस धातु से परे जो इट का आगम वह ङित् होता है तब विविजिथ (तूं कांपा था) में ४४१ से गुण निषेध हुआ। तथा लुट् में विजिता — वह कांपेगा लङ् में अविनक् — उस ने भय किया। लुङ् में अविजीत् — उसने भय किया। १७। शिष्लृ (शिष्) — विशेष करना। लट् में शिनष्टि — वह विशेष करता है। शिंष्टः। ५, ६, ८२ — वे दो विशेष करते हैं। शिंषन्ति — वे विशे । शिनक्षि १०८ १६१ — तूं विशेष करता है। लिट् में शिशेष — वह विशेष करता हुआ। शिशेषिथ — तूने विशेष किया था। लुट् में शेष्टा। लृट् में शेक्ष्यति (१०८, १६१) — वह विशेष करेगा। ५८० से (हि) को (धि) हुआ पुनः ७८, ७८, ६ १ ८१ ८२, ८१ से शिण्ढि (तू विशेष कर) सिद्ध हुआ। शिनषाणि मैं विशेष करूं। लङ में अशिनट् (७८) — उस ने विशेष किया। वि लिङ में शिंष्यात् ७११ वह वि करे। आशीर् लिङ् में शिष्यात् — हे ईश्वर वह विशेष करे। लुङ् में अशिषत् १११ — उस ने विशेष किया ऐसे १८ पिष्लृ (पिष्) — (पीसना) धातु भी साधलेना। १९। भञ्जो (भञ्ज) — तोड़ना।

७११ ॥ श्नान्नलोपः ६ । ४ । २३ । श्नम परस्य नस्य लोपः स्यात्। भनक्ति। बभञ्जिथ। बभङ्क्थ। भङ्क्ता। भङ्ग्धि। अभाङ्क्षीत्। २० । भुज पालनाभ्यवहारयोः। भुनक्ति। भोक्ता। भोक्ष्यति। अभुनक् ॥

श्नसम् ७०८से परे जो न् उसका लोप होवे। लट्में भनक्ति ३२८=वह तोडताहै। लिट् म०पु०ए० में बभञ्जिथ 'वा' ५११ बभङ्क्थ=तूने तोड़ा था। लुट्में भङ्क्ता ३२८,९२,९३ =वह तोडेगा। लोट् म०ए०में=भङ्ग्धि ५८७=तूं तोड। लुङ्में आभाङ्क्षीत् ४९३,३२८, ९२,९३, ४७३=उसने तोडा। २०। भुज् पालना 'वा' खाना। लट्मे भुनक्ति=वह पालताहै। लुट् में, भोक्ता ३२८=वह पालेगा। भोक्ष्यति ४७९। लङ् में अभुनक्=उस ने पाला।

७१२ ॥ भुजोऽनवने। १।३।६६। तङानौ स्त.। ओदनं भुङ्क्ते। अनवने किम्। महीं भुनक्ति। २१ ञिइन्धी दीप्तौ। इन्द्धे। इन्धाते। इन्धते। इन्त्से। इन्द्ध्वे। इन्धाञ्चक्रे। इन्धिता। इन्द्धाम्। इनधै। ऐन्द्ध। ऐन्धाताम्। ऐन्द्धा। २२। विद विचारणे। विन्ते। वेत्ता॥

॥ इति रुधादयः॥

पालन अर्थ को छोड अर्थात् खाने अर्थ में भुज धातु को तङ् और (१) आन होवे। ओदन भुङ्क्ते=वह चावल खाता है। (पालन अर्थ में न हो) यह क्यों कहा। इसका उत्तर देता है, 'कि' यदि ऐसा न कहोगे तो, (महीं (२) भुनक्ति) इस उदाहरण में भी आत्मनेपद हो जावेगा। २१। इन्ध्=चमकना। लट् में, इन्द्धे ७११, ६०५=वह चमकता है। इन्धाते=वे दो चमकते हैं। इन्धते=७११, ६०५=वे चमकते हैं। इन्त्से= तू चमकता है। इन्द्ध्वे ७११, ६०५ ८६, ९२, ९३=तुम चमकते हो। लिट् में इन्धाञ्चक्रे, ५४०= वह चमका। लुट् में इन्धिता=वह चमकेगा। लोट् में इन्द्धाम् ७११, ६०५=वह चमके। इन्धाताम्=वे दो चमकें। इनधै ७११, ५४८=मैं चमकूं। लङ् में, ऐन्द्ध=वह चमका था। ऐन्धाताम्=वे दो चमके। एन्द्धाः=तूं चमका। २२। विद्=विचार करणा। विन्ते=वह विचारता है। लुट् में, वेत्ता=वह विचारेगा॥ रुधादिगण समाप्त हुआ॥

॥ अथ तनादयः॥

१ तनु विस्तारे।

अब तनादिगण की धातुओं का वर्णन किया जाताहै १ तनु (तन्)=विस्तार करणा।

७१३ ॥ तनादिकृञ्भ्य उ. ३।१।१७९ शपोऽपवादः। तनोति। तनुते। ततान तेने। तनितासि। तनितासे। तनिष्यति। तनिष्यते। तनुताम्। अतनोत्। तनुयात्। तन्वीत। तन्यात्। तनिषीष्ट। अतनीत्। अतानीत्॥

---

(१) ये दोनों आत्मने पद के प्रत्यय हैं (२) पृथ्वी को पालता है॥

तन् आदि धातु और कृ धातु से परे उ प्रत्यय होवे। यह सूत्र ४११ का अपवाद है। लट् में तनोति ४१४ वा तनुते—वह विस्तार करता है। लिट् में ततान वा तेने ४८८ वह विस्तार करता था। लुट् के म ए में तनितासि वा तनितासे। लृट् में तनिष्यति वा तनिष्यते—वह विस्तार करेगा। लोट् आत्मने में तनुताम्। ११५ वह विस्तार करे। लङ् में अतनोत् ४१३ उसने विस्तार किया। विधिलिङ् में तनुयात् वा तन्वीत—वह विस्तार करे। आ लिङ् में तन्यात् वा तनिषीष्ट—हे ईश्वर वह विस्तार करे। लुङ् परस्मै पद में अतनीत् वा (१)अतानीत् ४०१ ४०४—उसने विस्तार किया।

७१४। तनादिभ्यस्तथासोः। २।४।७९। तनादेः सिचो वा लुक् तथासोः। अतत। अतनिष्ट। अतथाः। अतनिष्ठाः। अतनिष्यत्। अतनिष्यत। ॥ २। षणु दाने। सनोति। सनुते॥

तनादियों से परे सिच् का विकल्पकरके लुक् होवे जब "त" और थास् प्रत्यय परे होवे। आत्मने पद के लुङ् के म पु एक वचन में अतत १९ वा अतनिष्ट। और म पु ए अतथाः वा अतनिष्ठाः। लृङ् में अतनिष्यत् वा अतनिष्यत—यदि वह विस्तार करे। २ षणु (सन्)—देना। २०१, ४१४ सनोति वा सनुते—वह देता है।

७१५। ये विभाषा। ६।४।४३। जनसनखनामात्वं वा यादौ क्ङिति। सायात् सन्यात्॥

जन्—उत्पन्न होना। सन्—देना। खन्—खोदना। इन धातुओं को (२) यादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे होते आत्व विकल्प करके होता है। आ लिङ् में सायात् ११ वा सन्यात्—ईश्वर करे कि वह देवे।

७१६। जनसनखनां सञ्झलोः। ६।४।४२। एषामाकारः स्यात् सनि झलादौ क्ङिति। असात। असनिष्ट। असाथाः असनिष्ठाः। ३। क्षणु हिंसायाम्। क्षणोति। क्षणुते। ह्मयन्तेति न वृद्धिः। अक्षणीत्। अक्षत। अक्षणिष्ट। अक्षथाः। अक्षणिष्ठाः। ४। क्षिणु। उप्रत्यये लघूपधस्य गुणो वा। क्षिणोति। क्षेणोति। क्षेणिता। अक्षेणीत्। अक्षित। अक्षेणिष्ट। ५। तृणु अदने। तृणोति। तर्णोति। तृणुते। तर्णुते॥ ६॥ डुकृञ् करणे॥

जन् सन् और खन् इन धातुओं को आकार हो। जब सन् वा झलादि कित् वा

(१) अतो (४८४) से वृद्धि का विकल्प है। (२) यकार है आदि में जिस के।

ङित् प्रत्यय परे हो तब। असात ७१४ या असनिष्ट उसने दिया। असाथा: ७१४ वा अस निष्ठा: =तूने दिया था। ३ क्षणु (क्षण्)=हिंसाकरणी। लट् में क्षणोति वा क्षणुते=वह मारताहै, लुङ् में ४९४ से वृद्धि का निषेध हुआ (तब) अक्षणीत् वा अक्षत ७१४, ५९० और अक्षणिष्ट=उसने हिंसा करी ४। क्षिणु (क्षिण्) हिंसाकरणी।

"जब 'उ' ७१३ प्रत्यय परे हो तब लघूपधधातु को गुण ४७९ विकल्प करके होवे"। लट् मे क्षिणोति। क्षेणोति=वह हिंसा करता है। लुट् मे क्षेणिता=वह मारेगा। लुङ् मे अक्षेणीत् 'वा, अक्षित, ७१४-५९० अक्षेणिष्ट=उस ने मारा। ५। तृण=खाना। लट् मे तृणोति। तर्णोति वा तृणुते। तर्णुते=वह खाता है। ६ डुकृञ् (कृ)=करना।

७१७। अत उत्सार्वधातुके। ६। ४। ११०। कुरुतः॥

उ प्रत्ययान्त कृ धातु के अकार को उकार होवे कित् वा ङित् सार्वधातुक परे हो तो। कुरुत. ७१३, ७१७ वे दो करते हैं।

७१८। न भकुर्छुराम्। ८। २। ७९। भस्य कुर्छुरोरुपधाया न दीर्घ.। कुर्वन्ति॥

'भ' संज्ञक, और कृ और छुर्=काटना इन की उपधा को दीर्घ न होवे (१) कुर्वन्ति वे करते हैं॥

७१९। नित्यं करोते·। ६। ४। १०८। करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपोम्वो·। कुर्व·। कुर्म। कुरुते। चकार। चक्रे। कर्ता। करिष्यति। करिष्यते। करोतु। कुरुताम्। अकरोत्। अकुरुत॥

म वा व परे होते कृ धातु के प्रत्यय रूप उकार का नित्य लोप होवे। कुर्व:७१७= हम दो करते हैं। कुर्म:=हम करते हैं। वा कुरुते ७१३, ७१७=वह करता है। लिट् में चकार वा चक्रे=उस ने कियाथा। लुट् मे कर्ता। लृट् में करिष्यति। वा करिष्यते। ५२६ वह करेगा। लोट् में करोतु=वा कुरुताम्=वह करे। लङ् मे अकरोत् वा अकुरुत ७१७= उसने किया।

७२०। ये च। ६। ४। १०९। कृञ उलोपो यादौ प्रत्यये। कुर्यात् कुर्वीत। क्रियात्। कृषीष्ट। अकार्षीत्। अकृत। अकरिष्यत्। अकरिष्यत।

कृ धातु से परे जो (उ) प्रत्यय तिस का यादि प्रत्यय परे होते लोप होवे। वि० लिङ् मे कुर्यात् वा कुर्वीत ७१७ इस से उकार हुआ। आ० लिङ् क्रियात् ५७४ वा कृषीष्ट

(१) यहां ६४५ से दीर्घपायाथा। पुनः ७१८ से निषेध हुआ।

२०१ ईश्वर करे कि वह करे। लुङ् में अकार्षीत् वा अकृत २०६ उस ने किया । लृङ् में अकरिष्यत् वा अकरिष्यत—यदि वह करे ॥

७२१ । संपरिभ्यां करोतौ भूषणे । ६ । १ । १३७ ॥

सम् वा परि उपसर्ग से परे कृ धातु को भूषण अर्थ में सुट् होवे ।

७२२ । समवाये च । ६ । १ । १३८ । सुट् ॥ संस्करोति । अलङ्करोतीत्यर्थः । संस्कुर्वन्ति । सङ्घीभवन्तीत्यर्थः । संपूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट् । संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात् ॥

समूह अर्थ में भी कृ को सुट् आगम होवे । संस्करोति ७२१ अलंकृत करता है । संस्कुर्वन्ति ७२२—वे इकट्ठे होते हैं । सम् उपसर्ग पूर्व होते कृ धातु को कहीं अभूषण अर्थ में भी सुट् होता है (संस्कृतं (१) भक्षाः) ११११ इस सूत्र के ज्ञापक होने से ।

७२३ । उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च । ६ । १ । १३९ । कृञः सुट् । चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः । प्रतियत्नो गुणाधानम् । विकृतमेव वैकृतं विकारः । वाक्याध्याहारः आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । उपस्कृता ब्राह्मणाः । एधोदकस्योपस्कुरुते । उपस्कृतं भुङ्क्ते । उपस्कृतं ब्रूते । ७ । वनु याचने । वनुते । ववने । ८ । मनु अवबोधने । मनुते । मेने । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । अमनुत । मन्वीत । मनिषीष्ट । अमनिष्ट अमनिष्यत ॥ ॥ इति तनादयः ॥

(उप) उपसर्ग से परे कृ धातु को 'प्रतियत्न' 'वैकृत' और वाक्याध्याहार इन अर्थों में सुट् आगम होवे चकार के बल से भूषण और इकट्ठा होना इन अर्थों में भी सुट् होता है । किसी पदार्थ में नूतनगुण देने को प्रतियत्न कहते हैं । वैकृत—विकृत होना । अर्थात् विकार । वाक्य का अध्याहार अर्थात् बात करते को भूल जावे उस को कहा के पूरा करना १भूषण में जैसे उपस्कृता कन्या अलंकृत की गई कन्या २ समवाय में जैसे उपस्कृता ब्राह्मणाः—इकट्ठे हुए ब्राह्मण लोग ३ प्रतियत्न में जैसे एधोदकस्योपस्कुरुते—लकड़ी पानी को नया गुण देती है । ४ विकृत में जैसे उपस्कृतं भुङ्क्ते—वह विकृत अन्न को खाता है ।

---

(१) ११११ के सूत्र में पाणिनिजी ने (संस्कृत) ऐसा कहा है और उस का भूषण अर्थ भी नहीं किन्तु संस्कार मात्र है—इस से सिद्ध हुआ कि भूषणार्थ से बिना भी संपूर्वक कृ धातु को सुट् हो जावे ।

६ वाक्यशाध्याहार में जैसे उपसत्तम मृते = वह पदी बा। अध्याहार करके कहता है। ७ वनु (वन्) = मांगना। लट् मे वनुते = वह मागता है। लिट् मे। ववने = उसने याचना कोथी। ८। मनु (मन्) = मानना। लट् में मनुते = वह मानता है। लिट् में। मेने ४८८ = उस मे मानलिया था। लुट् में मनिता = वह मानेगा। लृट् में मनिष्यते। लोट् में मनुताम्। लङ्में अमनुत। विधिलिङ् में। मन्वीत। आशीर्लिङ् मे मनिषीष्ट = हे ईश्वर वह माने। लुङ् मे अमनिष्ट = उस ने माना। लृङ्में अमनिष्यत = यदि वहमाने॥ तनादिगण समाप्तहुआ॥

॥ अथ क्र्यादयः ॥

१ ॥ डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ॥

अब 'क्री' है आदि जिन के उन धातुओं का वर्णन किया जाता है॥ १॥ डुक्रीञ् (क्री) = द्रव्यों का बटाना (अपना द्रव्य देकर दूसरे का द्रव्य लेना)॥

७२४। क्र्यादिभ्यः श्ना। ३। १। ८१। शपोऽपवादः। क्रीणाति ई हल्यघोः। क्रीणीत। श्नाऽभ्यस्तयोरातः। क्रीणन्ति। क्रीणासि। क्रीणीथ। क्रीणीथ। क्रीणामि। क्रीणीवः। क्रीणीमः। क्रीणीते। क्रीणाते। क्रीणते। क्रीणीषे। क्रीणाथे। क्रीणीध्वे। क्रीणे। क्रीणीवहे। क्रीणीमहे। चिक्राय। चिक्रियतुः। चिक्रियुः। चिक्रेथ। चिक्रयिथ। चिक्रिये क्रेता। क्रेष्यति। क्रेष्यते क्रीणातु। क्रीणीतात्। क्रीणीताम्। अक्रीणात्। अक्रीणीत। क्रीणीयात्। क्रीणीत क्रीयात्। क्रेषीष्ट। अक्रैषीत्। अक्रेष्ट। अक्रेष्यत्। अक्रेष्यत॥ २। प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च। प्रीणाति प्रीणीते ३। श्रीञ् पाके। श्रीणाति। श्रीणीते॥ ४। मीञ् हिंसायाम्॥

क्र्यादि धातुओं से परे श्ना प्रत्यय होवे, यह शप् का अपवाद है। लट् मे क्रीणाति १५१ = वह खरीदता है। ६५१ से आकार को ईकार होने से क्रीणीतः = वे, दो मोल लेते हैं। ६५२ से आकार के लोप होने से, क्रीणन्ति = वे मोल लेते हैं। क्रीणासि = तू खरीदता है। क्रीणीथ = तुम दो मोल लेते हो। क्रीणीथ = ६५१ = तुम खरीदते हो। (१) क्रीणामि। क्रीणीव। क्रीणीमः। आत्मने पद के लट् में, (२) क्रीणीते ६५१ क्रीणाते। ६५२। क्रीणते। क्रीणीषे। क्रीणाथे। क्रीणीध्वे। क्रीणे। क्रीणीवहे ६५१। क्रीणीमहे। लिट् में, चिक्राय, ४२०। ४२२। ४२३। ४८२। १९६। २६ = उसने मोल लिया था। चिक्रियतुः = उन दोनें मोल लिया। चिक्रियुः = उन नें मोललिया। चिक्रेथ 'वा'। चिक्रयिथ = ५१२ = तूने मोललिया।

(१) ये तीनो लट् के उत्तम के रूप हैं। (२) यहां से नो आत्मने पद के लट् के रूप हैं।

५०१ इत्यादि करे कि वह करे। सूत्र में अकार्षीत् या अकृत १०६ उस ने किया। लृङ् में अकरिष्यत या अकरिष्यत — यदि वह करे॥

७२१। संपरिभ्यां करोतौ भूषणे। ६। १। १३७॥

सम् या परि उपसर्ग से परे कृ धातु को भूषण अर्थ में सुट् होवे।

७२२। समवाये च। ६। १। १३८। सुट्॥ संस्करोति। अलङ्करोतीत्यर्थः। संस्कुर्वन्ति। सङ्घीभवन्तीत्यर्थः। संपूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट्। संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात्॥

समूह अर्थ में भी कृ को सुट् आगम होवे। संस्करोति ७११ अलंकृत करता है। संस्कुर्वन्ति ७१२ — वे इकट्ठे होते हैं। सम् उपसर्ग पूर्व होते कृ धातु को कहीं अभूषण अर्थ में भी सुट् होता है (संस्कृतं (१) भक्षा) ११११ इस सूत्र के ज्ञापक होने से।

७२३। उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च। ६। १। १३९। कृञः सुट्। चात्प्रागुक्तयोरर्थयोः। प्रतियत्नो गुणाधानम्। विकृतमेव वैकृतं विकारः। वाक्याध्याहारः आकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्। उपस्कृता कन्या। उपस्कृता ब्राह्मणाः। एधोदकस्योपस्कुरुते। उपस्कृतं भुङ्क्ते। उपस्कृतं ब्रूते। ७। वनु याचने। वनुते। ववने। ८। मनु अवबोधने। मनुते। मेने। मनिता। मनिष्यते। मनुताम्। अमनुत। मन्वीत। मनिषीष्ट। अमनिष्ट अमनिष्यत॥ ॥ इति तनादयः॥

(उप) उपसर्ग से परे कृ धातु को 'प्रतियत्न' 'वैकृत' और वाक्याध्याहार इन अर्थों में सुट् आगम होवे चकार के बल से भूषण और इकट्ठा होना इन अर्थों में भी सुट् होता है। किसी पदार्थ में गुणान्तर देने को प्रतियत्न कहते हैं। वैकृत — विकृत होना। अर्थात् विकार। वाक्य का अध्याहार अर्थात् बातचीत को भूल जावे उस को ऊहा से पूरा करना १भूषण में जैसे उपस्कृता कन्या अलंकार की गई लड़की २ समवाय में जैसे उपस्कृता ब्राह्मणाः — इकट्ठे हुए ब्राह्मणलोग ३ प्रतियत्न में जैसे एधोदकस्योपस्कुरुते — लकड़ी पानी को नया गुण देती है। ४ विकृत में जैसे उपस्कृतं भुङ्क्ते — वह विकृत अन्न को खाता है।

---

(१) ११११ के सूत्र में पाणिनिजी ने (संस्कृतम्) ऐसा कहा है और इस का भूषण अर्थ भी नहीं किन्तु संस्कार अर्थ है—इस से सिद्ध हुआ कि भूषणार्थ के विना भी संपूर्वक कृ धातु को सुट् हो जावे।

(स्तन्भ, स्तुन्भ्, स्कन्भ्, स्कुन्भ्) = रोकना। और। स्कुञ् (स्कु) = उछल जाना। इन धातुओं से परे 'श्नु' ६८१ प्रत्यय, होवे। (और 'श्ना' भी होवें) यह सूत्रस्थ चकार से विदित हुआ है। लट् में स्कुनोति 'वा' स्कुनुते। स्कुनाति 'वा' स्कुनीते ६५१ = वह उछल २' कर जाता है। लिट् में, चुस्काव ६८४ वा चुस्कुवे उसे ने कूदा। लुट् में, स्कोता = वह उछल कर जावेगा। लुङ् में, अस्कौषीत् ५१२ 'वा' अस्कोष्ट = वह कूद २ कर गया। ये, स्तन्भु आदि चारों धातु सूत्र ७२६ में ही लिखे हैं, पाणिनि जी के धातुपाठ में नहीं हैं। और इन चारों का रोकना अर्थ है। और इन से परस्मै पद के प्रत्यय होते हैं॥

७२७। हल. श्न. शानज्झौ। ३। १। ८३। स्तभान॥

हि ४४१ परे हो तो हल् से परे 'श्ना' को 'शानच्' होवे। स्तभान ४४२, २५७, तूने रोका।

७२८। जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च। ३। १। ५८। च्लेरङ् वा॥

जॄ = वृद्ध होना। स्तम्भु = रोकना। (म्रुच्, और म्लुच्) = जाना। (ग्रुच्, ग्लुच्। = चोराना। ग्लुञ्च् = जाना। और श्वि = गमन करणा। इन धातुओं से परे च्लि को अङ् विकल्प करके होवे॥

७२९। स्तन्भे। ८। ३। ६७। स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात् व्यष्टभत्। अस्तम्भीत्॥ ७। युञ् बन्धने। युनाति। युनीते। योता। ८। क्नूञ् शब्दे। क्नूनाति। क्नूनीते। क्नविता। ९। दॄञ् हिंसायाम्। दॄणाति। दॄणीते। १०। द्रूञ् हिंसायाम्। द्रूणाति। द्रूणीते॥ ११। पूञ् पवने॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे सूत्र पठित स्तन्भ् धातु के स् को ष् होवे। लुङ् में, व्यष्टभत् 'वा' अस्तम्भीत् = ९२, ९३ = उसने रोका। ७। युञ् (यु) = बान्धना। लट् में, युनाति 'वा' युनीते = वह बान्धता है। लुट् में, योता = वह बान्धेगा। ८। क्नूञ् (क्नू) = शब्द करणा। लट् में क्नूनाति 'वा' क्नूनीते ६५१ = वह शब्द करता है। लुट् में। क्नविता = वह शब्द करेगा। ९। दॄञ् = मारणा। लट् मे दॄणाति 'वा, दॄणीते। वह मारता है। १०। द्रूञ् मारणा। लट् में = द्रूणाति 'वा' द्रूणीते = वह मारता है। ११ पूञ् (पू) = पवित्र करणा॥

७३०। प्वादीनां ह्रस्व.। ७। ३। ८०। पूञ्लूञ्स्तॄञ्कॄञ्वॄञ्धूञ्-शॄपॄवॄभॄमॄजॄझॄधॄनॄकॄॠगॄज्यारीलीव्लीप्लीनां चतुर्विंशते. शिति। ह्रस्वः। पुनाति। पुनीते। पविता। १२। लूञ् छेदने। लुनाति। लुनीते

था. (१) चिक्षिये। लुट् में क्षेता। लृट् में क्षेष्यति वा क्षेष्यते—वह नाश करेगा। लोट् में क्षीयात्—वह नाश करे। क्षीषीताम् ४११। 'वा'। क्षीषीताम्—वह नाश करे। लङ् में (२) अक्षीणात् वा' अक्षीणीत। विधि लिङ् में क्षीणीयात् 'वा' क्षीणीत—वा लिङ में क्षीयात्'वा'क्षेषीष्ट। लुङ् में अक्षैषीत् ५११ वा' अक्षेष्ट। लृङ् में अक्षेष्यत् 'वा' अक्षेष्यत। ३। ग्रीञ् (प्री)—तृप्त करना (वा) इच्छा करनी। लट् में प्रीणाति 'वा' प्रीणीते।४। श्रीञ् (श्री)—पाक करना। लट् में श्रीणाति ११९ 'वा श्रीणीते ४११—वह पकाता है। ५। मीञ्(मी)—मारना॥

७२५। हिनुमीना।८। ४। १५। उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य णः स्यात्। प्रमीणाति। प्रमीणीते। मीनातेरित्यात्वम्। ममौ। मिम्यतुः। ममिथ। ममाथ। मिम्ये। माता। मास्यति। मीयात्। मासीष्ट। अमासीत्। अमासिष्टाम्। अमास्त। ५। षिञ् बन्धने। सिनाति। सिनीते। सिषाय। सिष्ये। सेता। ६। स्कुञ् आप्रवणे॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे 'हिनु' और 'मीना' शब्दों के (न्) को (ण्) होवे। लट् में प्रमीणाति 'वा' प्रमीणीते—वह बहुत हिंसा करता है। ४०७ से आकार आदेश होने पर लिट् में ममौ ११०—उसने हिंसा करी। मिम्यतु—उन दोनों हिंसा की। ममिथ ४०८। ५११। ११८ 'वा' ममाथ ४०७ तूने हिंसा की। वा लिट् में मिम्ये। लुट् में, माता ४०४। लृट् में मास्यति—वह मारेगा। वा लिङ् में मीयात् 'वा' मासीष्ट—ईश्वर करे कि वह मारे। लुङ् मे अमासीत् ४०५ ११८—उसने हिंसा की। अमासिष्टाम्—उन दोनों हिंसा की। 'वा' अमास्त ४०४। षिञ् (षि)—बान्धना। सिनाति 'वा सिनीते—वह बान्धता है। लिट् में सिषाय 'वा। सिष्ये उसने बान्धा था। लुट् में सेता २०१, ३१४—वह बान्धेगा। ६। स्कुञ् (स्कु)—उछल २ कर जाना॥

७२६। स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च। ३। १। ८२। चात्। श्ना। स्कुनोति। स्कुनुते। स्कुनाति। स्कुनीते। चुस्काव। चुस्कुवे। स्कोता। अस्कौषीत्। अस्कोष्ट। स्तम्भ्वादयश्चत्वारः सौत्राः सर्वे रोधनार्थाः। परस्मैपदिनः॥

---

(१) ११४—उसने नाश किया था। (२) यहां से लुङ पर्यन्त प्रथम पुरुषों के एक वचन के रूप हैं॥

(स्तन्भ, स्तुन्भ्, स्कम्भ्, स्कुन्भ्)=रोकना। और। स्कुञ् (स्कु)=उछल जाना। इन धातुओं से परे 'श्नु' ६८१ प्रत्यय, होवे। (और 'श्ना' भी होवे) यह सूत्रस्थ चकार से विदित हुआ है। लट् में स्कुनोति 'वा' स्कुनुते। स्कुनाति 'वा' स्कुनीते ६५१=वह उछल २' कर जाता है। लिट् में, चुस्काव ६८४ वा चुस्कुवे उसे ने कूदा। लुट् में, स्कोता=वह उछल कर जावेगा। लुङ् में, अस्कौषीत् ५१३ 'वा' अस्कोष्ट=वह कूद २ कर गया। ये, स्तन्भु आदि चारों धातु सूत्र ७२६ में ही लिखे हैं, पाणिनि जी के धातुपाठ में नहीं हैं। और इन चारों का रोकना अर्थ है। और इन से परस्मै पद के प्रत्यय होते हैं॥

७२७। हलः श्नः शानज्झौ। ३। १। ८३। स्तभान॥

हि ४४१ परे हो तो हल् से परे 'श्ना' को 'शानच्' होवे। स्तभान ४४२, ३५७, तूं ने रोका।

७२८। जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च। ३। १। ५८। च्लेरङ् वा॥

जॄ=वृद्ध होना। स्तम्भु=रोकना। (म्रुच्, और म्लुच्)=जाना। (ग्रुच्, ग्लुच्। =चोराना। ग्लुञ्च्=जाना। और श्वि=गमन करणा। इन धातुओं से परे च्लि को अङ् विकल्प करके होवे॥

७२९। स्तन्भेः। ८। ३। ६७। स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात्

व्यष्टभत्। अस्तम्भीत्॥ ७। युञ् बन्धने। युनाति। युनीते। योता। ८। क्नूञ् शब्दे। क्नूनाति। क्नूनीते। क्नविता। ९। दॄञ् हिंसायाम्। दृणाति। दृणीते। १०। द्रूञ् हिंसायाम्। द्रूणाति। द्रूणीते॥ ११। पूञ् पवने॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे सूत्र पठित स्तन्भ् धातु के स् को ष् होवे। लुङ् में, व्यष्टभत् 'वा' अस्तम्भीत्=९२, ९३=उसने रोका। ७। युञ् (यु)=बान्धना। लट् में, युनाति 'वा' युनीते=वह बान्धता है। लुट् में, योता=वह बान्धेगा। ८। क्नूञ् (क्नू)=शब्द करणा। लट् में क्नूनाति 'वा' क्नूनीते ६५१=वह शब्द करता है। लुट् में। क्नविता=वह शब्द करेगा। ९। दॄञ्=मारणा। लट् में दृणाति 'वा, दृणीते। वह मारता है। १०। द्रूञ् मारणा। लट् में=द्रूणाति 'वा' द्रूणीते=वह मारता है। ११ पूञ् (पू)=पवित्र करणा॥

७३०। प्वादीनां ह्रस्वः। ७। ३। ८०। पूञ्लूञ्स्तॄञ्कॄञ्वॄञ्धूञ्शॄपॄवॄभॄमॄदॄजॄझॄधॄनॄगॄकॄऋगॄज्याप्रीलीव्लीप्लीनां चतुर्विंशतेः शिति। ह्रस्वः। पुनाति। पुनीते। पविता। १२। लूञ् छेदने। लुनाति। लुनीते

१३। स्तॄञ् आच्छादने। स्तृणाति। शर्पूर्वाः खयः। तस्तार। तस्तरतु। तस्तरे। स्तरिता। स्तरीता। स्तृणीयात्। स्तृणीत। स्तीर्यात्॥

पू–शुद्ध करना। लू–काटना। स्तॄ–आच्छादन करना। कॄ–मारना। वॄ–स्वीकार करना। धू–कम्पना। शॄ–मारना। पॄ–पालना। वॄ–स्वीकार करना। भॄ–भय देना। मॄ–मारना। जॄ–बूढ़ा होना। झॄ–वृद्ध होना। ध–बढ़ना। नॄ–प्राप्त करना। ॠ–टेढ़ा होना। कॄ–मारना। ऋ–चलना। गॄ–शब्द करना। ज्या–वृद्ध होना। री–मारना। ली–मिलाना। व्ली–स्वीकार करना। प्ली–जाना। ये जो चौबीस धातु हैं तिन को ह्रस्व होवे शित् प्रत्यय परे होते। लट् में पुनाति 'वा' पुनीते–वह पवित्र करता है। लुट् में पविता–वह शुद्ध करेगा। १२। (लू)–काटना। लट् में लुनाति वा लुनीते वह काटता है। १३। स्तृञ् ((स्तॄ) आच्छादन करना। लट में स्तृणाति। लिट् में तस्तार ६८४–उसने आच्छादन किया था। तस्तरतु' ६८७–उन दोने आच्छादन किया। 'वा' तस्तरे ६८०–उसने आच्छादन किया था। लुट् में स्तरिता 'वा' स्तरीता ६८८ वह ढकेगा। विधि लिङ में स्तृणीयात् 'वा' स्तृणीत ६९२। आ लिङ में 'स्तीर्यात् (०) ६९१–वे ईश्वर वह ढके॥

७३१। लिङ्सिचावात्मनेपदेषु। ७। २। ४२। वृङ्वृञ्भ्यामॄदन्ताच्च परयोर्लिङ्सिचोरिड्वा स्यात्तङि॥

वृङ–सेवना। वृञ्–स्वीकार करना। और ॠदन्त जो धातु हैं इन से परे लिङ् और सिच् को आत्मने पद में इट (आगम) विकल्प से होवे॥

७३२। न लिङि। ७। २। ३९। वॄत इटो न दीर्घः। स्तरिषीष्ट। उश्च अनेन कित्वम्। स्तीर्षीष्ट। सिचि च परस्मैपदेषु। अस्तारीत्। अस्तारिष्टाम्। अस्तारिषु। अस्तरिष्ट। अस्तीर्ष्ट। १४। कॄञ् हिंसायाम्। कृणाति। कृणीते। चकार चकरे। १५। वृञ् वरणे। वृणाति वृणीते। ववार। ववरे। वरिता। वरीता। उदोष्ठ्यप्रत्युत्वम्। वूर्यात्। वरिषीष्ट। वूर्षीष्ट। अवारीत्। अवारिष्टाम्। अवरिष्ट। अवरीष्ट। अवूर्ष्ट। १६। धूञ् कम्पने। धुनाति। धुनीते। धोता। धविता। अधावीत्। अधविष्ट। अधोष्ट। १७। ग्रह उपादाने। गृह्णाति। गृह्णीते। जग्राह। जगृहे॥

वृङ्, वृञ्, और ॠदन्त धातु को लिङ् परे होते (१) दीर्घ न होवे । आ० लिङ् में स्तरिषीष्ट ७३१ ५७५ वे से कित्व हुआ तो स्तीर्षीष्ट ७००, ६४५ हे ईश्वर वह ढके । लुङ् के ६४८ से इट् को दीर्घका निषेध हुआ तो अस्तारीत् ५१२ उस ने ढका। (२)अस्तारिष्टाम् । अस्तारिषु । 'वा' अस्तरिष्ट, अस्तीर्ष्ट ५७५ । ७०० । ६४५ ॥ १४। कॄञ् (कॄ)मारना लट् में कृणाति ७३० 'वा' कृणीते = वह मारता है । लिट् में चकार 'वा' चकरे ५४७ = उस ने मारा था ॥

१५ । वृञ् (वृ) = स्वीकार करणा । लट् मे वृणाति वा वृणीते ७३० = वह स्वीकार करता है । लिट् में ववार 'वा' ववरे ६४७ = उस ने स्वीकार किया था । लुट् में वरिता = वरीता = ६४८ = वह स्वीकार करेगा । ६४४ से उत्व किया तो (आ० लिङ में) वूर्यात् ६४५ 'वा' वरिषीष्ट ७३१ वूर्षीष्ट । लुङ् में अवारीत् ५१२ अवारिष्टाम् = 'वा' अवरिष्ट ७३१ अवरीष्ट ६४८ अवूर्ष्ट ६४४ उस ने स्वीकार किया १६ । धूञ् (धू) = कम्पना । लट् में–धुनाति 'वा' ६३० धुनीते = वह कम्पाता है । लुट् में--धोता 'वा' धविता ५०५ वह कम्पावेगा । लुङ् में अधावीत् ६८२ 'वा' अधविष्ट अधोष्ट = उस ने कम्पाया । १७ ग्रह (ग्रह्) = लेना । लट् मे ६६९ गृह्णाति 'वा' गृह्णीते = वह लेता है । लिट् में--जग्राह 'वा जगृहे = उस ने लिया था ॥

७३३ । ग्रहोऽलिटि दीर्घः । ७ । २ । ३७। एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घो न तु लिटि । ग्रहीता । गृह्णातु ॥

एकाच् (३) ग्रह धातु से परे विहित जो इट् उस को दीर्घ होवे । लिट् मे न होवे लुट् में—ग्रहीता = वह लेगा । लोट् में = गृह्णातु ६६९ = वह लेवे ॥

७३४ । हलः श्नः शानज्झौ । ३ । १ । ८३ । हल. परस्य श्नः शानजादेशो हौ । गृहाण । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । ह्म्यन्तेति न वृद्धि. । अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । १८ । कुष निष्कर्षे कुष्णाति । कोषिता । १९ । अश भोजने । अश्नाति । आश । अशिता । अशिष्यति । अश्नातु । अशान । २० । मुष स्तेये । मोषिता । मुषाण । २१ । ज्ञा अवबोधने । जज्ञौ । २२ । वृङ् सम्भक्तौ । वृणीते । ववृषे । ववृढ्वे । वरिता । वरीता । अवरिष्ट । अवरीष्ट । अवृत ॥ इति क्र्यादयः ॥

---

(१) दीर्घ जो ६४८ से पाया था (२) मे दोनो लुङ् प्र० पु० द्वि वचन और बहु वचन के रूप हैं । (३) एक स्वर वाला ।

इस् से परे इना को शानच् होवे हि के परे होते। गृहाण ७४२ तू ले। आशीर्लिङ् में—गृह्यात् वा' ग्रहीषीष्ट ७११—वे ग्रहण करे। लुङ् में ७८७ से हकि का निषेध हुआ तो—अग्रहीत्। अग्रहीष्टाम् ७११—वे दो लेते हुए। 'वा "अग्रहीष्ट" ७११ अग्रहीषाताम्। १८ कुष् निष्कर्षणा। लट् में। कुष्णाति—लुट् में—कोषिता—वह निचोड़े गा ॥ १८। अश्—खाना। लट में—अश्नाति। लिट् में—आश। लुट में अशिता। लृट् में—अशिष्यति—वह खावेगा॥ लोट में—अश्नातु—वह खावे। अशान—तू खा ॥ २ मुष (मुष्) चुराना। लुट् में—मोषिता—वह चुरावेगा। लोट् म. पु. में मुषाण ७१६+७७२ ६५१—तू चुरा ॥ २१। ज्ञा—जानना। लिट में—जज्ञौ ६१०—वह जानता था ॥ २२। वृङ् (वृ) सेवा करनी। लट् में—वृणीते ६११—वह सेवा करता है। लिट् म. पु. में—वव्रषे—तू सेवा करी थी। (१) ववृषे। लुट में—वरिता वरीता—वह सेवा करेगा। लुङ् में—अवरिष्ट ७११ अवरीष्ट ६७८ अवृत ५७६ ६०५—उस ने सेवा की ॥

॥ क्र्यादि गण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ चुरादयः ॥

॥ १ ॥ चुर स्तेये ॥

अब चुरादि गण का वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥ चुर (चुर्)—चोरी करनी ॥

७३५। सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्। ३। १। २५। स्वार्थे। पुगन्तेति गुणः। सनाद्यन्ता इति धातुत्वम्। तिप्शबादि। गुणायादेशौ। चोरयति ॥

सत्याप पाश रूप वीणा तूल श्लोक सेना लोमन् त्वच् वर्मन् वर्ण चूर्ण इन शब्दों से और चुरादि धातुओं से स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होवे। ४७८ से गुण कर लेना। और यहां ७८६ में धातु संज्ञा होती है। पुन: तिप् और शप् आदि प्रत्यय होते हैं। ११४ से गुण और एचोऽयवायावः से (अय्) हुआ तो। लट् में चोरयति—वह चुराता है ॥

७३६। णिचश्च। १। ३। ७४। णिजन्तादात्मनेपदं कर्तृगामिनि क्रियाफले। चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। चोर्यात् चोरयिषीष्ट। णिश्रीति चङ्। णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः। चङि द्वित्वम्। हलादिः शेषः। दीर्घो लघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः। अचूचुरत्। अचूचुरत। २। कथ वाक्यप्रबन्धे। अल्लोप ॥

---

(१) ५४२ से क्या होता है—तुम ने सेवा की थी।

णिजन्त से आत्मने पद हो परन्तु जब क्रिया का फल कर्त्ता को पहुंचाता हो। चोरयते=वह अपने लिये चुराता है। लिट् मे—चोरयामास ४९८=उस ने चुराया। लुट् में—चोरयिता=वह चुरायेगा। आ० लिङ् मे चोर्यात् ५५७ 'वा' चोरयिषीष्ट। लुङ् में ५५६ से च्लि को चङ्, ५५८ से उपधा को ह्रस्व, और ५५९ से द्वित्व, ४२२ से अभ्यास में (चु) रहा, और ५६२ से अभ्यास के लघु को दीर्घ हुआ तो अचूचुरत् 'वा' अचूचुरत। २। कथ=कहना।४९९ से इस के अन्त्य अकार का लोप होता है॥

७३७। अच परस्मिन्पूर्वविधौ। १। १। ५७। परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्त्तव्ये इति। स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धि। कथयति। अग्लोपित्वाद्दीर्घसन्वद्भावौ न। अचकथत्। ३ गण संख्याने। गणयति॥

पर को निमित्त मान, अच् के स्थान में यदि कोई आदेश हो तो वह आदेश जिस अच् के स्थान में हो उसी के तुल्य माना जावे, परन्तु जब कोई सूत्र उस अच् से पूर्व वर्ण में लगने वाला हो। इस से यहां अकार के लोप को स्थानिवत् मानने से (१) उपधा को ४८३ से वृद्धि न हुई। लट् में कथयति=वह कहता है॥ अग्लोपि (२) होने से लुङ् में दीर्घ ५६२ और सन्वद्भाव ५६० न हुए—अच कथत् ५५९=वह कहता हुआ॥ ३। गण (गण्)=गिनना। लट् में—गणयति॥

७३८। ईच गणः। ७। ४। ९७। गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चादत्चङ्परे णौ। अजीगणत्। अजगणत्॥ इति चुरादयः॥

गण धातु के अभ्यास को ईकार होवे। सूत्र में चकार के पठन से यह ज्ञात होता है कि, अकार भी पक्षान्तर में होवे, जब चङ्परक णि परे होवे तब। लुङ् में अजीगणत् वा अजगणत् ५५६, ५५९, ४२२, ४८२=उस ने गिना॥ चुरादि गण समाप्त हुआ॥

॥ अथ णयन्ताः ॥

अब णिजन्त धातुओं के साधने की प्रक्रिया (णिजन्तप्रक्रिया) का वर्णन किया जाता है।

७३९। स्वतन्त्रः कर्त्ता। १। ४। ५४। क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्॥

---

(१) जब कथ के अकार को स्थानि वत् माना तो उपधा रूप (थ्) आगया अकार नहीं वृद्धि किसे हो। (२) कथ के अकार का ४९९ से लोप हुआ है और अकार अक् प्रत्याहार में है इस लिये कथ् अग्लोपि है॥

क्रिया में स्वतन्त्रता से जिस की विवक्षा हो (कि यह क्रिया करने वाला है) वह कर्त्ता कहलाता है ॥

७४० । तत्प्रयोजको हेतुश्च । १ । ४ । ५५ । कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च ॥

कर्त्ता को प्रेरणा करने वाला 'हेतु संज्ञा वाला' और कर्तृ संज्ञक होवे ॥

७४१ । हेतुमति च । ३ । १ । २६ । प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् । भवन्तं प्रेरयति भावयति ॥

प्रेरणा करने वाले के व्यापार अर्थात् प्रेरणादिकों को जब प्रकाश करना हो तब धातु से णिच् ७११ होवे । दूसरा जब होने वाले को प्रेरणा करता है (भावयति) ॥

७४२ । ओः पुयण्ज्यपरे । ७ । ४ । ८० । सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोत इत् स्यात् पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः । अवीभवत् । ष्ठा गतिनिवृत्तौ ॥

जिस अंग से परे सन् (२) हो उस का अवयव जो अभ्यास उस के उकार को इकार होवे परन्तु जब अवर्णपरक (३) पवर्ग (प् फ् ब् भ् म्) वा यण् (य् व् र् ल्) वा जकार परे रहे तब । लुङ् में अवीभवत् ११५ ११७, ११८, ११ । ष्ठा — ठहरना ॥

७४३ अर्त्तिह्रीब्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ । ७ । ३ । ३६ । स्थापयति ॥

ऋ — जाना । ह्री — लज्जा करनी । ब्ली — मानना । री — हिंसा करनी । क्नूयी — शब्द करना । क्ष्मायी — कम्पना । इन धातुओं को और आकारान्त धातुओं को णि परे होते (पुक्) होवे । स्थापयति — वह उसे ठहराता है ॥

७४४ । तिष्ठतेरित् । ७ । ४ । ५ ॥ उपधाया इत् चङ्परे णौ । अतिष्ठिपत् । घट चेष्टायाम् ॥

स्था धातु की उपधा के स्थान में इकार होवे जब चङ्परक णि परे हो तो । अतिष्ठिपत् ७४१ । घट (घट्) — चेष्टा करनी ॥

---

(१) यहां आदि पद में अध्येषणा (सत्कार पूर्वक गुर्वादि प्रेरणा) और विज्ञापना का भी ग्रहण है । (२) (७३६) से लीला (और) सन्वद्भाव का भी ग्रहण कर लेना । (३) अकार से परे जिन के । इस पद के ग्रहण में (बुभूषति) में इकार न हुआ ।

७४५ ॥ मितां ह्रस्वः । ६ । ४।९२।घटादीनां ज्ञपादीनां च ह्रस्वः । घटयति । ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च । ज्ञपयति । अजिज्ञपत् ॥

॥ इति ण्यन्तप्रक्रिया ।

(घट्) आदि और (ज्ञप्) आदि धातु जो मित् हैं उन को ह्रस्व होवे । घटयति । ज्ञप (ज्ञप्)=जानना 'वा' जनाना । लट् में—ज्ञपयति=वह जनाता है । लुङ् में । अजिज्ञपत् । ५६०, ५६१ ॥ णिजन्त प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ सन्नन्ताः ॥

॥ सन् है जिन के अन्त मे उन का वर्णन ॥

७४६ ॥ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा । ३ । १ । ७ । इषिकर्मणो धातोरिषिणैककर्तृकात्सन्वेच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि ॥

इच्छा क्रिया का कर्म जो धातु उस से यदि उस का और इच्छा रूप क्रिया का कर्त्ता एक हो तो इच्छा अर्थ मे सन् विकल्प करके होवे ॥ १ । पठ=पढना ॥

७४७ । सन्यङोः ॥ ६ । १ । ९ ॥ सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य । सन्यतः । पठितुमिच्छति पिपठिषति । कर्मणः किम् । गमनेनेच्छति । समानकर्तृकात् किम् । शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः । वा ग्रहणाद्वाक्यमपि । लुङ्सनोर्घस्लृ ॥

सन् प्रत्ययान्त और यङ् प्रत्ययान्त धातु के प्रथम एकाच् (एक स्वर वाले) भाग को द्वित्व होवे, परन्तु यदि उस प्रथम भाग के आदि में अच् हो तो द्वितीय एकाच् भाग को द्वित्व होवे । ५६१ से अभ्यास के अकार को इकार किया तब पिपठिषति=वह पढने की इच्छा करता है । ७४६ सूत्र में "कर्मणः" यह पद क्यों कहा? इस का यह उत्तर है कि गमनेनेच्छति=यहां गमन रूप करण से न सन् हो जावे । पुनः यदि कोई कहे कि यहा भी "समान कर्तृकात्" यह पद क्यों कहा? तो इस का यह उत्तर है कि—शिष्याः पठन्त्वितीच्छति गुरुः=शिष्य पढे यह गुरु चाहता है । यहा पढने वाले शिष्य हैं इच्छा करणे वाला गुरु कर्त्ता भिन्न है यहां पठ धातु से सन् न हो जावे । उसी सूत्र मे (वा) ग्रहण से दूसरे पक्ष में (१) वाक्य भी पडा रहता है । सन् परे होते ५९८ से (अद्) धातु को (घस्लृ) आदेश होता है ॥

---

(१) पठितुमिच्छति ।

७४८॥ सः स्यार्धधातुके। ७।४।४९। सस्य तः स्यात्सादावार्धधातुके। अत्तुमिच्छति जिघत्सति। एकाच इति नेट्॥

सादि आर्धधातुक परे हो तो स् को त् होवे। जिघत्सति—खा जाने की इच्छा करता है। १. ३ से यहां इट् का निषेध हुआ॥

७४९। अज्झनगमां सनि। ६।४।१६। अजन्तानां हन्तेरजादेश गमेश्च दीर्घो झलादौ सनि॥

अजन्त धातु को और हन् और अजादेश गम् (इण् धातु के स्थान में गम्) इन को दीर्घ होवे झलादि सन् परे हो तब॥

७५०॥ इको झल्। १।२।९। इगन्ताज्झलादिः सन् कित्। ऋत इद्धातोः। कर्तुमिच्छति। चिकीर्षति॥

इगन्त धातु से झलादि सन् कित् होवे। ० से इर् में चिकीर्षति—६४१ कर करने की इच्छा करता है॥

७५१॥ सनि ग्रहगुहोश्च। ७।२।१२। ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण्न स्यात्। बुभूषति॥ इति सनन्ताः॥

ग्रह—लेना। गुह—ढक लेना। और उक् प्रत्याहार है अन्त में जिन के इन से परे सन् को इट् न हो। इट् से बुभूषति ७४१। ७३०। ४११। ४१५—हो होने की इच्छा करता है॥ सनन्त प्रक्रिया समाप्त हुई॥

॥ अथ यङन्ता ॥

। अब यङन्त प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है।

७५२॥ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्। ३।१।२२। पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ्।

क्रिया का बारंबार करना वा क्रिया का अतिशय प्रकाश करना हो तो हलादि (१) एकाच् धातु से यङ् हो॥

७५३॥ गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२। अभ्यासस्य गुणो यङि यङ्लुकि च। ङिदन्तत्वादात्मनेपदम्। पुनः पुनरतिशयेन वा भवति। बोभूयते। बोभूयाञ्चक्रे। अबोभूयिष्ट।

(१) हल् है आदि में जिस के और एक है अच् जिस में।

यङ् परे हो 'वा' यङ् का लुक् भया हो तब अभ्यास को गुण हो। यङ् को ङित् होने से यङन्त धातु से आत्मनेपद (१) होता है। बोभूयते=वह बारबार 'वा' अतिशय करके होता है। लिट् मे बोभूयाञ्चक्रे। लुङ् में-अबोभूयिष्ट=वह बारबार हुआ।

७५४ ॥ नित्यं कौटिल्ये गतौ ३ । १ । २३ गत्यर्थात्कौटिल्ये एव यङ् न तु क्रियासमभिहारे ॥

गति अर्थ वाले धातु से सर्वदा कुटिलता अर्थ में यङ् हो। क्रिया समभिहार मे न हो।

७५५ ॥ दीर्घोऽकितः ७ । ४ । ८३ अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङ् लुकोः। कुटिलं व्रजति। वाव्रज्यते।

अकित अभ्यास को दीर्घ होवे, जब यङ् 'वा उस का लुक् होवे तब। वाव्रज्यते=वह टेढा जाता है ॥

७५६ ॥ यस्य हलः ६ । ४ । ४९ हलः परस्य यस्य लोप आर्धधातुके ॥ आदेः परस्य। अतोलोपः। वाव्रजाञ्चक्रे। वाव्रजिता।

आर्धधातुक प्रत्यय परे होते हल् से परे (य) का लोप होवे। लिट् मे आस् के परे होते ८५ के अनुसार य् का लोप हुआ। पुन. ४९९ से 'अ' का लोप हुआ। वाव्रजाञ्चक्रे=वह टेढा गया। लुट् में-वाव्रजिता=वह टेढा जावेगा ॥

७५७ ॥ रीगृदुपधस्य । ७ । ४ । ९० । ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ्लुकोः। वरीवृत्यते। वरीवृताञ्चक्रे। वरीवृतिता ॥

यङ् और यङ् के लुक् में ऋदुपध (२) धातु के अभ्यास को 'रीक्' का आगम होता है। लट् में वरीवृत्यते=वह बारबार रहता है। लिट् में-वरीवृताञ्चक्रे ७५६ लुट् मे वरीवृतिता=वह बारबार रहेगा ॥

७५८ ॥ क्षुभ्नादिषु च ८ । ४ । ३९ णत्वं न। नरीनृत्यते। जरीगृह्यते ॥ ॥ इति यङन्त प्रक्रिया ॥

क्षुभ्नादियों में न् को ण् न हो। नरीनृत्यते ७५७=वह बारबार नाचता है। जरीगृह्यते ७५७ ॥ ॥ यङन्त प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ यङ्लुगन्ताः ॥

॥ यङ्लुगन्त प्रक्रिया का वर्णन ॥

७५९ ॥ यङोऽचि च २ । ४ । ७४ यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्याच्च-

(१) ४०४ से होता है। (२) जिस की उपधा में 'ऋ' होवे ॥

धारात्त विनापि क्वचित्। धर्मनिमित्तकोऽयम् । अन्तरङ्गत्वादादौ भवति सत प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्द्वित्वम् । अभ्यासकार्यम् । धातुत्वा ल्लडादय । शेषात्कर्त्तरीति परस्मैपदम् । चर्करीतञ्चेत्यदादौ पाठा च्छपोलुक् ॥

जब यच् प्रत्यय परे हो तब यङ् का लुक हो। सूत्र में चकार ग्रहण से यह बात हुआ कि यह वो बिना भी कहीं होता है इस लिये यह (१) यङ् का लुक् धर्मनिमित्त है क्यों कि किसी भी निमित्त को मान कर नहीं हुआ। अन्तरङ्ग होने से यह यङ् का लुक प्रथम होता है। पुन २ ४ से प्रत्यय लक्षण मान यङन्त होने से ७३० से द्वित्व हुआ। और अभ्यास कार्य भी होते हैं। ४८६ से यङन्त की धातु संज्ञा होने से लट् आदि प्रत्यय होते हैं। ३ ६ से परस्मैपद के प्रत्यय किये जावें। ६१ में लिख दिया है कि यङलुगन्त का पाठ अदादि गण में है इस हेतु से शप् का लुक ६८२ से हुआ।

७६ ॥ यङो वा ७ । ३ । ६४ यङ्लुगन्तात्परस्य हलादे पित सार्वधातुकस्येड्वा स्यात्। भूसुवोरिति निषेधो यङ्लुकि भाषायां न बोभूतु तेतिक्ते इति छन्दसि निपातनात्।बोभवीति। बोभोति । बोभूत भदभ्यस्तात् । बोभुवति । बोभवाञ्चकार । बोभवामास । बोभविता । बोभविष्यति । बोभवीतु । बोभोतु । बोभूतात् । बोभूताम् । बोभुवतु । बोभूहि । बोभवानि । अबोभवीत् । अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभवु बोभूयात् । बोभूयाताम । बोभूयु । बोभूयात् । बोभूयास्ताम् । बोभू यासु । गातिस्थेति सिचो लुक्।यङोवेतीट्पक्षे गुणं बाधित्वा नित्य त्वाद्वुक । अबोभूवीत् । अबोभोत् । अबोभूताम् । अबोभूवुः । अबोभवि ष्यत् ॥ ॥ इति यङ्लुगन्ताः ॥

यङ (२) लुगन्त से परे हलादि पित् सार्वधातुक हो तो उसे इट का आगम विकल्प करके होवे॥

६१८ स जो भू धातु को गुण का निषेध है वह भाषा के यङ्लुक में नहीं लगता

---

(१) चकार ग्रहण से ज्ञापित। (२) जिस धातु के यङ् का ७१८ से लुक् हुआ हो।

"बोभूतु" ऐसा वेद में निपातन (१) करने से। लट् में-बोभवीति, बोभोति ७५८-७५३ = वह बारबार होता है। बोभूत' = वे दो बारबार होते हैं। ३६८ से भ् को अत् हुआ, बोभुवति = वे बारबार होते हैं। लिट् में-बोभवाञ्चकार (वा) बोभवामास। लुट् मे बोभविता। लृट् में-बोभविष्यति = वह बार२ होगा। लोट् में-बोभवीतु। बोभोतु ७५८, ७६०, ७५३ = वह बार२ होवे। बोभूतात् ४३८। बोभूताम्। बोभुवतु ६३८। बोभूहि = तूं बारबार हो। बोभवानि ४४३, ४४४ मैं बारबार होवूं। लङ् में अबोभवीत् (वा) अबोभोत् = वह बारबार हुआ। अबोभूताम् = वेदो०। अबोभवुः = वे०। विधि लिङ् प्रथ० पु में बोभूयात् १ व०। बोभूयाताम् २ व०। बोभूयु' ३ व०। आ० लिङ् मे-बोभूयात्। बोभूयास्ताम्। बोभूयासु = हे ईश्वर वे बारबार होवें। लुङ् में ४६७ से सिच् का लुक् हुआ। और ७६० से जिस पक्ष में ईट् आता है वहां ४१४ गुण को बाध कर नित्य (२) होने से ४१८ से वुक् होता है। अबोभूवीत् (वा) अबोभोत् = वह बारबार हुआ। लृङ् में-अबोभविष्यत् = यदि वह बारबार होवे॥ ॥ यङ्लुगन्त प्रक्रिया समाप्त हुई॥

॥ अथ नामधातवः॥

॥ अब नामधातुओं का वर्णन किया जाता है॥

७६१॥ सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८ इषिकर्मण. एषितु. संबन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यज्वा।

इष् का कर्म और इच्छा करणे वाले का आत्मसम्बन्धी जो सुबन्त उस से इच्छा अर्थ में विकल्प करके क्यच् प्रत्यय होवे॥

७६२॥ सुपो धातुप्रातिपदिकयोः२,४,७१ एतयोरवयवस्यसुपो लुक्॥

धातु (वा) प्रातिपादिक का अवयव जो सुप् उस का लुक् होवे॥

७६३॥ क्यचि च ७।४।३३। अवर्णस्य ई। आत्मन. पुत्रमिच्छतिपुत्रीयति॥

क्यच् परे होते अवर्ण को ई होवे। पुत्रीयति = वह अपने लिये पुत्र की इच्छा करता है॥

(१) "बोभूतु" इस वैदिक रूप में गुण न हो इसी लिये "बोभूतु तेतिक्ते" इत्यादि सूत्र मे 'बोभूतु' ऐसा प्रयोग निपातन किया है। परन्तु यदि ४६८ से गुण निषेध वेद में न होता तो पुन' निपातन क्यों किया, इस से यह सिद्ध हुआ कि वेद में वह निषेध लगता है तो निपातन सार्थक हुआ। और वेद से विना अन्य शास्त्रों के यङ्लुक् मे वह निषेध नहीं लगता है। (२)जो अपने विरोधी के लगने पर भी होजावे वह विधि नित्य कहलाती है।

७६४॥ नः क्ये १।४।१५ क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदं स्यात् नलोपः। राजीयति। नान्तमेवेति किम्। वाच्यति। हलि च। गीर्यति। पूर्यति। धातोरित्येव नेह दिवमिच्छति दिव्यति॥

क्यच् या क्यङ् परे हो तो नकारान्त को ही पद माना जाय। और की पद संज्ञा न हो। १८४ से नकार का लोप हुआ। राजीयति—वह राजा की इच्छा करता है। "नान्तमेव" यह क्यों कहा—उत्तर देते हैं (१) वाच्यति—वह वाणी की इच्छा करता है। ६३१ से दीर्घ करने पर गीर्यति—वह वाणी की इच्छा करता है। पूर्यति—वह पुर की इच्छा करता है। ६३१ से दीर्घ धातु को ही होता है इस से दिव्यति (२) (वह स्वर्ग की इच्छा करता है) में दीर्घ न हुआ॥

७६५॥ क्यस्य विभाषा ६।४।५० हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वा आर्धधातुके। आदेः परस्य। अतो लोपः। तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न। समिधिता। समिध्यिता।

आर्धधातुक परे होते हल् से परे क्यच् (वा) क्यङ् हो तो उस का लोप होवे। ८५ से य् का लोप और ४८८ से अकार का लोप होता है। अकार के लोप को स्थानिवद्भाव मान कर ४०८ से गुण न हुआ। समिधिता (वा) समिध्यिता—वह समिधा की इच्छा करेगा।

७६६॥ काम्यच्च। ३। १। ९। उक्तविषये काम्यच्। पुत्रमात्मन इच्छति। पुत्रकाम्यति पुत्रकाम्यिता॥

उक्त विषय ७६१ में काम्यच् प्रत्यय भी हो। बाद में पुत्रकाम्यति। लुट् में-पुत्रकाम्यिता

७६७॥ उपमानादाचारे ३, १, १० उपमानात् कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच्। पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम्। विष्णूयति द्विजम्।

उपमान वाचक कर्म संज्ञक सुबन्त से आचार अर्थ में क्यच् हो। पुत्रीयति ७६१ छात्रम्—वह विद्यार्थी को पुत्र के समान मानता है। विष्णूयति ३१५ द्विजम्—वह ब्राह्मण को विष्णु के तुल्य मानता है।

७६८॥ वा०। सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः। अतो गुणे। कृष्ण इवाचरति कृष्णति। स्व इवाचरति स्वति। सस्वौ।

---

(१) यदि 'नान्त मेव' यह न कहते तो वाच्यति में ३३८ से कुत्व हो जाता परन्तु जब यहां नान्त की ही पद संज्ञा करी तो वाच् की पद संज्ञा न हुई तब कुत्व भी न हुआ। (२) यहां दिव् शब्द स्वर्गवाचक प्रातिपदिक है धातु नहीं है।

सभी प्रातिपदिकों से क्विप् विकल्प करके हो ऐसा कहना चाहिये । २८५ से पर रूप कर लेना। कृष्णति = वह कृष्ण के तुल्य कार्य करता है । स्वति = वह अपने तुल्य कार्य करता है। लिट् स्वस्वौ ५१७ = उस ने अपने समान कार्य किया।

७६९ ॥ अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ६ । ४ । १५ अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात्क्वौ झलादौ च क्ङिति। इदमिवाचरति इदामति। राजेव राजानति। पन्था इव पथीनति।

अनुनासिकान्त की उपधा को दीर्घ हो जब क्विप् (वा) झलादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे हो इदामति = वह इस के तुल्य काम करता है । राजानति = वह राजा के तुल्य काम करता है। पथीनति = वह मार्ग के तुल्य आचरण करता है

७७० ॥ कष्टाय क्रमणे ३, १, १४ चतुर्थ्यन्तात्कष्टशब्दादुत्साहे क्यङ्। कष्टाय क्रमते। कष्टायते। पापं कर्त्तुमुत्सहत इत्यर्थः ॥

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से उत्साह अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो। कष्टायते = ७६२, ५१२ = वह पाप करणे को उत्साह करता है।

७७१ ॥ शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे। ३ । १ । १७ । एभ्यः कर्मभ्य करोत्यर्थे क्यङ्। शब्दं करोति शब्दायते ॥

शब्द। वैर। कलह = झगड़ा। अभ्र = मेघ। कण्व = पाप। मेघ। जब ये कर्म हो तो इन से करणे (ने) अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होवे। शब्दायते ५१२ = वह शब्द करता है।

७७२ ॥ तत्करोति तदाचष्टे। इति णिच्।

वह उस काम को करता है वा उस को कहता है इन अर्थों में णिच् प्रत्यय होवे । इस से णिच् हुआ।

७७३। प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च। प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् स्यात् इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपविन्मतुब्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्वण्णावपि स्यु । इत्यग्लोपः । घटं करोत्याचष्टे वा घटयति ॥ इतिनामधातवः ॥

प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् प्रत्यय होवे । और उस के परे होते इष्ठन् प्रत्यय के तुल्य कार्य होवें अर्थात् जब इष्ठन् १२०० परे होता है तब जैसे पुंवद्भाव ऋ को र् आदेश टि का लोप, विन् और मतुप् का लुक्, यणादि का लोप, प्रिय को प्र, स्थिर को स्थ, आदेश

और भ संज्ञा होती है वैसे ही णि परे रहे तब भी ये सभी कार्य होवें । इस से अकलोप (घट की टि का लोप) हुआ । तब घटयति—वह घड़े को बनाता है वा घट को कहता है।

॥ नामधातु प्रक्रिया समाप्तश्चूर्ं ॥

॥ अथ कण्ड्वादय ॥

कंडू आदिकों का वर्णन ।

७७४ ॥ कण्ड्वादिभ्योयक् । एभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे । १ । कण्डूञ् गात्रविघर्षणे । कण्डूयति । कण्डूयते । इत्यादि ॥

कण्डू आदि धातुओं से परे स्वार्थ में यक प्रत्यय नित्य होवे १ कण्डूञ् (कण्डू) —खुजलाना—खुरकना । लट् में कण्डूयति वा कण्डूयते—वह खुरकता है । इत्यादि और भी जान लेने । ॥ कण्ड्वादि प्रक्रिया समाप्तश्चूर्ं ॥

॥ अथात्मनेपदम् ॥

आत्मनेपद प्रक्रिया का वर्णन ।

७७५ ॥ कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे । १ । ३ । १४ । क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्त्तर्यात्मनेपदम् । व्यतिलुनीते । अन्यस्य योग्यं लवनं करोतीत्यर्थः ॥

जब क्रिया का विनिमय अदल बदल प्रयोग करना हो तब कर्त्ता अर्थ में आत्मने पद हो । व्यतिलुनीते—अन्य के योग्य काटना को कम उसे आप करता है ।

७७६ ॥ न गतिहिंसार्थेभ्यः । १ । ३ । १५ । व्यतिगच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति ।

गति और हिंसा अर्थ वाले धातु से आत्मनेपद न होवे । व्यतिगच्छन्ति—वे परस्पर मिलकर जाते हैं । व्यतिघ्नन्ति—वे परस्पर मिलकर मारते हैं ।

७७७ ॥ नेर्विशः । १ । ३ । १७ । निविशते ।

नि पूर्वक विश धातु से आत्मनेपद हो । निविशते—वह भीतर प्रवेश करता है ।

७७८ ॥ परिव्यवेभ्य क्रिय । १ । ३ । १८ । परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते ।

परि वा वि वा अव उपसर्ग से पर जो धातु से आत्मनेपद होवे । परिक्रीणीते वह मोल लेता है । विक्रीणीते वह बेचता है । अवक्रीणीते वह मोल लेता है ।

७७६ । विपरास्यां जेः । १ । ३ । १६ । विजयते । पराजयते ॥

वि वा परा उपसर्ग से परे जि धातु हो तो इसे आत्मनेपद हो । विजयते, वह जीतता है। पराजयते, वह हार करता है ।

७८० । समवप्रविभ्यः स्थः । १ । ३ । २२ । सन्तिष्ठते अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ॥

सम् वा अव् वा प्र वा वि इन से परे ष्ठा धातु से आत्मनेपद हो । सन्तिष्ठते, वह अच्छी रीति से स्थित होता है । अवतिष्ठते, वह ठहरता है । प्रतिष्ठते, वह प्रकर्ष से ठहरता है । वितिष्ठते, वह विशेष से स्थित होता है ।

७८१ । अपह्नवे ज्ञः ।१।३।४४। शतमपजानीते। अपलपतीत्यर्थः।

छिपाने अर्थ में ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो शतमपजानीते । वह सौ रुपये के कर्जे से मुकरता है ॥

७८२ । अकर्मकाच्च । १ । ३ । ४५ । सर्पिषोजानीते । सर्पिषोपायेन प्रवर्त्तत इत्यर्थः ॥

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो। सर्पिषोजानीते,घृत उपायसे वहप्रवृत्त होता है ।

७८३ । समस्तृतीयायुक्तात् । १ । ३ । ५४ । रथेन सञ्चरते ॥

सम् पूर्वक और तृतीयान्त से युक्त चर धातु से आत्मनेपद हो । रथेन सञ्चरते वह रथसे जाता है ॥

७८४ । दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे । १ । ३ । ५५ । समोदाणस्तृतीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात्तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे । दास्या संयच्छते कामी ॥

सम् पूर्वक दाण् (दा) धातु यदि तृतीयान्त से युक्त हो तो उस से परे आत्मनेपद हो परन्तु यदि तृतीया चतुर्थी के अर्थ में हो तब । दास्या संयच्छते कामी, कामी दासी को देता है ।

७८५ । पूर्ववत्सनः । १ । ३ । ६२ । सनः पूर्वोयोधातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् । एदिधिषते ॥

सन् प्रत्यय से पूर्व जो धातु जैसा हो उसी के तुल्य सन्नन्त से भी आत्मनेपद ही होता है ।

७८६ । हलन्ताच्च । १ । २ । १० । इक्समीपाद्धल परो झलादि सन् कित् । निविविक्षते ॥

कृञ् के समीप जो हस् जिस से परे (१)झलादि सन् कित् संज्ञक हो । निविविषते ७७१ ७८५ यह प्रवेश करने की इच्छा करता है ।

७८७ । गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः । १ । ३ । ३२ । गन्धनं सूचनम्, उत्कुरुते सूचयतीत्यर्थः । अवक्षेपणं भर्त्सनम्, श्येनो वर्त्तिकामुत्कुरुते । भर्त्सयतीत्यर्थः । हरिमुपकुरुते । सेवत इत्यर्थः । परदारान्प्रकुरुते । तेषु सहसा प्रवर्त्तते । एधोदकस्योपस्कुरुते । गुणमाधत्ते । कथाः प्रकुरुते, कथयतीत्यर्थः । शतं प्रकुरुते । धर्मार्थं विनियुङ्क्ते । एषु किम् । कटं करोति । भुजोऽनवने । ओदनं भुङ्क्ते । अनवने किम् । महीं भुनक्ति ॥ इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ॥

गन्धनादि अर्थों में कृ धातु से आत्मने पद हो । गन्धन चुगली करनी (जैसे) उत्कुरुते यह चुगली करता है । अवक्षेपण भर्त्सन श्येनो वर्त्तिकामुत्कुरुते बाज बटेरी को भय देता है । हरिमुपकुरुते यह हरि की सेवता है । परदारान् प्रकुरुते यह पर स्त्री से बल बलात्कार करता है । (२)एधोदकस्योपस्कुरुते लकड़ी पानी को अपना गुण देती है । कथाः प्रकुरुते यह कथा करता है । शतं प्रकुरुते यह धर्मार्थ सौ रुपया बांटता है । इन्हीं अर्थों में क्यों कहा ? उत्तर देता है कि न कहोगे तो (कटंकरोति) यहां भी आत्मनेपद हो जावेगा । ७१२ को स्मरण कराता है । ओदनं भुङ्क्ते । उस ७१२ सूत्र में "अनवने" क्यों कहा? उत्तर देता है "महीं भुनक्ति" यहां आत्मनेपद न होजावे ॥ आत्मनेपद प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ परस्मैपदम् ॥

परस्मैपद प्रक्रिया का वर्णन ।

७८८ । अनुपराभ्यां कृञः । १ । ३ । ७९ । कर्त्तृगे च फले गन्धनादौ च परस्मैपदं स्यात् । अनुकरोति । पराकरोति ॥

यह क्रियाफल (३) कर्त्तागामि हो तब गन्धनादि ७८७ अर्थों में अनु या परा से परे कृधातु से परस्मैपद हो । अनुकरोति यह नकल करता है । पराकरोति यह निराकरण करता है ।

---

(१) जिस इक् से सन् झलादि होता है । (२) यहां प्रतियत्न का अर्थ गुणग्रहण है ।
(३) कर्त्ता को पहुंचता हो ।

७८९ ॥ अभिप्रत्यतिभ्यः । क्षिपः । १ । ३ । ८० । क्षिप प्रेरणे । स्वरितेत् । अभिक्षिपति ।

अभि, प्रति और अति उपसर्ग से परे जो क्षिप धातु तिस से परस्मैपद होवे । क्षिप्, फेंकना । यह धातु स्वरितेत् है । अभिक्षिपति, वह सब प्रकार से फेंकता है ।

७९० ॥ प्राद्वहः । १ । ३ । ८१ । प्रवहति ।

प्र से परे वह धातु से परस्मैपद हो । नदी प्रवहति, यह नदी वहती है ।

७९१ ॥ परेर्मृषः । १ । ३ । ८२ । परिमृष्यति ।

परिपूर्वक मृष से परस्मैपद होवे । परिमृषति, वह सहता है ।

७९२ ॥ व्याङ्परिभ्यो रमः । १ । ३ । ८३ । रमु क्रीडायाम् विरमति ॥

वि आङ् परि, से परे जो रम् धातु तिस से परस्मैपद प्रत्यय होवें । रमु (रम्) क्रीडा करणी । विरमति, वह निवृत्त होता है ।

७९३ । उपाच्च । १ । ३ । ८४ । यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयतीत्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् । इति पदव्यवस्था ।

उप उपसर्ग पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद होवे । यज्ञदत्तमुपरमति, वह यज्ञदत्त को निवृत्त करता है (१) यहां णि का अर्थ अन्तर्गत है ॥ (२) पदव्यवस्था की प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ भावकर्मप्रक्रिया ॥

भावकर्म प्रक्रिया का वर्णन ।

७९४ । भावकर्मणोः । १ । ३ । १३ । लस्यात्मनेपदम् ॥

भाव (वा) कर्म अर्थ मे लकार के स्थान में धातु से परे आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होवें ॥

७९५ । सार्वधातुके यक् । ३ । १ । ६७ । भावकर्मवाचिनि धातोर्यक् सार्वधातुके । भावः क्रिया सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्मदस्मद्भ्यां सामानाधिकरण्याभावात्प्रथम पुरुष । तिङ्वाच्यक्रियाया

(१) यहां उप पूर्वक रम का निवृत्त होना अर्थ नहीं किन्तु निवृत्त करणा अर्थ है । (२) आत्मनेपद और परस्मैपद इन दोनों की व्यवस्था (रीति) । (३) यहां लकार का अर्थ भाव है और युष्मद् और अस्मद् से कर्त्ता का बोध होताहै, यही एकाधिकरणत्व का अभाव है।

अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि। किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गत। त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे॥

भाव वा कर्म का वाचक सार्वधातुक परे हो तो धातु से यक् प्रत्यय होवे। भाव क्रिया को कहते हैं और वह क्रिया भाव अर्थ के लकार से अनुवाद की जाती है। (१) युष्मद् और अस्मद् के साथ (भाव की) एकाभिधायकता के अभाव से भाव प्रत्ययान्त से प्रथम पुरुष होता है। तिङ् वाच्य क्रिया द्रव्यरूप नहीं है इसी से द्वित्वादिकों की प्रतीति के अभाव से द्विवचन और बहुवचन नहीं होते किन्तु स्वभाव से एकवचन ही किया जाता है। लट् में त्वया मया अन्यैश्च भूयते तुम हम और इतर लोग होते हैं। लिट् में बभूवे ४१८ पर हुआ था।

७८६। स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च। ६। ४। ६२। उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयो स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद्वृद्धि। भाविता। भविता। भाविष्यते। भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भाविषीष्ट। भविषीष्ट।

लकार के भाव वा कर्म में होने पर उपदेश में जो अच् तदन्तों को (उपदेश में अजन्त धातुओं को) और हन ग्रह दृश। इन धातुओं को चिण् प्रत्यय होते जैसे जो कार्य होता है वैसा ही अङ्ग संज्ञा निमित्तक कार्य विकल्प करके हो परन्तु जब स्य सिच् सीयुट् तास् परे हो तब और स्य आदिकों को इट् भी होवे। जिस पक्ष में चिण्वद्भाव कहा है उस पक्ष इट् भी होता है। चिण्वद्भाव के होने से १८५ वृद्धि होती है। लुट् में भाविता भविता लृट् में भाविष्यते भविष्यते। लोट् में भूयताम्। लङ् में अभूयत। आ लिङ् में भाविषीष्ट भविषीष्ट।

७८७। चिण् भावकर्मणो। ३। १। ६६। च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि ते परे। अभावि। अभाविष्यत। अभविष्यत। अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मक। अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयन्ते त्वमनुभूयसे। अन्वनुभूवे। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्। अन्वभविषाताम्। णिलोप। भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। चिण्वदिट्। भाविता। आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोप। भावयिता

भावयिषीष्ट । अभावि । अभावयिषाताम् । अभाविषाताम् । बुभूष्यते । बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता । बुभूषिष्यते । बोभूय्यते । बोभूयिष्यते । अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः । स्तूयते विष्णुः । स्ताविता । स्तोता । स्ताविष्यते । स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम् । अस्तोषाताम् । ऋ गतौ । गुणोऽर्तीति गुणः । अर्यते । स्मृ स्मरणे । स्मर्यते । सस्मरे । उपदेशेऽजन्त-वाच्चिण्वदिट् । आरिता । अर्ता । स्मारिता । स्मर्ता । अनिदितामिति नलोपः । स्रस्यते । इदितस्तु । नन्द्यते । सम्प्रसारणम् । इज्यते ॥

भाव वा कर्म का वाचक 'त' परे हो तब च्लि को चिण् होवे। लुङ् में अभावि ६७७, १८६ लृङ् में अभाविष्यत ७८६ (वा) अभविष्यत । अकर्मक भी उपसर्ग के सयोग से सकर्मक (१) होजाता है । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । (२) चैत्र से तुम से और हम से आनन्द अनुभव किया जाता है। बहुवचन में (३) अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे, तू किसी से अनुभव किया जाता है । अहमनुभूये, मैं अनुभव किया जाता हूं। लुङ् में अन्वभावि, अनुभव किया गया । अन्वभाविषाताम् वा अन्वभविषाताम् । ७८६ वे दो अनुभव किये गये ।

णिजन्त को कर्म में लाने पर ५५७ से णि का लोप हुआ । लट् में भाव्यते वह उस से हो आया जाता है, लिट् में । भावयाञ्चक्रे । भावयाम्बभूवे वा भावयामासे । ७८६ से चिण्वद्भाव और इट् के होने पर भाविता, यहां आभीय (४) होने पर ७८६ को असिद्ध मान कर णि का ५५७ से लोप हुआ है । वा । भावयिता, वह किसी से हो आया जायेगा । आ० लिङ् में भावयिषीष्ट । लुङ् में अभावि अभाविषाताम् । ५५७ (वा) अभावयिषाताम्, किसी से वे दो होआये गए । सन्नन्त में जैसे लट् में (५) बुभूष्यते । लिट् में बुभूषाञ्चक्रे । लुट् में बुभूषिता । लृट् में बुभूषिष्यते । यङन्त से जैसे लुट् में बोभूय्यते । लृट् में बोभूयिष्यते । ५१२ वें से दीर्घ करने पर (६) स्तूयते विष्णुः भक्त से विष्णु स्तुति किया गया । लुट् में स्ताविता ७८६ वा स्तोता । लृट् में स्ताविष्यते ७८६ वा स्तोष्यते । लुङ् में

---

(१) क्योंकि उपसर्गों से धातुओं के अर्थ का परिवर्त्तन हो जाता है, जैसे भू का अर्थ होना है, अनु के लगाने से अनुभव करणा हुआ । (२) किसी पुरुष की सञ्ज्ञा है, (३) बहुते (आनन्द) अनुभव किये जाते हैं और सभ पूर्ववत् । (४) यहां ५८३ के अनुसार, ५५७ की दृष्टि में ७८६ वा असिद्ध है । (५) इन के अर्थ सन्नन्त के समान जैसे, लट् में, उस से होने की इच्छा की जाती है ऐसे और भी जान लेने । (६) यहां । ष्टु (स्तुति करणी) धातु है । "भक्तोविष्णु स्तौति" यह रूप कर्तृवाच्य में है ॥

अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि। किन्त्वेकवचनमेवोत्सर्गतः। त्वया मया अन्यैश्च भूयते। बभूवे॥

भाव या कर्म का वाचक सार्वधातुक परे हो तो धातु से यक् प्रत्यय होवे। भाव क्रिया को कहते हैं और वह क्रिया भाव पक्ष में लकार से अनुवाद की जाती है। (१) युष्मद् और अस्मद् के साथ (भाव को) समानाधिकरणता के अभाव से भाव प्रत्ययान्त से प्रथम पुरुष होता है। सिद्ध वाच्य क्रिया द्रव्यरूप नहीं है इसी से द्वित्वादियों की प्रतीति के अभाव से द्विवचन और बहुवचन नहीं होते किन्तु स्वभाव से एकवचन ही किया जाता है। लट् में त्वया मया अन्यैश्च भूयते तुम हम और इतर लोग होते हैं। लिट् में बभूवे ४१८ वह हुआ था।

७८६। स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च। ६। ४। ६२। उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च। चिण्वद्भावपक्षेऽयमिट्। चिण्वद्भावाद्वृद्धिः। भाविता। भविता। भाविष्यते। भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भाविषीष्ट। भविषीष्ट।

लकार के भाव वा कर्म में होने पर उपदेश में जो अच् तदन्तों को (उपदेश में अजन्त धातुओं को) और हन ग्रह दृश। इन धातुओं को चिण् प्रत्यय होते जैसे जो कार्य होता है वैसा ही यह संज्ञा निमित्तक कार्य विकल्प करके हो परन्तु जब स्य सिच् सीयुट् ताम् परे हो तब और स्य आदिकों को इट् भी होवे। जिस पक्ष में चिण्वद्भाव वहां ही यह इट् भी होता है। चिण्वद्भाव के होने से १८६ वृद्धि होती है। लुट् में भाविता भविता लृट् में भाविष्यते भविष्यते। लोट् में भूयताम्। लङ् में अभूयत। आ लिङ् में भाविषीष्ट भविषीष्ट।

७८७। चिण् भावकर्मणोः। ३। १। ६६। च्लेश्चिण् स्याद्भावकर्मवाचिनि ते परे। अभावि। अभाविष्यत। अभविष्यत। अकर्मकोऽप्युपसर्गवशात्सकर्मकः। अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयन्ते त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम्। अन्वभविषाताम्। णिलोप। भाव्यते। भावयाञ्चक्रे। भावयाम्बभूवे। भावयामासे। चिण्वदिट्। आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोपः। भावयिता

८०२ ॥ विभाषा चिण्णमुलोः । ७ । १ । ६९ । लभेर्नुम् । अलम्भि । अलाभि ॥ इति भावकर्म्मप्रक्रिया ॥

चिण् 'वा' णमुल् परे हो तब लभ धातु को विकल्प करके नुम् आगम होवे । अलम्भि ८२।८३ 'वा' अलाभि, किसी से वह पाया गया ॥ भावकर्म्म प्रक्रिया समाप्त हुई ।

॥ अथ कर्मकर्त्तृप्रक्रिया ॥

॥ अब कर्म (१) कर्त्तृ प्रक्रिया का वर्णन ॥

८०३ ॥ यदा कर्मैव कर्त्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्म्मकाणामप्यकर्मकत्वात्कर्त्तरि भावे च लकारः ॥

जब कर्म को ही कर्त्ता कहने की इच्छा हो तब सकर्मक धातुओं को भी अकर्मक होने से उन से कर्त्ता वा भाव अर्थ से लकार होते हैं ॥

८०४ ॥ कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः । ३ । १ । ८७ । कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवत्स्यात् । कार्यातिदेशोऽयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः । पच्यते फलम् । भिद्यते काष्ठम् । अपाचि । अभेदि । भावे भिद्यते काष्ठेन ॥ इति कर्मकर्त्तृप्रक्रिया ।

कर्म स्थित क्रिया (२) के तुल्य क्रिया (३) वाला कर्त्ता कर्म के तुल्य माना जावे । अर्थात् कर्म के कार्य उस को होवें । यह कार्यातिदेश है । इस लिये यक् ७८५ आत्मनेपद ७८४ च्लि को चिण् ७८७ । और चिण्वद्भाव और इट् ७८६ होते हैं । (४) पच्यते फलम् । फल आप से पकता है । भिद्यते काष्ठम्, लकड़ी आपसे फटती है । लुङ् में अपाचि, अभेदि ७८७ । भाव में, भिद्यते काष्ठेन, लकड़ी आप से फटती है ॥ कर्मकर्तृप्रक्रिया समाप्त हुई ।

॥ अथ लकारार्थः ॥

॥ अब लकारों के अर्थ की प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है ॥

८०५ ॥ अभिज्ञावचने लृट् । ३ । २ । ११२ । स्मृतिबोधिन्युप-

---

(१) जिस में कर्म ही कर्त्ता माना जावे । (२) यहां क्रिया से क्रिया फल दृष्ट है । (३) यहां भी क्रिया फल ही जानना । (४) यहां पक जाना क्रियाफल जैसे कर्तृ प्रत्ययान्त में कर्म में था । वैसे ही कर्मकर्त्ता का भी है । इसी से कर्मस्थ क्रिया के फल के समान कर्मकर्तस्थ क्रियाफल है ॥

अस्तारि ७८० अस्तारिषाताम् । ७८६ वा अस्तोषाताम् । अर जाना लट् में अर्यते ६२० किसी से वह गमन किया गया है। स्मृ स्मरण करना। लट् में स्मर्यते ६२० किसी से वह स्मरण किया गया है। लिट् में सस्मरे ६२१ ॥ ७८६ से सूत्र में उपदेश ग्रहण करने से ७८६ से चिण्वद्भाव और इट् के होने पर लुट् में आरिता वा अर्ता। स्मारिता वा स्मर्ता ६१० से न् लोप के होने पर ध्वंस (नीचे गिरना) का ध्वस हुआ तो लट् में ध्वस्यते। परन्तु इदित् (जिस का (इ) इत् गया हो) धातु जैसे नदि (आनन्दित होना) के तो न् का लोप नहीं होता। लट् में नन्द्यते। यज् का इज्यते यहां ६०८ से सम्प्रसारण होता है।

७९८ ॥ तनोतेर्यकि । ६ । ४ । ४४ । आदन्तादेशो वा । तायते । तन्यते ॥

तनु धातु के नकार को आकार विकल्प से होवे जब उस के परे यक् आवे तब। लट में तायते 'वा' तन्यते उस से वह फैलाया गया ॥

७९९ ॥ तपोऽनुतापे च । ३ । १ । ६५ । तपश्च्लेश्चिण् न स्यात् कर्मकर्तर्यनुतापे च । अन्वतप्त पापेन । घुमास्थेतीत्वम् । दीयते । धीयते । ददे ॥

कर्मकर्तृ में। वा पश्चात्ताप अर्थ में तप धातु को च्लि को चिण् न होवे लुङ् में। अन्वतप्त पापेन पापी ने पश्चात्ताप किया। यह उदाहरण अनुताप में है। ६१९ से ईत्व होने पर (दा) दीयते। (धा) का धीयते। लिट् में ददे वह दिया गया॥

८०० ॥ आतो युक् चिण्कृतोः । ७ । ३ । ३३ । आदन्तानां युगागमः स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । दायिता । दाता । दायिषीष्ट । दासीष्ट । अदायि । अदायिषाताम् । भज्यते ॥

आकारान्त धातुओं को 'युक्' का आगम होवे जब चिण् 'वा' ञित् वा णित् कृत् प्रत्यय परे होवे। लुट् में दायिता ७८६ वा दाता वा लिङ् में दायिषीष्ट 'वा' दासीष्ट लुङ् में अदायि ७८१ अदायिषाताम् वे दो दियेगए। भञ्ज तोड़ना। लट् में भज्यते वह किसी से तोड़ा जाता है॥

८०१ ॥ भञ्जेश्च चिणि । ६ । ४ । ३३ । न लोपो वा । अभाजि । अभञ्जि । लभ्यते ॥

चिण् परे होते भञ्ज धातु के नकार का लोप विकल्प से होवे। लुङ् में अभाजि 'वा' अभञ्जि। लभ् का लभ्यते॥

भृत्यादेः निकृष्टस्य प्रवर्त्तनम्। यजेत। निमन्त्रणं नियोगकरणम्। आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्त्तनम्। इह भुञ्जीत। आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा। इहासीत। अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः। पुत्रमध्यापयेद्भवान्। सम्प्रश्नः सम्प्रधारणम्। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्। प्रार्थनं याच्ञा। भो भोजनं लभेय। एवं लोट्। इति लकारार्थप्रक्रिया॥ तिङन्तप्रक्रिया समाप्ता॥

कार्यकारण भाव के प्रकाश करणे में लिङ् विकल्प करके होवे। जैसे कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात् (वा) कृष्ण नस्यति चेत् सुख यास्यति, यदि श्री कृष्ण जी को प्रणाम करे तो सुख पावे। यह विधि भविष्यत् काल में ही इष्ट है इस से, हन्तीति पलायते, वह मारता है इस लिये दूसरा भागता है यहां नहीं हुआ। (१) ४५३ सूत्र को स्मरण कराता है विधि, प्रेरणा जैसे यजेत, वह पूजा करे। निमन्त्रण में जैसे, (२) इह भुञ्जीत, वह यहां खावे। आमन्त्रण में जैसे इहासीत, आपकी इच्छा होतो यहां बैठें। अधीष्ट में जैसे, पुत्र मध्यापयेद्भवान्, आप पुत्र को पढावें। सम्प्रश्न, किं भो वेद मधीयीय उत तर्कम्, मैं वेद पढु वा न्याय। प्रार्थना में जैसे, भो भोजन लभेय, मुझे भोजन मिलेगा। इन अर्थों में लोट् का प्रयोग भी इसी प्रकार आता है॥ लकारार्थप्रक्रिया समाप्त हुई॥

॥ तिङन्तों की प्रक्रिया समाप्त हुई॥

॥ अथ कृदन्ताः॥

अब कृदन्तों का वर्णन किया जाता है।

८१०॥ धातोः। ३। १। १। आतृतीयान्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। कृदतिङिति कृत्संज्ञा॥

इस सूत्र से तृतीयाध्याय की समाप्ति पर्यन्त जिन प्रत्ययों का प्रसंग है, वे प्रत्यय धातु से परे होवें। ३२४ से इन प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है॥

८११॥ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्। ३। १। ९४। अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्। स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

८१० सूत्र के अधिकार में जो किसी प्रत्यय का असदृश कोई प्रत्यय अपवाद हो तो वह स्त्री के अधिकार वालों को छोड उत्सर्ग (बाध्य) को विकल्प करके बाध ले॥

---

(१) इस सूत्र से भी लिङ् होता है। (२) इनका अर्थ ४५३ सूत्र में लिख दिया है।

परे भूतानद्यतने धातोर्लृट्। लङोऽपवादः। वस निवासे। स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः। एवं 'बुध्यसे' 'चेतयसे' इत्यादि प्रयोगेऽपि॥

जब स्मरण वाचक शब्द धातु के उपपद हो तब अनद्यतन भूत अर्थ में धातु से परे लृट् होवे। यह लङ् का अपवाद है। वस निवास करना। स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः कृष्ण तुम को स्मरण है कि हम गोकुल में निवास करते थे। यहां "अवसाम" के स्थान में "वत्स्यामः" हुआ है। ऐसे बुध्यसे और चेतयसे इत्यादियों के योग में भी जान लेना क्योंकि इनका भी स्मरण अर्थ है॥

८ ६। न यदि। ३। २। ११३। यद्योगे उक्तं न। अभिजानासि यद्वने अभुञ्ज्महि॥

यद् के साथ स्मरण वाचक शब्द हो तो उसके योग में धातु से परे उक्त ८ ५ लृट् न होवे। अभिजानासि यद्वने अभुञ्ज्महि तुम को याद है जो हम ने वन में भोजन किया था॥

८ ७। लट् स्मे। ३। २। ११८। लिटोऽपवादः। यजति स्म युधिष्ठिरः॥

स्म के उपपद होने पर धातु से लट् होवे। यह लिट् का अपवाद है। यजति स्म युधिष्ठिरः राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ किया॥

८ ८। वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा। ३। ३। १३१। वर्त्तमाने ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्त्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्युः। कदा गतोऽसि। अयमागच्छामि। आगमं वा। कदा गमिष्यसि। एष गच्छामि। गमिष्यामि वा॥

वर्त्तमान अर्थ में जो प्रत्यय स्थापन किये जाते हैं वे वर्त्तमान के समीप भूत और भविष्यत् अर्थ में भी होवें। कदागतोऽसि तू कब आया। (इस का उत्तर यह है कि) अयमागच्छामि वा (आगमम्) अभी आया हूं। कदा गमिष्यसि तू कब जावेगा। (इसका उत्तर यह है कि) एष गच्छामि वा गमिष्यामि अभी जाता हूं॥

८ ९। हेतुहेतुमतोर्लिङ्। ३। ३। १५६। वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति। भविष्यत्येवेष्यते। नेह हन्तीति पलायते। विधिनिमन्त्रणेति लिङ्। विधि प्रेरणम्।

भृत्यादेः निकृष्टस्य प्रवर्त्तनम्। यजेत। निमन्त्रणं नियोगकरणम्। आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्त्तनम्। इह भुञ्जीत। आमन्त्रणं कामचारानुज्ञा। इहासीत। अधीष्टः सत्कारपूर्वको व्यापारः। पुत्रमध्यापयेद्भवान्। सम्प्रश्नः सम्प्रधारणम्। किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम्। प्रार्थनं याचना। भो भोजनं लभेय। एवं लोट्। इति लकारार्थप्रक्रिया॥ तिङन्तप्रक्रिया समाप्ता॥

कार्यकारण भाव के प्रकाश करणे में लिङ् विकल्प करके होवे। जैसे कृष्ण नमेच्चेत्सुखं यायात् (वा) कृष्ण नस्यति चेत् सुख दास्यति, यदि श्री कृष्ण जी को प्रणाम करे तो सुख पावे। यह विधि भविष्यत् काल में ही इष्ट है इस से, हन्तीति पलायते, वह मारता है इस लिये दूसरा भागता है यहां नहीं हुआ। (१) ४५२ सूत्र को स्मरण कराता है विधि, प्रेरणा जैसे यजेत, वह पूजा करे। निमन्त्रण में जैसे, (२) इह भुञ्जीत, वह यहां खावे। आमन्त्रण में जैसे इहासीत, आपकी इच्छा होतो यहां बैठें। अधीष्ट में जैसे, पुत्र मध्यापयेद्भवान्, आप पुत्र को पढावें। सम्प्रश्न, कि भो वेद मधीयीय उत तर्कम्, मैं वेद पढु वा न्याय। प्रार्थना में जैसे, भो भोजन लभेय, मुझे भोजन मिलेगा। इन अर्थों में लोट् का प्रयोग भी इसी प्रकार आता है॥ लकारार्थप्रक्रिया समाप्त हुई॥

॥ तिङन्तों की प्रक्रिया समाप्त हुई॥

॥ अथ कृदन्ताः॥

अब कृदन्तों का वर्णन किया जाता है।

८१०॥ धातोः। ३। १। १। आतृतीयान्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः। कृदतिङिति कृत्संज्ञा॥

इस सूत्र से तृतीयाध्याय की समाप्ति पर्यन्त जिन प्रत्ययों का प्रसग है, वे प्रत्यय धातु से परे होवें। ३२४ से इन प्रत्ययों की कृत् सज्ञा होती है॥

८११॥ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्। ३। १। ९४। अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात्। स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

८१० सूत्र के अधिकार में जो किसी प्रत्यय का असदृश कोई प्रत्यय अपवाद हो तो वह स्त्री के अधिकार वालों को छोड उत्सर्ग (बाध्य) को विकल्प करके बाध ले॥

(१) इस सूत्र से भी लिङ् होता है। (२) इनका अर्थ ४५२ सूत्र में लिख दिया है।

८१२ ॥ कृत्या । ३ । १ । ९५ । ण्वुल्तृचावित्यतः प्राक् कृत्य संज्ञाः स्युः ॥

इस सूत्र से लेकर ८२८ सूत्र तक जिन प्रत्ययों का प्रसंग है, वे कृत्य संज्ञक होवें।

८१३ ॥ कर्त्तरि कृत् । ३ । ४ । ६७ । इति प्राप्ते ॥

कृत् १२४ संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में होवें। ऐसा प्रा (प्राप्त) था ॥

८१४ ॥ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः । ३ । ४ । ७० । एते भावकर्मणो रेव स्यु ॥

'कृत्य ८१२ क्त ८४१ और 'खलर्थ में होने वाले जो प्रत्यय ८२० वो भाव और कर्म ही अर्थ में हों ॥

८१५ ॥ तव्यत्तव्यानीयरः । ३ । १ । ९६ । धातोरेते स्युः । एधितव्यम् । एधनीयं त्वया । भावे औत्सर्गिकमेकवचनं क्लीबत्वं च । चेतव्यश्चयनीयो 'वा' धर्मस्त्वया ॥

धातु से 'तव्यत्' 'तव्य' और 'अनीयर्' ये प्रत्यय होते हैं। एधितव्यम् ४१ ४२० 'वा' एधनीयं त्वया — तुझे बढ़ना उचित है। यह भाव में उदाहरण है। इसी लिये स्वाभाविक एकवचन और नपुंसक लिंग हुए हैं क्योंकि भाव में इन दोनों का ही सम्भव है। कर्म में जैसे-'चेतव्य' वा 'चयनीय' ४२० धर्मस्त्वया। तुझ से धर्म एकत्र (इकट्ठा) करना चाहिये ॥

८१६ ॥ केलिमर उपसंख्यानम् । पचेलिमा माषाः । पक्तव्या इत्यर्थः । भिदेलिमा सरला । भेत्तव्या । कर्मणि प्रत्यय ॥

८१५ में-केलिमर् प्रत्यय का भी उपसंख्यान (गणना) कर लेना। पचेलिमा माषा (पकाने योग्य माष)। भिदेलिमा' सरला' — काटने के योग्य "दियार" के वृक्ष। यह कर्म में प्रत्यय है ॥

८१७ ॥ कृत्यल्युटो बहुलम् । ३ । ३ । ११३ । क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ॥ विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥ १ ॥ स्नात्यनेन स्नानीयं चूर्णम् ॥ दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः ॥

कृत्य ८१२ और ल्युट् प्रत्यय अनेक प्रकार से होते है। कहीं इन की विधि सूत्र से बिना प्रवृत्ति, और कहीं सूत्र से विधान के होने पर भी न लगना। और कहीं विकल्प से प्रवृत्ति। और कहीं इन प्रकारों से भिन्न प्रकार से व्यवहार होना। इस से-विधि के विधान को बहुत प्रकार का देख इन के चार भेद कहते हैं। जैसे (१) स्नानीयम् जिस से स्नान किया जावे=बटना आदिक। (२) दानीयः=जिस के तांई दिया जावे=ब्राह्मण॥

८१८॥ अचो यत्। ३। १। २७। चेयम्॥

अजन्त धातु से परे यत् प्रत्यय होवे। (३) चेयम्=इकट्ठा करणे के योग्य॥

८१९॥ ईद्यति। ६। ४। ६५। यति परे आत ईत् स्यात्। देयम्। ग्लेयम्॥

यत् ८१८ प्रत्यय परे होते आकार को ईकार होवे। देयम् ४१४ (दातुं योग्यम्)। ग्लेयम्=ग्लानि के योग्य॥

८२०॥ पोरदुपधात्। ३। १। ९८। पवर्गान्तादटुपधाद्यत्। ण्यतोऽपवादः। शप्यम्। लभ्यम्॥

जिस पवर्गान्त धातु की उपधा अकार हो उसे यत् हो। यह ८२५ का अपवाद है॥ शप्यम्=शप्तुं योग्यम्। (४) लभ्यम्=पाने योग्य॥

८२१॥ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्। ३। १। १०९। एभ्यः क्यप्।

इण्=गति। ष्टु। शास्=शासन करणा। वृ=स्वीकार। दृ=आदर करणा। जुष्=प्रीति। इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय होवे॥

८२२॥ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्। ६। १। ७१। इत्यः। स्तुत्यः। शासु अनुशिष्टौ॥

पित् कृत् प्रत्यय परे होते ह्रस्व को तुक् का आगम होवे। (५) इत्यः=जाने योग्य। स्तुत्यः=स्तोतुं योग्य। शास्=शासन करणा॥

८२३॥ शास इदङ्हलोः। ६। ४। ३४। शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति च। शिष्यः। वृत्यः। आदृत्यः। जुष्यः।

शास् की उपधा को इत् होवे जब अङ् परे हो वा हलादि कित् वा ङित् प्रत्यय

---

(१) यहां स्ना धातु से अनीयर् प्रत्यय करण अर्थ में आया है। (२) यहां डुदाञ् (दा) धातु से अनीयर् प्रत्यय सम्प्रदान में है। (३) चेतु योग्यम्। (४) लब्धु योग्यम्। (५) यहां क्यप् कित् है इसी लिये गुण नहीं हुआ।

परे हो। शिष्य ८२१ सिखलाने के योग्य। वृत्य ८२२—स्वीकार के योग्य। आदृत्य—आदर के योग्य। जुष्य—सेवा के योग्य॥

८२४ ॥ मृजेर्विभाषा। ३। १। ११३। मृजेः क्यप् वा। मृज्य॥

मृज्—(शुद्ध करना) धातु से परे विकल्प करके क्यप् होवे। मृज्य—शुद्ध करने योग्य॥

८२५ ॥ ऋहलोर्ण्यत्। ३। १। १२४। ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च ण्यत्। कार्यम्। हार्यम्। धार्यम्॥

ऋवर्णान्त या हलन्त धातु से ण्यत् प्रत्यय होवे। कृ+ण्यत्=कार्यम् १८५ करने योग्यम्। करने योग्य। हृ+ण्यत् हार्यम् हरने के योग्य। धार्यम्—धारण के योग्य॥

८२६ ॥ चजोः कु घिण्ण्यतोः ७। ३। ५२। चजोः कुत्वं स्याद्घिति ण्यति च॥

च् और ज् को कवर्ग होवे जब (१) घित् या ण्यत् प्रत्यय परे हो तब॥

८२७ ॥ मृजेर्वृद्धिः ७। २। ११४ मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः।

जब सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय परे हो तब मृज् धातु के इक को वृद्धि होवे। मार्ग्य ८२६, ८२५—शुद्ध करने के योग्य॥

८२८ ॥ भोज्यं भक्ष्ये ७। ३। ६९ भोग्यमन्यत्। इति कृत्य प्रक्रिया॥

खाने के योग्य इस अर्थ में भुज् धातु का 'भोज्यम्' ऐसा बनता है और अन्य अर्थ में भोग्यम् ऐसा बनता है। कृत्यप्रक्रिया समाप्त हुई॥

८२९ ॥ ण्वुल्तृचौ ३। १। १३३ धातोरेतौ स्तः कर्तरि कृदिति कर्त्रर्थे॥

धातु से परे ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होवें। ८११ के अनुसार यह प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में होते हैं॥

८३० ॥ युवोरनाकौ ७। १। १। युवु एतयोरनाकौ स्तः। कारकः। कर्त्ता।

'यु' और 'वु' के स्थान में 'अन' और 'अक' आदेश क्रम से होवें। कारक—कृ+८२८ ण्वुल् १८५—करने वाला। कर्त्ता (कृ+तृच्) ३१७—करने वाला॥

८३१ ॥ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३। १। १३४ नन्द्या

(१) जिस का (घ्) इत् गया हो।

देर्ल्युर्ग्रहादेर्णिनिः पचादेरच् । नन्दयतीति नन्दनः । जनार्दनः । लवणः । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । पचादिराकृतिगणोऽयम् ॥

नन्द् आदि धातुओं से ल्यु प्रत्यय होवे और ग्रह् आदि धातुओं से णिनि होवे। और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होवे। नन्दनः (नन्द+ल्यु) ८३० = आनन्द करणे वाला। (१) जनार्दनः (जन, उपपद, अर्द = पीड़ा देनी + ल्यु) = विष्णु। (२) लवणः (लू + ल्यु) = लूण। ग्रह् + णिनिः = (३) ग्राही (गृह्णातीति) ४८३ = लेने वाला। स्थायी (ष्ठा + णिनिः) ८०० = ठहरने वाला। मन्त्री (मत्रि + णिनिः) = मन्त्री। पचादि (४) आकृतिगण है ॥

८३२ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३ । १ । १३५ एभ्यः कः । बुधः । कृशः । ज्ञः । प्रियः । किरः ।

जिन धातुओं की उपधा में इक् (इ, उ, ऋ, लृ) हो उन से और ज्ञा, प्री, कृ, इन धातुओं से क प्रत्यय होवे। बुधः १४८ = पण्डित। कृशः = दुबला। ज्ञः (ज्ञा + कः) १४८, ५१८ = जानने वाला। प्रियः = मित्र। किरः (कृ + कः) १४८, ७०० = फैंकने वाला ॥

८३३ ॥ आतश्चोपसर्गे ३ । १ । १३६ प्रज्ञः । सुग्लः ॥

उपसर्ग उपपद रहे तब आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होवे। प्रज्ञः = पण्डित। (५) सुग्लः = बड़ी ग्लानि करणे वाला ॥

८३४ ॥ गेहे कः ३ । १ । १४४ गेहे कर्त्तरि ग्रहेः कः स्यात् । गृहम् ॥

जब गृह कर्त्ता हो तब ग्रह धातु से 'क' प्रत्यय हो। गृहम् ६६८ (गृह्णाति धान्यादिकमिति) = घर ॥

८३५ ॥ कर्मण्यण् ३ । २ । १ कर्मण्युपपदे धातोरण् । कुम्भं करोति कुम्भकारः ।

जब किसी धातु का उपपद १०१५ कर्म हो तब उस धातु से अण् प्रत्यय होवे। कुम्भकार १०१६, ७६२, १८६ = कुम्हा(म्भा)र ॥

८३६ ॥ आतोऽनुपसर्गे कः ३ । २ । ३ अणोऽपवादः । गोदः । धनदः । कम्बलदः । अनुपसर्गे किम् । गोसम्प्रदायः ।

---

(१) यहां "जनान् अर्दयति" ऐसे विग्रह में १०१६ से समास और ७६२ से विभक्ति का लोप कर लेना। (२) यहां णकार निपात से है। (३) यहां ग्राहिन् शब्द से प्रथमा के एक वचन में १९१, १९३, १९४ इन सूत्रों से ग्राही, की सिद्धि कर लेनी। (४) इनकी स्वरूप से गणना है, सङ्ख्या से नहीं। (५) यहां ग्लै को आकार ५१८ से कर लेना पुनः 'कः' प्रत्यय ॥

जब कोई उपसर्ग उपपद न रहे और कर्म उपपद रहे तब आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होवे। यह ८३६ का अपवाद है। गोदः (गां ददाति) ५१८। धनदः—धन देने वाला। कम्बलदः ११८ (कम्बलं ददाति) इस सूत्र में अनुपसर्गे यह क्यों कहा? उत्तर देता है यदि न कहते तो 'गोसम्प्रदायः' इस उदाहरण में भी 'क' हो जाता अण् न होता।

८३७ ॥ मूलविभुजादिभ्यः कः । मूलानि विभुजति मूलविभुजो रथः । आकृतिगणोऽयम् । महीध्रः । कुध्रः ।

मूलविभुजादियों से 'क' प्रत्यय होता है। जड़ों को जड़ को ठेका करने वाला 'मूलविभुज'—रथ। मूलविभुजादि आकृतिगण है। महीध्र मही धरति।(१) कुध्र—पर्वत॥

८३८ ॥ चरेष्टः ३ । २ । १६ । अधिकरणे उपपदे । कुरुचरः ॥

जब अधिकरण उपपद हो तब 'चर' धातु से 'ट' प्रत्यय हो। कुरुचर (कुरुषु चरति) १ १६ ७१२ कुरु देश में जाने वाला। स्त्री को 'कुरुचरी' कहते हैं॥

८३९ ॥ भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७ भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायेति ल्यबन्तम् । आदायचरः ॥

'भिक्षा' वा 'सेना' वा 'आदाय' उपपद हो तो चर धातु से 'ट' प्रत्यय होवे। भिक्षाचर १ १६ ७१२—भिखारी। सेनाचर—जो सेना को जावे। 'आदाय' इस के अन्त में ८११ से ल्यप् होता है। आदायचरः—लेकर जाने वाला॥

८४० ॥ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३ । २ । २० एषु द्योत्येषु करोतेष्टः ॥

हेतु (कारण) वा 'ताच्छील्य' वा 'अनुकूलता' प्रकाश करनी हो तो 'कृ' धातु से 'ट' प्रत्यय होवे॥

८४१ ॥ अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८ । ३ । ४६ । आदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः करोत्यादिषु परेषु । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः ॥

कृ कमि कंस कुम्भ पात्र कुशा कर्णी इन में से यदि कोई शब्द परे हो तो तब

---

(१) यहां कु उपपद धृ धातु से क प्रत्यय और १८ से यण् हुआ।

अकार के उत्तर (१) अनव्यय की विसर्ग को स् आदेश नित्य होवे समास में। यशस्करी ८४०, १०१६, ७६२, १३३७ यश देने वाली (विद्या)। श्राद्धकर: = जिस का स्वभाव श्राद्ध करने का है। वचनकर: = आज्ञाकारी ॥

८४२ ॥ एजे: खश् । ३ । २ । २८ । ण्यन्तादेजेः खश् ॥

ण्यन्त ७४२ एज (कम्पना) धातु से 'खश्' प्रत्यय होवे ॥

८४३ ॥ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् । ६ । ३ । ६७ । अरुषोद्विषतोऽजन्तस्य च मुमागमः खिदन्ते परे नत्वव्ययस्य । शित्वाच्छबादि । जनमेजयति । जनमेजयः ॥

खिदन्त (२) परे हो तो अरुष् (मर्म), द्विषत् (शत्रु), और अजन्त, इन को मुम् का आगम होवे परन्तु यदि अव्यय उपपद हो तो नहीं होता। खश् शित् है इस लिये शप् ४१२ आदिक होते हैं। जनमेजयः (३) १०१६, ७६२ = मनुष्य को कम्पाने वाला ॥

८४४ ॥ प्रियवशे वदः खच् । ३ । २ । ३८ । प्रियंवदः वशंवदः ।

'प्रिय' वा 'वश' उपपद हो तो 'वद' धातु से 'खच्' प्रत्यय होवे। प्रियंवदः प्रियं वदति ८४३ मीठा बोलने वाला। वशंवदः = अधीनता को मानने वाला ॥

८४५ ॥ आत्ममाने खश्च । ३ । २ । ८३ । स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यते सुपि खश् स्याच्चाण्णिनिः । पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितंमन्यः । पण्डितमानी ॥

सुबन्त के उपपद होते, 'स्वकर्मक मानने अर्थ मे वर्त्तमान' जो 'मन्' धातु उस से 'खश्' प्रत्यय होवे। सूत्रस्थ चकार से णिनिः प्रत्यय भी इसी अर्थ में हो। पण्डित मन्यः ८४३, ६६३ वा पण्डितमानी = अपने को पण्डित मानने वाला ॥

८४६ ॥ अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते । ३ । २ । ७५ । मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः ॥

मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, और विच्, ये प्रत्यय और (४) धातुओं से भी दीख पड़ते हैं।

८४७ ॥ नेड्वशि कृति । ७ । २ । ८ । वशादेः कृत इट् न शृ हिंसायाम् । सुशर्मा । प्रातरित्वा ॥

(१) यदि वह विसर्ग किसी अव्यय का अवयव न हो, इस विशेषण के देने से 'स्व' करोति' में "स्" न हुआ। (२) खित् (ख् जिस का इत् हो) प्रत्यय जिस के अन्त में हो। (३) किसी राजा का नाम है। (४) आकारान्त को छोड़।

(१) वलादि वन् प्रत्यय को इट् ४२० आगम न हो। सृ (सरकना)। सुसृ+मनिन् (सुसर्मा) = अच्छी रीति से पाप का नाशक। मातरिश्वा (मातृ+श्वि = जाना+कनिप्) ८२१ मात·आकाश में जाने वाला॥

८४८॥ विड्वनोरनुनासिकस्यात् ।६।४।४१। अनुनासिकस्यात्स्यात्। विजायते इति विजावा। ओणृ अपनयने। अवावा। विच्। रुष् रिष् हिंसायाम्। रोट्। रेट्। सुगण्॥

जब विट् 'वा' वन् ८४५ प्रत्यय परे रहे तब अनुनासिक के स्थान में आकार होवे। (वि-जन्+वन्) = विजावन् १८१। १८२। १८४ = विजावा) जो विशेष से उत्पन्न हो। अवावा (ओणृ = दूर करना+वन्) = अवावन् १८२। १८१। १८४ = अवावा = घर का काम न करने वाली आलसी। रुष् रिष् (हिंसा करना) इन से विच् प्रत्यय आता तो। रुष+विच् (रोट् ४०८, ७८, १९८) हिंसा करने वाला। ऐसे रेट्। सुगण् (सुष्ठु गणयति) अच्छी रीति से गिनने वाला॥

८४९ ॥ क्विप् च ।३।२।७६। अयमपि दृश्यते। उखास्रत्। पर्णध्वत्। वाहभ्रट्॥

धातु से परे क्विप् प्रत्यय ठीक पड़ता है। उखास्रत् (उखा-स्रंस्+क्विप्) ११०, १ १९८, ११ १२१, २८२ उखास्रत् = उखा से गिरने वाला। पर्णध्वत् (पर्णेभ्यो ध्वंसते) ११०, २८२, वाहभ्रट् (वाह-भ्रंश्+क्विप्) ११०, १२८। घोड़े से गिरने वाला॥

८५० ॥ सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ।३।२।७८। अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिस्ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोजी॥

शील (स्वभाव) प्रकाश करने अर्थ में अजात्यर्थ सुबन्त के उपपद होते धातु से 'णिनि' प्रत्यय होवे। उष्णभोजी = गरम भोजन करना है स्वभाव जिस का॥

८५१ ॥ मनः ।३।२।८२। सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीयमानी॥

सुबन्त के उपपद रहते 'मन्' धातु से 'णिनि' प्रत्यय हो। दर्शनीयमानी दर्शनीयमात्मानं मन्यते॥

८५२ ॥ खित्यनव्ययस्य ।६।३।६६। पूर्वपदस्य ह्रस्वः। कालिमन्या॥

---

(१) वन् प्रत्ययान्तर्गत कोई वर्ण है आदि में जिस के॥

ख्शित् प्रत्यय परे हो तो धातु के पूर्वपद (उपपद) को ह्रस्व होय परन्तु यदि यह प्रत्यय न हो तब। कालिमन्या ८४५, ८४३ जो अपने को काली मानती है ॥

८५३ ॥ करणे यजः । ३ । २ । ८५ । करणे उपपदे भूतार्थयजेर्णिनिः कर्त्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ॥

करण (तृतीयान्त) के उपपद रहते भूत काल में यज् धातु से कर्त्ता अर्थ में णिनि प्रत्यय हो। सोमयाजी ४८३, १९१, १९३, १९४ = जिस ने सोम करके यज्ञ किया। अग्निष्टोमयाजी = जिस ने अग्निष्टोम करके अपने इष्ट की पूजा (भावना) की।

८५४ ॥ दृशेः क्वनिप् । ३ । २ । ९४ । कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान् पारदृश्वा ॥

कर्म के उपपद होते भूत अर्थ में दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होवे। पारदृश्वा १९१, १९३, १९४ पार देखने वाला ॥

८५५ ॥ राजनि युधि कृञः । ३ । २ । ९५ । क्वनिप् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान् । राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥

राजन् शब्द उपपद रहे तो युध्, और कृञ् धातु से परे 'क्वनिप्' प्रत्यय होवे। यहां युध् में णिजर्थ (प्रेरणा) अन्तर्भूत है। राजयुध्वा = राजा को लड़वाने वाला। राजकृत्वा = राजा को करने वाला ॥

८५६ ॥ सहे च । ३ । २ । ९६ । सह योधितवान् सहयुध्वा । सहकृत्वा ।

जब 'सह' (साथ) उपपद हो तब भी युध् और कृ धातु से परे 'क्वनिप्' प्रत्यय होवे। सहयुध्वा। सहकृत्वा ८२२ = सहायता करने वाला ॥

८५७ । सप्तम्यां जनेर्डः । ३ । २ । ९७ ॥

सप्तम्यन्त उपपद हो तो जन् धातु से परे 'ड' प्रत्यय हो ॥

८५८ ॥ तत्पुरुषे कृति बहुलम् । ६ । ३ । १४ । ङेरलुक् । सरसिजम् । सरोजम् ॥

तत्पुरुष समास में कृत् प्रत्ययान्त उत्तरपद रहे तो सप्तमी का लुक् न होवे। ८१७, सरसिजम् २६२ 'वा' सरोजम् = कमल । ॥

८५९ ॥ उपसर्गे च सञ्ज्ञायाम् । ३ । २ । ९९ । प्रजा स्यात्सन्ततौ जने ॥

उपसर्ग के उपपद होते भी जन् धातु से परे 'ड' प्रत्यय होवे। परन्तु यदि ड प्रत्ययान्त किसी की संज्ञा हो तब। प्रजा, १२३५ = सन्तान या प्रजा लोग ॥

८९० ॥ क्तक्तवतू निष्ठा । १ । १ । २६ । एतौ निष्ठासंज्ञौ स्तः ॥

'क्त' और क्तवतु इन दो प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होवे ॥

८९१ ॥ निष्ठा । ३ । २ । १०२ । भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा । तत्र तयोरेवेति भावकर्मणोः क्तः । कर्तरि कृदिति कर्तरि क्तवतुः । स्नातं मया स्तुतस्त्वया विष्णु । विश्वं कृतवान् विष्णु ॥

भूत अर्थ में धातु से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्यय होवें । तिन में से क्त ८१४ के अनुसार भाव और कर्म अर्थ में आता है और क्तवतु ८१३ के अनुसार कर्ता अर्थ में ही आता है । 'स्नातं मया' मैंने स्नान किया । 'स्तुतस्त्वया विष्णु' तुम से विष्णु स्तुति किया गया । "विश्वं कृतवान् विष्णु" परमेश्वर ने संसार को रचा ॥

८९२ ॥ रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः । ८ । २ । ४२ । रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नो निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च । शॄ हिंसायाम् । शीर्णः । भिन्न । छिन्नः ॥

'र् और द्' इन से परे जो निष्ठा ८९० उस के 'त्' को और निष्ठा से पूर्व जो धातु तिस के 'द्' को भी 'न्' होवे । शॄ (मारना) शीर्ण ० । ६०१ = मारा गया । भिन्न' (भिद्+क्त) भमेदि । छिन्न' (छिद्+क्त) = जो काटा गया ॥

८९३ ॥ संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः । ८ । २ । ४३ । निष्ठातस्य न स्यात् । द्राण । ग्लानः ॥

संयोगादि (संयोग है आदि जिस के) और आकारान्त जो धातु यण् वाला हो तो उस से परे निष्ठा ८९ के त् को न् होवे । द्राण (द्रै+क्त) ६२१ ८९३ जिस ने कुत्सित गति की । ग्लान (ग्लै+क्त) ६२१ जिस ने ग्लानि की ॥

८९४ ॥ ल्वादिभ्य । ८ । २ । ४४ । एकविंशतेर्लूञादिभ्य प्राग्वत् लूनः । ज्या धातुः । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् ॥

लू आदि इक्कीस ४१ धातु ०९ ओं से परे निष्ठा को ८९२ की विधि होवे । लून' (जो काटा गया) । ज्या (बूढा होना) यहां ६६८ से सम्प्रसारण कर लेना ॥

८९५ ॥ हलः । ६ । ४ । २ । अङ्गावयवाद्धलः परं यत्सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः । जीन ।

अङ्ग का अवयव जो हल् तिस से परे जो सम्प्रसारण ७०६ तदन्त को दीर्घ हो । जीन' (ज्या+क्त) ८९४ = बूढा हो गया ॥

८६६ ॥ ओदितश्च । ८ । २ । ४५ । भुजो, भुग्नः । टुओश्वि उच्छूनः-
जिस धातु का ओकार इत् हो उस से परे निष्ठा के "त्" को "न्" हो । भुजो (टेढा होना)-।-क्तः । भुग्न =टेढा किया गया । टुओश्वि (गति 'वा' बढना) उत्-।-श्वि-।-क्तः (उच्छूनः) ८८० फूला ॥

८६७ ॥ शुषः कः । ८ । २ । ५१ । निष्ठातस्य । शुष्कः ॥
शुष् धातु से निष्ठा के त् को क् होवे । शुष्कः =सूखा ॥

८६८ ॥ पचोवः । ८ । २ । ५२ । पक्वः । क्षै हर्षक्षये ॥
पच् धातु से निष्ठा के 'त्' को 'व्' होवे । पक्वः =पका । क्षै =हर्ष का क्षय होना ।

८६९ ॥ क्षायोमः । ८ । २ । ५३ । क्षामः ॥
क्षै धातु से परे निष्ठा के 'त्' को 'म्' होवे । क्षामः ५२२ =क्षय ॥

८७० ॥ निष्ठायां सेटि । ६ । ४ । ५२ । णेर्लोपः । भावितः । भावितवान् । दृह हिंसायाम् ॥
जब सेट् (१) निष्ठा परे हो तो णि का लोप होवे । भावितः =होने को प्रेरणा किया गया । (२) भावितवान् । दृह् हिंसा करणी ॥

८७१ ॥ दृढः स्थूलबलयोः । ७ । २ । २० । स्थूले बलवति च निपात्यते ॥
दृह धातु का निष्ठा में स्थूल और बलवाला अर्थ में "दृढ" ऐसा निपात से रूप होताहै ।

८७२ ॥ दधातेर्हिः । ७ । ४ । ४२ । तादौ किति । हितम् ।
त् है आदि में जिस के ऐसे कित् प्रत्यय के परे होते धा (धारण करना) धातु को हि आदेश होता है । हितम् (डुधाञ्-।-क्त) धारण किया गया ॥

८७३ ॥ दोदद्घोः । ७ । ४ । ४६ । घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दथ् तादौ किति । चर्त्वम् । दत्तः ॥
तादि कित् प्रत्यय परे हो तो घु ६५६ संज्ञा वाले दा को दथ् आदेश होवे ८७ से थ् को त् किया तो, दत्त =दिया गया ॥

८७४ ॥ लिटः कानज्वा । ३ । २ । १०६ ।

८७५ ॥ क्वसुश्च ३ । २ । १०७ । लिटः कानच्क्वसू वा स्तः । छन्दसि आत्मनेपदम् । चक्राणः ॥

---

(१) इट् सहित । (२)भू-। णि-।-क्तवतु (भावितवत्) पुनः ३३५,३११, २३ लगाने ।

लिट् के स्थान में 'कानच्' और 'क्वसु' विकल्प करके होते हैं। ८ १ में कानच् को आत्मनेपद संज्ञा है। इस से आत्मनेपदी धातुओं से ही होगा। चक्राण ४२ ५०२, ४२२, ४८२ १८ १११ — जिस ने किया था॥

८७६ ॥ म्वोश्च । ८ । २ । ६५ । मान्तस्य धातोर्मस्य म्वोः परतः । जगन्वान् ॥

म् वा व् परे हो तो मान्त धातु को न् होवे। (गम्+क्वसु) — जगन्वस् (१) पुनः ११५, २११ २१ — जगन्वान् (जाचुका)॥

८७७ ॥ लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे। ३ । २ । १२४ । अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्तः। पचादिः । पचन्तं चैत्रं पश्य ॥

जब अप्रथमान्त के साथ लट् का समानाधिकरण (एक पद) हो तब लट् के स्थान में 'शतृ और 'शानच् प्रत्यय विकल्प से होवें। ये दोनों शित् हैं इस हेतु से शप् ४१२ आदि प्रत्यय होवें। (२) पचन्तं चैत्रं पश्य (दूसरे के लिये पकाते चैत्र को देख)॥

८७८ ॥ आने मुक् । ७ । २ । ८२ ॥ अदन्ताङ्गस्य । पचमानं चैत्रं पश्य । लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात्प्रथमासामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । सन् द्विजः ॥

आन के परे होते अदन्त अङ्ग को मुक् का आगम होवे। पचमानं चैत्रं पश्य — अपने लिये पकाते चैत्र को देखो। ८७७ में १ से लट् की अनुवृत्ति हो सकती थी पुनः यहां ८७७ में लट् के ग्रहण से यह सिद्ध हुआ कि कभी २ प्रथमासामानाधिकरण्य में भी लट् के स्थान में शतृ शानच् हों। जैसे सन् ६ ५, २११ २१ द्विज — विद्यमान ब्राह्मण॥

८७९ ॥ विदेः शतुर्वसुः । ७ । १ । ३६ । वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा । विदन् । विद्वान् ॥

विद् धातु से परे शतृ को वसु आदेश विकल्प करके होवे। विदन् (विद्+शत) २११ । २१ (वा) विद्वान् (विद्+वसु) २११ । २१ । पण्डित॥

८८० ॥ तौ सत् । ३ । २ । १२७ । तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः ।

शतृ और शानच् की सत् संज्ञा होवे॥

---

(१) यहां भी विस्वादि कर लेने। (२) यहां लट् कर्ता में है और उस का वाचक द्वितीयान्त है॥

८८१ ॥ लृटः सद्वा । ३ । ३ । १४ । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य ॥

लृट् के स्थान में सत् संज्ञक प्रत्यय विकल्प से होवे। करिष्यन्त करिष्यमाण ४२९ पश्य = उस को देखो जो करने को है ॥

८८२ ॥ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु । ३ । २ । १३४ । क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ॥

इस सूत्र से लेकर ८८७ तक जितने प्रत्यय उच्चारित होंगे वे उन कर्त्ताओं में हों, जिन में किसी प्रकार का स्वभाव 'वा' वैसा धर्म 'वा' किसी क्रिया की सुन्दरता प्रकाश करनी हो तो ॥

८८३ ॥ तृन् । ३ । २ । १३५ । कर्त्ता कटान् ।

तच्छीलादि अर्थों में धातु से परे 'तृन्' प्रत्यय होवे । 'कर्त्ता (१) कटान्' ॥

८८४ ॥ जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन् । ३ । २ । १५५ ॥

जल्प् = बड २ करना । भिक्ष् = मागना । कुट्ट् = कूटना । लुण्ठ् = लूटना । वृङ् = सेवना । इन धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में 'षाकन्' प्रत्यय होवे ॥

८८५ ॥ षः प्रत्ययस्य । १ । ३ । ६ । प्रत्ययस्यादिः ष इत्संज्ञः स्यात् ॥

प्रत्यय के आदि का ष् इत् संज्ञा वाला होवे । जल्पाकः = बकवासी । वराकः = विचारा, कंगाल ॥

८८६ ॥ सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ । चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ।

सन्नन्त ७४६ से और आङ्पूर्वक शस् धातु से और भिक्ष् धातु से परे तच्छील आदि अर्थों में "उ" प्रत्यय होवे । (२) चिकीर्षुः = करने की इच्छा के स्वभाव वाला । आशंसुः = स्तुति करने वाला । भिक्षुः = भीख मांगने के स्वभाव वाला ।

८८७ ॥ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप् । ३ । २ । १७७ । विभ्राट् । भाः ॥

भ्राज्, भास्, (३) धुर्व्, द्युत्, ऊर्ज्, पॄ, जु, और ग्रावन् पूर्वक ष्टु धातु इन से परे तच्छीलादि अर्थों में क्विप् प्रत्यय होवे। विभ्राट् ३२८ प्रकाशने वाला । भाः = दीप्ति ।

८८८ ॥ राल्लोपः । ६ । ४ । २१ । रेफाच्छ्वोर्लोपः क्वौ झलादौ

(१) जिस का चटाई बनाने का स्वभाव हो । (२) ७५० को देखो (३) हिंसा करनी ।

क्ङिति च ॥ धूः । विद्युत् । ऊर्णा । मूः । इत्यिमकवस्थापयमर्षाञ्जवते दीर्घं । जूः । ग्रावस्तुत् ।

रेफ से परे जो छ् वा) व् तिस का लोप होवे परन्तु जब क्वि प्रत्यय हो (वा) झलादि कित् (वा) ङित् प्रत्यय परे हो । ऊर्णं का रूप ऊ' ४४५ — मार । विद्युत् — बिजुली । मूः — एक मात्रा । पू — भगटी । ८४५ में से 'इद्यन्ते' इस पद की अनुवर्तन से 'जु' धातु को दीर्घ (१) होता है । जू — वेगवान् । ग्रावस्तुत् (२) ॥

८८८ ॥ क्विब् वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च । वक्तीति वाक् ॥

वच् प्रच्छ आयत-पूर्वक 'ष्टु' धातु और कटपु, जु श्रि इन धातुओं से परे क्विप् प्रत्यय होय और इन को दीर्घ होवे । और सम्प्रसारण ५५८, ५०८ न होवे । वाक् — वाणी ।

८८९ ॥ च्छ्वोः शूडनुनासिके च । ६ । ४ । १९ । सतुकस्य छस्य वस्य च क्रमात् श् ऊठ् एतावादेशौ स्तः अनुनासिकादौ झलादौ क्ङिति च । पृच्छतीति प्राट् । आयतं स्तौति आयतस्तूः । कटं प्रवते कटप्रूः । जूः । श्रयति हरिं श्रीः ॥

तुक के सहित छ् का और व् को क्रम से श् और ऊठ् आदेश हों कि (वा) अनुनासिकादि प्रत्यय (वा) झलादि कित् ङित् प्रत्यय जब परे रहे तब । प्राट् (पूछनेवाला) ३१८ पूछने वाला । आयतस्तू — लम्बी स्तुति करने वाला । कटप्रू — कीड़ा । जू' ८८८ में आ दिया है । श्री — लक्ष्मी ॥

८९१ ॥ दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे । ३ । २ । १८२ । दाबादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे । दात्यनेन दात्रम् ॥

दाप् काटना । णीञ् । शसु मारना । यु । युज् । ष्टु । तुद । षिञ् बान्धना । षिचिर् — सिंचना । मिह मूतना । पत् गिरना । दश् दान्तों से काटना । और णह् बान्धना । इन धातुओं से परे करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय प्रत्यय होवे । दात्रम् ८८६ जिस से काटें दाती ॥

८९२ ॥ तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च । ७ । २ । ९ । एषां इडागमो

(१) यह दीर्घ महाभाष्य के मत से है । (२) यहां ८९९ से तुक कर लेना । पत्थर की स्तुति करने वाला ।

सिङ न। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्त्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्त्रम्। दंष्ट्रा। नद्धी॥

ति (क्तिन्, क्तिच्) तुन्, ष्ट्रन्, तन्, क्थन्, क्सि, सुच्, सरन्, कन्, और स इन दश १० प्रत्ययों को इट् न होवे। शस्त्रम् ८८१, ८८५ योत्रम् यु+ष्ट्रन्=जूले की रस्सी। योक्त्रम् (जूला) स्तोत्रम् (ष्टु+ष्ट्रन्) तोत्त्रम्, कोटला। सेत्रम् (बन्धन, सेक्त्रम्=सिच्+ष्ट्रन् छिनकाव का पात्र। मेढ्रम्। (लिङ्ग) (मिह्+ष्ट्रन्) पत्त्रम् (वाहन) दंष्ट्रा (दाढ) नद्धी (नह्+ष्ट्रन्) ३८३, ५८०, १३, ४२ चाम की रस्सी।

८९३॥ अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः। ३। २। १८४। अरित्रम्। लवित्रम्। धवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्॥

ऋ, लू, धू, सू, खन्, षह्, सहना और चर् इन धातुओं से परे (१) "इत्र" प्रत्यय होवे अरित्रम् ४१४=लवित्रम् ४३०, ४१४ दाती। धवित्रम्, पखा। सवित्रम्, उत्पत्ति हेतु। खनित्रम्=कही। सहित्रम्, धीरज। चरित्रम्, चरित्र।

८९४॥ पुवः संज्ञायाम्। ३। २। १८५। पवित्रम्॥

संज्ञा अर्थ में 'पूञ्' धातु से 'इत्र' प्रत्यय हो पवित्रम् ४१४, २६॥

॥ अथोणादयः ॥

अब उणादियों का वर्णन।

८९५॥ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्॥ करोतीति कारुः। वायुः। पायुर्गुदम्। जायुरौषधम्। मायुः पित्तम्। स्वादुः। साध्नोति परकार्यमिति साधुः। आशु शीघ्रम्॥

कृ, वा, पा, जि, मि=फैंकना। स्वद्, स्वादलेना। साध्, और अशू, व्याप्त होना। इन धातुओं से परे 'उण्' प्रत्यय होवे। कारु १९६ शिल्पी। वायुः (वातीति) ८००। पायुः पिबति तैलादिकं अनेनेति) ८००=गुदास्थान। जायुः (जयति रोगान्) ८०० औषध। मायुः (मिनोति देहे उष्माणमिति) पित्त। स्वादु (स्वदते) मीठा। साधु भला मनुष्य (वा) जीव। आशु ४८३ (अश्नुते) शीघ्र यह अव्यय है।

८९६॥ उणादयो बहुलम्। ३। ३। १। एते वर्त्तमाने संज्ञायां च

---

(१) इत्र में इकार इसलिये पढा है कि अरित्र आदिकों में इकार का श्रवण हो। नहीं तो जो ४२७ से इट् पाया उस का ८९२ से निषेध हो जाता है।

बहुलं स्युः। केचिदविहिता अप्यूह्याः॥ संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे॥ कार्याद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु॥ १॥

वर्त्तमान काल में और संज्ञा अर्थ में इन 'उणादि' प्रत्ययों का अनेक प्रकार से व्यवहार होता है। कहीं पर किसी उणादि सूत्र से अविहित भी प्रत्यय जानने। उणादियों में यह (१) विधि है कि शास्त्र में जो किसी की संज्ञाएं (नामक शब्द) हैं उन में धातु और प्रत्यय ऐसे तर्क करने कि उन से हो सकें। और गुणादि कार्यों से उन प्रत्ययों के अनुबन्ध कल्पना करने।

८९७॥ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्। ३। ३। १० क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यदर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति।

क्रियार्थ (क्रिया है प्रयोजन जिस का) क्रिया उपपद रहे तब भविष्यत् अर्थ में धातु से परे तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होवें। मान्त होने से १८१ के अनुसार तुमुन्नन्त की अव्यय संज्ञा है। कृष्णं द्रष्टुं (दृश्+तुमुन्) याति वा कृष्णं दर्शको ४०८ याति वह कृष्ण के देखने को जाता है।

८९८॥ कालसमयवेलासु तुमुन्। ८। ३। १६७। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

कालवाचक शब्दों में से कोई उपपद हो तो धातु से परे 'तुमुन्' प्रत्यय होवे। कालो भोक्तुम् ४। ३ ४०८, ११८ भोजन करने का काल 'अनेहा भोक्तुम्' इत्यादि भी जान लेने।

८९९॥ भावे ३। ३। १८ सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ्। भावः।

धातु का अर्थ जब सिद्धावस्था को प्राप्त हो तब उस धातु से घञ् प्रत्यय होवे। भाव ४८२ ८३६।

९००॥ अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ३। ३। १९ कर्तृभिन्ने कारके घञ्।

संज्ञा में कर्त्ता से भिन्न कारक में धातु से परे घञ् होवे।

---

(१) यह विधि उन में है जो किसी प्रकार से बनाये जावें जैसे। "डित्थ" किसी की संज्ञा है और बिना उणादियों के बनाया नहीं जाता। तो इस में "डी" धातु से परे "थ" प्रत्यय कल्पना किया और गुणाभावार्थ प्रत्यय को डित् माना॥

९०१ ॥ घञि च भावकरणयोः ६ । ४ । २७ रञ्जेर्नलोपः स्यात्। राग. अनयो.किम्। रज्यत्यस्मिन्निति रङ्ग·।

जब रञ्ज् धातु से परे भाव (वा) करण अर्थ मे घञ् हो तो इस के न का लोप हो। राग. ४८३, ८२६ = रङ्गने का साधन आदि। इस सूत्र में "भावकरणयो." यह क्यों कहा? उत्तर देता है। रङ्गः (नाट्यशाला) इस मे न् का लोप न हो जावे।

९०२ ॥ निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३ । ३ । ४१ एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च कः। उपसमाधान राशीकरणम्। निकायः। काय·। गोमयनिकाय.।

निवास, चिति, शरीर और उपसमाधान (राशिकरना) इन अर्थों में चि धातु से परे घञ् प्रत्यय होवे और आदि के च् को क् होवे। निकायः, निवास। कायः, १९६, २६ शरीर। गोमयनिकाय', गोबर की ढेरी ॥

९०३ ॥ एरच् ३ । ३ । ५६ इवर्णान्तात्। चयः। जय.।

इवर्णान्त धातु से परे अच् प्रत्यय हो। चयः, समूह। जय ४१४। २६ जय

९०४ ॥ ऋदोरप् ३। ३ । ५७। ऋवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाप्। करः गरः। यव । स्तव.। लव.। पव·।

ऋकारान्त (वा) उकारान्त धातु से परे 'अप्' प्रत्यय होवे। कर (कॄ+अप्) छिडकना। गर. (गॄ+अप्) विष। यव. (यु+अप्) ४१४ २६ जोडना। स्तव. = स्तुति। लव. (लू+अप्) ४१४ । २६ काटना। पव (पू+अप्) पवित्र करना ॥

९०५ ॥ घञर्थे कविधानम्। प्रस्थ.। विघ्न ।

घञ् के अर्थ मे 'क' प्रत्यय भी होवे। प्रस्थः ५१८ मापविशेष। विघ्न ५३४, ३०९ विघ्न

९०६ ॥ ड्वित क्त्रिः ३ । ३ । ८८ ।

जिस धातु का डु इत् हो उस से परे "क्त्रि" प्रत्यय होवे।।

९०७ ॥ क्त्रेर्मम्नित्यम्। क्त्रिप्रत्ययान्तात् मप्निर्वृत्तेऽर्थे । पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। डुवप्। उप्त्रिमम्।

क्त्रि प्रत्ययान्त से परे निर्वृत्त (सिद्ध) अर्थ में मप् प्रत्यय होवे। पक्त्रिमम् = पाक से सिद्ध हुआ। डुवप् (बोना) उप्त्रिमम् = ५७८ बोने से जो सिद्ध हुआ ॥

९०८ ॥ ट्वितोऽथुच् ३ । ३ । ८९ । टुवेपृ कम्पने। वेपथु ॥

जिस धातु का (टु) इत् गया हो तिस धातु से परे "अथुच्" प्रत्यय होवे। टुवेपृ (कांपना) वेपथुः कम्प॥

८०९ ॥ यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३। ३। ९० यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः॥

यज्–देवपूजा याच्–मांगना यत्–यत्न करना विछ्–गति प्रच्छ–पूछना और रक्ष्–रक्षा करना इन धातुओं से परे 'नङ्' प्रत्यय होवे। यज्ञ ७१ यज्ञ। याच्ञा–मांगना। यत्न–उद्यम। विश्न ८८ ७४ प्रताप। प्रश्न ८८ ७४ प्रश्न। रक्ष्ण ७१ रक्षा।

८१० ॥ स्वपो नन् ३। ३। ९१ स्वप्नः।

स्वप् (शिञ्चय) धातु से परे नन् प्रत्यय होवे। स्वप्न–निद्रा।

८११ ॥ उपसर्गे घोः किः ३। ३। ९२ प्रधिः। उपधिः।

उपसर्ग पूर्वक घु ६५६ संज्ञक धातु से परे 'कि' प्रत्यय होवे। प्रधि (प्र धा+कि ५१८)–चक्र की धारा। उपधि ५१८–छल॥

८१२ ॥ स्त्रियां क्तिन् ३। ३। ९४ स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन्। घञो ऽपवादः। कृतिः स्तुतिः॥

स्त्रीलिङ्ग में भाव को प्रकाश करना हो तो धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होवे। यह ७८८ का अपवाद है। कृति। स्तुति॥

८१३ ॥ ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः। तेन नत्वम्। कीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः॥

ऋकारान्त धातुओं से परे और लू आदि ७१ धातुओं से परे क्तिन् का निष्ठा ७६ के समान व्यवहार जानना। कीर्णि (कृ क्तिन्) ७ । ६०१। ७८२। लूनि ७६४। धूनि ७६४ पूनि ७६४–पवित्रता॥

८१४ ॥ सम्पदादिभ्यः क्विप्। सम्पत्। विपत्। आपत्। क्तिन्नपीष्यते। सम्पत्तिः। विपत्तिः। आपत्तिः॥

सम्पद् आदि से 'क्विप्' प्रत्यय होवे। सम्पद् (सम् पद्+क्विप्) सम्पत्–धन विपत्–विपदा। आपत्–दुःख की दशा। इन से क्तिन् प्रत्यय भी होता है। सम्पत्ति (सम्-पद्+क्ति)–सम्पदा। विपत्ति। आपत्ति॥

८१५ ॥ ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च। ३। ३। ९७। एते निपात्यन्ते॥

ऊतिः=रक्षा। यूतिः=जोड़ना। जूतिः=वेग। सातिः=नाश। हेतिः=शस्त्र। कीर्त्तिः=यश। ये (१) निपात से सिद्ध होते हैं॥

९१६॥ **ज्वरत्वरस्त्रिव्यविमवामुपधायाश्च। ६। ४। २०। एषामुपधावकारयोरूठ् अनुनासिके क्वौ झलादौ क्ङिति च। ऊतिः। क्विप्। जूः। तूः। स्रूः। ऊः। मूः॥**

ज्वर्=सन्ताप। त्वर्=शीघ्रता करनी। स्रिव्=गति। अव्=रक्षा। और, मव्=बान्धना। इन की उपधा और व् को ऊठ् हो जब अनुनासिकादि 'वा' क्विप् 'वा' झलादि कित् 'वा' ङित् प्रत्यय परे हो तब। ऊतिः (अव्+क्तिन्)। क्विप् के आने से (२) जूः=ज्वर वाला। तूः=शीघ्रता करने वाला। स्रूः=स्रुवा। ऊः=रक्षक। मूः=बान्धने वाला॥

९१७॥ **इच्छा। ३। ३। १०१। इषेर्निपातोऽयम्॥**

इष् धातु का(३)इच्छा यह रूप निपात से होता है॥

९१८॥ **अ प्रत्ययात्। ३। ३। १०२। प्रत्ययान्तेभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या॥**

प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अकार प्रत्यय होवे। चिकीर्षा ७५० में चिकीर्ष बन चुका है उस से अकार प्रत्यय किया पुनः ४९८, १३३५=कर्तुमिच्छा=करने की इच्छा। ऐसे पुत्रकाम्या ७६६=पुत्र की कामना॥

९१९॥ **गुरोश्च हलः। ३। ३। १०३। गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामप्रत्ययः। ईहा॥**

गुरु वाला और हलन्त जो धातु उस से 'अ' प्रत्यय हो स्त्रीलिङ्ग में। ईहा=९१८ चेष्टा करणी॥

९२०॥ **ण्यासश्रन्थो युच्। ३। ३। १०७। अकारस्यापवादः। कारणा। हारणा॥**

'ण्यन्त' धातुओं से और 'आस्' और 'श्रन्थ्' इन धातुओं से परे 'युच्' प्रत्यय

(१) ऊति में अन्तोदात्तस्वर निपातन है यूतिः, और जूतिः, यहां दीर्घ निपातन है। सातिः, में षो धातु के आकार को द्यतिस्यति० इत्यादि से इकार नहीं हुआ यही निपातन है। हेति में हन् के न् को इकार निपातन है। कीर्त्ति में ९२० नहीं लगा यही निपातन है। (२) यहां से मूः प्रयोग पर्यन्त के धातु ९१६ सूत्र में निर्दिष्ट हैं। (३) यहां इष् धातु से परे भाव अर्थ में श प्रत्यय और यक् का अभाव यह निपातन है।

होवे। यह ८१८ और ८१९ का अपवाद है। कारणा (कृ+णिच्+युच्) ८१ = करवाना। हारणा (हारि+युच्) हरवाना॥

८२१ ॥ नपुंसके भावे क्तः । ३ । ३ । ११४ ॥

जब सिद्ध शब्द नपुंसक में हो तब भाव के प्रकाश करने में धातु से परे 'क्त' प्रत्यय होवे।

८२२ ॥ ल्युट् च । ३ । ३ । ११५ । हसितम् । हसनम् ॥

इस सूत्र के विषय में ल्युट् प्रत्यय भी होवे। हसितम्। हसनम् ८१ हास॥

८२३ ॥ पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण । ३ । ३ । ११८ ॥

जब बनने वाला शब्द संज्ञा और पुल्लिङ्ग हो तब प्रायः धातु से परे 'घ' प्रत्यय होवे।

८२४ ॥ छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य । ६ । ४ । ९६ । द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे। दन्तच्छदः। आकुर्वन्त्यस्मिन्निति आकरः॥

दो आदि उपसर्ग से रहित जो छद् धातु उस को घ प्रत्यय के परे होते ह्रस्व होवे। दन्तच्छद = ओष्ठ। आकर = खान॥

८२५ ॥ अवे तॄस्त्रोर्घञ् ३ । ३ । १२० अवतारः। अवस्तारो जवनिका॥

जब उपसर्ग का उपपद होते 'तॄ' और स्तृ धातु को 'घञ्' प्रत्यय होवे। अवतार १२१ = जलाशय से उतरने का मार्गादि। अवस्तार १२६ = कनात।

८२६ ॥ हलश्च । ३ । ३ । १२१ । हलन्ताद्घञ् । घाऽपवादः । रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः। अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः।

हलन्त धातु से परे 'घञ्' प्रत्यय होवे। यह ८२३ का अपवाद है। राम ८१ जिस में योगी रमे रहते हैं (भगवान्)। अपामार्ग ८१६ ८१० = जिस से व्याधि दूर हो पुठकण्डा॥

८२७ ॥ ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् । ३ । ३ । १२६ । एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल्। तयोरेवेति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रे। दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रे। ईषत्करः। सुकरः॥

जब (१) दुःख और सुख अर्थ में ईषद् दुस् (का) सु उपपद रहें तब धातु से परे 'खल्' प्रत्यय होवे ८१७ से यह खल् भाव या कर्म में हो जाता है। दुःख अर्थ में दुष्कर (२) कटो भवता। सुख अर्थ में ईषत्कर सुकर ८१४॥

---

(१) योग्यता से (दुर) दुःख अर्थ में और सु उपपद सुख में आते हैं। (२) आप से चटाई का बनाना कठिन है।

९२८ ॥ आतो युच् ३ । ३ । १२८ खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोमोभवता । दुष्पानः । सुपानः ॥

आकारान्त, धातु से 'युच्' प्रत्यय होवे । यह सूत्र ९२७ खल् का अपवाद है । ईषत्पानः ८३० सोमो भवता = तुम से सोमलता का रस अनायास से पिया जा सकता है । दुष्पान' । सुपानः ।

९२९ ॥ अलं खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३ । ४ । १८ प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा । दो दद्घो । अलं दत्वा । घुमास्थेतीत्वं । पीत्वा खलु । अलं खल्वोः किम् । माकार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम् अलंकार· ॥

"निषेधार्थक, अल और खलु" उपपद रहें तो प्राचीनो के मत में धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है।८७२ से 'दा' के स्थान में दथ् हुआ। अल दत्त्वा ८७ = मत दो । ६१९ से 'पा को 'पी' तव । पीत्वा खलु = मत पियो । ९२९ इस सूत्र में "अलखल्वो." यह क्यों कहा ? उत्तर देता है, न कहोगे तो 'माकार्षीत्' में 'मा' के योग में भी क्त से क्त्वा हो जावेगा । पुनः यहा "प्रतिषेधयो" क्यों कहा ? उत्तर देता है, न कहोगे तो 'अलकार.' में अल के योग में क्त से क्त्वा हो जावेगा ॥

९३० ॥ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३ । ४ । २१ समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातो· क्त्वा । स्नात्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ॥

जिन धातुओं का कर्त्ता एक हो उन में से पूर्व काल अर्थ में जो धातु तिस से 'क्त्वा' प्रत्यय हो । स्नात्वा व्रजति = स्नान करके जाता है । यहा द्वित्व (१) अविवक्षित है, इस से, भुक्त्वा पीत्वा व्रजति (खाकर पीकर जाता है) यहां दोनों से परे क्त्वा हुआ ॥

९३१ ॥ न क्त्वा सेट् १ । २ । १८ सेट क्त्वा किन्न स्यात् । शयित्वा । सेट् किम् । कृत्वा ॥

सेट् क्त्वा कित् न माना जावे । शयित्वा = सोकर । "सेट्" क्यों कहा ? उत्तर देता है 'कृत्वा' में गुण न हो ॥

---

(१)९३० सूत्र में (दोनों में से पूर्वकालार्थक धातु से क्त्वा हो) यह कोई नियम नहीं अनेकों के होने से जितने पूर्व काल में हो उन सभ से क्त्वा हो । यह विवक्षा है ।

८३२ ॥ रलो व्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६ उवर्णोवर्णोपधाद् हलादे रलन्तात् परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा। द्योतित्वा। लिखित्वा। लेखित्वा। व्युपधात् किम्। वर्तित्वा। रलः किम्। सेवित्वा। हलादेः किम्। एषित्वा। सेट् किम्। भुक्त्वा॥

जिस धातु की उपधा में इवर्ण 'वा' उवर्ण हो और हल् आदि में हो और रल् अन्त में हो तिस से परे सेट् क्त्वा' और 'सन्' वे विकल्प से कित् हों। द्युतित्वा द्योतित्वा ४०८=समझ कर। लिखित्वा लेखित्वा ४०८=लिख कर। इस सूत्र में "व्युपधात्" क्यों कहा? उत्तर देता है 'वर्तित्वा' में विकल्प न हो। पुनः "रलः" क्यों कहा? उत्तर देता है सेवित्वा' में गुण विकल्प से न हो जावे। पुनः "हलादेः" क्यों कहा? उत्तर देता है 'एषित्वा' में पक्षान्तर में गुण रहित न हो जावे। पुनः "सेट्" क्यों कहा? उत्तर देता है 'भुक्त्वा' यहां दूसरे पक्ष में गुण न हो जावे॥

८३३ ॥ उदितो वा ७।२।५६ उदितः परस्य क्त्व इड् वा। शमित्वा। शान्त्वा। देवित्वा। द्यूत्वा। दधातेर्हिः। हित्वा॥

जिस धातु का उ इत् हो तिस से परे क्त्वा को इट् विकल्प से हो। शमित्वा वा शान्त्वा (शमु+क्त्वा) ७५८=शान्त हो कर। देवित्वा (वा) द्यूत्वा (दिवु+क्त्वा) ५८=खेल कर। ८७२ से धा के स्थान में हि होता है। तब हित्वा=धार कर॥

८३४ ॥ जहातेश्च ७।४।४३ हित्वा। हाङस्तु। हात्वा॥

क्त्वा प्रत्यय परे हो तो 'हा' (त्यागना) धातु को 'हि' होता है। हित्वा (छोड़कर)। परन्तु हा (गमन) का तो हात्वा बनता है॥

८३५ ॥ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७। अव्ययपूर्वपदे ऽनञ्समासे क्त्वो ल्यबादेशः। तुक्। प्रकृत्य। अनञ् किम्। अकृत्वा। अव्ययपूर्वपदे किम्। परमकृत्वा॥

जब समास में नञ् भिन्न अव्यय पूर्वपद रहे तब 'क्त्वा' को ल्यप् आदेश होवे ८२१ से तुक् होता है। प्रकृत्य। इस सूत्र में 'अनञ्' क्यों कहा? उत्तर देता है 'अकृत्वा' यहां ल्यप् न होजावे। यहां नञ् ग्रहण (नञ् भिन्न नञ् के समास अर्थात् अव्यय) क्यों माना? उत्तर देता है "परमकृत्वा" यहां ल्यप् न होजावे।

८३६ ॥ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३।४।२२ आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्व विषये णमुल् क्त्वा च।

जब आभीक्ष्ण्य (बार २ करना) प्रकाश करना हो तब ८३५ सूत्र के विषय में क्त्वा और 'णमुल्' प्रत्यय होवें।

८३७॥ नित्यवीप्सयोः ८।१।४ अभीक्ष्ण्ये वीप्सायाञ्च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात्। आभीक्ष्ण्यन्तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च। स्मारं स्मारन्नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा। पायम्पायम्। भोजम्भोजम्। श्रावं श्रावम्।

आभीक्ष्ण्य वा वीप्सा प्रकाश करनी हो तब पद को द्वित्व होवे आभीक्ष्ण्य तिङन्तों में और अव्यय सञ्ज्ञक कृदन्तों में होता है। स्मार स्मार १८६ नमति शिवम् बार २ स्मरण करके शिव को प्रणाम करता है। पाय पायम् ८०० बार २ पीकर भोज भोजम्, बार २ भोजन कर। श्राव श्रावम् १८६ बार२ सुन कर।

८३८॥ अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३।४।२७। एषु कृञो णमुल्स्यात् सिद्धोऽप्रयोगो यस्य एवम्भूतश्चेत् कृञ् व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। अन्यथा कारं। एवं कारं। कथं कारं। इत्थं कारं भुङ्क्ते। सिद्धेति किम्। शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते॥ इति कृदन्तप्रक्रिया॥

अन्यथा, एव, कथम्, और इत्थम्, इन में से कोई शब्द उपपद रहे तब 'कृञ्' धातु से परे 'णमुल्, प्रत्यय होवे, परन्तु यदि कृञ् धातु का अप्रयोग सिद्ध हो अर्थात् कृञ व्यर्थ हो, इसी लिये उस का प्रयोग करना व्यर्थ हो। जैसे (१) अन्यथा कार भुङ्क्ते, वह अन्य प्रकार से खाता है। एव कार भुङ्क्ते वह इस प्रकार से खाता है। कथ कार भुङ्क्ते वह किस प्रकार खाता है। इत्थ कार भुङ्क्ते, वह इस प्रकार खाता है। यहां सिद्ध ऐसा पद क्यों कहा? उत्तर देता है, यदि न कहो तो, शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते=शिर को फेर कर खाता है, यहा कृ धातु सार्थक है। यहा भी णमुल् हो जावेगा (यही दोष पड़ेगा परन्तु सिद्धपद के होने से यहा णमुल् नहीं हो सकता॥ कृदन्तों की प्रक्रिया समाप्त हुई

॥ अथ कारकम् ॥

अब कारकों (विभक्तियों के अर्थों) का वर्णन किया जाता है।

८३९॥ प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६ नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः।

---

(१) "अन्यथाकार भुङ्क्ते" इत्यादि उदाहरणों में कृञ् का प्रयोग व्यर्थ है, क्यों कि 'अन्यथाकार भुङ्क्ते' का जो अर्थ है, वही अर्थ "अन्यथा भुङ्क्ते का है। इस लिये कृ से णमुल् किया पुन १८६ से वृद्धिः और ३८३ से णमुलन्त को अव्ययों के कार्य किये तो 'अन्यथा कारम्, यह सिद्ध हुआ॥

प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् प्रातिपदिकार्थमात्रे । उच्चैः । नीचैः । कृष्णः । श्रीः । ज्ञानम् । लिङ्गमात्रे । तटः । तटी । तटम् । परिमाणमात्रे । द्रोणो व्रीहिः । वचनं सङ्ख्या एकः । द्वौ । बहवः ।

(जिस) प्रातिपदिक के उच्चारण से जिस अर्थ की नियम से उपस्थिति (प्रतीति) हो वह प्रातिपदिकार्थ (शब्दार्थ) कहलाता है। सूत्र में जो मात्र शब्द है उस का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध है। द्वन्द्व समास के अन्त में सुनाजाने से। केवल प्रातिपदिकार्थ में और लिङ्गमात्र के आधिक्य में और परिमाण मात्र के आधिक्य में और केवल संख्या वाचक शब्द से परे प्रथमा होवे। प्रातिपदिकार्थ में जैसे उच्चैः (वा) नीचैः यहां विभक्त्यन्त की पद संज्ञा होने पर रुत्व और विसर्ग हुए। कृष्ण (वासुदेव) श्री (लक्ष्मी) ज्ञानम (ज्ञान) इस के और भी अलिङ्ग 'वा' नियतलिङ्ग उदाहरण हो सकते हैं। लिङ्गमात्र में जैसे (१) तट तटी तटम् नदी का तीर। ऐसे और भी अनियतलिङ्ग शब्द इस के उदाहरण होसकते हैं। परिमाण मात्र में जैसे द्रोणो व्रीहि। द्रोण रूप परिमाण से नपा हुआ अनाज (द्रोणभर चावल) सूत्र में जो 'वचन' शब्द है उस का अर्थ (२) संख्या है। उदाहरण जैसे एक द्वौ बहव एक दो बहुते।

९४० ॥ सम्बोधने च २ । ३ । ४७ प्रथमा । हे राम ।

सम्बोधन अर्थ में प्रथमा होवे। हे राम।

९४१ ॥ कर्तुरीप्सिततमं कर्म । १ । ४ । ४९ कर्तुः क्रिययाप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

कर्ता को क्रियाजन्य फल के साथ जिस का सम्बन्ध कराने की अत्यन्त इच्छा हो सो कारक कर्म संज्ञा वाला हो।

९४२ ॥ कर्मणि द्वितीया । २ । ३ । २ । अनुक्ते कर्मणि द्वितीया । हरिं भजति । अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा । हरिस्सेव्यते । लक्ष्म्या सेवितः ।

---

(१) यहां तीर रूपी प्रातिपदिकार्थ तो नियम से उपस्थित होता है परन्तु तीनों लिङ्ग नहीं होते इस लिये लिङ्ग मात्र का आधिक्य है। (२) वाच्य वाचक का अभेद मान या मानीनों के व्यवहार से। यहां जो एक का वाच है। वही सु का वाच है तो "उक्तार्थानामप्रयोगः" उक्तार्थों का प्रयोग नहीं होता। इस नियम से यहां एकादि शब्दों से विभक्ति की प्राप्ति नहीं थी इस दोष के निवारण के लिये सूत्र में संख्या शब्द है।

अनुक्त (किसी प्रत्यय से न उक्त) कर्म में द्वितीया होवे। हरिं भजति, वह हरि को भजता है। यहां प्रत्यय कर्त्ता में है इस लिये कर्म अनुक्त है। परन्तु उक्त कर्मादि की मे तो प्रथमा ८३८ से हो जाती है। जैसे हरिः सेव्यते (हरि सेवा किया जाता है) लक्ष्म्या सेवितः (लक्ष्मी से सेवा किया गया) यहां 'सेव्यते' और सेवितः, दोनों कर्म प्रत्ययान्त हैं, तो कर्म उक्त हुआ इसी लिये प्रथमा हुई।

९४३ ॥ अकथितञ्च १ । ४ । ५१ अपादानादिविशेषैरविवक्षितङ्कारकङ्कर्म्मसञ्ज्ञं स्यात्।

अपादान ९५० आदि (अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण आदि) जब विवक्षित न हों तब ये भी कारक कर्मसंज्ञक हों।

९४४ ॥ दुह्याच्पच्दण्डरुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमन्थमुषाम्। कर्म्मयुक् स्यादकथितं तथास्यान्नीहृकृष्वहाम् १ गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलानोदनम्पचति। गर्गान् शतन्दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकम्पन्थानम्पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि माणवकन्धर्म्मं ब्रूते। शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिम्मथ्नाति। देवदत्तं शतम्मुष्णाति। ग्राममजान्नयति। हरति कर्षति वहति वा। अर्त्थनिबन्धनेयं सञ्ज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकन्धर्म्मम्भाषते। अभिधत्ते। वक्ति। इत्यादि।

दुह, दोहना। याच्, मांगना। पच्, पकाना। दण्ड, दण्ड देना। रुधिर्, ढकना। प्रच्छ, पूछना। चि, सञ्चय करणा। ब्रू, बोलना। शास्, शिक्षा देनी। जि, जीतना। मन्थ् मथना। मुष् चुराना। इन धातुओं के और 'णी, लेजाना। हृ, हरना। कृष्, खैंचना। वह् लेजाना, इन धातुओं के मुख्य कर्म के साथ क्रिया सम्बन्धी, जो अपादानादि विशेषों से विवक्षित न हों तो वह कारक कर्मसंज्ञा वाला हो। गां दोग्धि पय (वह गौसे दूध दुहता है। बलिं याचते वसुधाम् (वामन बलराजा से धरती मांगता है) तण्डुलानोदन पचति (वह तण्डुलों से भात पकाता है। गर्गान् शत दण्डयति (वह गर्गों से सौ रुपैये दण्डलेता है। व्रजमवरुणद्धि गाम् (वह व्रज में गौ को घेरता है) माणवकं पन्थानं पृच्छति, वह बच्चे से मार्ग पूछता है वृक्षमवचिनोति फलानि (वह वृक्ष से फलों को इकट्ठा करता है) माणवक धर्म ब्रूते शास्ति वा वह बालक को धर्म कहता है, वा सिखलाता है। शत जयति देवदत्तम्, वह देवदत्त से सौ मुद्रा जीतता है। सुधां क्षीरनिधि मन्थाति, वह क्षीरसमुद्र से अमृत को मथता है।

देवदत्तं शतं मुष्णाति देवदत्त से सौ मुद्रा चुराता है। ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा — यह ग्राम से अजा(बकरी)को लेजाता है (इत्यादि) यह संज्ञा(१)अर्थ निबन्धना है इस से 'याच' के समानार्थक 'भिक्ष्' धातु के। बलिं भिक्षते वसुधाम्। यहां भी बलिम में द्वितीया हुई। ऐसे माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्ति इत्यादि भी जान लेवें।

८४५ ॥ साधकतमं करणम् १।४।४२ क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसञ्ज्ञं स्यात्। स्वतन्त्र इति कर्तृसञ्ज्ञा।

क्रिया की सिद्धि में जो अत्यन्त उपकारक हो सो कारक करण संज्ञक होवे और। ७१८ से कर्तृ संज्ञा होती है॥

८४६ ॥ कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८। अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो वाली।

अनुक्त (जो तिङ् आदि प्रत्ययों से कहा नहीं) कर्त्ता और करण से परे तृतीया विभक्ति हो। रामेण बाणेन हतो वाली — राम से बाण करके वाली मारा गया। यहां राम कर्त्ता है और बाण करण है 'परन्तु दोनों अनुक्त हैं' क्योंकि प्रत्यय कर्म में है इसी लिये तृतीयान्त हुए॥

८४७ ॥ कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२ दानस्य कर्म्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसञ्ज्ञः स्यात्।

कर्त्ता जिस को दान क्रिया के कर्म के साथ संयुक्त करने की इच्छा करे सो कारक सम्प्रदान संज्ञक होवे॥

८४८ ॥ चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३ विप्राय गां ददाति।

सम्प्रदान कारक में चतुर्थी होवे। विप्राय गां ददाति — विप्र को गौ देता है॥

८४९ ॥ नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च २।३।१६ एभिर्योगे चतुर्थी। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमितिपर्य्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि।

नमस् 'स्वस्ति 'स्वाहा 'स्वधा 'अलम्' और 'वषट् इन के योग में चतुर्थी होवे।

---

(१) इस संज्ञा को अर्थनिबन्धना मानने से (दुह् याच् आदि १६ धातुओं के अर्थों के समान अर्थ वाले और भी धातु लिये जावें) क्योंकि "अर्थनिबन्धना" का यह भाव है कि यहां दुह् आदि धातु नहीं किन्तु इन के अर्थ यहां कर्म संज्ञा में कारण हैं॥

हरये नमः (हरि को नमस्कार)। प्रजाभ्यः स्वस्ति=प्रजा का कल्याण। अग्नये स्वाहा= अग्नि में हवि देना। पितृभ्यः स्वधा=पितरों को देना। यहां "अलम्" का अर्थ पर्याप्ति है, इस लिये पर्याप्ति जिन का अर्थ है उन के योग में चतुर्थी होवे, जैसे "दैत्येभ्यो हरिरलं, प्रभुः, शक्तः, समर्थः, इत्यादि=दैत्यों (दिति के पुत्रों) के लिये हरि परिपूर्ण है समर्थ है शक्तिमान् है॥

९५० ॥ ध्रुवमपायेऽपादानम्। १। ४। २४। अपायोविश्लेषस्तस्मिन्साध्ये यद्ध्रुवमवधिभूतङ्कारकन्तदपादानसञ्ज्ञं। स्यात्।

अपाय का अर्थ विभाग है उस के साध्य होने पर जो ध्रुव (अवधि भूत) कारक (जिस अवधि से विभाग हो वह कारक) अपादान सञ्ज्ञा वाला हो॥

९५१ ॥ अपादाने पञ्चमी।२।३।२८। ग्रामादायाति। धावतोऽश्वात् पतति। इत्यादि॥

अपादान में पञ्चमी होवे। ग्रामादायाति=वह ग्राम से आता है। धावतोऽश्वात् पतति=वह दौड रहे घोडे से गिरता है। इत्यादि और भी उदाहरण जान लेने॥

९५२ ॥ षष्ठी शेषे २। ३। ५० कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादि सम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी। राज्ञः पुरुषः। कर्म्मादीनामपिसम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। सताङ्गतम्। सर्पिषो जानीते मातुः स्मरति। एधोदकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चरणयोः।

कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न जो स्वस्वामिभाव (स्वत्व स्वामित्व सम्बन्ध) आदि सम्बन्ध यहां शेष है उस में षष्ठी होवे। "राज्ञः पुरुषः"=राजा का पुरुष। कर्म आदिकों में भी सब सम्बन्ध मात्र की विवक्षा हो तब षष्ठी ही होती है। "सताङ्गतम्"=सज्जनों का गमन। "सर्पिषो जानीते"=वह घृत सम्बन्ध करके प्रवृत्त होता है। "मातुः स्मरति" वह माता का स्मरण करता है। "एधोदकस्योपस्कुरुते" लकडी पानी को नया गुण देती है। "भजे शम्भोश्चरणयोः" मैं शिव के चरणों को सेवता हूं॥

९५३ ॥ आधारोऽधिकरणम्। १। ४। ४५। कर्तृकर्म्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात्॥

कर्त्ता और कर्म के द्वारा कर्त्ता और कर्म की क्रिया के आधार कारक की अधिकरण संज्ञा होवे॥

९५४ ॥ सप्तम्यधिकरणे च। २। ३। ३६। चकाराद्दूरान्तिका-

र्वस्य । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्व्वस्मिन्नात्मास्ति । वनस्य दूरे । अन्तिके वा ॥ ॥ इति विभक्त्यर्थाः ॥

अधिकरण विषे सप्तमी होवे । सूत्रस्थ च का यह आशय है कि दूर और समीप के वाचक शब्दों से भी परे सप्तमी होवे । (१)औपश्लेषिक (२)वैषयिक, और (३)अभिव्यापक ये आधार के तीन भेद हैं । कटे आस्ते—वह चटाई पर बैठता है । स्थाल्यां पचति—वह बटलोही में पकाता है । मोक्षे इच्छास्ति—उसकी इच्छा का विषय मोक्ष (मुक्ति) है । सर्वस्मिन्नात्मास्ति—सब में आत्मा व्याप्त है । वनस्य दूरे अन्तिके वा—वन के दूर वा निकट ॥ ॥ विभक्त्यर्थ (कारक) समाप्त हुए ॥

॥ अथ समासः । समासः पञ्चधा ॥

। अब समास का वर्णन किया जाता है । समास पांच प्रकार का है ।

८५५ ॥ तत्र समसनं समासः । स च विशेषसञ्ज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः । प्रायेण पूर्व्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः । प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः । तत्पुरुषभेदः कर्म्मधारयः । कर्म्मधारयभेदो द्विगुः । प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्चतुर्थः । प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ॥

समसनं (अनेक पदों का एक पद होना) समास कहलाता है । जिस की कोई विशेष संज्ञा (नाम) नहीं वह १म केवल समास कहलाता है । प्राय जिस में पूर्व पद का अर्थ प्रधान हो वह २तीय अव्ययीभाव कहलाता है । प्राय जिस में उत्तर पद का अर्थ प्रधान हो वह तृतीय तत्पुरुष कहलाता है । तत्पुरुष का ही भेद कर्मधारय है कर्मधारय का एक विशेष भेद द्विगु है । प्राय जिस में (४) अन्यपद का अर्थ हो प्रधान हो वह ४र्थ बहुव्रीहि कहलाता है । प्राय जिस में दोनों पदों का अर्थ प्रधान हो वह ५म द्वन्द्व कहलाता है ॥

८५६ ॥ समर्थः पदविधिः । २ । १ । १ । पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ।

जो विधि पद से (वा) पदों से सम्बन्ध रखे वह सामर्थ्य (एकार्थीभाव) के आधीन हो ।

---

(१) जिस की किसी अवयव से संयोग हो वह औपश्लेषिक । (२) जिस से विषय का बोध हो वह वैषयिक । (३) जिस में आधेय पूर्ण रूप से व्याप्त हो वह अभिव्यापक । (४) समास के पदों को छोड़ जो अन्य है । यह सभी उदाहरणों में घट जाते हैं । उदाहरण देखो ।

९५७ ॥ प्राक् कडारात् समासः । २ । १ । ३ । कडाराः कर्म्मधारय इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते ॥

यहां से "कडाराः कर्मधारये" इस सूत्र के पूर्व 'समास' इस शब्द का अधिकार है ।

९५८ ॥ सह सुपा । २ । १ । ४ । सुप् सुपा सह वा समस्यते । समासत्वात् प्रातिपदिकत्वेन सुपोलुक् । परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः । पूर्व अम् भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । भूतपूर्वे चरडितिनिर्देशात् पूर्वनिपातः ॥

सुबन्त का सुबन्त के साथ विकल्प करके समास होवे । समास को १३२ से प्रातिपदिक सञ्ज्ञा होने पर ७६२ से सुप् का लुक् होता है । भिन्न २ अवयवों में जो अर्थ रहे उस से भिन्न (एक रूप से) अर्थ के प्रकाश करने वाली शक्ति को वृत्ति कहते हैं । वृत्ति के पाञ्च भेद हैं १ कृत्, २ तद्धित, ३ समास, ४ एक शेष, और ५ सनाद्यन्त धातु । वृत्ति के अर्थ के जनाने वाले वाक्य को विग्रह कहते हैं । लौकिक, और अलौकिक, ये दो विग्रह के भेद हैं । 'भूतपूर्वः' इस का लौकिक विग्रह जैसे 'पूर्व भूतः' अलौकिक जैसे 'पूर्व + अम् + भूत + सु । "भूतपूर्वः" इस में भूत शब्द का "भूतपूर्वे चरट्" इस सूत्र में 'भूत' शब्द के पूर्वनिपात के निर्देश से पूर्वनिपात होता है ॥

९५९ ॥ इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च । वागर्थौ इव वागर्थाविव । ॥ इति केवलसमासः प्रथमः ॥

इव (सदृश) के साथ सुबन्त का समास होवे और सुप् का ७६२ से लुक् न होवे । "वागर्थाविव" वागर्थौ + इव (वाणी और अर्थ के सदृश) ॥ प्रथम केवल समास समाप्त हुआ ।

॥ अथाव्ययीभावः ॥

। अब अव्ययीभाव का वर्णन किया जाता है ।

९६० ॥ अव्ययीभावः । २ । १ । ५ । अधिकारोऽयम् । प्राक् तत्पुरुषात् ।

'अव्ययीभाव' इस का अधिकार ९७६ सूत्र के पूर्व पर्य्यन्त होवे ॥

९६१ ॥ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवच-

र्थेषु । २ । १ । ६ । विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते । प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः । प्रायेणास्वपदविग्रहो वा विभक्तौ । हरि ङि अधि इति स्थिते ॥

विभक्ति अर्थ समीप समृद्धि व्यृद्धि—घटती अर्थ (वस्तु) का अभाव अत्यय (ध्वंस) असम्प्रति शब्द का प्रादुर्भाव (प्रकाश) । पश्चात् यथा के अर्थ क्रम यौगपद्य सादृश्य सम्पत्ति साकल्य (सम्पूर्णता), अन्त इन अर्थों में वर्तमान अव्यय का सुबन्त के साथ समास नित्य होवे । प्राय विग्रह रहित नित्य समास होता है । वा प्राय' असमस्य मान पदों के भिन्न पदों के साथ विग्रह वाला होता है । विभक्त्यर्थ में अव्यय का जैसे हरि+ङि+(१)अधि' ऐसे स्थित होने पर ॥

९६२ ॥ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्ज्जनम् १ । २ । ४३ समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्ज्जनं स्यात् ।

समास विधायक (करने वाले) शास्त्र में जो प्रथमान्त रूप से निर्दिष्ट हो वह उपसर्जन संज्ञा वाला होवे । ९६१ सूत्र में 'अव्यय' प्रथमान्त है इस से यहां वह उपसर्जन है ।

९६३ ॥ उपसर्ज्जनं पूर्वम् २ । २ । ३० समासे उपसर्ज्जनं प्राक् प्रयोज्यम् । इत्यधेः प्राक् प्रयोगः । सुपोलुक् । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात् सुपोलुक् अधिहरि ।

समास में उपसर्जन ९६३ पूर्व रक्खा जावे । इस से अधि का पूर्व प्रयोग हुआ । तो 'अधि+हरि+ङि ऐसा रूप हुआ तो, पुन' ९४१ से सुप् का लुक् होने पर 'अधि+हरि' ऐसा रूप रहा । जिस का एकदेश (कोई अवयव) विकृत (रूपान्तर को प्राप्त) हो जावे तो अन्य न समझ नहीं होता । इस कारण से सुप् के लुक् के होने पर भी प्रातिपदिक होने से पुन' सु आदि प्रत्यय हुए । उन का ३८८ से पुन' लुक् क्योंकि ९८३ अव्ययीभावश्च से अव्ययीभाव की अव्यय संज्ञा है । अधिहरि (हरि विषे) सिद्ध हुआ ॥

९६४ ॥ अव्ययीभावश्च २ । ४ । १८ । अयं नपुंसकं स्यात् । गाः पातीति गोपाः । तस्मिन्नित्यधिगोपम् ।

अव्ययीभाव समास नपुंसकलिङ्ग होवे । गोपा—गौओं की रक्षा करने वाला । उन में "अधिगोपम्" ९६४ ९६६ ॥

---

(१) यहां अधि अव्यय का ङि के अर्थ में व्यवहार हुआ है ॥

९६५ ॥ नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः २।४।८३ अदन्ता-दव्ययीभावात् सुपो न लुक् तस्य पञ्चमीं विना अमादेशः ।

अदन्त अव्ययीभाव समास से परे जो सुप् तिस का लुक् न होवे। किन्तु पञ्चमी को छोड कर अन्य (और) विभक्तियों को "अम्" आदेश होवे ॥

९६६ ॥ तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४ अदन्तादव्ययीभा-वात् तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः। उपकृष्णम्। उपकृष्णेन। मद्राणां सम्वृद्धिः सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिर्दुर्य्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्म-क्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यति निद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि। विष्णोः पश्चादनुविष्णु। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यमनुरूपम् अर्थमर्थम्प्रति प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति।

अदन्त अव्ययीभाव से परे जो तृतीया और सप्तमी उसे अम् आदेश अनेक प्रकार से हो। उपकृष्णम् 'वा' उपकृष्णेन = कृष्ण के समीप। सुमद्रम् ८२५ = मद्र देशियों की वृद्धि। दुर्यवनम् ८६५ = यवनों की घटती। निर्मक्षिकम् ८६५ = मक्खियों का अभाव। अतिहिमम् = हिम का नाश। अतिनिद्रम् = नींद नहीं आती (लगती)। इतिहरि = हरि शब्द का (१)प्रकाश। अनुविष्णु = विष्णु के पीछे। योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति (किसी पदार्थ को न उल्लङ्घन करणा), और सादृश्य, ये ४चार यथा के अर्थ हैं। इनके क्रम से उदाहरण देता है। अनुरूपम् (रूप के योग्य), प्रत्यर्थम् = सभ पदार्थों में। यथाशक्ति = अपनी शक्ति के अनुसार ॥

९६७। अव्ययीभावे चाकाले ६।३।८१ सहस्य सः स्यादव्ययी-भावे न तु काले। हरेः सादृश्यं सहरि। ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम् चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। क्षत्राणां सम्पत्ति सक्ष-त्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्निग्रन्थपर्य्यन्तमधीते साग्नि

अव्ययीभाव समास में सह को स आदेश होवे, जब उत्तरपद काल वाचक न हो तब। सहरि = हरि की तुल्यता। अनुज्येष्ठम् = वडे के क्रम से। सचक्रम् = चक्र के समान

(१) जैसे वैष्णवों के गृहों में हरि '२' शब्द हुआ करता है ॥

भाव। ससखि—मित्र के सदृश। सक्षत्रम्—क्षत्रियों की सम्पत्ति। सतृणम्—यह तृण तक भी खा जाता है (कुछ भी नहीं छोड़ता)। साग्नि—अग्नि ग्रन्थ पर्यन्त वेद पढ़ता है॥

९६८॥ नदीभिश्च २।१।२०॥ नदीभिः सह संख्या वा समस्यते समाहारे चायमिष्यते। पञ्चगङ्गम्। द्वियमुनम्।

नदी वाचक शब्द के साथ संख्या वाचक शब्द का समास विकल्प करके होवे। यह सूत्र समाहार में ही लगे यह भाष्यकार की इच्छा है। पञ्चगङ्गम्—पांच गङ्गाओं का समाहार। द्वियमुनम्—द्वयोर्यमुनयोः समाहारः॥

९६९॥ तद्धिताः ४।१।७६। आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्।

इस सूत्र से लेकर अष्टाध्यायी के ५ पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त तद्धित इस पद का अधिकार है॥

९७०॥ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः।५।४।१०७। शरदादिभ्यष्टच् स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे। शरदः समीपमुपशरदम्। प्रतिविपाशम्॥

अव्ययीभाव समास में शरद् आदि से परे "टच्" प्रत्यय समास का अन्तावयव होवे। उपशरदम्—शरद् ऋतु के समीप। प्रतिविपाशम्—विपाशा के पास॥

९७१॥ जराया जरस् च। उपजरसम्। इत्यादि।

जरा शब्द के स्थान में जरस् होवे। उपजरसम् ८० वृद्धावस्था के समीप। इत्यादि और भी जान लेना॥

९७२॥ अनश्च।५।४।१०८। अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच्॥

जिस अव्ययीभाव के अन्त में अन् हो उस से परे 'टच्' प्रत्यय होवे।

९७३॥ नस्तद्धिते।६।४।१४४। नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते। उपराजम्। अध्यात्मम्॥

जब तद्धित प्रत्यय परे हो तब भसंज्ञक नान्त पद की टि का लोप होवे। उपराजम् (राज्ञः समीपम्)। अध्यात्मम् आत्मा विषे॥

९७४॥ नपुंसकादन्यतरस्याम्।५।४।१०९। अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टच् वा। उपचर्मम्। उपचर्म॥

जिस के अन्त में अन् हो ऐसा नपुंसक लिङ्गी शब्द जिस अव्ययीभाव समास के

अन्त में हो तिस से परे टच् प्रत्यय विकल्प करके होवे। उपचर्मम् ९७२ (वा) उपचर्म, चामके समीप।

९७५ ॥ झयः । ५ । ४ । १११ । झयन्तादव्ययीभावाट्टज्वा । उपसमिधम् । उपसमित् ॥ इत्यव्ययीभावः ॥

जिस अव्ययीभाव के अन्त में झय् प्रत्याहारान्तर्गत वर्ण हो तिस से परे 'टच्' प्रत्यय विकल्प करके होवे । उपसमिधम् । वा । उपसमित् । समिधः समीपम् ॥

॥ अव्ययीभाव समास समाप्त हुआ ॥

॥ अथ तत्पुरुषः ॥

॥ अब तत्पुरुष समास का वर्णन किया जाता है ॥

९७६ ॥ तत्पुरुषः २ । १ । २२ अधिकारोऽयम् । प्राग्बहुव्रीहेः ॥

तत्पुरुष इस का अधिकार १०२८ सूत्र के पूर्व पर्यन्त है ॥

९७७ ॥ द्विगुश्च २ । १ । २३ तत्पुरुषसंज्ञकः ॥

द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञा वाला हो ॥

९७८ ॥ द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २ । १ । २४ द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते । कृष्णं श्रितः । कृष्णश्रितः । इत्यादि ॥

(१)श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, और आपन्न, इन प्रकृतियों से परे जो 'सुप्' तदन्त के साथ द्वितीयान्त का विकल्प करके समास होवे । कृष्णश्रितः ७६२ = जिस ने कृष्ण का आश्रयण किया । इत्यादि और भी जान लेने । जैसे दुखातीत, आदिक ॥

९७९ ॥ तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २ । १ । ३० तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः । शङ्कुलाखण्डः । धान्येनार्थः । धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् । अक्ष्णा काणः ।

तृतीयान्त के अर्थ से संपादन किये गए गुण के वाचक शब्द के साथ और अर्थ

(१) यहां से आपन्न पर्यन्त सातों के ये अर्थ हैं । १ श्रित = जिस ने आश्रयण किया । २ अतीत = अतिक्रमण कर आगे गया । ३ पतित = गिर पड़ा । ४ गत = गया । ५ अत्यस्त = उलङ्घ गया । ६ प्राप्त = पहुंच गया । ७ आपन्न = प्राप्त हुआ ॥

शब्द के साथ तृतीयान्त का विकल्प करके समास होवे। शङ्कुलाखण्ड ०५१२—शङ्कुला ( ) से किया गया जो सुपारी का टुकड़ा। धान्यार्थ —धान्य से जो धन भया। इस सूत्र में 'तत्कृत' यह क्यों कहा? उत्तर देता है 'अक्ष्णा काण' में समास न हो जावे क्योंकि यहां आंख काणत्व की सम्पादक नहीं॥

९८० ॥ कर्तृकरणे कृता बहुलम् २।१।३२ कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत्। हरित्रात। नखभिन्न। कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्। नखनिर्भिन्न॥

कर्ता वा करण अर्थ में जो तृतीयान्त हो नाना प्रकार से कृत् प्रत्ययान्त के साथ समस्यमान होवे। हरित्राता (हरित्रा त्राता)—हरि से रक्षा किया गया। नखभिन्न (नखैर्भिन्न) नखों से फाड़ा गया। इस सूत्र में कृत् के ग्रहण से गति वा कारक जिस कृदन्त के पूर्व हो उस का भी ग्रहण होवे। नखनिर्भिन्न —नखों से सम्पूर्ण फाड़ा गया। यहां निर् यह गति संज्ञक है। तत्पूर्वक कृदन्त (निर्भिन्न) के साथ करण वाचक (नखै) का समास हुआ॥

९८१ ॥ चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः।२।१।३६ चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत्। यूपाय दारु यूपदारु। तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्ट। तेनेह न। रन्धनाय स्थाली।

चतुर्थ्यन्त के लिये जो जो तिस के वाचक शब्द के साथ और, अर्थ बलि हित, सुख और रक्षित इन शब्दों के साथ चतुर्थ्यन्त विकल्प करके समस्यमान हो। यूपदारु ०५१२—यज्ञ स्तम्भ के लिये लकड़ी। तदर्थ से यहां प्रकृति (चतुर्थ्यन्त के लिये जो शब्द उस) का शुद्ध (१)विकार इष्ट है इस लिये "रन्धनाय स्थाली" यहां समास न हुआ॥

९८२ ॥ अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्। द्विजार्थः सूप। द्विजार्था यवागू। द्विजार्थं पय। भूतबलिः। गोहितम्। गोसुखम्। गोरक्षितम्॥

चतुर्थ्यन्त का अर्थ शब्द के साथ नित्य समास हो और (२)विशेष्य के अनुसार लिङ्ग होवे। द्विजार्थ —ब्राह्मण के लिये दाल। द्विजार्था (द्विजार्थेयम्) यवागू —लपसी।

---

(१) जैसे स्तम्भ के लिये लकड़ी का विकृत भाव (स्वरूपान्तर) स्तम्भ ही है। ऐसे रीन्धने के लिये बटलोही का स्वरूपान्तर नहीं होता। (२) जिस का गुण आदि प्रकाश किया जावे वह विशेष्य और गुण वाचक 'विशेषण' होते हैं।

द्विजार्थम् (द्विजायेदम्) पयः = दूध। भूतबलिः (भूतेभ्यो बलिः) ६८१, ७६२। गोहितम् (गवे हितम्) ६८१,७६२। ऐसे गोसुखम् = गौ के लिये सुखदायक। गोरक्षितम् (गवेरक्षितम्)।

६८३ ॥ पञ्चमी भयेन। २। १। ३७। चोराद्भयं। चोरभयम् ॥

पञ्चम्यन्त का भय शब्द के साथ समास होवे। चोरभयम् ७६२ = चोर से भय ॥

६८४ ॥ स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन। २। १। ३९ ॥

स्तोक = थोड़ा, अन्तिक = समीप, दूर इन शब्दों के अर्थ में जो शब्द हों सो और कृच्छ्र शब्द ये यदि पञ्चम्यन्त हों तो क्तान्त के साथ समस्यमान होवें ॥

६८५ ॥ पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६। ३। २ अलुगुत्तरपदे। स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्यासादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।

उत्तर पद परे हो तो स्तोक आदि शब्दों से परे पञ्चमी का लुक् ७६२ न होवे। स्तोकान्मुक्तः ६८४ = थोड़े से मुक्त हुआ। अन्तिकादागतः ६८४। अभ्यासादागतः ६८४ = निकट से आया। दूरादागतः ६८४। कृच्छ्रादागतः ६८४ दुःख से आया ॥

६८६ ॥ षष्ठी। २। २। ८। सुबन्तेन प्राग्वत्। राजपुरुषः ॥

सुबन्त के साथ षष्ठ्यन्त विकल्प से समस्यमान हो। राजपुरुषः (राज्ञः पुरुषः) ७६२, १६४ (राजा का पुरुष) ॥

६८७ ॥ पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे। २। २। १। अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी। षष्ठीसमासापवादः। पूर्वं कायस्य पूर्वकायः। अपरकायः। एकाधिकरणे किम्। पूर्वश्छात्राणाम् ॥

पूर्व, अपर, अधर, उत्तर, ये शब्द एकत्व संख्या विशिष्ट अवयवी के साथ विकल्प करके समस्यमान हों। यह सूत्र ६८६ का अपवाद है। पूर्वकायः ७६२, ६६२, ६६३ = शरीर, का अगिला भाग। अपरकायः = काया का पिछला भाग। इस सूत्र में "एकाधिकरणे" यह क्यों कहा? उत्तर देता है न कहते तो "पूर्वश्छात्राणाम्" यहां भी समास हो जाता परन्तु यहा समास नहीं हुआ क्योंकि 'छात्राणां' यह बहुवचनान्त है ॥

६८८ ॥ अर्धं नपुंसकम्। २। २। २। समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली ॥

आधे का वाचक जब अर्ध शब्द हो तब वह नित्य नपुंसक लिङ्ग होता है उस का षष्ठ्यन्त के साथ विकल्प करके समास होवे। अर्धपिप्पली = आधी पीपल ॥

६८८ ॥ सप्तमी शौण्डैः । २ । १ । ४० । सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्। अक्षेषु शौण्डः । अक्षशौण्डः । इत्यादि। द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि द्वितीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेय ॥

शौण्डादि गण पठित शब्दों के साथ सप्तम्यन्त का विकल्प करके समास होवे। अक्षशौण्डः ७१२—पासों में चतुर । इत्यादि और भी जानने । ६८८, ६८८, ६८१ ६८२ ६८८ इन सूत्रों में क्रम से 'द्वितीया तृतीया चतुर्थी पञ्चमी सप्तमी इन पदों के योग विभाग करने से परिगणित पदों से भिन्न पदों के साथ भी इन का प्रयोग वश से समास जानना ॥

६६ ॥ दिक्संख्ये संज्ञायाम् । २ । १ । ५ । संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम् । पूर्वेषुकामशमी । सप्तऋषय । सप्तर्षयः। तेनेह न। उत्तरा वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः ॥

दिग् का एकाधिकरण हो जन के साथ संज्ञा अर्थ में दिशा वाचक 'वा' संख्या वाचक शब्दों का समास होवे। 'संज्ञा ही में यह समास हो" इस नियम के लिये यह सूत्र है। 'पूर्वेषुकामशमी'—पूर्व का इषुकामशमी ग्राम विशेष। सप्त ऋषय' वा सप्तर्षय' —वसिष्ठ आदि सात ऋषि। नियम का यह फल है कि 'उत्तरा वृक्षाः, उत्तर वाले वृक्ष। और 'पञ्च ब्राह्मणा' इन दोनों में संज्ञा के न होने से समास नहीं हुआ ॥

६६१ ॥ तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २ । १ । ५१ तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भव पूर्वाशाला इति समासे जाते। सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव ॥

जब "तद्धितार्थ की विषयता हो" 'वा' 'उत्तर पद परे हो" 'वा' "समाहार वाच्य हो' तब दिशा वाचक 'वा संख्या वाचक शब्द विकल्प करके समस्यमान हों। 'पूर्वस्यां शालायां भव" ऐसे विग्रह में 'भव रूप' तद्धितार्थ की विषयता में समास होने पर ७५२ से "पूर्वाशाला" ऐसा रूप हुआ। पुनः "सर्वनाम को वृत्ति मात्र में पुंवद्भाव हो" इस भाष्य के वचनार्थ से "पूर्वशाला" ऐसा रूप हुआ ॥

६६२ ॥ दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः । ४ । २ । १०७ । अस्माद्भवाद्यर्थे ञः स्यादसंज्ञायाम् ॥

समस्त पद किसी की सञ्ज्ञा न हो तब उस से परे भव आदि अर्थों में 'ञ' प्रत्यय होवे, परन्तु पूर्वपद दिशा वाचक हो तब। तब "पूर्वशाला + ञ" ऐसा हुआ ॥

९९३ ॥ तद्धितेष्वचामादेः। ७। २। ११७। ञिति णिति च तद्धिते परेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। यस्येति च। पौर्वशालः। पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ ॥

अचों में पहिले अच् की वृद्धि होवे, जब ञित् 'वा' णित् तद्धित प्रत्यय परे रहे। इस से वृद्धि के होने पर २५५ से अन्तिम अच् का लोप तब "पौर्वशालः" (पूर्वशाला में होने वाला) सिद्ध हुआ। "पञ्च गावो धन यस्य" इस त्रिपद बहुव्रीहि में ॥

९९४ ॥ द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ॥

उत्तरपद परे रहे तब द्वन्द्व 'वा' तत्पुरुष समास नित्य होवे ऐसा कहना चाहिये ॥

९९५ ॥ गोरतद्धितलुकि। ५। ४। ९२। गोन्तात्तत्पुरुषाट्टच् स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि। पञ्चगवधन ॥

जिस तत्पुरुष के अन्त मे गो शब्द हो उस से परे 'टच्' प्रत्यय (१)समासान्त हो परन्तु यदि तद्धित का लुक् न हुआ हो तब। पञ्चगवधन. = जिस की पांच गाय धन हों।

९९६ ॥ तत्पुरुष. समानाधिकरण. कर्मधारयः। १। २। ४२ ॥

जो तत्पुरुष समानाधिकरण हो अर्थात् जिस के पद समान अधिकरण वाले हों तिस की कर्मधारय सञ्ज्ञा हो ॥

९९७ ॥ संख्यापूर्वो द्विगु। २। १। ५२। तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविध संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञ स्यात्।

जिस समास का पूर्वपद सख्या वाचक हो और वह ९९१ में निर्दिष्ट तीनों में से कोई एक हो तो द्विगु सञ्ज्ञा वाला हो ॥

९९८ ॥ द्विगुरेकवचनम् २। ४। १ द्विग्वर्थ· समाहार एकवत् स्यात्।

जो समाहार द्विगु से प्रकाश किया जावे सो एकवचन हो।

९९९ ॥ स नपुसकम् २। ४। १७ समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात्। पञ्चानां गवां समाहारः। पञ्चगवम्।

समाहार में द्विगु "वा" द्वन्द्व नपुसकलिङ्ग होवे। (पञ्चगवम् ९९५ पञ्चाना गवा समाहार)।

---

(१) समास का अन्तावयव ॥

१००० ॥ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् । २ । १ । ५७ । भेद्यं भेदकेन समानाधिकरणेन बहुला प्राग्वत् । नीलमुत्पलं नीलोत्पलम् । बहुलग्रह णात्क्वचिन्नित्यम् । कृष्णसर्पः । क्वचिन्न । रामो जामदग्न्यः ।

समानाधिकरण वाले विशेष्य के साथ विशेषण का नाना प्रकार से ८१० समास होवे । नीलोत्पलम (नीलकमल) बहुल ग्रहण से कहीं नित्य होवे जैसे कृष्णसर्प (कृष्ण रंगवाली सर्प) काला सांप । कहीं नहीं होता जैसे "रामो जामदग्न्य" राम जो जमदग्नि का पुत्र (परशुराम) ॥

१००१ ॥ उपमानानि सामान्यवचनैः । २ । १ । ५५ । घनश्यामः ।

(१) सामान्यवाचक के वाचक शब्द के साथ उपमान वाचक शब्द का समास होवे । घनश्याम (घन इव श्याम) मेघ के तुल्य काला ।

१००२ ॥ शाकपार्थिवादीनामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः । शाकप्रियः पार्थिवः । शाकपार्थिवः । देवब्राह्मणः ॥

शाकपार्थिवादियों की सिद्धि के लिये उत्तरपद का लोप करना चाहिये । शाकपार्थिव जिस राजा को शाक प्रिय हो । यहां प्रिय शब्द का लोप हुआ है । देवब्राह्मण (देव पूजक ब्राह्मण) जो ब्राह्मण देवों के पूजने वाला है । यहां पूजक शब्द का लोप हुआ है ।

१००३ ॥ नञ् । २ । २ । ६ नञ् सुपा प्राग्वत् ।

सुबन्त के साथ नञ् का विकल्प करके समास हो ।

१००४ ॥ नलोपो नञः । ६ । ३ । ७३ । नञो नस्य लोप उत्तर पदे । अब्राह्मणः ।

उत्तर पद के परे होते नञ् के "न्" का लोप होवे । अब्राह्मण (जो ब्राह्मण नहीं) ।

१००५ ॥ तस्मान्नुडचि । ६ । ३ । ७४ । लुप्तनकारान्नञ उत्तर पदस्याजादेर्नुट् । अनश्वः । नैकधेत्यादौ तु नशब्देन सह सुप्सुपेति समासः ॥

---

(१) जो वस्तु उपमान (जिस की उपमा दी जाती है) में और उपमेय (जिस की उपमा की जाती है) में सामान्य रूप से रहे वह सामान्यधर्म कहलाता है । जैसे "घन श्याम कृष्ण" इस उदाहरण में घन उपमान है । कृष्ण उपमेय है दोनों का सामान्य धर्म श्यामत्व है ।

जिस नञ् के नकार का १००४ से लोप हुआ हो उस से परे अजादि पद को नुट् का आगम होवे। अनश्वः, जो घोड़ा नहीं। नैकधा (जो एक प्रकार से नहीं) इत्यादियों में "न" शब्द के साथ ८५८ से सुबन्त का समास है नञ् अव्यय का नहीं इसी लिये इस में १००५ की प्राप्ति नहीं।

१००६ ॥ कुगतिप्रादयः । २ । २ । १८ । एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः ।

कुशब्द, और गति संज्ञक शब्द २१६, १००७ और प्रादि शब्द ४५ समर्थ के साथ नित्य समस्यमान होवें। कुपुरुषः (कुत्सितः पुरुषः) बुरा मनुष्य।

१००७॥ ऊर्यादिच्विडाचश्च १।४।६१ ऊर्यादयश्च्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः। ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य। सुपुरुषः

ऊर्यादि, और च्व्यन्त, और डाजन्त क्रिया के योग में गति संज्ञा वाले होवें। ऊरीकृत्य, अङ्गीकार करके। च्वि प्रत्ययान्त जैसे शुक्लीकृत्य (श्वेतकरके) डाच् प्रत्ययान्त जैसे पटपटाकृत्य, पटत् २ ऐसा शब्द करके। सुपुरुषः १००६, ४५ (भला मनुष्य)।

१००८॥ प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया । प्रगत आचार्यः प्राचार्यः ।

प्रादिक उपसर्ग जब गत शब्द के अर्थ में हों वा गत के तुल्य शब्दों के अर्थ में हों तब इन का प्रथमान्त के साथ समास होवे। प्राचार्यः (कुलपरम्परा प्राप्त आचार्य)।

१००९ ॥ अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया । अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे ॥

क्रान्त (उलङ्घ जाना) आदि शब्दों के अर्थ में जब अति वा अति के सदृश कोई उपसर्ग रहे तब उन का द्वितीयान्त के साथ समास होवे "अतिक्रान्तो मालाम्" ऐसे विग्रह करने पर।

१०१० ॥ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते। १ । २ । ४४ । विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनं न तु तस्य पूर्वनिपातः ॥

विग्रह में जिस की विभक्ति नियत हो उस की उपसर्जन संज्ञा होवे, परन्तु उस का पूर्व निपात न होवे।

१०११ ॥ गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य । १ । २ । ४८ । उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः । अतिमालः ।

जिस प्रातिपदिक का अन्त अवयव उपसर्जन १०१० संज्ञक गो शब्द हो वा स्त्री

प्रत्ययान्त हो उस को प्रत्यय होवे। अतिमालः (जो सुन्दरता से माला को अतिक्रम कर गया है।

१०१२॥ अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया। अवक्रुष्टः कोकिलया। अवकोकिल।

क्रुष्ट आदि अर्थ में अव आदिकों का तृतीयान्त के साथ समास होवे। अवकोकिल ७८१ । ११ जो कोकिला से अवक्रुष्ट (बाहूत) हुआ।

१०१३॥ पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या। परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययन।

ग्लान आदिकों के अर्थ में परि आदिकों का चतुर्थ्यन्त के साथ समास होवे पर्यध्ययन पढ़ने के लिये ग्लानियुक्त।

१०१४ निरादय क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बि॥

क्रान्त (गया) आदिकों के अर्थ में निर् आदिकों का पञ्चम्यन्त के साथ समास होवे। निष्कौशाम्बि १ ११ जो कौशाम्बी नगरी से निकल गया है।

१०१५॥ तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३।१।९२ सप्तम्यन्ते पदे कर्मण्यित्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात्।

सप्तम्यन्त जो कर्मणि ८११ इत्यादि पद उन में वाच्यत्व (बोध्यता) करके स्थित जो कुम्भादि अर्थ तिन के वाचक शब्द उपपद कहलावें।

१०१६॥ उपपदमतिङ्। २।२।१९। उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यतेऽतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। अतिङ् किम्। माभवान् भूत्। माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम्। गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः। व्याघ्री अश्वक्रीती कच्छपीत्यादि॥

उपपद का १ ११ समर्थ (एकार्थी भाव के योग्य) के साथ नित्य समास होवे। और यह समास तिङन्त के साथ न होवे। (१) कुम्भकारः इस सूत्र में "अतिङ्" ऐसा क्यों कहा? उत्तर देते हैं "माभवान् भूत्" इस उदाहरण में ७६२ सूत्र में "माङि" ऐसे

---

(१) रूप की सिद्धि ८११ में लिख दी है।

दप्तम्यन्त के निर्देश से १०१५ से माङ् उपपद तो है, परन्तु यदि यहां अतिङ् न ग्रहण करते तो समास होजाता। कृदन्त से परे सुप् की उत्पत्ति के पहिले गति, कारक और उपपद इन तीनों का कृदन्त के साथ समास होवे। व्याघ्री ८३३, ५१८, १३६७ (विशेषेण आसमन्ताज्जिघ्रति) बाघिन। अश्वक्रीती (अश्वेन क्रीता) १३६२ घोडा देकर जो मोल लीगई है। (१) कच्छपी (कच्छुई) इत्यादि और भी जानने।

१०१७ ॥ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याऽव्ययादेः। ५।४।८६। संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम्॥

सङ्ख्यावाचक शब्द (वा) अव्यय है आदि में जिसके और अङ्गुलि शब्द है अन्त में जिस के ऐसे तत्पुरुष समास का अन्तका अवयव अच् प्रत्यय होता है। द्व्यङ्गुलम् २५५ दो अङ्गुल प्रमाण का। निरङ्गुलम् २५५ अङ्गुलियों से निकल गया।

१०१८ ॥ अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः। ५।४।८७। एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्संख्याऽव्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम्॥

अहन्, सर्व, एकदेश (अवयव) सङ्ख्यात और पुण्य इन शब्दों से परे जब रात्रि शब्द आवे तब उस से परे 'अच्' प्रत्यय होवे। इस सूत्र में जो 'च' शब्द है, उस का फल यह है कि सङ्ख्यावाचक शब्द वा अव्येय जिस रात्रि शब्द के आदि में हों उस से भी अच् हो। अहन् का ग्रहण यहां द्वन्द्व समास के लिये है, क्योंकि "अहन् और रात्रि" इन दोनों से तत्पुरुष का सम्भव ही नहीं।

१०१९ ॥ रात्राह्नाहाः पुंसि। २।४।२९। एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः। सर्वरात्रः। संख्यातरात्रः॥

जिस द्वन्द्व वा तत्पुरुष के अन्त में रात्र १०१८ वा, अह्न 'वा' अह १०२१ हो वह पुलिङ्ग ही होवे। अहोरात्र १०१८, ३८८, १२१ (दिन और रात) सर्वरात्रः १०१८ सबरात सङ्ख्यातरात्र १०१८ (गिनीरात)॥

१०२० ॥ संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्। द्विरात्रम्। त्रिरात्रम्॥

जिस रात्र १०१८ के पूर्व सङ्ख्यावाचक शब्द हो सो नपुंसक लिङ्ग होवे। द्विरात्रम् (द्वयोरात्र्योः समाहारः)। त्रिरात्रम् (तिसृणां रात्रीणां समाहारः) १०१८ तीन रात का समूह।

(१) कच्छपी, में सुपि स्थः ३।२।४ इस सूत्र के 'सुपि' इस के योग विभाग करने से 'क' प्रत्यय और ५१८ से पा के आकार का लोप और १३६७ से ङीष् होते हैं।

१०२१ ॥ राजाहःसखिभ्यष्टच् । ५ । ४ । ९१ । एतदन्तात् तत्पुरुषाट्टच् । परमराजः ॥

राजन् अहन् सखि ये शब्द जिस तत्पुरुष के अन्त में होवें तिस का समासान्त "टच्" होवे । परमराजः ८०१ प्रधान राजा ॥

१०२२ ॥ आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः । ६ । ३ । ४६ । महाराजः । प्रकारवचने जातीयर् । महाप्रकारो महाजातीयः ॥

'महत्' इस शब्द को आकार होवे जब समानाधिकरण वाला वा जातीयर् परे हो तब । महाराजः १ २१ ८०१ । प्रकार अर्थ में 'जातीयर्' होता है महाजातीय = बड़े प्रकार वाला ॥

१०२३ ॥ द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः । ६ । ३ । ४७ । आत् स्यात् । द्वादश । अष्टाविंशतिः ॥

संख्या वाचक शब्द उत्तरपद हो तो 'द्वि' और 'अष्टन्' शब्द को आकार होवे परन्तु यदि बहुव्रीहि समास और अशीति शब्द परे हो तो नहीं । द्वादश = बारह । अष्टाविंशति = अठाईस ॥

१०२४ । परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः । २ । ४ । २६ । कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । अर्धपिप्पली ॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में उत्तरपद के लिङ्ग के समान लिङ्ग होवे । कुक्कुटमयूर्यौ (कुक्कुटश्च मयूरी च ते) मयूरीकुक्कुटाविमौ (मयूरी च कुक्कुटश्च तौ) अर्धपिप्पली (पिप्पल्या अर्धम्) पीपर का आधा ॥

१०२५ ॥ द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु न । पञ्चकपालः । पुरोडाश । प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः । आपन्नजीविकः । अलं कुमार्यै । अलंकुमारिः । अत एव ज्ञापकात् समासः । निष्कौशाम्बिः ॥

"द्विगु ८८० समास में" और 'जिस समास का पूर्वपद प्राप्त 'वा' आपन्न 'वा' अलम् हो तिस में" और गति १ ६ समास में उत्तर पद के सदृश लिङ्ग न हो । (१)पञ्च कपाल' ८८१ 'पञ्चसु कपालेषु संस्कृत" (पुरोडाश) प्राप्तजीविक (वा) आपन्न

---

(१) यहाँ ११११ से जो प्रत्यय आया था उस का 'द्विगोर्लुगनपत्ये' । ४ । १ । ८८ । इस करके लुक् हुआ = यह भाव ॥

जीविकः=जीविका पाने वाला। अलकुमारिः १०११=जो कुमारी के लिये समर्थ है। इस उदाहरण में "अलम् पूर्वक समास में उत्तरपद के अनुसार लिङ्ग के निषेध विधान सामर्थ्य से" समास होता है। निष्कौशाम्बिः १०१४॥

१०२६॥ अर्द्धर्चाः पुंसि च। २। ४। ३१। अर्द्धर्चादयः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्द्धर्चः। अर्द्धर्चम्। एवं ध्वजतीर्थशरीरमण्डपयूषदेहाङ्कुशकलशपात्रसूत्रादयः॥

अर्धर्च आदि शब्द पुलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग होवें। अर्धर्चः 'वा' अर्धर्चम्=१०५७ ऋचा का आधा। इसी प्रकार, ध्वज, तीर्थ, शरीर, मण्डप, यूष, देह, अङ्कुश, कलश, पात्र और सूत्र, आदि भी जान लेने॥

१०२७॥ सामान्ये नपुंसकम्। मृदु पचति। प्रातः कमनीयम्॥

॥ इति तत्पुरुषः॥

सामान्य अर्थ की विवक्षा (कहने की इच्छा) मे नपुंसक लिङ्ग होवे। (१) मृदु पचति। प्रातः कमनीयम्=प्रभात काल रमणीय है॥ तत्पुरुष समास समाप्त हुआ॥

॥ अथ बहुव्रीहिः॥

॥ अब बहुव्रीहि समास का वर्णन किया जाता है॥

१०२८॥ शेषो बहुव्रीहिः २। २। २३ अधिकारोऽयम् प्राग्द्वन्द्वात्॥

यहां से द्वन्द्व के पूर्व २ इस सूत्र का अधिकार है॥

१०२९॥ अनेकमन्यपदार्थे। २। २। २४। अनेकम्प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्त्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः॥

अनेक प्रथमान्त शब्द अन्य (द्वितीयान्तादि) पद के अर्थ में वर्त्तमान हों तो वे विकल्प करके समस्यमान होवें और वह समास बहुव्रीहि सञ्ज्ञा वाला होवे॥

१०३०॥ सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ। २। २। ३५। सप्तम्यन्तं विशेषणञ्च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। कण्ठेकालः। अत एव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः॥

---

(१) यहां मृदु शब्द किसी विशेष लिङ्ग वाले शब्द का विशेषण नहीं सामान्य है, इसी कारण नपुंसक हुआ है॥

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त और विशेषण पूर्व धरे जावें। कण्ठेकाल: १०११ (कण्ठे कालो यस्य स) शिव। इस सूत्र में सप्तम्यन्त के पूर्व निपात करने से यह ज्ञात होता है कि कहीं२ प्रथमान्त से भिन्न२ विभक्त्यन्त पदों का भी बहुव्रीहि समास होता है।

१०३१ ॥ हलदन्तात् सप्तम्या संज्ञायाम् । ६ । ३ । ८ । इस न्ताददन्ताच्च सप्तम्या अलुक् । त्वचिसार । प्राप्तमुदकं यम्प्राप्तो दको ग्राम । ऊढरथोऽनड्वान् । उपहृतपशू रुद्र । उद्धृतौदना स्थाली। पीताम्बरो हरि । वीरपुरुषको ग्राम ॥

जिस के अन्त में हल् वा अकार हो उस से परे संज्ञा अर्थ में सप्तमी का लुक् न होवे। त्वचिसार: (त्वचि सारो यस्य) बांस। प्राप्तोदक =ऐसा ग्राम। ऊढरथ (ऊढो रथो येन) बैल। उपहृतपशु (उपहृत पशुर्यस्मै)=रुद्र। उद्धृतौदना (उद्धृता ओदना यस्या)=बटलोही। पीताम्बर (पीताम्बरमम्बरमपि यस्य)=विष्णु। वीरपुरुषक (वीरा पुरुषा यत्र)=शहर॥

१०३२ ॥ प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोप । प्रपति तपर्ण । प्रपर्ण ॥

प्र ४५ आदि से परे जो धातुज (धातु से उत्पन्न भया जो पद) हो उस का विकल्प करके समास होवे और समास में विकल्प करके उत्तर पद का लोप होवे ऐसा कहना चाहिये। प्रपतितपर्ण -(१)प्रपर्ण =जिस के सभी पत्ते गिर पड़े हैं॥

१०३३ ॥ नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः । अविद्य मानपुत्रोऽपुत्रः ॥

नञ् से परे अस्त्यर्थ (विद्यमानता वाचक)कों का विकल्प करके समास होवे और समास पक्ष में विकल्प करके उत्तरपद का लोप होवे। अविद्यमानपुत्रो (२) अपुत्र =जिस के (गृह में) पुत्र नहीं है॥

१०३४ ॥ स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे स्त्रि यामपूरणीप्रियादिषु । ६ । ३ । ३४ । भाषितपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावो यत्र

(१) यहां पतित शब्द का लोप हुआ है। इस समास का यह फल है कि 'पतित शब्द भी उत्तर पद कहलाया नहीं तो इस का लोप न होता॥

(२) यहां "विद्यमान" शब्द का लोप हुआ है॥

तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं समानाधिकरणे न तु पूरण्यां प्रियादौ च। गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः। चित्रगुः। रूपवद्भार्य्यः। अनूङ्किम्। वामोरूभार्य्यः॥

जिस शब्द का भाषित (१) पुंस्क प्रवृत्ति निमित्त है यदि उस शब्द से परे ऊङ् १३७० प्रत्यय न रहे तब वह शब्द स्त्री वाचक हो तो उस का पुंवाचक के तुल्य रूप हो जावे जब समान अधिकरण वाला स्त्रीलिङ्ग उत्तर पद रहे तब। परन्तु पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्री वाचक 'वा' प्रियादि गण पठित शब्दों में से कोई एक परे रहे तो नहीं होता। १०११ से गो शब्द को ह्रस्व किया तो। (२)चित्रगु' (चित्रा गौर्यस्य स)=जिस की गौ चित्र वर्ण की है" सिद्ध हुआ। रूपवद्भार्य. (रूपवती भार्या यस्य सः) १०३४, १०११ जिस की स्त्री सुन्दरी है। इस सूत्र में "अनूङ्" यह क्यों कहा? उत्तर देता है "वामोरूभार्यः" यहां १३७४ से ऊङ् आया है तो यहा पुंवद्भाव न हो जावे॥

१०३५॥ अप् पूरणीप्रमाण्योः ५। ४। ११६ पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्गन्तदन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ता. कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स्त्रीप्रमाणः। अप्रियादिषु किम्। कल्याणीप्रियः। इत्यादि॥

जिस बहुव्रीहि का उत्तरपद पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग हो 'वा' प्रमाणी शब्द हो उस का अन्तावयव 'अप्' प्रत्यय होवे। (३) कल्याणी पञ्चमाः- जिन रातों की पाचमी रात मङ्गल देने वाली है। स्त्री प्रमाणः २५५ जिसे स्त्री प्रमाण है। १०३४ में "अप्रियादिषु" यह क्यों कहा? उत्तर देता है "कल्याणी प्रियः" (कल्याणी प्रिया यस्य सः)। इस में "कल्याणी" शब्द को पुंवद्भाव न होजावे। इत्यादि और भी जानो॥

१०३६॥ बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्। ५। ४। ११३। स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच्। दीर्घसक्थ। जलजाक्षी। स्वा-

(१) शब्द के जिस प्रवृत्ति निमित्त के रहते कभी २ पुंलिङ्ग विशिष्ट भी अर्थ कहा जावे सो निमित्त॥

(२) यहां चित्रा को १०३४ से पुंवद्भाव कर लेना॥

(३)यहा पञ्चमी शब्द १२५२ से पूरणार्थ प्रत्ययान्त है उसके उत्तरपद होने से 'कल्याणी' में १०३४ की प्राप्ति नहीं और अप् के आने पर २५५, और १३२५ भी लगा लेने।

ङ्गात् किम्। दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच्॥

स्वाङ्ग १२६१ वाचक जो सक्थि वा "अक्षि" शब्द जिस बहुव्रीहि के अन्त में हो उस से परे षच् प्रत्यय (समासान्त) हो। दीर्घसक्थ = जिसकी टांग लम्बी हो। कमलाक्षी ६६६, १२४२ जिस की की आंखें कमलों के तुल्य हों। इस सूत्र में 'स्वाङ्गात्' यह क्यों कहा? उत्तर देता है। दीर्घसक्थि (शकटम् गाड़ी) और स्थूलाक्षा (वेणुयष्टिः) मोटी 'गांठ वाली बांस की लाठी। यहां षच् न हो क्योंकि ये स्वाङ्ग नहीं 'स्थूलाक्षा' में १०१८ से अच् प्रत्यय करेंगे॥

१०३७॥ द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः। ५।४।११५। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।

द्वि 'वा' त्रि से परे जो "मूर्धन्" शब्द वह जिस बहुव्रीहि के अन्त में हो उसका अन्त का अवयव 'ष' हो। द्विमूर्ध (द्वौ मूर्धानौ यस्य सः) ८०१। त्रिमूर्ध (त्रयो मूर्धानो यस्य सः) ८०२ = जिस के तीन सिर होवें॥

१०३८॥ अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः। ५।४।११७। अप् स्यात्। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः॥

अन्तर् 'वा' बहिस् से परे जो लोमन् शब्द वह जिस बहुव्रीहि में हो उसका अन्तावयव 'अप्' प्रत्यय होवे। अन्तर्लोम ८०१। बहिर्लोमः ८०१ जिसके बाहिर केश हों॥

१०३९॥ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। ५।४।१३८। हस्त्यादिवर्जितादुपमानात् परस्य पादस्य लोपः। व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्। हस्तिपादः। कुसूलपादः॥

हस्ति आदि गण में उच्चरित शब्दों को छोड़ उपमानसे परे जो 'पाद' शब्द उसके अन्त का लोप (१) होवे। व्याघ्रपात् जिसके पांव व्याघ्र के पांव समान हों। इसी सूत्र में "अहस्त्यादिभ्य" यह क्यों कहा? उत्तर देता है 'हस्तिपाद' (हस्तिन पादाविव पादौ यस्य सः) और 'कुसूलपाद' (कुसूलस्येव (२) पादौ यस्य सः) इन में लोप न हो जावे॥

१०४०॥ संख्यासुपूर्वस्य। ५।४।१४०। लोपः स्यात्। द्विपात्। सुपात्॥

---

(१) यह लोप भी समासान्त है इस लिये १०१८ १०? १०३१ १०३२, इन के विषय में १०३० से कप् नहीं होता।

(२) अन्न के रखने के लिये कोठी (कठोतरा)॥

जिस पाद शब्द के पूर्व सख्या वाचक शब्द 'वा' 'सु' शब्द हो तो उस के अन्त का लोप होवे। द्विपात् (द्वौ पादावस्य) दुपाया। सुपात् शोभनौ पादावस्य अच्छे पांउ वाला॥

१०४१॥ उद्विभ्यांकाकुदस्य ५। ४। १४८ लोपः स्यात्। उत्काकुत्। विकाकुत्॥

उत् (वा) वि जिस काकुद शब्द के पूर्व हो उसके अन्त का लोप होवे। उत्काकुत् ऊंचे तालु वाला। विकाकुत् (विगत काकुद यस्य)॥

१०४२॥ पूर्णाद्विभाषा। ५। ४। १४९। पूर्णकाकुत्। पूर्णकाकुदः

पूर्ण शब्द से परे काकुद के अन्त का विकल्प से लोप होवे=पूर्णकाकुत् 'वा' पूर्णकाकुदः=जिस का तालु पूर्ण हो॥

१०४३॥ सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः। ५। ४। १५०। सुहृन्मित्रम्। दुर्हृदमित्रः॥

'सुहृद्' और 'दुर्हृद्' ये दोनों यदि क्रम से 'मित्र' और 'शत्रु' के वाचक (१) हों तो सु' और 'दुर्' के परे हृदय को 'हृद्' आदेश निपात से हो। सुहृद् (मित्र)। दुर्हृद् (शत्रु)।

१०४४॥ उरः प्रभृतिभ्यः कप्। ५। ४। १५१॥

उरस् (२) प्रभृति गण का कोई शब्द समास के अन्त में हो तो उस से परे 'कप्' प्रत्यय होवे॥

१०४५॥ कस्कादिषु च। ८। ३। ४८ एण्विशा उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः इति। सः। व्यूढोरस्कः। प्रियसर्पिष्कः॥

कस्कादि गण में इण् प्रत्याहार से परे जो विसर्ग उसको ष् आदेश होवे (३) अन्य विसर्ग को तो स् होवे। इस सूत्र से विसर्ग को स् हुआ। व्यूढोरस्कः (व्यूढ=विशाल उरो-यस्य सः)=जिसकी छाती चौडी हो। प्रिय सर्पिष्क.=जिस को सर्पिस् (घी) प्रिय हो॥

१०४६॥ निष्ठा। २। २। ३६। निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् युक्तायोगः॥

---

(१) मित्र और शत्रु के जहां वाचक नहीं वहां, 'सुहृदयः' और 'दुर्हृदयः ऐसे रूप आते हैं॥

(२) "उरस्, सर्पिस् उपानह्, पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौः, लक्ष्मी', दधि, मधु, शालि. अर्थान्नञ" इत्युर' प्रभृतय'॥

(३) जो इण् से परे न हों॥

'जिस शब्द के अन्त में निष्ठा न हो" वह बहुव्रीहि समास में पूर्व बरा जावे। युक्तयोग। जो योग में लगा हो॥

१०४७ ॥ शेषाद्विभाषा ।५।४।१५४। अनुक्तसमासान्ताद्बहुव्रीहेः कब्वा । महायशस्कः । महायशाः ॥ ॥ इति बहुव्रीहिः ॥

जिस से परे कोई समासान्त विधान न किया हो ऐसे शेषाधिकारस्थ (१ २८) बहुव्रीहि समास से परे कप् प्रत्यय विकल्प करके होवे। महायशस्कः (वा) महायशाः (महद्यशोऽस्य सः) १०२२—जिस की कीर्ति बड़ी हो ॥

। बहुव्रीहि समास समाप्त हुआ ।

॥ अथ द्वन्द्वः ॥

॥ अब द्वन्द्व समास का वर्णन किया जाता है ॥

१०४८ ॥ चार्थे द्वन्द्वः ।२।२।२९। अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः । समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्वेति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । भिक्षामट गां चानयेत्यन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः । अनयोरसामर्थ्यात् समासो न । धवखदिरौ छिन्धीति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः । संज्ञापरिभाषमिति समूहः समाहारः ॥

'च' के अर्थ में वर्त्तमान जो अनेक सुबन्त उनका समास हो उस समास की द्वन्द्व संज्ञा हो। समुच्चय अन्वाचय इतरेतरयोग और समाहार, ये चार 'च' के अर्थ हैं। "परस्पर निरपेक्ष जो अनेक पदार्थ उनका एक पदार्थ में जो सम्बन्ध उसको समुच्चय कहते हैं। जैसे "ईश्वरं च गुरुं च भजस्व" (ईश्वर को और गुरु को भजो) यहां ईश्वर और गुरु दोनों परस्पर निराकाङ्क्ष हैं इनका भजन क्रिया में सम्बन्ध है। "एक का मुख्य रूप से और दूसरे का अमुख्य (गौण) रूप से जो किसी दूसरे में अन्वय हो तो" उस को अन्वाचय कहते हैं जैसे 'भिक्षामट गां चानय"(भिक्षा को जाओ और गौ को लाओ) यहां प्रधान कार्य्य भिक्षा का तो मुख्य रूप से अन्वय है और गौ का अमुख्य (१) रूप से। इन दोनों में सामर्थ्य ८११ के न होने से समास नहीं होता। धवखदिरौ (धवश्च खदिरश्च तौ) छिन्धि—धव वृक्ष को और खैर के वृक्ष को काट" इस में "मिलितों का ही छेदन में अन्वय है यहां"

(१) यदि मार्ग में कहीं गौ मिले तो ले आओ नहीं तो नहीं मुख्य तो का यह आशय है। इसी हेतु से इस का अमुख्य रूप से सम्बन्ध है॥

"इतरेतरयोग" है। 'समूह' को 'समाहार' कहते हैं, जैसे, "संज्ञापरिभाषम्" संज्ञा और परिभाषाओं का समूह ॥

१०४९ ॥ **राजदन्तादिषु परम् । २ । २ । ३१ । एषु पूर्वप्रयोगार्हम्परं स्यात् । दन्तानां राजा राजदन्तः ॥**

राजदन्तादि ("राजदन्त" शब्द है आदि में जिस के उस) गण में पूर्वप्रयोग (पूर्व निपात) ९६३ के योग्य शब्द का पर निपात हो। अर्थात् राजदन्तादि गण में जिस को ९६३ से पूर्व रखना चाहिये उस को पीछे रखना। राजदन्तः ९८६ = दान्तों का राजा ॥

१०५० ॥ **धर्म्मादिष्वनियमः । अर्थधर्म्मौ । धर्म्मार्थौ । इत्यादि ॥**

धर्मादि गण में १०४९ सूत्र के लगने का कोई नियम नहीं। अर्थधर्मौ 'वा' धर्म्मार्थौ = अर्थ और धर्म। इत्यादि और भी जान लेने ॥

१०५१ ॥ **द्वन्द्वे घि । २ । २ । ३२ । पूर्वं स्यात् । हरिहरौ ॥**

द्वन्द्व समास १०४८ में घि १८४ संज्ञा वाले शब्द का पूर्व प्रयोग हो। हरिहरौ = विष्णु और शिव ॥

१०५२ ॥ **अजाद्यदन्तम् । २ । २ । ३३ । ईशकृष्णौ ॥**

द्वन्द्व समास में अजादि (अच् (स्वर) है आदि में जिस के) और अदन्त (अकार है अन्त में जिस के) जो शब्द उस का पूर्व प्रयोग हो। ईशकृष्णौ = शिव और वासुदेव ॥

१०५३ ॥ **अल्पाच्तरम् । २ । २ । ३४ । शिवकेशवौ ॥**

जिस शब्द में अल्प (थोड़े) अच् हों वह भी द्वन्द्व समास में पूर्व धरा जावे। शिवकेशवौ = शिव और विष्णु ॥

१०५४ ॥ **पिता मात्रा । १ । २ । ७० । मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । पितरौ । मातापितरौ ॥**

मातृ शब्द के साथ पितृ शब्द का द्वन्द्व समास हो तो पितृ शब्द विकल्प करके शेष रह जाता है। पितरौ (माता च पिता च) वा (१) मातापितरौ, माता और पिता ॥

१०५५ ॥ **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य्यसेनाङ्गानाम् २ । ४ । २ एषां द्वन्द्व एकवत् । पाणिपादम् । मार्दङ्गिकपाणविकम् । रथिकाश्वारोहम् ॥**

प्राणी (शरीर वाला चेतन), तूर्य (बाजा), और सेना इन के अङ्गों का द्वन्द्वसमास

---

(१) यहां पितृ शब्द के परे होते मातृ शब्द को। आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ६ । ३ । २५ से आनङ् होता है ॥

"जिस शब्द के अन्त में निष्ठा न हो" यह बहुव्रीहि समास में पूर्व बना जावे। युक्तयोग। जो योग में लगा हो॥

१०४७॥ शेषाद्विभाषा। ५। ४। १५४॥ अनुक्तसमासान्ताद्बहुव्रीहेः कप् वा। महायशस्कः। महायशाः॥ ॥ इति बहुव्रीहिः॥

जिस से परे कोई समासान्त विधान न किया हो ऐसे शेषाधिकारस्थ (१ २८) बहुव्रीहि समास से परे कप् प्रत्यय विकल्प करके होवे। महायशस्कः (वा) महायशाः (महद्यशोयस्य सः) १ ११—जिस की कीर्त्ति बड़ी हो॥

। बहुव्रीहि समास समाप्त हुआ।

॥ अथ द्वन्द्वः ॥

॥ अब द्वन्द्व समास का वर्णन किया जाता है॥

१०४८॥ चार्थे द्वन्द्वः। २। २। २९। अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्त्तमानं वा समस्यते स द्वन्द्वः। समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः। तत्रेश्वरं गुरुञ्च भजस्वेति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः। भिक्षामट गाञ्चानयेत्यन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः। अनयोरसामर्थ्यात् समासो न। धवखदिरौ छिन्धीति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः। संज्ञापरिभाषमिति समूहः समाहारः॥

'च' के अर्थ में वर्त्तमान जो अनेक सुबन्त उनका समास हो उस समास की द्वन्द्व संज्ञा हो। समुच्चय अन्वाचय इतरेतर योग, और समाहार ये चार 'च' के अर्थ हैं। "परस्पर निरपेक्ष जो अनेक पदार्थ उनका एक पदार्थ में जो सम्बन्ध उसको समुच्चय कहते हैं। जैसे "ईश्वरं च गुरुं च भजस्व" (ईश्वर की और गुरु को भजो) यहां ईश्वर और गुरु दोनों परस्पर निराकाङ्क्ष हैं उनका भजन क्रिया से सम्बन्ध है। 'एक का मुख्य रूप से और दूसरे का अमुख्य (गौण) रूप से जो किसी दूसरे में अन्वय हो तो" उस को अन्वाचय कहते हैं जैसे "भिक्षा मट गां चानय"(भिक्षा को जाओ और गौ को लाओ) यहां प्रधान कार्य्य भिक्षा का तो मुख्य रूप से अन्वय है और गौ का अमुख्य (१) रूप से। इन दोनों में सामर्थ्य८११ के न होने से समास नहीं होता। धवखदिरौ (धवश्च खदिरश्च तौ) छिन्धि—धव वृक्ष को और खैर के वृक्ष को साथ ही काट" इस में 'मिलितों का ही छेदन में अन्वय है यही"

(१) यदि मार्ग में कहीं गौ मिली तो ले आना नहीं तो नहीं कुछ हानि का यह आशय है। इसी हेतु से इस का अमुख्य रूप से सम्बन्ध है॥

१०५८॥ अक्ष्णोऽदर्शनात् । ५ । ४ । ७६ । अचक्षुःपर्य्यायादक्ष्णोऽच् स्यात् । गवामक्षीव गवाक्षः ॥

जो आंख का वाचक अक्षि शब्द न हो उस से परे समास में 'अच्' प्रत्यय हो। गवाक्षः=गौ की आंख के समान (झरोखा)॥

१०५९॥ उपसर्गादध्वनः ५।४।८५ प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः।

उपसर्ग से परे जो अध्वन् शब्द उस से परे समास में 'अच्' प्रत्यय होवे। प्राध्वः रथ (रथ जो मार्ग पर पहुंच गया हो)॥

१०६०॥ न पूजनात् ५।४।६९ पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः। सुराजा। अतिराजा ॥ इति समासान्ताः ॥

पूजन अर्थ वालों से परे समासान्त प्रत्यय न होवें। (१)सुराजा (अच्छा राजा), अतिराजा (सब से उत्तम राजा)॥ ॥ समासान्त प्रकरण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ तद्धिताः ॥

॥ अब तद्धितों का वर्णन किया जाता है ॥

१०६१॥समर्थानां प्रथमाद्वा ४।१।८२ इदमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत् ॥

इस सूत्र के तीनों पदों (समर्थानाम्६—प्रथमात्५—वा अ०) का १२७८ सूत्र के पूर्व पर्यन्त अधिकार है। इस का अर्थ १०७१ आदि सूत्रों में स्पष्ट हो जावेगा॥

१०६२॥ अश्वपत्यादिभ्यश्च। ४ । १ । ८४ । एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ॥

अश्वपत्यादि गण से परे प्राग्दीव्यतीय (११९७ सूत्र के पूर्व के प्रत्ययों के अर्थ) में 'अण्' प्रत्यय होवे ॥

१०६३॥ तद्धितेष्वचामादेः ७ । २ । ११७ ञिति णिति च तद्धिते परेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात्। अश्वपतेरपत्यादि । आश्वपतम् । गाणपतम् ॥

---

(१) यहां १०२१ से 'टच्' समासान्त पाया था उस का १०६० से निषेध हुआ, ऐसे ही "अतिराजा" में जानना। परन्तु यहां सु 'वा' अति ये दोनो ही लिये हैं इस से "परमराजः" में पूजनार्थ के पूर्व होने पर भी टच् प्रत्यय हो ही जाता है॥

एकवचनान्त के तुल्य हो। पाणिपादम् ९९८ हाथ और पैर। मार्दङ्गिकपाणविकम्—मृदङ्ग बजाने वाले और ढोल बजाने वाले। रथिकाश्वारोहम्—रथों पर और घोड़ों पर चढ़ने वाले ॥

१०५६ ॥ द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे। ५। ४। १०६। चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच् स्यात् समाहारे। वाक्त्वचम्। त्वक्स्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्विषम्। छत्रोपानहम्। समाहारे किम्। प्रावृट्शरदौ ॥ ॥ इति द्वन्द्वः ॥

चु (चवर्ग) 'वा' द 'वा' ष् 'वा' ह जिस द्वन्द्व समास के अन्त में हो उस से परे "टच्" प्रत्यय हो समूह में। वाक्त्वचम्—वाणी (वागिन्द्रिय) और त्वचा (त्वगिन्द्रिय) का समूह। त्वक्स्रजम्—छिलके और माला का समूह। शमीदृषदम्—लकड़ी और पत्थर का समुदाय। वाक्त्विषम्—वाणी और प्रकाश का समुदाय। छत्रोपानहम्—छतरी और जूती का समुदाय। इस सूत्र में "समाहारे" यह पद क्यों कहा? उत्तर देता है "प्रावृट्शरदौ" (वर्षा ऋतु और शरद् ऋतु) यहां टच् न हो जावे ॥

। द्वन्द्व समास समाप्त हुआ।

॥ अथ समासान्ता ॥

अब समासान्तों का वर्णन किया जाता है ॥

१०५७ ॥ ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे। ५। ४। ७४। ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः। अक्षे या धूस्तदन्तस्य न। अर्धर्चः। विष्णुपुरम्। विमलापं सरः। राजधुरा। अक्षे तु। अक्षधू दृढधूरक्षः। सखिपथः। रम्यपथो देशः ॥

ऋच् पुर् अप् धुर् और पथिन् इन शब्दों में से कोई शब्द हो अन्त में जिस के उस समास का अन्तावयव 'अ' प्रत्यय हो (उस से परे 'अ' प्रत्यय हो) परन्तु पहिये की धुरी का वाचक धुर् शब्द हो तो नहीं। अर्धर्चः (ऋचोऽर्धम्) १ २८। विष्णुपुरम् (विष्णोः पूः) विष्णु की पुरी। विमलापम् (विमला आपो यस्य तत्) सरोवर जिस का जल निर्मल हो। राजधुरा (राज्ञो धूः) १ १०, ११११—राजा का भार। अक्ष में तो "अक्षधूः"—पहिये की धुरा। 'दृढधूः' (दृढा धूरस्य) पहिया जिस की धुरा दृढ़ हो। यहां 'अ' प्रत्यय नहीं हुआ। सखिपथः (सख्युः पन्था यत्र) रम्यपथः (रम्यः पन्था यत्र) जिस देश का मार्ग रम्य हो।

१०५८ ॥ अक्ष्णोऽदर्शनात् । ५ । ४ । ७६ । अचक्षुःपर्य्यायादक्ष्णोऽच् स्यात् । गवामक्षीव गवाक्षः ॥

जो आंख का वाचक अक्षि शब्द न हो उस से परे समास में 'अच्' प्रत्यय हो। गवाक्ष' = गौ की आंख के समान (झरोखा) ॥

१०५९ ॥ उपसर्गादध्वनः ५ । ४ । ८५ प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ।

उपसर्ग से परे जो अध्वन् शब्द उस से परे समास में 'अच्' प्रत्यय होवे। प्राध्वः रथ (रथ जो मार्ग पर पहुंच गया हो) ॥

१०६० ॥ न पूजनात् ५ । ४ । ६९ पूजनार्थात् परेभ्यः समासान्ता न स्युः । सुराजा । अतिराजा ॥ इति समासान्ताः ॥

पूजन अर्थ वालों से परे समासान्त प्रत्यय न होवें। (१)सुराजा (अच्छा राजा), अतिराजा (सब से उत्तम राजा) ॥ ॥ समासान्त प्रकरण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ तद्धिताः ॥

॥ अब तद्धितों का वर्णन किया जाता है ॥

१०६१ ॥ समर्थानां प्रथमाद्वा ४ । १ । ८२ इदमधिक्रियते प्राग्दिश इति यावत् ॥

इस सूत्र के तीनों पदों (समर्थानाम्६—प्रथमात्५—वा अ०) का १२७८ सूत्र के पूर्व पर्यन्त अधिकार है। इस का अर्थ १०७१ आदि सूत्रों में स्पष्ट हो जावेगा ॥

१०६२ ॥ अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ । एभ्योऽण् स्यात् प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ॥

अश्वपत्यादि गण से परे प्राग्दीव्यतीय (११९७ सूत्र के पूर्व के प्रत्ययों के अर्थ) में 'अण्' प्रत्यय होवे ॥

१०६३ ॥ तद्धितेष्वचामादेः ७ । २ । ११७ ञिति णिति च तद्धिते परेऽचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । अश्वपतेरपत्यादि । आश्वपतम् । गाणपतम् ॥

---

(१) यहां १०२१ से 'टच्' समासान्त पाया था उस का १०६० से निषेध हुआ, ऐसे ही "अतिराजा" में जानना। परन्तु यहां सु 'आ' अति ये दोनों ही लिये हैं इस से "परमराजः" में पूजनार्थ के पूर्व होने पर भी टच् प्रत्यय हो ही जाता है ॥

९८० से इस सूत्र का पद सिद्ध दिया है। आश्वपतम् १ ६२ १ ६१ २११ अश्वपति राजा का सन्तान आदि। गाणपतम् (गणपतेरपत्यादि)=गणेश की सन्तान आदि॥

१०६४॥ दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४।१।८५ प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु। दितेरपत्य दैत्य। अदितेरादित्यस्य वा आदित्यः प्राजापत्य॥

दिति अदिति आदित्य और पत्युत्तरपद (पति शब्द है उत्तरपद जिस का) इन से परे 'ण्य' प्रत्यय ११८० सूत्र से पूर्व पर्यन्त आने वाले प्रत्ययों के अर्थों में होवे। दैत्य १ ६१ २११=दिति की सन्तान आदि (असुर)। (१) आदित्य अदिति की सन्तान आदि (देवता)। प्राजापत्य २११ (प्रजापतेरपत्यम्)॥

१०६५॥ देवाद्यञञौ। दैव्यम्। दैवम्॥

देव शब्द से परे यञ् वा अञ् प्रत्यय होवे। दैव्यम् (देव+यञ्) २११ वा दैवम् (देव+अञ्) २११=देव से जो उत्पन्न भया॥

१०६६॥ बहिषष्टिलोपो यञ् च। बाह्यः॥ (२)

बहिस् शब्द की टि ४८ का लोप और यञ् प्रत्यय होवे बाह्य (बहिर्भव) जो बाहर हो। (२) बहिस् शब्द की टि का लोप और ईकक् प्रत्यय भी होवे।

१०६७॥ किति च ७।२।११८ अचामादेरचो वृद्धि स्यात्। बाहीक॥

अचों में आदि अच् को वृद्धि होवे जब कित् तद्धित प्रत्यय परे हो। बाहीक=जो बाहिर हो।

१०६८॥ गोरजादिप्रसङ्गे यत्। गोरपत्यादि। गव्यम्॥

गो शब्द से परे अजादि प्रत्यय प्राप्त हो तो उनको बाध "यत्" प्रत्यय होवे। गव्यम् २८=गौ की सन्तान आदि॥

१०६९॥ उत्सादिभ्योऽञ् ४।१।८६ औत्स॥

॥ इत्यपत्यादिविकाराम्तार्थाः प्रत्ययाः॥

---

(१) यहां 'अदिति' और "आदित्य' दोनों शब्दों से परे 'ण्य' प्रत्यय के आने से आदित्य ऐसा ही रूप बनता है। परन्तु अदिति शब्द के इकार का २११ से लोप। और आदित्य शब्द से 'ण्य' करने पर २११ से अकार का लोप और हलोयमां यमि लोप ८।४।६४। से यकार लोप कर लेना। (२) "ईकक् च" यह भी एक भिन्न ही वार्तिक है॥

उत्स आदि से परे 'अञ् प्रत्यय होवे। औत्सः (१०६३) २५५ (उत्सस्यापत्यादि)। प्रत्ययाः अपत्य १०७१ (सन्तान) से आरम्भ कर विकार ११८९ पर्यन्त अर्थों वाले प्रत्यय समाप्त हुए॥

१०७० ॥ स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४। १। ८७ धान्यानां भवन इत्यत. प्रागर्थेष्वाभ्यामेतौ स्तः। स्त्रैणः। पौंस्नः॥

इस सूत्र से लेकर १२४३ सूत्र पर्यन्त जोनसे अर्थ गिने गए उन अर्थों में स्त्री और पुस् शब्द से परे क्रम से 'नञ्' और 'स्नञ्' प्रत्यय होवें। स्त्रैण. १०६३, १५१ (स्त्रीषु-भव.) पौस्नः १०६१, २१ (पुसु भवः) पुरुषों में जो होवे॥

१०७१ ॥ तस्यापत्यम् ४। १। ९२ षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्चप्रत्यया वा स्युः॥

(१) करदी है सन्धि जिस में ऐसे समर्थ (तद्धित प्रत्यय के साथ एकार्थीभावरूप से मिलने वाले) षष्ठ्यन्त से परे अपत्य सन्तान अर्थ में उक्त (जो कहे गए हैं) और वक्ष्यमाण (जो कहे जावेंगे) प्रत्यय विकल्प से होवें॥

१०७२॥ ओर्गुणः ६। ४। १४६ उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते। उपगोरपत्यमौपगव.। आश्वपतः। दैत्यः। औत्स.। स्त्रैण·। पौंस्न.॥

तद्धित प्रत्यय के परे होते उवर्णान्त 'भ' सञ्ज्ञा वाले को गुण होवे। औपगव. १०६३ २६ उपगु का सन्तान। आश्वपतः २५५ (अश्वपतेरपत्यम्) दैत्यः २५५ "दितेरपत्यम्" औत्स. २५५ (२) (उत्सस्यापत्यम्) स्त्रैणः। पौंस्नः = पुरुष का सन्तान।

१०७३ ॥ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४। १। १६२। अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात्॥

सन्तानत्व रूप करके वक्ता को इष्ट जो पौत्र (पुत्र का पुत्र) आदि सो गोत्र सञ्ज्ञावाला होवे,

---

(१) यहां १०६१ सूत्र की अनुवृत्ति करने से यह अर्थ हुआ है क्योंकि १०७१ सूत्र में प्रथम (पहिला) पद तस्य जो है वह षष्ठ्यन्त मात्र का उपलक्षण है और अध्याहार से पञ्चमी का अर्थ मिला है। इस लिये षष्ठ्यन्तात् यह वृत्ति में लिखा है। कोई कहे कि यहां कृतसन्धेः, क्यों कहा तो इस का यह उत्तर है कि सु + उत्थित यहां सन्धि करके सूत्थित शब्द से १०८१ लगे नहीं तो प्रत्यय के पीछे सन्धि करने पर सावुत्थिति। ऐसा अनिष्ट रूप हो जावेगा। (२) उत्स (जल का झरना) इस का सन्तान के साथ योग "गाङ्गेयो भीष्म." इस के समान है।

१०७४ ॥ एको गोत्रे ४ । १ । ९३ प्रत्यय स्यात् । उपगोर्गोत्रा पत्यमौपगव ॥

अब गोत्र १ ०१ संज्ञावाले प्रत्यय की विवक्षा हो तब एक ही प्रत्यय हो। औपगव' — उपगु का पोत्र वा प्रपौत्र आदि सन्तान ॥

१ ०७५ ॥ गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १ ५ । गोत्रापत्ये । गर्गस्य गोत्रापत्यंगार्ग्यः । वात्स्य ।

गोत्र १ ०१ रूप अपत्य (सन्तान) अर्थ में गर्गादियों से परे "यञ्" प्रत्यय होवे। गार्ग्य' १ ४१ २११ (गर्गस्य गोत्रापत्यम्) वात्स्य' १ ४१ २११ वत्स का पौत्र वा प्रपौत्र आदि सन्तान।

१०७६ ॥ यञञोश्च २ । ४ । ६४ गोत्रे यद्यञन्तमञन्तञ्च तद् वयवयोरेतयोर्लुक् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । गर्गाः वत्सा ॥

गोत्र १ ०१ में जो यञ् प्रत्ययान्त और अञ् प्रत्ययान्त शब्द तिन के अवयव यञ् और अञ् का लुक् होवे यञ् वा अञ् प्रत्यय निमित्त बहुवचन में परन्तु गोत्र प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग हो तो नहीं। गर्गा' — गर्ग के पौत्र वा प्रपौत्र आदि सन्तान। वत्सा' — वत्स के पौत्र वा प्रपौत्र आदि सन्तान ॥

१ ०७७ ॥ जीवति तु वंश्ये युवा ४ । १ १६३ वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यञ्चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात् ॥

पिता पितामह प्रपितामह इन में कोई जीता हो तो चतुर्थ पीढ़ी से लेकर जो अपत्य (सन्तान) वह केवल 'युवन्' संज्ञा वाला होवे ॥

१०७८ ॥ गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् । ४ । १ । ९४ यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात्। स्त्रियान्तु न युवसंज्ञा ॥

युवन् १ ०० संज्ञक सन्तान अर्थ में जो प्रत्यय करना हो वह पहिले गोत्र १ ०१ संज्ञक प्रत्यय हो चुका है जिस से उस से परे युवरूप सन्तान अर्थ में होवे और स्त्रीलिङ्ग में युवन् संज्ञा नहीं होती ॥

१०७९ ॥ यञिञोश्च ४ । १ । १ १ गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात् फक् ।

गोत्र १०७१ रूप सन्तान अर्थ में जो यञ् वा इञ् तदन्त से परे युव रूप सन्तान अर्थ में 'फक्' प्रत्यय होवे।

१०८ आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् । ७ । १ । २

प्रत्ययादेः फस्य आयन् ढस्यैय् खस्य ईन् छस्य ईय् घस्य इय् एते स्युः । गर्गस्य युवापत्यङ्गार्ग्यायणः । दाक्षायणः ॥

प्रत्यय के आदि में जो फ्, ढ्, ख्, छ्, और घ् इन को क्रम से आयन्, एय्, ईन्, ईय् और इय् होवें। गार्ग्यायणः १०७५, १०७८, २५५ गर्ग का प्रपौत्र आदि सन्तान। दाक्षायणः=दक्ष का प्रपौत्र आदि सन्तान ॥

१०८१ ॥ अत इञ् । ४ । १ । ९५ । अपत्येऽर्थे । दाक्षिः ॥

अपत्य (सन्तान) अर्थ में अकारान्त से परे इञ् प्रत्यय होवे। दाक्षिः २५५ (दक्षस्यापत्यम्) दक्ष का सन्तान।

१०८२ ॥ बाह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ९६ । बाहविः । औडुलोमिः आकृतिगणोऽयम् ॥

बाहु आदि गण से परे इञ् प्रत्यय होवे । बाहविः १०७२, २६ (बाहोरपत्यम्) बाहु का सन्तान। औडुलोमि १०६३, ८७२ उडुलोमन् का सन्तान । यह बाह्वादि गण आकृतिगण है ॥

१०८३ ॥ अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् । ४ । १ । १०४ । ये त्वत्रानृषयस्तेभ्योऽपत्येऽन्यत्र तु गोत्रे । विदस्य गोत्रं वैदः । वैदौ । विदाः । पुत्रस्यापत्यंपौत्रः । पौत्रौ । पौत्राः । एवं दौहित्रादयः ॥

जो शब्द ऋषि वाचक नहीं और उन का विदादि गण में पाठ हो तो उन से अव्यवहित रूप सन्तान अर्थ में अञ् प्रत्यय होवे। और यदि वे शब्द ऋषिवाचक हों तो उन से परे गोत्र १०७२ रूप सन्तान अर्थ में अञ् प्रत्यय होवे । वैदः २५५ विद ऋषिका गोत्र रूप सन्तान इस का द्वि० में वैदौ, और बहु० मे विदाः १०७६ पौत्रः १०६३,२५५ पोता (पोत्ता) द्वि० में पौत्रौ बहु० में पौत्राः ऐसे ही दौहित्रः (दुहितुरपत्यम्) १०६३, १८ (दोहतरा) इत्यादि जानना।

१०८४ ॥ शिवादिभ्योऽण् । ४ । १ । ११२ । अपत्ये । शैवः । गाङ्गः ।

शिवादिगण से परे अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होवे। शैवः (शिवस्यापत्यम्) १०६३, २५५ गाङ्गः १०६३, २५५ गङ्गा का पुत्र ॥

१०८५ ॥ ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ॥ ४ । १ । ११४ । ऋषिभ्यः वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः । श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः । वासुदेवः कुरुभ्यः । नाकुलः साहदेवः ॥

ऋषियों के और 'अन्धक वंश सम्बन्धी और वृष्णि वंश सम्बन्धी और कुरुवंश सम्बन्धी व्यक्तियों के" नाम से परे सन्तान अर्थ में अण् प्रत्यय होवे। ऋषियों के नाम से जैसे वासिष्ठ' १ ६१ २११ (वसिष्ठस्यापत्यम्)—वसिष्ठ का सन्तान। वैश्वामित्र. १ ६१ २११ विश्वामित्र की सन्तान। अन्धकों से जैसे श्वाफल्क' १ ६१ २११ श्वफल्कस्यापत्यम्)—श्वफल्क की सन्तान। वृष्णियों से जैसे वासुदेव' १ ६१। २११ (वसुदेवस्यापत्यम्) —कृष्ण। कुरुओं से जैसे नाकुल' १ [illegible] २११ (नकुलस्यापत्यम्) साहदेव' १ ६१ २११ (सहदेवस्यापत्यम्) सहदेव की सन्तान॥

१०८६॥ मातुरुत् संख्यासम्भद्रपूर्वाया।४।१।११५। संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्यादण् प्रत्ययश्च। द्वैमातुरः। षाण्मातुरः। साम्मातुरः। भाद्रमातुरः॥

संख्या वाचक शब्द 'वा सम्' वा भद्र इन में से। कोई एक है पूर्व जिस के ऐसे मातृ शब्द को उकार आदेश और अण् प्रत्यय सन्तान अर्थ में होवे। द्वैमातुर: १४॥ १०६१ (गणेश)। षाण्मातुर: १४। १ ६१ स्वामिकार्त्तिक। सांमातुर'—अच्छी माता वाला। भाद्रमातुर' [illegible]। १ ६१ जिस की कल्याण करने वाली माता हो॥

१०८७॥स्त्रीभ्यो ढक्।४।१।१२० स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक्। वैनतेय॥

स्त्री प्रत्यय १२११ है अन्त में जिन के उन से परे सन्तान अर्थ में 'ढक' प्रत्यय होवे। वैनतेय' (विनताया अपत्यम्) १ ६०।१ ८ ।२११—गरुड़॥

१०८८॥ कन्यायाः कनीन च ४।१।११६ चादण्। कानीनो व्यासः कर्णश्च॥

'कन्या' शब्द को 'कनीन' आदेश होवे चकार से 'अण्' प्रत्यय भी होवे। कानीन' १ ६१।२११ (कन्याया अपत्यम्)—कुमारी का पुत्र (व्यास वा कर्ण)॥

१ ८९॥ राजश्वशुराद्यत् ४। १। १३७।

राजन् वा श्वशुर शब्द से परे अपत्य अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होवे॥

१ ९ ॥ राज्ञो जातावेव॥

जाति की ही प्रतीति हो तो राजन् शब्द से "यत्" प्रत्यय होवे॥

१०९१ ये चाभावकर्म्मणोः।६।४।१६८। यादौ तद्धितेऽण् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्म्मणोः। राजन्य। जातावेवेति किम्॥

य् है आदि में जिस के ऐसा तद्धित परे रहे तो (१) अन् जैसे का वैसा ही रहे। परन्तु भाव 'वा' कर्म अर्थ में प्रकृतिभाव नहीं होता। राजन्यः १०८९ (क्षत्रिय)। १०८० में "जातावेव" यह क्यों कहा ? इस का उत्तर अगले १०९२ सूत्र के उदाहरण में विदित होगा। अर्थात् "राजन." में यत् न हो जावे॥

१०९२ ॥ अन् । ६ । ४ । १६७। अन्प्रकृत्याणि परे। राजन.। श्वाशुर्यः॥

अण् प्रत्यय के परे रहते अन् प्रकृतिभाव को प्राप्त हो। राजनः (राज्ञोऽपत्यम्) राजा का पुत्र जो विवाही हुई क्षत्रिया से उत्पन्न नहीं हुआ। श्वाशुर्यः (श्वशुरस्यापत्यम्) १०८९, २५५ = साला॥

१०९३ ॥ क्षत्राद् घः । ४ । १ । १३८। क्षत्रिय.। जातावित्येव। क्षात्रिरन्यः॥

क्षत्र शब्द से सन्तान अर्थ में "घ" प्रत्यय होवे। क्षत्रिय १०८०। २५५। क्षत्रिय जाति का जो हो। जाति में ही ऐसा रूप आता है। और में (२) 'क्षात्रिः' १०८१, १०६२, २५५ (क्षत्रिय का पुत्र)॥

१०९४ ॥ रेवत्यादिभ्यष्ठक् । ४ । १ । १४६ ॥

रेवती आदि गण से परे सन्तान अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होवे॥

१०९५ ॥ ठस्येकः । ७।३।५०। अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः। रैवतिक ॥

अङ्ग से परे जो (ठ्) उसे (इक्) आदेश होवे। रैवतिक' १०६०। २५५ (रेवत्या अपत्यम्) रेवती का सन्तान॥

१०९६ ॥ जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् । ४ । १ । १६८। जनपद-क्षत्रियवाचकाच्छब्दादञपत्ये। पाञ्चाल.॥

जो जनपद (देश) वाचक शब्द क्षत्रिय वाचक हो उस से परे सन्तान अर्थ में "अञ्" प्रत्यय होवे। पाञ्चालः = पाञ्चालदेश के क्षत्रियों का सन्तान।

१०९७ ॥ क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात् तस्यराजन्यपत्यवत्। पञ्चालानां राजा पाञ्चालः॥

देशवाचक शब्द जो, क्षत्रियसमान (क्षत्रिय वाचक) हो उस से परे "उसदेश का राजा" इस अर्थ में (३)अपत्यवत् प्रत्यय होवे।पाञ्चाल. १०६१।२५५ = पाञ्चाल का राजा।

---

(१) यह अन् शब्द का अन्तावयव हो तो, इस का ९७२ से लोप पाया था १०९१ से इस को प्रकृतिभाव हुआ॥ (२) इस का पिता क्षत्रिय हो चाहे माता किसी ही जाति को हो। (३) अपत्य अर्थ में १०९६ जैसे प्रत्यय होता है वैसे यहां भी होवे।

१०९८ ॥ पूरोरण् । पौरव ॥

पूरु शब्द से परे पूर्वोक्त १ ८६ १ ८० अर्थों में "अण्" प्रत्यय हो। पौरव १ ६१ १ ०१ पूरु देश का राजा वा पूरु का सन्तान।

१०९९ ॥ पाण्डोर्ड्यण् । पाण्ड्यः ।

सन्तान वा राजा अर्थ में पाण्डु शब्द से परे ड्यण् प्रत्यय होवे। पाण्ड्य २११ – पाण्डु देश का राजा।

११० ॥ कुर्वादिभ्यो ण्य ४ । १ । १७२ । कौरव्यः । नैषध्यः ॥

"कुरु" शब्द और (१) नादि शब्दों से परे सन्तान "वा" राजा अर्थ में "ण्य" प्रत्यय होवे। कौरव्य १ ६१ १ ०१ कुरु का सन्तान वा राजा। नैषध्य १ ६१ २११ निषध देश का राजा आदि ॥

११ १ ॥ ते तद्राजा ४ । १ । १७४ अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः ॥

अञ् १ ८६ आदि प्रत्ययों की "तद्राज" संज्ञा होवे ॥

११०२ ॥ तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २ । ४ । ६२ बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम्। पञ्चालाः । कुर्वादि ॥

जब शब्द बहुवचनान्त हो तो तद्राज ११ १ संज्ञावाले प्रत्यय का लुक् हो। जो स्त्री में न हो। पञ्चालाः १०८० पञ्चाल के राजे "वा" पञ्चाल के क्षत्रियों की सन्तान। इसी प्रकार और भी जान लो ॥

११ ३ ॥ कम्बोजाल्लुक् । ४ । १ । १७५ अस्मात् तद्राजस्य लुक् । कम्बोजः । कम्बोजौ ॥

कम्बोज शब्द से परे जो तद्राज संज्ञा वाला प्रत्यय उस का लुक् होवे। कम्बोज – कम्बोज देश के राजा का सन्तान वा कम्बोज देश का राजा। द्विवचन में कम्बोजौ ॥

११०४ ॥ कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् । चोलः । शकः । केरलः यवनः ॥ ॥ इत्यपत्याधिकारः ॥

"कम्बोजादियों से परे तद्राज ११ १ प्रत्यय का लुक् होवे" ऐसा कहना चाहिये। चोल – चोल के क्षत्रियों का सन्तान वा चोलदेश का राजा। शकः, केरलः, यवन इन के अर्थ भी (चोल) के समान हैं क्यों कि शक केरल यवन यह भी देश हैं।

॥ अपत्य (सन्तान) का अधिकार समाप्त हुआ ॥

---

(१) नकार है आदि में जिन के।

१९०५ ॥ तेन रक्तं रागात् । ४ । २ । १ । अण् स्यात् । कषायेण रक्तं वस्त्रङ्काषायम् ॥

"रङ्गा गया" इस अर्थ में तृतीयान्त रङ्ग वाचक शब्द से परे "अण्" प्रत्यय होवे काषायम् १०६२, २५५ (गेरी करके रङ्गा हुआ कपड़ा) ॥

११०६ ॥ नक्षत्रेण युक्तः कालः । ४ । २ । ३ । अण् स्यात् ॥

युक्त अर्थ में तृतीयान्त नक्षत्र वाचक शब्द से परे "अण्" प्रत्यय होवे यदि युक्त पदार्थ कालवाचक हो तब ॥

११०७ ॥ तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् । पुष्येण युक्तं पौषमहः ॥

"नक्षत्र वाचक तिष्य वा पुष्य से परे जब ११०६ से अण् प्रत्यय हो तब इन के 'य्' का लोप होवे" ऐसा कहना चाहिये । पौषम् (पुष्प+अण्) ११०६, १०६२, २५५ = जिस दिन पुष्य नक्षत्र हो ॥

११०८ ॥ लुबविशेषे । ४ । २ । ४ । पूर्वेण विहितस्य लुप्षष्टि-दण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः ॥

जब साठ घड़ी के (१) अवान्तर कोई विशेष विदित न हो तब ११०६ से हुए अण् प्रत्यय का लुप् होवे । अद्य पुष्यः (२)(आज पुष्य है) ॥

११०९ ॥ दृष्टं साम ४ । २ । ७ तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं वासिष्ठं साम ॥

"देखागया" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे "अण्" प्रत्यय होवे, परन्तु (यदि) जो देखा गया वह साम वेद हो तब, वासिष्ठम् १०६२ । २५५ (सामवेद जो वसिष्ठ मुनि से देखागया हो) ॥

१११० ॥ वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ ४ । २ । ९ वामदेवेन दृष्टं साम वामदेव्यम् ॥

तृतीयान्त वामदेव शब्द से साम " देखागया " इस अर्थ में ड्यत् वा "ड्य" प्रत्यय हो, वामदेव्यम् = जो सामवेद वामदेव मुनि करके देखा गया हो ॥

---

(१) आठ पहिर से थोड़ा (२) यहां आज के कहने से दिन विशेष वा रात्रि विशेष का बोध नहीं होता ॥

११११ ॥ परिवृतो रथः ४। २। १० अस्मिन्नर्थेऽण् प्रत्ययो भवति वस्त्रेण परिवृतो वास्त्रोरथः ॥

"ढका गया" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे अण् प्रत्यय होः परंतु जो ढका गया वह रथ हो तब। वास्त्र १ ६१ २६६ — कपड़े से ढका हुआ रथ ॥

१११२ ॥ तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः ४। २। १४ शरावे उद्धृतः शाराव ओदनः ॥

उस में धराया इस अर्थ में पात्र वाचक सप्तम्यन्त से परे "अण्" प्रत्यय होवे। शाराव १ ६१ २६६ चावल (भात) जो पियाले में धराया गया ॥

१११३ ॥ संस्कृतं भक्षाः ४। २। १६ सप्तम्यन्तादण् स्यात् संस्कृतेऽर्थे यत् संस्कृतं भक्षाश्चेत् ते स्युः। भ्राष्ट्रेषु संस्कृता भ्राष्ट्रा भक्षाः ॥

जिस का संस्कार किया गया वह यदि खाने के योग्य हो तो "संस्कार किया गया" इस अर्थ में सप्तम्यन्त से परे अण् प्रत्यय होवे। भ्राष्ट्रा १ ६१। २६६ यव (जौ) जो भड़ (भाड़) में भूना गया ॥

१११४ ॥ साऽस्य देवता ४। २। २४ इन्द्रोदेवताऽस्येति ऐन्द्रं हविः। पाशुपतम्। बार्हस्पत्यम् ॥

"वह इस का देवता है" इस अर्थ में देवता वाचक प्रथमान्तपद से "अण्" प्रत्यय होता है। ऐन्द्रम् १ ६१ २६६ इन्द्र जिस का देवता ऐसी हवि। पाशुपतम् — शिव देवता की हवि। बार्हस्पत्यम् (बृहस्पतिर्देवताऽस्य) १ ६१ २६६ ॥

१११५ ॥ शुक्राद् घन् ४। २। २६ शुक्रियम् ॥

१११४ सूत्र के अर्थ में प्रथमान्त शुक्र शब्द से परे 'घ' प्रत्यय होवे। शुक्रियम् (शुक्रो देवताऽस्य) १ ८ २६६ शुक्र जिस का देवता ऐसी हवि ॥

१११६ ॥ सोमाट्ट्यण् ४। २। ३ सौम्यम् ॥

प्रथमान्त सोम शब्द से परे "वह इस का देवता है" इस अर्थ में "ट्यण्" प्रत्यय होवे सौम्यम् १ ६१ २६६ (सोमो देवता अस्य) — चन्द्रमा जिसका देवता ऐसी हवि ॥

१११७ ॥ वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४। २। ३१ वायव्यम्। ऋतव्यम् ॥

वायु ऋतु पितृ और उषस् इन शब्दों से परे १११४ सूत्र के अर्थ में "यत्" प्रत्यय होवे। वायव्यम् (वायुर्देवताऽस्य) (वायु + यत्) १०७२,२६ — वायु देवता की हवि। ऋतव्यम् १०७२, २६ ऋतुर्देवताऽस्य ॥

१११८ ॥ रीङ् ऋतः ७।४।२७ अकृद्यकारेऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च परे ऋतोरीङादेशः। यस्येति च। पित्र्यम्। उषस्यम्।

"कृत् से भिन्न यकार वा सार्वधातुक से भिन्न यकार वा "च्वि" परे रहे तो ऋ को रीङ् आदेश होवे। २५५से ईकार का लोप किया तो। पित्र्यम् १११७=पितृदेवता की हविः उषस्यम् १११७ उषः (प्रातः काल) रूप जिस का देवता ऐसी हविः ॥

१११९ ॥ पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः। ४।२।३६। एते निपात्यन्ते। पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुर्भ्राता मातुलः। मातुः पिता मातामहः। पितुः पिता पितामहः ॥

पितृव्य, मातुल, मातामह और पितामह ये ४ शब्द निपात से सिद्ध होते हैं। पितृव्यः पिता का भाई (चाचा) यहां पितृ शब्द से परे "पितुर्भ्रातरि व्यत्" इस वार्त्तिक से "व्यत्" प्रत्यय हुआ है। मातुलः=माता का भाई (मामा) यहां मातृ शब्द से परे "मातुर्डुलच्" इस वार्त्तिक से "डुलच्" प्रत्यय होता है। (१) मातामहः=माता का पिता (नाना) यहां मातृ शब्द से परे और पितामहः पिता का बाप (दादा) यहां पितृ शब्द परे "मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्" इस वार्त्तिक से "डामहच्" प्रत्यय होता है ॥

११२० ॥ तस्य समूहः ४।२।३७ काकानां समूहः काकम् ॥

षष्ठ्यन्त से परे समूह अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होवें। काकम् १०६२ २५५ (कौओं का समूह) ॥

११२१ ॥ भिक्षादिभ्योऽण्। ४।२।३८। भैक्षम्। गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। इह भस्याढे तद्धित इति पुंवद्भावे कृते ॥

षष्ठ्यन्त भिक्षा आदि ओं से परे "समूह" अर्थ में अण् प्रत्यय होवे। भैक्षम् १०६२, २५५ (भिक्षाणां समूहः) भीखों का समूह। गार्भिणम् (गर्भवाली स्त्रियों का समूह) यहां (२)"भस्याढे तद्धिते" इस से गर्भिणी, शब्द को पुंवद्भाव (गर्भिन्) करने पर।

११२२ ॥ इनण्यनपत्ये ६।४।१६४ अनपत्यार्थेऽणि इन् प्रकृत्या। तेन नस्तद्धित इति टिलोपो न। युवतीनां समूहो यौवतम् ॥

---

(१)भाष्यकार के मत से यहां और पितामहः, में "आनङ्" आदेश और 'महच्' प्रत्यय निपातित हैं। (२) इस का "ढ से भिन्न तद्धित के परे होते भ संज्ञा वाले को टि का लोप होवे" यह अर्थ है ॥

सन्तान से भिन्न अर्थ में आने वाले अच् के परे होते अन् का प्रकृतिभाव हो। इस से "गार्गिणम्" में ८०१ से गर्गिन् की टि का लोप न हुआ। क्यों कि "जैसे का वैसा रहना" ही प्रकृतिभाव का आशय है। यौवतम् ११२१ १ ८१ २११ युवतियों का समूह ॥

११२३ ॥ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४ । २ । ४३ तलन्तं स्त्रियाम्। ग्रामता। जनता। बन्धुता ॥

ग्राम जन और बन्धु इन शब्दों से परे समूह अर्थ में "तल्" प्रत्यय होवे। तलन्त (तल् प्रत्यय जिस के अन्त में हो) स्त्रीलिङ्ग होता है। ग्रामता ११११ ग्रामों का समूह। जनता (जनानां समूहः)। बन्धुता (बन्धूनां समूहः) ॥

११२४ ॥ गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम्। गजता। सहायता।

गज और सहाय इन दो शब्दों से भी समूह अर्थ में तल् प्रत्यय होवे। गजता (गजानां समूहः) हाथियों का समूह। सहायता (सहायानां समूहः) सहायकों का समूह।

११२५ ॥ अह्नः खः क्रतौ। अहीनः ॥

जब यज्ञ वाच्य हो तब समूह। अर्थ में षष्ठ्यन्त अहन् शब्द से परे 'ख' प्रत्यय होवे अहीन' १ ८० ८०१ = अनेक दिनों वाले साध्य (यज्ञ) ॥

११२६ ॥ अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४ । २ । ४७ ॥

अचित्त (अचेतन) हस्तिन् और धेनु इन शब्दों से परे समूह अर्थ में "ठक्" प्रत्यय होवे

११२७ ॥ इसुसुक्तान्तात् कः ७ । ३ । ५१ । इसुसुक्तान्तात् परस्य ठस्य कः। साक्तुकम्। हास्तिकम्। धैनुकम् ॥

इस् उस् उक्, (उ ऋ ऌ) और 'त्' इनमें से कोई वर्ण अन्त में जिस के उस से परे (१) ठ् को क होवे साक्तुकम् ११२६,१ ८० (सक्तूनां समूहः) सत्तुओं का समूह। हास्तिकम् (हस्तिनां समूहः) ११२६,१ ८०। धैनुकम् ११२६,१ ८० धेनूनां समूहः। गौओं का समूह।

११२८ ॥ तदधीते तद्वेद ४ । २ । ५९ ॥

अधीते (वह पढ़ता है) और (वेद वह जानता है) इन अर्थों में द्वितीयान्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें ॥

११२९ ॥ न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७ । ३ । ३

(१) यहां (इ) प्रत्यय का ग्रहण है।

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किन्तु ताभ्यां पूर्वौ क्रमात् ऐचावागमौ स्तः। व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः॥

"पद के अन्त में होने वाले यकार 'वा' वकार से परे" अच् को वृद्धि न होवे किन्तु उस यकार वा वकार से पूर्व ऐकार और औकार, का आगम (१) क्रम से होवे। वैयाकरणः ११२८, २५५ व्याकरण शास्त्र को पढ़ने वाला (वा) उस के जानने वाला॥

११३० ॥ क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१ क्रमकः। पदकः। शिक्षकः। मीमांसकः॥

११२८सूत्र के अर्थमें क्रमादियों से वुन् प्रत्यय होवे। क्रमकः (क्रममधीते वेद वा) ८३०, २५५ (२)क्रम के जानने वाला। पदकः ८३०, २५५ पद (वेद का प्रथम विकार) पदपाठ के जानने वाला शिक्षकः, (३)शिक्षा के जानने वाला। मीमांसक = मीमांसा के जानने वाला।

११३१ ॥ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७ उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे औदुम्बरो देशः॥

"इस में हैं" इस अर्थ में प्रथमान्त से अण् आदि प्रत्यय होवें, परन्तु यदि प्रकृति (प्रथमान्त) और प्रत्यय (अण् आदि) के समुदाय से तन्नामक देश का बोध हो तो। औदुम्बरः १०६३, २५५ जिस में गूलर के वृक्ष हों वह देश॥

११३२ ॥ तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८ कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी।

"बनाया गया" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे 'अण्' आदि प्रत्यय होवें। कौशाम्बी १०६३, २५५, १२३७ = कुशाम्ब राजा से बनाई गई जो नगरी।

११३३॥ तस्य निवासः ४।२।६९ शिवीनान्निवासो देशः शैवः।

"निवास" अर्थ में षष्ठ्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें। शैवः (शिवि + अण्) १०६३, २५५, १३३, १३४, १२०, १०८ (४) (शिवियों के रहने का देश)॥

११३४ ॥ अदूरभवश्च ४।२।७० विदिशाया अदूरभवं वैदिशम्।

"दूर नहीं है" इस अर्थमें षष्ठ्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें। वैदिशम् १०६३ २५५ (नगर जो विदिशा के दूर नहीं)।

११३५ ॥ जनपदे लुप् ४।२।८१ जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप्।

जब जनपद (देश) वाच्य हो तब (५) चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होवे॥

---

(१) यहां "यकार से पूर्व ऐकार, और वकार से पूर्व औकार का आगम हो यह क्रम है। (२) क्रम भी वेद का दूसरा विकार है। (३) शिक्षा वेदाङ्ग है। (४)किसी क्षत्रिय जाति वालों का नाम है। (५) ११३१ सूत्र से ११३४ सूत्र पर्यन्त ४ चार सूत्रों से उक्त कहे हुए चारों अर्थों की चातुरर्थिक संज्ञा है॥

११२६ ॥ लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने । १ । २ । ५१ । लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने स्त । पञ्चालानामभिवासो जनपदः पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ॥

लुप् ११११ के होने पर प्रकृति का जो लिङ्ग और वचन बना रहे । पञ्चाला ११११ ११११ (पञ्चाल वंश वालों के रहने का देश) कुरव ११११ ११११ कुरुओं का देश । अङ्गा = अङ्गों का देश । वङ्गा ११११ ११६६ (वङ्गाः) कलिङ्गा (कलिङ्गों का देश) ॥

११२७ ॥ वरणादिभ्यश्च ४ । २ । ८२ । अजनपदार्थं आरम्भः । वरणानामदूरभवम्नगरं वरणा ॥

वरणा आदि गण के अन्तगत शब्दों से परे चातुरर्थिक प्रत्ययका लुप् हो । और प्रकृति के भी लिङ्ग वचन बने रहें । जो शब्द जनपद (देश) वाचक नहीं हैं उन के लिये इस का आरम्भ किया है । वरणा ११२७ ११२० — जो नगर वरणा से दूर नहीं ॥

११२८ ॥ कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ४ । २ । ८७ ॥

कुमुद नड और वेतस इन शब्दों से परे 'ड्मतुप्' प्रत्यय होवे ॥

११२९ ॥ झयः ८, २, १० झयन्तान्मतोर्मस्य वा । कुमुद्वान् । नड्वान् ।

झय (झ भ घ ढ, ध ज ब ग ड, द ख फ छ ठ थ च ट त क, प) प्रत्याहारान्त गैतों में से कोई एक हो अन्त में जिस के उस से परे जो 'ड्मतुप्' ११२८ प्रत्यय उस के म् को व् होवे कुमुद्वान् २६२ ३११ १८१ ३३ १८१ जिस देश में कुमुद बहुत हों । ऐसे "नड्वान् २६२ ३११ १८१ ३३ १८१ यहां नडे बहुत हों ॥

११३० ॥ मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८ । २ । ९ मवर्णा वर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्ज्जितात् परस्य मतोर्मस्यवः । वेतस्वान् ॥

'यवादि गण' को छोड़ कर जिस का "अन्त अवयव अथवा उपधा में" मकार वा अवर्ण हो तिस से परे जो मतुप् उस के म् को व् होवे । वेतस्वान् २६२, ३११ १८१ ३३ १८१ जिस देश में बेंत (बेंत) बहुत हों ॥

११३१ ॥ नडशादाड्ड्वलच् ४ । २ । ८८ नड्वलः ॥

नड और शाद (घास) इन दो शब्दों से परे "ड्वलच्" प्रत्यय होवे । नड्वल २६२ (नड़ों से भरा हुआ देश) ॥

११४२ ॥ शिखाया वलच् ४ । २ । ८९ शिखावल: ॥

॥ इति चातुरर्थिका: ॥

शिखा शब्द से परे "वलच्" प्रत्यय होवे। शिखावल (मयूर) ॥

॥ चातुरर्थिक प्रत्यय समाप्त हुए ॥

११४३ ॥ शेषे ४ । २ । ९२ अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थ: शेषस्तत्राणादय: स्यु:। चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम्। श्रावण: शब्द:। औपनिषद: पुरुष:। दृषदि पिष्टा दार्षदा: सक्तव:। चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्ष:। तस्य विकार इत्यत: प्राक् शेषाधिकार: ॥

अपत्य १०३१ अर्थ से लेकर चातुरर्थिक ११२४ पर्यन्त जितने अर्थ हैं उन से भिन्न जो अर्थ हैं वे शेष कहाते हैं उन में भी अण् आदि प्रत्यय होते हैं। चाक्षुषम् १०६३ = जो आंख से जाना जावे (रूप) श्रावण: १०६३, २५५, जो कान से सुना जावे (शब्द) औपनिषद: १०६३, परमेश्वर। दार्षदा: १०६३ दृषद् (पत्थर) पर जो पीसे जावें (सत्तू)। चातुरम् १०६३, २५५ जो चारोंकरके उठाया जावे (गड्डा)। चातुर्दशम् १०६३, २५५ जो चौदस में देखा जावे (राक्षस) यहां से ११९८ पर्यन्त शेषका अधिकार है ॥

११४४ ॥ राष्ट्रावारपाराद् घखौ। ४ । २ । ९३ राष्ट्रे जातादि: राष्ट्रिय:। अवारपारीण: ॥

राष्ट्र और अवारपार इन दो शब्दों से परे क्रम से 'घ' और 'ख' प्रत्यय होते हैं। राष्ट्रिय: (१०८०, २५५) = राष्ट्र (देश) से जो उत्पन्न भया है। अवारपारीण: १०८०। २५५, १५१। जो उरार पार हो।

११४५ ॥ अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्। अवारीण: । पारीण: । पारावारीण:। इहप्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युटयुलन्ता उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषा समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ॥

अलग किये अवारपार ('अवार' और 'पार') और विपरीत (पारावार) से परे 'ख' प्रत्यय होवे ऐसा कहना चाहिये। अवारीण: (अवार + ख) १०८०। २५५ = उरार का। पारीण: (पार + ख) १०८०, २५५ = पारला। पारावारीण: (पारावार + ख) १०८०, २५५। पार उरार होनेवाला। इस प्रकरण में प्रकृति विशेष से परे घादिक (घ, से लेकर) टयु, टयुल्

११६५ पर्य्यन्त जो प्रत्यय कहे जाते हैं उन के आतादि अर्थ विशेष और समर्थ विभक्तियें कही जावेंगी ॥

११४६ ॥ ग्रामाद्यखञौ । ४ । २ । ९४ । ग्राम्यः । ग्रामीणः ॥

ग्राम शब्द से परे य वा 'खञ्' प्रत्यय होवे। ग्राम्य १११ (वा) ग्रामीण १ ८० १११, १११ । जो ग्राम (पिण्ड) में रहता हो ॥

११४७ ॥ नद्यादिभ्यो ढक् ४ । २ । ९७ नादेयम् । माहेयम् । वाराणसेयम् ॥

नद्यादि गण से परे 'ढक्' प्रत्यय होवे । नादेयम् (नद्यां भवम्) १ ८ १ ६० १११ जो नदी में हुआ हो । माहेयम् (मही (पृथ्वी) तत्र भवम्) १ ८ १०६०, १११ वाराणसेयम् (वाराणस्यां भवम्) १ ८ १११—जो बनारस में हो ॥

११४८ ॥ दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् । ४ । २ । ९८ । दाक्षिणात्यः । पाश्चात्यः । पौरस्त्य ।

दक्षिणा पश्चात् और पुरस् इन से परे 'त्यक्' प्रत्यय होवे। दाक्षिणात्य (दक्षिणस्यां भव) १ ६० दक्षिण दिशा में होने वाला। पाश्चात्य १ ६० पश्चिम में जो होवे। पौरस्त्य १ ६०—जो पूर्व में हो ॥

११४९ ॥ द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् । ४ । २ । १०१ । दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम् ।

दिव् प्राच् अपाच् उदच् और प्रतीच् इन शब्दों से परे 'यत्' प्रत्यय होवे। दिव्यम् (दिवि भवम्) जो आकाश में हो । प्राच्यम्—जो पूर्व में हो। अपाच्यम् (जो दक्षिण में हो) उदीच्यम् (जो उत्तर में हो) प्रतीच्यम् जो पश्चिम में उत्पन्न भया हो ॥

११५० ॥ अव्ययात् त्यप् । ४ । २ । १०४ । अमेहक्वतसित्रेभ्य एव । अमात्य । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । तत्रत्यः ॥

अव्यय से परे त्यप् प्रत्यय होवे। परन्तु "अमा "इह" "क्व" और तसि (वा) त्र है अन्तिम में जिन के उन्हीं अव्ययों से परे त्यप् हो, और से परे न होवे । अमात्य (अमा (सह) भव) जो साथ रहे वज़ीर। इहत्य (इह भव) क्वत्य (क्व भव) ततस्त्य (ततोभव) तत्रत्य (तत्र भव) ॥

११५१ ॥ त्यब्नेर्ध्रुवे । नित्यः ॥

ध्रुव (स्थिर) अर्थ में नि अव्यय से परे "त्यप्" प्रत्यय होवे । नित्य—जो सर्वदा विद्यमान हो ॥

११५२ ॥ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् । १ । १ । ७३ । यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञं स्यात् ।

"जिस समुदाय के अचों का प्रथम (पहिला) अच् (स्वर) वृद्धि संज्ञा वाला होवे" वह समुदाय वृद्ध संज्ञा वाला होवे ।

११५३ ॥ त्यदादीनि च १ । १ । ७४ वृद्धसंज्ञानि स्युः ॥

त्यद् आदि शब्द भी वृद्ध संज्ञा वाले होवें ॥

११५४ ॥ वृद्धाच्छः ४ । २ । ११४ शालीयः । तदीयः ॥

वृद्ध ११५२, ११५३ संज्ञक शब्दों से परे "छ" प्रत्यय होवे । शालीयः (शालायां भवः) १०८०, २५५ जो शाला मे हो । तदीय' (तस्यायम्) = जो तिस का हो इत्यादि ।

११५५ ॥ वा नामधेयस्य वृद्धसञ्ज्ञा । देवदत्तीयः । दैवदत्तः ॥

नामधेय (नाम) वाचक शब्द की वृद्ध संज्ञा विकल्प करके होवे । देवदत्तीयः (देवदत्तस्यायम्) १०८०, २५५ वा दैवदत्तः १०६६, २५५ (जो देवदत्तका हो) ॥

११५६ ॥ गहादिभ्यश्च ४ । २ । १३८ गहीयः ॥

(१) गहादिकों से परे 'छ' प्रत्यय होवे । गहीयः (गहे भव') १०८०, २५५ ॥

११५७ ॥ युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च । ४ । ३ । १ चाच्छः । पक्षेऽण् । युवयोर्युष्माकंवायं । युष्मदीयः । अस्मदीयः ॥

युष्मद् और अस्मद् से परे विकल्प करके 'खञ्' प्रत्यय होवे । सूत्र में जो 'च्' है उस का यह प्रयोजन है कि 'छ' भी होवे, विकल्प के पक्षान्तर में अण् प्रत्यय भी होवे । युष्मदीयः १०८० जो तुम दो का 'वा' तुम सभ का हो । अस्मदीयः १०८० (आवयोरस्माकं वायम्) जो हम दो का (वा) हम सभ का हो ॥

११५८ ॥ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४ । ३ । २ युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

युष्मद् और अस्मद् शब्द को 'युष्माक' और अस्माक आदेश क्रम से होवें, जब 'खञ्' वा अण् प्रत्यय परे होवे तब । यौष्माकीणः (युवयोर्युष्माक वायम्) युष्मद् + खञ् १०८० १०६३, २५५, १५१ । आस्माकीनः (आवयोरस्माक वायम्) १०८०, १०६३, २५५, हम, दो का वा हम सभ का जो हो ।

(१) गहादि देश वाचक हैं, और यह गण आकृति गण है ॥

११५९ ॥ तवकममकावेकवचने ४ । ३ । ३ एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि अणि च। तावकीन । तावक । मामकीन । मामक । छे तु ॥

'खञ्' वा 'अण्' प्रत्यय परे हो तो एकार्थवाचक युष्मद् और अस्मद् को क्रम से तवक और ममक आदेश होवें। तावकीन' १ ८ १ ६१ २५५ (तवायम्) वा तावक' १ ६१ २५५ — तेरा। मामकीन' (ममायम्) १ ८ १ ६१ २५५ वा मामक' १ ६१ २५५ मेरा। 'छ' प्रत्यय के परे होते तो (अगले सूत्र का उदाहरण देंगे)॥

११६० ॥ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७ । २ । ९८ मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोस्त्वमौ स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परतः । त्वदीयः । मदीयः त्वत्पुत्र । मत्पुत्र ॥

प्रत्यय 'वा' उत्तरपद के परे होते एकार्थवाचक म् पर्यन्त युष्मद् (युष्म्) और अस्मद् (अस्म्) को त्व और म आदेश क्रम से होवें। प्रत्यय के परे होते जैसे त्वदीय' (तवायम्) १ ८ तेरा। मदीय' (ममायम्) १ ८ मेरा। उत्तरपद के परे होते जैसे (त्वत्पुत्र) (तव पुत्र) ७४१ — "युष्मद्+पुत्र" ११६ — 'त्व+अद्+पुत्र' २८१ — "त्वद्+पुत्र' ८७ (त्वत्पुत्र) — तेरा पुत्र। ऐसे मत्पुत्र' (मेरा पुत्र) सिद्ध कर लेना॥

११६१ ॥ मध्यान्मः ४ । ३ । ८ मध्यमः ॥

मध्य शब्द से परे 'म' प्रत्यय होवे। मध्यमः — बिचवारला (बीचका)॥

११६२ ॥ कालाट्ठञ् ४ । ३ । ११ कालिकम् । मासिकम् । सांवत्सरिकम् ॥

काल वाचक शब्द से परे ठञ् प्रत्यय होवे। कालिकम् १ ८६, १ ६१ २५५ (काले भवम्) जो समय में हो। मासिकम् १ ८६ १ ६१ २५५ (मासे भवम्)। सांवत्सरिकम् १ ८६, १ ६१ २५५ (संवत्सरे भवम्) जो बरस में हो॥

११६३ ॥ अव्ययानां भमात्रे टिलोपः। सायंप्रातिक । पौनःपुनिकः ।

भ संज्ञावाले अव्ययों की जो टि का लोप होवे। सायंप्रातिक' ११६२, १०८१ जो सांझ सवेर हो। पौन' पुनिक जो फिर फिर हो॥

११६४ ॥ प्रावृष एण्यः ४ । ३ । १७ प्रावृषेण्य ॥

प्रावृष् शब्द से परे "एण्य" प्रत्यय होवे प्रावृषेण्य' (प्रावृषि भव) जो वर्षाऋतु में हो

११६५ ॥ सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४ । ३ । २३ सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यः कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ स्तस्त

योस्तुट् च। सायन्तनम्। चिरन्तनम्। प्राह्णेप्रगे अनयोरेदन्तत्वं निपात्यते। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। दोषातनम्॥

सायम्, चिर, प्राह्णे और प्रगे-इन ४ शब्दों से और काल वाचक अव्ययों से परे 'ट्यु' और "ट्युल्" प्रत्यय होवे। और उन को तुट् आगम होवे। सायन्तनम् ८३० (साय भवम्) जो सन्ध्या में होवे। चिरन्तनम् ८३०=जो चिर से होवे। प्राह्णे, और प्रगे, इन का अन्त में एकार निपात से है। प्राह्णेतनम् (जो पूर्वाह्ण काल मे हो। प्रगेतनम्=जो प्रातः काल में हो। दोषातनम् ८३० जो रात्रि में हो॥

११६६॥ तत्र जात. ४।३।२५ सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च स्युः। स्रुघ्ने जातः। स्रौघ्न। उत्से जात.। औत्सः। राष्ट्रे जातः। राष्ट्रियः। अवारपारे जातः। अवारपारीण.॥ इत्यादि।

वहां "उत्पन्न हुआ" इस अर्थ में समर्थ सप्तम्यन्त से परे अण् आदि और घ आदि प्रत्यय होवें। स्रौघ्न' १०६३, २५५ (स्रुघ्ने जात') जो स्रुघ्न देश में उत्पन्न भया हो। औत्सः १०६३,२५५ (उत्से जात) जो झरने में उत्पन्न भया हो। राष्ट्रियः (राष्ट्र+घ) १०८०, २५५ जो किसी देश में उत्पन्न भया हो। अवारपारीणः ११४४ १०८०, २५५ जो उरार पार उत्पन्न हो। इसी प्रकार और भी जान लेने॥

११६७॥ प्रावृषष्ठप् ४।३।२६ एण्यापवादः। प्रावृषिकः॥

११६६ सूत्र के अर्थ में प्रावृष् शब्द से परे ठप् प्रत्यय होवे। यह ११६४ का अपवाद है। प्रावृषिक १०८५ प्रावृषि जात.=जो वर्षा ऋतु में उत्पन्न हो॥

११६८॥ प्रायभाव. ४।३।३९ तत्रेत्येव। स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भयति स्रौघ्न.॥

"प्रायः होता है" इस अर्थ में समर्थ सप्तम्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें। स्रौघ्नः १०६३। २५५ जो प्राय' स्रुघ्न देश में होवे॥

११६९॥ सम्भूते ४।३।४१ स्रुघ्ने सम्भवति। स्रौघ्न.॥

सम्भूत (सम्भव) अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ से परे अण् आदि प्रत्यय होवें। स्रौघ्नः १०६३। २५५। जिस का स्रुघ्न देश में सम्भव हो।

११७०॥ कोशाड्ढञ् ४।३।४२ कौशेयं वस्त्रम्॥

सप्तम्यन्त (१) कोश शब्द से परे ढञ् प्रत्यय होवे। कौशेयम् १०८०। १०६३। २५५ (कोशे सम्भवति) रेशमी कपड़ा॥

(१) कोश=जिस से रेशमीकीडे रक्षा करते हैं।

११०१ ॥ तत्र भवः ४ । ३ । ५३ स्रौघ्नः । माथुरः । राष्ट्रियः ॥

"तत्र भव" इस अर्थ में समर्थ सप्तम्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें । स्रौघ्न (स्रुघ्ने भवः) १ ६२ । २११ सुघ्नदेश में जो हो । माथुर (मथुरायां भवः) राष्ट्रिय ११०० । १ ८ । २११ । राष्ट्रे भवः ॥

११०२ ॥ दिगादिभ्यो यत् ४ । ३ । ५४ दिश्यम् । वर्ग्यम् ॥

११०१ सूत्र के अर्थ में दिश् आदि शब्दों से परे यत् प्रत्यय होवे । दिश्यम् (दिशि भवम्) जो दिशा में हो । वर्ग्यम् (वर्गे भवम्) २११—जो समूह में हो ॥

११०३ ॥ शरीरावयवाच्च ४ । ३ । ५५ दन्त्यम् । कण्ठ्यम् । अध्यात्मादिभ्यष्ठञिष्यते । अध्यात्मे भवमाध्यात्मिकम् ॥

११०१ सू० अर्थ में शरीर के अवयव वाचक शब्दों से परे "यत्" प्रत्यय होवे । दन्त्यम् २११ (दन्तेषु भवम्) जो दांतों में हो । कण्ठ्यम् २११ (कण्ठे भवम्) जो कंठ में हो । अध्यात्मादिकों से परे ठञ् प्रत्यय होवे" यह भाष्यकार की इच्छा है । आध्यात्मिकम्—१ ८६, १ ६२ २११ जो आत्मा विषे हो ॥

११०४ ॥ अनुशतिकादीनाञ्च ७ । ३ । २० एषामुभयपदवृद्धिः ञिति णिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् आकृतिगणोऽयम् ॥

'ञित् वा णित् और 'कित् प्रत्यय परे हो तब अनुशतिकादिकों के दोनों (पूर्व और उत्तर) पदों के आदि अच् की वृद्धि होवे । आधिदैविकम् ११०१ की दृष्टि से ठञ् प्रत्यय हुआ । और १ ८६, १ ६२,२११—जो देव में हो। ऐसे आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम्(इह लोके भवम्) जो इस लोक में हो यह अध्यात्मादि आकृति गण है ।

११०५ ॥ जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः । ४ । ३ । ६२ । जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ॥

जिह्वामूल और अङ्गुलि इन सप्तम्यन्त शब्दों से परे 'छ प्रत्यय होवे । जिह्वामूलीयम् (जिह्वामूले भवम्) १ ८० २११ जो जिह्वामूल में हो । अङ्गुलीयम् १ ८० २११ अङ्गुलि में जो हो ॥

११०६ ॥ वर्गान्ताच्च ४ । ३ । ६३ कवर्गीयम् ॥

(१) वर्गान्त शब्द से परे छ प्रत्यय होवे । कवर्गीयम् १ ८ २११ (कवर्गे भवम्) कवर्ग में जो हो ॥

(१) वर्ग शब्द है अन्त में जिस के ।

११७७ ॥ तत आगतः ४ । ३ । ७४ स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः ॥

"तहां से आया" इस अर्थ में पञ्चम्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें । स्रौघ्नः १०६३, २५५ स्रुघ्न देश से आया ॥

११७८ ॥ ठगायस्थानेभ्यः । ४ । ३ । ७५ । शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः ॥

'तत आगतः' इस अर्थ में आयस्थान (राजा के कर 'मामला' लेने के स्थान) के वाचक पञ्चम्यन्त शब्दों से परे 'ठक्' प्रत्यय होवे । शौल्कशालिकः १०८५, १०६७, २५५ (१) शुल्क शाला से जो आया ॥

११७९ ॥ विद्यायोनिसंबन्धेभ्यो वुञ् ४ । ३ । ७७ औपाध्यायकः पैतामहकः ॥

विद्यासम्बन्ध वाले और योनि सम्बन्धी पञ्चम्यन्त शब्दों से परे "वुञ्" प्रत्यय होवे । औपाध्यायकः (उपाध्यायादागतः) १०६३, ८३०, २५५ उपाध्याय से जो आया हो । पैतामहकः (पितामहादागत) १०६३, ८३०, २५५ ॥

११८० ॥ हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः । ४ । ३ । ८१ समादागतं समरूप्यम् । पक्षे गहादित्वाच्छः । समीयम् । देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् ॥

हेतु और मनुष्य वाचक पञ्चम्यन्त शब्दों से परे विकल्प करके 'रूप्य' प्रत्यय होवे समरूप्यम् (समान हेतु से जो आया) दूसरे पक्ष में ११५६ सूत्र से 'छ' प्रत्यय होता है । समीयम् १०८०, २५५ देवदत्तरूप्यम् वा दैवदत्तम्=देवदत्त से जो आया हो ।

११८१ ॥ मयट् च ४ । ३ । ८२ सममयम् । देवदत्तमयम् ॥

११७७ सूत्र के अर्थ में ११८० सूत्रकी प्रकृतियों से परे 'मयट्" प्रत्यय भी होवे । सममयम् (समादागतम्) देवदत्तमयम् (देवदत्तादागतम्) ॥

११८२ ॥ प्रभवति ४ । ३ । ८३ हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा ॥

प्रभवति (प्रकाशित होता है) इस अर्थ में पञ्चम्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें । हैमवती १०६३, १२३७ हिमालय से जो प्रकाशित हो (गङ्गा) ॥

११८३ ॥ तद्गच्छति पथिदूतयोः ४ । ३ । ८५ स्रुघ्नं सङ्गच्छति स्रौघ्नः पन्था दूतो वा ॥

---

(१) राजा के कर लेने का स्थान ।

तद्गच्छति (उस स्थान को जाता है) इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें यदि जाने वाला मार्ग वा दूत हो तब। स्रौघ्न १ ४१ २११—जो मार्ग वा दूत स्रुघ्न देश को जाता है ॥

११८४ ॥ अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४ । ३ । ८६ स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति स्रौघ्नं द्वारं काण्यकुब्जद्वारम् ॥

अभिनिष्क्रामति (सम्मुख (१)निकलता है) इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें। यदि निकलने वाला द्वार हो तब। स्रौघ्नम् (कन्नौज का द्वार (फाटक))

११८५ ॥ अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४ । ३ । ८७ शारीरकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः ॥

किसी विषय का प्रसङ्ग करके किया गया" इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे अण् आदि प्रत्यय होते हैं। यदि जो किया गया वह ग्रन्थ हो तो। शारीरकीय' ११४४ १ ८० २११ जो ग्रन्थ (२) जीव के विषय में बनाया गया है ॥

११८६ ॥ सोऽस्य निवासः ४ । ३ । ८९ स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः ।

"सो है निवास स्थान इसका" इस अर्थ में प्रथमान्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें। स्रौघ्न' (स्रुघ्न+अण्) १ ४१ । २११—जिसका निवास स्थान स्रुघ्न हो ॥

११८७ ॥ तेन प्रोक्तम् ४ । ३ । १ १ पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् ॥

तृतीयान्त से परे "कहा गया" इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होवें। पाणिनीयम् १ ८ । २११ पाणिनि करके जो कहा गया है ॥

११८८ ॥ तस्येदम् ४ । ३ । १२० उपगोरिदमौपगवम् ॥ -

॥ इति शैषिका ॥

'तस्येदम' (यह उसका है) इस अर्थ में षष्ठ्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होवें। औपगवम् १ ४१ । १ ०२ । २६ जो उपगु का होवे ॥ शेष ११७१ का अधिकार समाप्त हुआ ॥

११८९ ॥ तस्य विकारः ४ । ३ । १३४ ॥

षष्ठ्यन्त से परे विकार अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होवें ॥

११९० ॥ अश्मनो विकारे टिलोपः । अश्मनो विकार आश्मः । भास्मन । मार्त्तिकः ॥

---

(१) यहां सम्मुख निकलने का (दीख पड़ता है) यह अर्थ है। (२) निश्चित शरीर को "शरीरक" कहते हैं उस का सम्बन्धी जीव 'शारीरक' कहाता है ॥

विकारार्थक प्रत्यय के परे होते अश्मन् शब्द की टि का लोप होवे। आश्मः १०६३ पत्थर का विकार। भास्मनः (भस्मनो विकारः) १०८२=भस्म का विकार। मार्त्तिकः। १०६७। १०८५। २५५ (मृत्तिकाया विकारः) मिट्टी का विकार॥

११९१॥ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ४।३।१३५ चाद्विकारे मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः। मौर्वम्। काण्डम्भस्म वा। पैप्पलम्।

प्राणी, ओषधि, और वृक्ष वाचक शब्दों से परे अवयव अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। चकार से विकार अर्थ में भी। मायूरः १०६३। २५५ मोर का अवयव वा विकार। मौर्वम् (१) (मुर्वाया अवयवो विकारो वा)। पैप्पलम् (२) (पिप्पलस्यावयवो विकारो वा)॥

११९२॥ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः।४।३।१४३। प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्याद्विकारावयवयोः। अश्ममयम्। आश्मनम्। अभक्ष्येत्यादि किम्। मौद्गस्सूपः। कार्पासमाच्छादनम्॥

भाषा में (३) (वेद से भिन्न) संस्कृत ग्रन्थों में प्रकृति (प्रातिपदिक) मात्र से परे विकार और अवयव अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होवें, परन्तु यदि विकार और अवयव भक्ष (खाने योग्य) और वस्त्र वाचक न हो तव। अश्ममयम् वा आश्मनम् पत्थर का विकार वा अवयव। ११९२ इस सूत्र में "अभक्ष्याच्छादनयोः" यह पद क्यों कहा? उत्तर देता है, मौद्गः (मुद्गस्य विकारः) मुंग की दाल। और कार्पासम् (कार्पासस्य विकारः) कपड़ा इन दोनों उदाहरणों में मयट् न हो जावे॥

११९३॥ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४।३।१४४ आम्रमयम्॥

वृद्ध ११५२। ११५३ संज्ञा वाले शब्दों से परे और शरादिओं से परे विकार और अवयव अर्थ में मयट् प्रत्यय नित्य होवे। आम्रमयम् (आम्रस्य विकारोऽवयवो वा)=आम का विकार वा अवयव॥

११९४॥ गोश्च पुरीषे ४।३।१४५ गोमयम्॥

'गाय का गोबर' इस अर्थ में गो शब्द से परे मयट् प्रत्यय होवे। गोमयम्, गौ का गोबर।

११९५॥ गोपयसोर्यत् ४।३।१६० गव्यम्। पयस्यम्॥

॥ इति प्राग्दीव्यतीयाः॥

गो और पयस् इन शब्दों से परे विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होवे। गव्यम् २८ गोर्विकारः) पयस्यम् (पयसो विकारः)=दूध का विकार॥ प्राग्दीव्यतीय समाप्त हुए॥

---

(१) किसी लता का नाम है। (२) पीपल के वृक्ष का नाम है। (३) अवैदिक।

११९६ ॥ प्राग्वहतेष्ठक् ४ । ४ । १ तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ॥

यहां से लेकर १२१२ सूत्र पर्यन्त ठक् का अधिकार है ॥

११९७ ॥ तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४ । ४ । २ अक्षैर्दीव्यति खनति जयति जितं वा आक्षिकम् ॥

(उस करके) "खेलता है खोदता है जीतता है और जो पदार्थ जीतागया" इन अर्थों में तृतीयान्त से परे 'ठक' प्रत्यय होवे। आक्षिकम् १ ६०१ ८६,२११ पासियों से जो खेलता है इत्यादि ॥

११९८ ॥ संस्कृतम् ४ । ४ । ३ दध्ना संस्कृतं दाधिकम् । मारीचिकम् ॥

"संस्कार कियागया" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। दाधिकम् १ ६० १ ८६, २११ दधि (दही) करके जिस का संस्कार किया गया । मारीचिकम् = मरिच से जिस का संस्कार किया गया ॥

११९९ ॥ तरति ४ । ४ । ५ उडुपेन तरति । औडुपिकः ॥

'तरता है' इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। (१) औडुपिकः १ ६०, १ ८६, २११ ॥

१२०० ॥ चरति ४ । ४ । ८ हस्तिना चरति हास्तिकः । दध्ना चरति दाधिकः ॥

(२) 'जाता है वा खाता है' इन अर्थों में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। हास्तिकः १ ६०, १ ८६ ८०१ हाथी करके जो जाता है। दाधिकः १ ६०, १ ८६, २११ जो दही करके खाता है ॥

१२०१ ॥ संसृष्टे ४ । ४ । २२ दध्ना संसृष्टं दाधिकम् ॥

संसृष्टम् (मिलाया गया) इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। दाधिकम् १ ६० । १ ८६ । २११ दही से जो मिलाया गया ॥

१२०२ ॥ उञ्छति ४ । ४ । ३२ बदराण्युञ्छति बादरिकः ॥

"उस को चुनता है" इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। बादरिकः १ ६० । १ ८६ । २११ जो बेरों को चुनता है ॥

१२०३ ॥ रक्षति ४ । ४ । ३३ समाजं रक्षति सामाजिकः ॥

---

(१) तुम्बा करके जो तरता है। (२) यहां चर धातु के गति और भक्षण दोनों अर्थों का ग्रहण है ॥

"रक्षा करता है" इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। सामाजिकः १०६७। १०८५। २५५ जो समाज का रक्षक हो॥

१२०४॥ शब्ददर्दुरङ्करोति ४।४।३४ शब्दङ्करोति शाब्दिकः। दर्दुरङ्करोति दार्दुरिकः॥

"करता है" इस अर्थ में द्वितीयान्त शब्द वा 'दर्दुर' शब्दों से परे ठक् प्रत्यय होवे। शाब्दिकः १०६७। १०८५। २५५=जो शब्द करता है। दार्दुरिकः १०६७। १०८५। २५५=जो डडुओं को करे (पहली वारम)॥

१२०५॥ धर्म्मञ्चरति ४।४।४१ धार्म्मिकः॥

"धर्म को आचरण करता है" इस अर्थ में धर्म शब्द से परे ठक् प्रत्यय होवे। धार्मिकः १०६७। १०८५। २५५ जो धर्म को आचरण करता है॥

१२०६॥ अधर्म्माच्चेति वक्तव्यम्। आधर्म्मिकः॥

अधर्म शब्द से भी ठक् प्रत्यय होवे ऐसा कहना चाहिये। आधर्मिक (अधर्मं चरति) पापी॥

१२०७॥ शिल्पम् ४।४।५५ मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः॥

"इस का शिल्प" इस अर्थ में प्रथमान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। मार्दङ्गिकः १०६७। १०८५। २५५=मृदङ्ग बजाने से जिस का हस्त कुशल है॥

१२०८॥ प्रहरणम् ४।४।५७ असिः प्रहरणमस्य आसिकः। धानुष्कः।

"इस का (१) प्रहरण (आयुध) है" इस अर्थ में प्रथमान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे॥ आसिकः १०६७। १०८५। २५५ (खड्गधारी)। धानुष्कः ११२७ (धनु. प्रहरणमस्य)= धनुषधारी॥

१२०९॥ शीलम् ४।४।६१ अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः।

"इस का स्वभाव है" इस अर्थ में प्रथमान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। आपूपिकः १०६७। १०८५। २५५=जिसका पूड़े खाने का स्वभाव है॥

१२१०॥ निकटे वसति ४।४।७३ नैकटिको भिक्षुकः।

॥ इति ठगधिकारः॥

"निकट (नेड़े) वसता है" इस अर्थ में सप्तम्यन्त निकट शब्द से परे ठक् प्रत्यय होवे। नैकटिकः (निकटे वसति) १०६७। १०८५। २५५=भिखारी जो निकट वसे।

ठक् ११९६ प्रत्यय का अधिकार समाप्त हुआ।

---

(१) जिस करके मारते हैं।

१२११ ॥ प्राग्घिताद्यत् । ४ । ४ । ७५ । तस्मै हितमित्यत प्राग्य दधिक्रियते ॥

इस सूत्र से लेकर ११२ सूत्र पर्यन्त यत् प्रत्यय का अधिकार है ॥

१२१२ ॥ तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् । ४ । ४ । ७६ । रथं वहति रथ्यः । युग्यः । प्रासङ्ग्य ॥

"उस को ले जाता है" इस अर्थ में द्वितीयान्त रथ युग और प्रासङ्ग इन शब्दों से परे यत् प्रत्यय होवे। रथ्य २११—जो रथ को लेजावे। युग्य (युगं वहति) २११ जो जूवे को ले जावे। प्रासङ्ग्य २११ जो (१)प्रासङ्ग को लेजावे।

१२१३ ॥ धुरोयड्ढकौ । ४ । ४ । ७७ । धुर्य्यं । धौरेय ॥

द्वितीयान्त धुर् शब्द से परे "उस को लेजाता है" इस अर्थ में 'यत्' वा 'ढक्' प्रत्यय होवें। धुर्य वा धौरेय १ ।० १ ८ (धुरं वहति)—जो धुरा को ले जावे।

१२१४ ॥ नौवयोधर्म्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्य्यतुल्यप्राप्य वध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु । ४ । ४ । ९१ । नावा तार्य्यंनाव्यं जलम् । वयसा तुल्यो वयस्य । धर्म्मेण प्राप्यं धर्म्यम् । विषेण वध्यः विष्यः । मूलेन आनाम्यम्मूल्यम् । मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया सम्मितंतुल्यम् ।

नौ, वयस् धर्म विष मूल मूल सीता और तुला इन तृतीयान्त आठ शब्दों से परे क्रम से तार्य (तरने योग्य) तुल्य (समान) प्राप्य (प्राप्त होने के योग्य) वध्य (मारने के योग्य) आनाम्य (झुकाने के योग्य) सम (समान) समित (समकिया गया) और संमित (तोलागया) इन अर्थों में यत् प्रत्यय होवे। जैसा नाव्यम् २८—बेड़ी से पार होने के योग्य (जल) वयस्य—उमर करके जो तुल्य (मित्र) धर्म्यम् २११ (धर्म करके प्राप्त होने के योग्य) विष्य २११ (विष करके मारने योग्य) मूल्यम् २११ (जड़ से जो झुकाने योग्य) मूल्य—मोल करीगई वस्तु के जो समान हो दाम (मोल) सीत्यम् सीता (हलकी लकीर) से जो समित हुआ (खेत)। तुल्यम्—तखड़ी से तोला गया (समान) ॥

१२१५ ॥ तत्र साधुः । ४ । ४ । ९८ । सामसु साधुस्सामन्यः । कर्म्मण्य । शरण्यः ॥

---

(१) जो काठ जुआन बछड़ों के कांधे पर धरी जावे ॥

"उस में निपुण है" इस अर्थ में सप्तम्यन्त से परे यत् प्रत्यय होवे। सामन्य: = सामवेद में जो निपुण हो। कर्मण्य: (कर्मसु साधु:) शरण्य: २५५ (शरणे साधु:)॥

१२१६॥ सभाया य ।४।४।१०५। सभ्य.॥ इति यतोऽवधिः॥

१२१५ सूत्र के अर्थ में सभा शब्द से परे 'य' प्रत्यय होवे। सभ्य' २५५ (सभायां साधु.)॥

॥ यत् १२११ प्रत्यय का अधिकार समाप्त हुआ॥

१२१७॥प्राक्क्रीताच्छः।५,१,१। तेन क्रीतमित्यत. प्राक्छोऽधिक्रियते।

यहा से १२२५ सूत्र पर्यन्त छ प्रत्यय का अधिकार है॥

१२१८॥ उगवादिभ्यो यत्।५।१।२। उवर्णान्ताद्गवादिभ्य-श्च यत्। छस्यापवाद। शङ्कव्यं दारु गव्यम्।

उकारान्त से और गवादिओं से परे यत् प्रत्यय होवे। यह सूत्र, १२१७ सूत्र का अपवाद है। शङ्कव्यम् (शङ्कवे हितम्) १०७२, २६ लकडी जो कीले को हितकारक (उस से कीला बनसके) हो। गव्यम् २८ (गवे हितम्) जो गौ के लिये हित कारक हो॥

१२१९॥ नाभिनभञ्च। नभ्योऽक्ष:। नभ्यमञ्जनम्॥

"नाभि" शब्द को नभ आदेश और उस से परे १२२० सू०अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होवे। नभ्य: २५५ = अक्ष (धुरी) रथ के पहिये की नाभि के छेक में रहता है। (१) नभ्यम् २५५ (नाभये हितम्) = अञ्जन (तैलाभ्यङ्ग)॥

१२२०॥ तस्मै हितम्।५।१।५। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक्।

तस्मै हितम् (उस के लिये हित) इस अर्थ में चतुर्थ्यन्त से परे छ प्रत्यय होवे। वत्सीय: १०८०, २५५ जो बछडेओं को दूध छोडे ऐसा गोधुक् (गौ चोने वाला)॥

१२२१॥ शरीरावयवाद्यत्।५।१।६। दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। नस्यम्।

चतुर्थ्यन्त शरीर के अवयव वाचक शब्द से परे 'यत्' प्रत्यय होवे। दन्त्यम् २५५ (दन्तेभ्यो हितम्) जो दान्तों को हित हो। कण्ठ्यम् २५५ (कण्ठाय हितम्) गले को जो हित हो। नस्यम् (नासिकायै हितम्) जो नाक के लिये हित कारक हो॥

१२२२॥ आत्मन् विश्वजनभोगोत्तरपदात्ख·।५।१।९॥

आत्मन् शब्द से परे और विश्वजन शब्द से परे और भोग शब्द जिस का उत्तर पद हो उस से परे ख प्रत्यय हो॥

---

(१) यहा रथ की नाभि में हो ऐसा प्रयोग आता है, शरीर की नाभि में तो (नाभ्यम्) १२२१ ऐसा होगा।

१२२३ ॥ आत्माध्वानौ खे । ६ । ४ । १६९ । एतौ खे प्रकृत्या स्त । आत्मने हितमात्मनीनम् । विश्वजनीनम् । मातृभोगीण ॥

॥ इति छयतोः पूर्वोऽवधिः ॥

ख प्रत्यय के परे होते आत्मन् और अध्वन् इन दो शब्दों का (१) प्रकृतिभाव हो। आत्मनीनम् १ ८ जो अपने लिये हित हो। विश्वजनीनम् १ ८ २११ जो संसार भर के जनों को हित हो। मातृभोगीण (मातृभोगाय हित) १ ८ २११ माता के शरीर के लिये हितकारक हो ॥ छ प्रत्यय और यत् प्रत्यय की अवधि समाप्त हुई ॥

१२२४ ॥ प्राग्वतेष्ठञ् । ५ । १ । १८ । तेन तुल्यमित्यतः प्राक् ठञधिक्रियते ॥

यहां से ११११ सूत्र पर्यन्त ठञ् प्रत्यय का अधिकार होवे ॥

१२२५ ॥ तेन क्रीतम् । ५ । १ । ३७ । सप्तत्या क्रीतं साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् ॥

'उस करके खरीदा गया' इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठञ् प्रत्यय होवे। साप्ततिकम् १ ६११ ८१ २११ – सत्तर करके जो मोल लिया गया होवे। प्रास्थिकम् (प्रस्थेन क्रीतम्)।

१२२६ ॥ तस्येश्वरः । ५ । १ । ४२ । सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ स्तः । अनुशतिकादीनाञ्च । सर्वभूमेरीश्वरः सार्वभौमः । पार्थिवः ।

"उस का ईश्वर" इस अर्थ में षष्ठ्यन्त सर्वभूमि और पृथिवी इन दो शब्दों से परे क्रम से अण् और अञ् प्रत्यय होवें। ११०४ से पूर्व और उत्तर पद को वृद्धि करेंगे। सार्वभौम २११ – सारी पृथ्वी का पति। पार्थिव १ ६१ २११ (पृथिव्या ईश्वरः) – राजा।

१२२७ ॥ पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् । ५ । १ । ५९ । एते रूढशब्दा निपात्यन्ते ।

(२) पङ्क्ति (दश) विंशति (बीस) त्रिंशत् (तीस) चत्वारिंशत् (चालीस) पञ्चाशत्

---

(१) जैसे के वैसे ही रहैं अर्थात् ८०१ सूत्र से टि का लोप न हो ॥

(२) यहां 'पञ्च पदानि परिमाणमस्य" ऐसे विग्रह में पञ्चन् शब्द की टि का लोप और ति प्रत्यय पुन (चोः कुः) सूत्र से कुत्व करने से 'पङ्क्ति' ऐसा रूप सिद्ध होता है तब का अर्थ भी छन्दोविशेष है यह काशिकाकार का मत है। हरदत्त ने कहा है कि यहां पद का अर्थ पाद है ऐसे औरों के यौगिक अर्थ तो हैं। परन्तु जब इन को रूढि शब्द माना तो पङ्क्ति शब्द दश संख्या का वाचक भी हुआ।

(पञ्चास) षष्टि (साठ) सप्तति (सत्तर) अशीति (अस्सी) नवति (नव्वे) और शत (सौ) ये रूढ शब्द निपात से सिद्ध होते हैं ॥

१२२८॥ तदर्हति । ५ । १ । ६३ । श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः ॥

द्वितीयान्त से परे "तदर्हति" तिस के योग्य है इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय होवे। श्वैतच्छत्रिकः १०६२, १०८५, २५५ जो शुक्ल छत्र के योग्य हो ॥

१२२९॥ दण्डादिभ्यो यः ।५। १ । ६६ । एभ्यो यः। दण्डमर्हति दण्ड्यः । अर्घ्यः । वध्यः ॥

१२२८ सूत्र के अर्थ में दण्डादियों से परे 'यत्' प्रत्यय होवे। दण्ड्यः २५५ जो दण्ड के योग्य हो। अर्घ्यः २५५(अर्घमर्हति) = पूज्य।वध्यः २५५ (वधमर्हति) जो मारने योग्य हो।

१२३० ॥ तेन निर्वृत्तम् ।५।१।७९। अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम् ॥

॥ इति ठञोवधिः ॥

"उस करके निष्पन्न हुआ" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठञ् प्रत्यय होवे।
(१) आह्निकम् = १०६२,१०८५,२६८ = जो दिन करके निष्पन्न हुआ।

॥ ठञ् १२२४ प्रत्ययकी अवधि समाप्तहुई ॥

१२३१ ॥ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५। १। ११५ ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवदधीते। क्रिया चेत् किम् । गुणतुल्ये माभूत् । पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ।

"उस करके तुलना किया गया" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे "वति" प्रत्यय होवे। परन्तु जिस धर्म से तुलना करे वह क्रिया हो तब। ब्राह्मणवत् ३८२ अधीते (वह ब्राह्मण के तुल्य पढता है) इस सूत्र मे "क्रिया चेत्" यह क्यों कहा? उत्तर देताहै "पुत्रेण तुल्यः स्थूलः" (पुत्र के तुल्य मोटा है) यहां गुण तुल्यता में पुत्र शब्द से वति प्रत्यय न हो जावे।

१२३२॥ तत्र तस्येव । ५ । १ । ११६ । मथुरायामिव मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः । चैत्रस्येव चैत्रवत् मैत्रस्य गावः ॥

"उस में सदृश वा "उस के सदृश" इन अर्थों में सप्तम्यन्त और षष्ठ्यन्त शब्दों से परे वति प्रत्यय होवे। मथुरावत् = मथुरा मे जैसा कोट वैसा स्रुघ्न देश का कोट। चैत्रवत् = चैत्र की सी मैत्र की गाए ॥

---

(१)यहां 'अह्नष्टखोरेव' इस नियम से ९७२ सूत्र से टि का लोप नहीं होता।

१२३३ ॥ तस्य भावस्त्वतलौ । ५ । १ । ११९ । प्रकृतिजन्यबोध प्रकारो भावः । गोर्भावो गोत्वम् । त्वान्तं क्लीवम् ।

उस का भाव इस अर्थ में षष्ठ्यन्त से परे 'त्व' वा तल् प्रत्यय होवे । (१) प्रकृति जन्य बोध में प्रकार (विशेषण रूप से प्रतीयमान) को भाव कहते हैं । 'गोत्वम्'—गौ का जो धर्म । त्व जिस के अन्त में हो वह नपुंसक लिङ्ग होता है ॥

१२३४ ॥ आ च त्वात् । ५ । १ । १२० । ब्रह्मणस्त्व इत्यतः प्राक् त्वतलावधिक्रियेते । अपवादैः सह समावेशार्थमिदम् । चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः । स्त्रिया भावस्त्रैणम् । स्त्रीत्वम् । स्त्रीता । पौंस्नम् । पुंस्त्वम् । पुंस्ता ॥

'ब्रह्मणस्त्व' इस सूत्र के पूर्व त्व और तल् प्रत्यय का अधिकार है । अपवादों के साथ इन प्रत्ययों का व्यवहार हो इस लिये यह सूत्र किया गया है । नञ् और स्नञ् १० के साथ समावेश के लिये सूत्र में चकार पढ़ा है । स्त्रैणम्, स्त्रीत्वम् स्त्रीता (स्त्री का धर्म) पौंस्नम् पुंस्त्वम् पुंस्ता (पुरुष का धर्म) ॥

१२३५ ॥ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा । ५ । १ । १२२ । वावचनम णादिसमावेशार्थम् ॥

षष्ठ्यन्त पृथु आदि शब्दों से परे विकल्प करके 'इमनिच्' प्रत्यय होवे । इस सूत्र में वा का ग्रहण अण् आदिकों के समावेश के लिये है ॥

१२३६ ॥ र ऋतो हलादेर्लघोः । ६ । ४ । १६१ । इष्ठेमेयस्सु ॥

इष्ठन् इमन् और ईयस् इन प्रत्ययों के परे होते हलादि लघु ऋ को र आदेश होवे ॥

१२३७ ॥ टेः । ६ । ४ । १५५ । टेर्लोपः इष्ठेमेयस्सु । पृथुमृदुभृशकृशदृढ परिवृढानामेव रत्वम् । पृथोर्भावः प्रथिमा । पार्थवम् । म्रदिमा । मार्दवम् ॥

'इष्ठन्' वा 'इमनिच्' अथवा 'ईयसुन्' प्रत्यय जब परे रहें तब टि का लोप होवे । पृथु मृदु भृश कृश दृढ़ परिवृढ़, (इन्हीं) शब्दों के ऋकार को र १२३६ आदेश होवे । प्रथिमा १२३५ । १२३६ । १२३७ (वा) पार्थवम् १ ४१ । १०७२ पृथु का भाव (चौड़ाई) । म्रदिमा (वा) मार्दवम्—मृदु (कोमल) का भाव—कोमलता ॥

---

(१) प्रकृति (गो शब्द) से गौ के बोध होने में विशेषण रूप से प्रतीयमान जैसे गोत्व' इस को भाव कहते हैं ॥

१२३८॥ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च । ५ । १ । १२३ । चादिमनिच् । शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । दार्ढ्यम् । द्रढिमा ॥

वर्ण (रङ्ग) वाचक और दृढ आदि षष्ठ्यन्त शब्दों से परे भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होवे चकार से इमनिच् भी होवे । शौक्ल्यम् १०६३ । २५५ (शुक्लस्य भावः) 'वा' शुक्लिमा (चिटयाई) । दार्ढ्यम् (वा) द्रढिमा (दृढस्य भावः) दृढता ॥

१२३९ ॥ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्म्मणि च । ५ । १ । १२४ । चाद्भावे । जडस्य भावः कर्म्म वा जाड्यम् । मौढ्यम् । ब्राह्मण्यम् ॥ आकृतिगणोऽयम् ॥

गुणवाचक षष्ठ्यन्त शब्द से परे और ब्राह्मणादि षष्ठ्यन्त शब्दों से परे 'ष्यञ्' प्रत्यय होवे, क्रिया और भाव अर्थ में । जाड्यम् १०६३ । २५५ वा मौढ्यम् (मूढस्य कर्म भावो वा)=मूर्खता वा मूर्ख का कर्म । ब्राह्मण्यम् (ब्राह्मण का भाव वा आचार) ॥

॥ यह ब्राह्मणादिगण आकृतिगण है ॥

१२४० ॥ सख्युर्यः । ५ । १ । १२६ । सख्यम् ॥

भाव और क्रिया अर्थ में षष्ठ्यन्त सखि शब्द से परे य प्रत्यय होवे । सख्यम् २५५ (सख्युर्भावः कर्म) वा मैत्री ॥

१२४१ ॥ कपिज्ञात्योर्ढक् । ५ । १ । १२७ । कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥

भाव और क्रिया अर्थ में षष्ठ्यन्त कपि और ज्ञाति शब्द से परे ढक् प्रत्यय होवे । कापेयम् १०८० । १०६७ । २५५ (कापेर्भाव' कर्म वा) कपि (वानर) का भाव वा आचार । ज्ञातेयम् १०८० । २५५ ज्ञाति का आचार वा भाव ॥

१२४२ ॥ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् । ५ । १ । १२८ । सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ॥ इति नञ्स्नञोरधिकारः ॥

भाव वा क्रिया अर्थ में षष्ठ्यन्त पत्यन्त और पुरोहितादि शब्दों से परे यक् प्रत्यय होवे । सैनापत्यम् (सेनापतेर्भाव) १०६७ । २५५ । पौरोहित्यम् १०६७ । २५५ (पुरोहितस्य भावः कर्म वा) पुरोहित का भाव वा कर्म ॥

॥ नञ् और स्नञ् प्रत्यय का अधिकार समाप्त हुआ ॥

१२४३ ॥ धान्यानाम्भवने क्षेत्रे खञ् । ५ । २ । १ । मुद्गानाम्भवनं क्षेत्रम्मौद्गीनम् ॥

धान्य जिस में उत्पन्न हो ऐसा खेत जब वाच्य हो तब षष्ठ्यन्त धान्यार्थक शब्द से परे खञ् प्रत्यय होवे । मौद्गीनम् १०८०,१०६३,२५५ खेत जिस में मुंगी उत्पन्न हो ।

१२४४ ॥ ओहिशाल्योर्ठक् । ५ । २ । २ । मैहेयम् । शालेयम् ।

१२४४ सूत्र के अर्थ में ब्रीहि और शालि इन षष्ठ्यन्त शब्दों से परे ठक् प्रत्यय होवे। मैहेयम् १ १० । २११ शालेयम् २११ (शालीनां भवनं क्षेत्रम्) धान की उत्पत्ति का खेत।

१२४५ ॥ हैयङ्गवीनं संज्ञायाम् ५ । २ । २३ नवनीते निपातितोऽयम्।

(१) "हैयङ्गवीनम्" (मक्खन) यह शब्द संज्ञा में निपात से सिद्ध होता है ॥

१२४६ ॥ तदस्य सञ्जातन्तारकादिभ्य इतच् । ५ । २ । ३६ । तारकास्सञ्जाता अस्य तारकितन्नभ । पण्डित । आकृतिगणोऽयम् ।

'वह इस को उत्पन्न हुआ" इस अर्थ में प्रथमान्त तारकादि शब्दों से परे इतच् प्रत्यय होवे । तारकितम् २११ (आकाश) । पण्डित २११ (पण्डा संजाताऽस्य) सत् और असत् के ज्ञान वाली बुद्धि को पण्डा कहते हैं वह उत्पन्न हुई है जिस को । यह तारकादिगण आकृतिगण है ॥

१२४७ ॥ प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः । ५ । २ । ३७ । ऊरु प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम् । ऊरुदघ्नम् । ऊरुमात्रम् ॥

'प्रमाण' अर्थ में प्रथमान्त से परे द्वयसच् 'दघ्नच् या 'मात्रच् प्रत्यय होवे। ऊरुद्वयसम् (वा) ऊरुदघ्नम् (वा) ऊरुमात्रम्—जांघ जितना ॥

१२४८ ॥ यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् । ५ । २ । ३९ । यत् परिमाणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् ॥

प्रथमान्त यत् तत् और एतद् इन शब्दों से परे वतुप् प्रत्यय होवे परिमाण अर्थ में । यावान् १०१ —जितना । तावान् १०१ —उतना । एतावान् १०१ —इतना ॥

१२४९ ॥ संख्याया अवयवे तयप् । ५ । २ । ४२ । पञ्चावयवा अस्य पञ्चतयम् ॥

संख्यावाचक प्रथमान्त शब्द से परे तयप् प्रत्यय होवे अवयव अर्थ में । पञ्चतयम् १८७ जिस के पांच अवयव होवें ॥

१२५० ॥ द्वित्रिभ्यान्तयस्यायज्वा । ५ । २ । ४३ । द्वयम् । द्वितयम् । त्रयम् । त्रितयम् ॥

द्वि और त्रि इन से परे तयप् को अयच् विकल्प करके होवे । द्वयम् २११ वा द्वितयम्

---

(१) ओगोदोहस्य विकार ।

(द्वावयववावस्य)=जोडा। त्रयम् २५५ वा त्रितयम्। (त्रयोऽवयवा अस्य) तीन जिस के अवयव हों॥

१२५१॥ उभादुदात्तो नित्यम्।५।२।४४। उभयम्॥

उभ शब्द से परे तयप् को नित्य ही उदात्त अयच् होवे। उभयम् २५५ जोडा॥

१२५२॥ तस्य पूरणे डट्।५।२।४८। एकादशानाम्पूरण एकादशः॥

"उस के पूरण करने वाला" इस अर्थ में प्रथमान्त से परे डट् प्रत्यय होवे। एकादशः ८७३=ग्यारवां।

१२५३॥ नान्तादसंख्यादेर्मट्।५।२।४९। मडागमः। पञ्चानां पूरणः पञ्चमः। नान्तात् किम्। विंशः॥

जिस नकारान्त संख्यावाचक शब्द के आदि से कोई संख्यावाचक नहीं है उस से परे डट् को मट् का आगम होवे। पञ्चमः १९४ पांचवां। यहां "नान्तात्" यह पद क्यों कहा? उत्तर देता है "विंशः" १२५४ यहां मट् न हो जावे॥

१२५४॥ तिविंशतेर्डिति।६।४।१४२। विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपो डिति परे। विंशः। असंख्यादेः किम्। एकादशः॥

डित् प्रत्यय परे हो तो भ संज्ञावाले विंशति शब्द के अवयव "ति" का लोप होवे। विंशः १२५२ (विंशतेः पूरणः) बीसवां। १२५३ में "असंख्यादेः" यह पद क्यों कहा? उत्तर देता है। एकादशः १२५२ यहां डट् को मट् न हो जावे॥

१२५५॥ षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्।५।२।५१। डटि। षण्णां पूरणः षष्ठः। कतिथः। कतिपयशब्दस्यात एव डट्। कतिपयथः। चतुर्थः।

षट्, कति, कतिपय, और चतुर्, इन शब्दों को डट् के परे होते थुक् का आगम होवे। षष्ठः ७५ छठा। कतिथः (कितनों की संख्या का पूरक)। कतिपय शब्द से परे (१) इसी लिये डट् १२५२ प्रत्यय भी हुआ। कतिपयथः=कितने एकों की संख्या का पूरक। चतुर्थः (चतुर्णां संख्या पूरकः)

१२५६॥ द्वेस्तीय ५।२।५४ डटोऽपवादः। द्वयोः पूरणो द्वितीयः।

षष्ठ्यन्त द्वि शब्द से परे पूरण अर्थ में तीय प्रत्यय होवे, यह डट् का अपवाद है। द्वितीयः (दूसरा)॥

---

(१) कतिपय शब्द संख्यावाचक नहीं है, इस कारण १२५२ सूत्र की प्राप्ति नहीं है, परंतु १२५५ सूत्र से इस को थुक् विधान् किया है, और थुक् का डट् निमित्त है विना डट् से थुक् का आना असम्भव है तो इस थुक् के विधान के लिये कतिपय शब्द से भी डट् हुआ।

१२५७ ॥ त्रेः सम्प्रसारणञ्च । ५ । २ । ५५ । तृतीयः ।

त्रि शब्द को सम्प्रसारण और तीय प्रत्यय होवे पूरण अर्थ में । तृतीय (त्रयाणां पूरणः)—तीसरा ॥

१२५८ ॥ श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते । ५ । २ । ८४ । श्रोत्रिय । [illegible] छान्दस ।

"वेद पढ़ता है" इस अर्थ में "श्रोत्रियन्" यह निपात से सिद्ध होता है । (१) 'श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते' (जो वेद पढ़े) यहां वा की अनुवृत्ति से दूसरे पक्ष में "छान्दस" १ ६१ (वेदपाठी) ऐसा रूप भी होता है ।

१२५९ ॥ पूर्वादिनिः । ५ । २ । ८६ । पूर्वं कृतमनेन पूर्वी ।

"अनेन" इस रूप से जब वार्त्ता विवक्षित हो तब प्रथमान्त पूर्व शब्द से परे इनि प्रत्यय होवे । पूर्वी ३११ पुनः पूर्विन् शब्द से प्रथमा के एक वचन में १०। १८१ १८३ इन से पूर्वी । यथा—जिसने पहिले खाया ॥

१२६० ॥ सपूर्वाच्च । ५ । २ । ८७ । कृतपूर्वी ।

विद्यमान है पूर्वपद जिसके ऐसे पूर्वशब्द से परे भी इनि प्रत्यय होवे । कृतपूर्वी—जिस ने पूर्व काल में किया ॥

१२६१ ॥ इष्टादिभ्यश्च । ५ । २ । ८८ । इष्टमनेन इष्टी । अधीती ।

इष्टादिकों से परे इनि प्रत्यय होवे । इष्टी—जिस ने इष्टि (यज्ञ) किया । अधीती (अधीतमनेन) जिसने पढ़ा ॥

१२६२ ॥ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् । ५ । २ । ९४ । गावोऽस्यास्मिन् वा सन्ति गोमान् ॥

"उस का वा उस में यह है" इस अर्थ में प्रथमान्त से परे मतुप् प्रत्यय होवे । गोमान्—गौओं वाला ॥

१२६३ । तसौ मत्वर्थे । १ । ४ । १९ । तान्तसान्तौ भसंज्ञौ स्तो मत्वर्थे प्रत्यये । सम्प्रसारणम् । विदुष्मान् ।

मतुप् १२६२ के अर्थ में कोई प्रत्यय परे रहे तब त् (वा) स् है अन्त में जिन के वह भ संज्ञावाले हों पुनः १०६ से सम्प्रसारण हुआ (२) विदुष्मान् ॥

---

(१) यहां श्रोत्रियन् का न् (नकार) इत् है । (२) यहां विद्वांसः सन्त्यस्मिन्नस्ति ऐसे विग्रह में यहां विद्वान् ऐसा रहे पद होता है ॥

१२६४ ॥ गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः । शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः । कृष्णः ॥

पतञ्जलि महाराज को गुणवाचक शब्दों से परे मतुप् का लुक् इष्ट है । शुक्लः पटः (चिट्टा कपड़ा), कृष्णः (काला) ॥

१२६५ ॥ प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ।५।२।९६। चूडालः । चूडावान् । प्राणिस्थात् किम् । शिखावान् दीपः । प्राण्यङ्गादेव । नेह । मेधावान् ॥

प्राणी में नित्य सम्बन्ध से रहने वाले पदार्थ के वाचक आकारान्त शब्द से परे विकल्प करके लच् प्रत्यय होवे, मतुप् के अर्थ में। चूडालः वा चूडावान् १२६२ (चूडाऽस्यास्ति) चूडा जिस को होवे। यहा "प्राणिस्थात्" यह क्यों कहा? उत्तर देता है "शिखावान् दीपः" यहां दीप प्राणी नहीं इस लिये यहा पक्ष में लच् न हो जावे । "यह लच् प्राणी के अङ्ग से परे ही होवे" इस लिये "मेधावान्" यहां पक्ष में लच् न हुआ ॥

१२६६ ॥ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१०० लोमादिभ्यः शः । लोमशः । लोमवान् । पामादिभ्यो नः । पामनः ।

लोमादि, पामादि, और पिच्छादि शब्दों से परे क्रम से श, न, और इलच् प्रत्यय होवें । लोमन् आदि से परे श हो, उदा० लोमशः १८४ (वा) लोमवान् १२६२ जिस के शरीर पर बहुत बाल हों । पामन् आदिकों से परे न प्रत्यय हो। उदा० पामनः = खुरक वाला ॥

१२६७ ॥ अङ्गात् कल्याणे । अङ्गना ॥

कल्याण अर्थ में अङ्ग शब्द से परे 'न' प्रत्यय होवे । अङ्गना १२२५ । (कल्याणानि अङ्गानि यस्याः) = जिस के अङ्ग कल्याण वाले हों ॥

१२६८ ॥ लक्ष्म्या अच्च । लक्ष्मणः । पिच्छादिभ्य इलच् । पिच्छिलः । पिच्छवान् ॥

लक्ष्मी शब्द को अकार और न प्रत्यय हों । लक्ष्मणः (कल्याण चिन्ह वाला)। पिच्छ आदिकों से परे इलच् प्रत्यय हो । उदा० पिच्छिल' वा पिच्छवान् १२६२ दखों ॥

१२६९ ॥ दन्त उन्नत उरच् ५।२।१०६ उन्नता दन्ता अस्य दन्तुरः ॥

ऊंचे अर्थमें प्रथमान्त दन्त शब्द से परे उरच् प्रत्यय होवे। दन्तुरः = ऊंचे दान्तों वाला।

१२७० ॥ केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०९। केशवः। केशवान्।

प्रथमान्त केश शब्द से परे विकल्प करके व प्रत्यय होवे। केशव' (केशा सन्त्यस्य) 'वा' केशवान् १२६२ — केशों वाला ॥

१२०१ ॥ अन्येभ्योऽपि दृश्यते । मणिवः ।

अन्य (और) शब्दों से परे भी 'व' प्रत्यय होता पड़ता है। मणिव' — (मणिरस्यास्ति) सांप।

१२०२ ॥ अर्णसो लोपश्च । अर्णव ।

अर्णस् शब्द से परे व प्रत्यय होवे । और उस के स् का लोप होवे। अर्णव' (अर्णोऽस्त्यस्य) (सागर) ॥

१२०३ ॥ अत इनिठनौ । ५ । २ । ११५ । दण्डी । दण्डिक ।

१२६२ सूत्र के अर्थ में अकारान्त शब्दों से परे इनि या ठन् प्रत्यय होवें। दण्डी (वा) दण्डिक' १ ८१ (दण्डो ऽस्यास्ति) दण्डवाला ॥

१२०४ ॥ व्रीह्यादिभ्यश्च । ५ । २ । ११६ । व्रीही । व्रीहिक ।

व्रीहि आदि शब्दों से परे इनि (वा) ठन् प्रत्यय होवे। व्रीही (वा) व्रीहिक' — (व्रीहिरस्यास्मिन्नस्ति) जिस में चावल हों ॥

१२०५ ॥ अस्मायामेधास्रजो विनि । ५ । २ । १२१ । यशस्वी । मायावी । मेधावी । स्रग्वी ।

अस् जिस के अन्त में हो उस शब्द से परे, और माया मेधा और स्रज् इन शब्दों से परे "विनि" प्रत्यय होवे। यशस्वी (यशोऽस्यास्ति) । मायावी — कपिया (मायाऽस्यास्ति) । मेधावी (मेधाऽस्यास्ति) । पण्डित स्रग्वी (स्रगऽस्यास्ति) जिस के माला हो ॥

१२०६ ॥ वाचो ग्मिनि । ५ । २ । १२४ । वाग्मी ॥

वाच् शब्द से परे 'ग्मिनि' प्रत्यय होवे। वाग्मी (प्रशस्ता वागस्य) प्रशस्त वाणी वाला।

१२०७ ॥ अर्श आदिभ्यो ऽच् । ५ । २ । १२७ । अर्शस । आकृति गणोऽयम् ॥ इति मत्वर्थीया ॥

अर्शस् आदिकों से परे मतुप् के अर्थ में 'अच्' प्रत्यय होवे। अर्शस' — अर्श (बवासीर) रोग वाला। यह अर्शस् आदि गण आकृतिगण है ॥

॥ मतुप् १२६२ के अर्थ वाले प्रत्यय समाप्त हुए ॥

१२०८ ॥ प्राग्दिशो विभक्तिः । ५ । ३ । १ । दिक्शब्देभ्य इत्यतः प्रागवक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञा स्युः ॥

यहां से "दिक् शब्देभ्य" सूत्र पर्यन्त जितने प्रत्यय हैं वे विभक्ति संज्ञावाले हों ॥

॥ अथ स्वार्थिकाः ॥

॥ अब स्वार्थिक प्रत्ययों का वर्णन किया जाता है ॥

१२७९ ॥ किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः । ५ । ३ । २ । किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ॥

किम्, सर्वनाम, और बहु, इन से परे विभक्ति सञ्ज्ञक १२७८ प्रत्यय होवें । परन्तु जिन सर्वनाम सञ्ज्ञक शब्दों के आदि में द्वि शब्द है उन से परे नहीं होवें । इस सूत्र का "दिक् शब्देभ्यः" इस सूत्र के पूर्व पर्यन्त अधिकार है ॥

१२८० ॥ पञ्चम्यास्तसिल् । ५ । ३ । ७ । पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा स्यात् ॥

पञ्चम्यन्त किमादि शब्दों से परे तसिल् प्रत्यय विकल्प करके होवे ॥

१२८१ ॥ कु तिहोः । ७ । २ । १०४ । किमः कुस्तादौ हादौ च विभक्तौ । कुतः कस्मात् ॥

तकार है आदि मे जिस के और हकार है आदि में जिस के ऐसा विभक्ति सञ्ज्ञक १२७८ प्रत्यय परे हो तो किम् शब्द को कु आदेश होवे । कुतः १२८० (वा) कस्मात् कहां से ।

१२८२ ॥ इदम इश् । ५ । ३ । ३ । प्राग्दिशीये । इतः ॥

प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होते इदम् को इश् होवे । इतः १२८० (अस्मात्) ॥

१२८३ ॥ एतदोऽन् । ५ । ३ । ५ । प्राग्दिशीये । अनेकाल्त्वात् सर्वादेशः । अतः । अमुतः । यतः । ततः । बहुतः । द्व्यादेस्तु । द्वाभ्याम् ॥

प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होते एतद् शब्द को अन् होवे । अन् अनेकाल है इस लिये सारे एतद् को हुआ । अतः १२८० । अमुतः १२८० । यतः १०८० । ततः १२८० । बहुतः १२८० = बहुतों से । द्वि आदि सर्व नाम का तो "द्वाभ्याम्" ऐसा ही रूप होता है ॥

१२८४ ॥ पर्य्यभिभ्याञ्च । ५ । ३ । ९ । तसिल् । परितः सर्वत इत्यर्थः । अभितः उभयत इत्यर्थः ॥

परि और अभि से परे तसिल् प्रत्यय होवे । परितः (चारों ओर से) अभितः (दोनो ओर से) ॥

१२८५ ॥ सप्तम्यास्त्रल् । ५ । ३ । १० । कुत्र । यत्र । बहुत्र ॥

सप्तम्यन्त किम् आदि १२७९ से परे त्रल् प्रत्यय विकल्प करके होवे कुत्र (कस्मिन्) १२८१ कहां यत्र २ ० (यस्मिन्) जहां। बहुत्र। (बहुषु) बहुतों में॥

१२८६॥ इदमो हः।५।३।११। त्रलोऽपवादः। इह॥

सप्तम्यन्त इदम् शब्द से परे ह प्रत्यय विकल्प करके होवे। यह त्रल् का अपवाद है। इह १२८२ यहां॥

१२८७॥ किमोऽत्।५।३।१२ वा स्यात्॥

किम् शब्द से परे अत् प्रत्यय विकल्प करके होवे॥

१२८८॥ क्वाति।७।२।१०५। किमः। क्व। कुत्र॥

अत् प्रत्यय के परे होने किम् को क्व आदेश होवे। क्व ११९ (वा) कुत्र १२८२ १२८१ (कस्मिन्) कहां॥

१२८९॥ इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते।५।३।१४। पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते। दृशिग्रहणाद् भवदादियोग एव। स भवान्। ततोभवान्। तत्रभवान्। ततोभवन्तम्। तत्रभवन्तम्। एवं दीर्घायु। देवानां प्रियः। आयुष्मान्॥

पञ्चमी और सप्तमी इनसे अन्य विभक्ति है अन्त में जिनके उन से परे भी तसिल् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं। इस सूत्र में दृशि पद के ग्रहण से 'भवत्' आदि शब्दों के योग में ही ये प्रत्यय होते हैं। प्रथमान्त से जैसे स भवान् (वा) ततो भवान् (वो आप) तत्र भवान्=पूज्य आप। द्वितीयान्त से जैसे ततो भवन्तम्=उन को आप तिस को। तत्र भवन्तम् (पूज्य को आप तिस को) ऐसे ही 'दीर्घायु' और देवानांप्रियः आयुष्मान् इन के योग में भी तसिलादि प्रत्यय होते हैं॥

१२९०॥ सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा।५।३।१५। सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थे दा स्यात्॥

कालार्थ में "सर्व एक अन्य किम् यद् तद्" इन सप्तम्यन्त शब्दों से परे दा प्रत्यय होवे॥

१२९१॥ सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि।५।३।६। दादौ प्रागिदशीये सर्वस्य सो वा। सर्वस्मिन् काले सदा। सर्वदा। अन्यदा। कदा। यदा। तदा। काले किम्। सर्वत्र देशे॥

द् है आदि में जिसके ऐसे प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होते सर्व शब्द को स आदेश विकल्प करके होवे। सदा (वा) सर्वदा "सर्वस्मिन् काले" एकदा (एक समय) अन्यदा (अन्यस्मिन्काले) कदा (कस्मिन् काले) यदा (यस्मिन् काले) तदा (तस्मिन्काले) तव। १२९० सूत्र में "काले" यह क्यों कहा? उत्तर देता है "सर्वत्र देशे" यहां देश की प्रतीति के होने पर 'दा' न हो जावे॥

१२९२ ॥ इदमोर्हिल् । ५ । ३ । १६ । सप्तम्यन्तात् ॥

सप्तम्यन्त इदम् शब्द से परे र्हिल् प्रत्यय होवे॥

१२९३ ॥ एतेतौ रथोः ५ । ३ । ४ इदम एत इत् एतौ स्तो रेफादौ थकारादौ च प्राग्दिशीये परे। अस्मिन् काले एतर्हि। काले किम्॥ इह देशे॥

रकार है आदि में जिस के (वा) थकार है आदि में जिस के ऐसे प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होते कालार्थ में वर्त्तमान और सप्तम्यन्त इदम् शब्द को एत, वा इत् होवें। एतर्हि इस काल में। यहां "काले" क्यों कहा? उत्तर देता है, "इह देशे" यहां देशार्थ में वर्त्तमान होने पर १२९३ सूत्र की प्राप्ति न हो जावे॥

१२९४ ॥ अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् । ५ । ३ । २१ । कर्हि। कदा। यर्हि। यदा। तर्हि। तदा॥

अनद्यतन ४१७ काल में "र्हिल्" प्रत्यय विकल्प करके होवे। कर्हि २९२ वा कदा (कस्मिन्काले) कब। यर्हि वा यदा २०७ (यस्मिन्काले) जब। तर्हि २०७ वा तदा। "तस्मिन्काले" (तब)॥

१२९५ ॥ एतदः । ५ । ३ । ५ । एत इत् एतौ स्तो रेफादौ थादौ च प्राग्दिशीये। एतस्मिन् काले। एतर्हि॥

रेफादि वा थादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे हो तो, एतद् शब्द को एत (वा) इत् आदेश होवे। एतर्हि = इस काल में॥

१२९६ ॥ प्रकारवचने थाल् । ५ । ३ । २३ । प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल्। तेन प्रकारेण तथा॥

"प्रकार" अर्थ में किमादि १२७८ शब्दों से परे "थाल्" प्रत्यय होवे। तथा २०७ तिस प्रकार से॥

१२९७ ॥ इदमस्थमुः । ५ । ३ । २४ । थालोऽपवादः ॥

इदम् शब्द से परे थमु प्रत्यय होवे। यह थाल् का अपवाद है॥

१२९८॥ एतदोऽपि वाच्यः। अनेन एतेन प्रकारेण वा इत्थम्।

तृतीयान्त एतद् से परे भी थमु प्रत्यय होवे ऐसा कहना चाहिये। इत्थम् (१) (इदम्+थमु) १२८१॥

१२९९॥ किमश्च।५।३।२५। केन प्रकारेण कथम्॥

॥ इति प्राग्दिशीया ॥

किम् शब्द से परे भी "थमु" प्रत्यय होवे। कथम् २८१—किस प्रकार से॥

॥ प्राग्दिशीय समाप्त हुए॥

१३००॥ अतिशायने तमबिष्ठनौ।५।३।५५। अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ स्तः। अयमेषामतिशयेनाढ्यः आढ्यतमः। लघुतम। लघिष्ठ॥

अतिशय विशिष्ट (बढ़ा) जो अर्थ उस में वर्तमान जो प्रथमान्त शब्द उस से परे स्वार्थ में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होवें। आढ्यतमः—सब से बड़ा धनी। लघुतम (वा) लघिष्ठ १११० (अतिशयेन लघु) सब से हलका॥

१३०१॥ तिङश्च।५।३।५६। तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् स्यात्॥

अतिशय अर्थ के प्रकाश करने पर तिङन्त से परे तमप् प्रत्यय होवे॥

१३०२॥ तरप्तमपौ घः।१।१।२२॥

तरप् और तमप् प्रत्यय 'घ' संज्ञा वाले होवें॥

१३०३॥ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे।५।४।११। किम एदन्तात् तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुः स्यान्न तु द्रव्यप्रकर्षे। किन्तमाम्। पचतितमाम्। उच्चैस्तमाम्। द्रव्यप्रकर्षे तु। उच्चैस्तमस्तरु

किम्, एकारान्त, तिङन्त और अव्यय इन से परे जो १३०२ संज्ञक प्रत्यय घ (घ) है अन्त में जिस के उस से परे आमु (आम्) प्रत्यय होवे परन्तु द्रव्य के प्रकर्ष के प्रकाश करने में न होवे। किन्तमाम् (२) कैसा प्रकर्ष करके। पचतितमाम्—बहु पचति

---

(१) एतद् शब्द का भी 'इत्थम्' ऐसा रूप ही होता है क्योंकि (एतद्+थमु) १२८९—(इत्+थमु)—इत्थम्—इस प्रकार से॥

(२) इन उदाहरणों में किसी क्रिया का अध्याहार कर लेना। जैसे "किन्तमाम्" में करोति का। और (उच्चैस्तमाम्) में 'पचति' का॥

शय करके पकाता है। उच्चैस्तमाम्। द्रव्य के अतिशय में तो "उच्चैस्तम" तरुः (वृक्ष-जो अत्यन्त ऊंचा हो)॥

१३०४॥ द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ। ५। ३। ५७। द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः। पूर्वयोरपवादः। अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः लघीयान्। उदीच्यः प्राच्येभ्यः पटुतराः। पटीयांसः॥

"जब द्विवचनान्त वा विभज्य (विभाग के योग्य) उपपद रहें, तब दो में से एक (१) के अतिशय में 'सुबन्त' और 'तिङन्त' से परे तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होवें। यह सूत्र पूर्व ले दो सूत्रों का अपवाद है। लघुतरः (वा) लघीयान् १२१७ इन दो में से यह बड़ा होता है। पटुतराः (वा) पटीयांसः=उदीच्य प्राच्यों से बड़े पण्डित होते हैं॥

१३०५॥ प्रशस्यस्य श्रः। ५। ३। ६०। इष्ठेयसोः परतः॥

प्रशस्य शब्द को 'श्र' आदेश होवे, जब इष्ठन् वा इयसुन् प्रत्यय परे हों तब॥

१३०६॥ प्रकृत्यैकाच्। ६। ४। १६३। इष्ठादावेकाच् प्रकृत्या स्यात्। श्रेष्ठः। श्रेयान्॥

इष्ठन् वा ईयसुन् परे हो तो एक स्वर वाला प्रकृतिभाव को प्राप्त हो। श्रेष्ठः (वा) श्रेयान् (अतिशयेन प्रशस्यः)॥

१३०७ज्य च। ५। ३। ६१। प्रशस्यस्य ज्यादेश इष्ठेयसोः। ज्येष्ठः॥

इष्ठन् और ईयसुन् के परे होते प्रशस्य को 'ज्य' आदेश भी होवे। ज्येष्ठः (अतिशयेन प्रशस्यः) सब से बड़ा॥

१३०८॥ ज्यादादीयसः। ६। ४। १६०। आदेः परस्य। ज्यायान्॥

ज्य १३०७ से परे ईयसुन् को 'आ' आदेश होवे। यहां ८५ के अनुसार ईकार को हुआ तो "ज्यायान्" (अतिशयेन प्रशस्यः)॥

१३०९॥ बहोर्लोपो भू च बहोः। ६। ४। १५८। बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः स्याद्बहोश्च भूरादेशः। भूमा॥

बहु शब्द से परे जो इमन् और ईयस् उनका लोप होवे। और बहु को 'भू' आदेश होवे। यहां भी ८५ से प्रथम अक्षर का ही लोप होता है। भूमा (बहुताई)॥

---

(१) जो अलग किया जावे।

१२१० ॥ इष्ठस्य यिट् च । ६ । ४ । १५९ । बहो परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद्यिडागमश्च ॥ भूयिष्ठ ॥

बहु से परे इष्ठन् के आदि इ, वर्ण का लोप होवे । और यिट् का आगम होवे । भूयिष्ठः (अतिशयेन बहु) ॥

१२११ ॥ विन्मतोर्लुक् । ५ । ३ । ६५ । इष्ठेयसोः । अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठ । स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान् । त्वचिष्ठ । त्वचीयान् ।

इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो विन् और मतु का लोप होवे । स्रजिष्ठः 'वा' स्रजीयान् (अतिशयेन स्रग्वी) । त्वचिष्ठः, 'वा' त्वचीयान् (अतिशयेन त्वग्वान्) ॥

१२१२ ॥ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः । ५ । ३ । ६७ । ईषदूनो विद्वान् । विद्वत्कल्पः । विद्वद्देश्य । विद्वद्देशीयः । पचतिकल्पम् ॥

ईषत् (थोड़ी) असमाप्ति के अर्थ में वर्तमान शब्द से परे "कल्पप्" "देश्य" और देशीयर् ये प्रत्यय होवें । विद्वत्कल्प' वा विद्वद्देश्य' 'वा विद्वद्देशीय' (जिस के विद्वान् होने में थोड़ी कसर हो) । पचति कल्पम्—पकाने में थोड़ी कसर रखता है ॥

१२१३ ॥ विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात् तु । ५ । ३ । ६८ । ईषदून पटुः । बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम् । पचतिकल्पम् ॥

ईषत् असमाप्ति अर्थ में विद्यमान सुबन्त के पूर्व भाग में "बहुच्" प्रत्यय विकल्प करके होवे । बहुपटु' 'वा" पटुकल्प (जिस के चतुर होने में थोड़ी सी कसर हो) । यहां "सुप" ग्रह क्यों कहा । उत्तर देता है "पचतिकल्पम्" यहां 'पचति' इस तिङन्त के पूर्व बहुच् न हो जावे ॥

१२१४ ॥ प्रागिवात् कः । ५ । ३ । ७० । इवेप्रतिकृताविस्यतः प्राक् काधिकारः ॥

यहां से १११ पर्यन्त क प्रत्यय का अधिकार होवे ॥

१२१५ ॥ अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः । ५ । ३ । ७१ । कापवादः । अव्यय और सर्वनाम इन की टि के पूर्व अकच् प्रत्यय होवे । यह 'क' का अपवाद है ।

१२१६ ॥ अज्ञाते । ५ । ३ । ७३ । कस्यायमश्वोऽश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वकैः ॥

अज्ञात (जो विदित न हो) इस अर्थ में वर्त्तमान शब्द से परे क प्रत्यय होवे। अश्वकः=यह घोड़ा किसका है। उच्चकैः १३१५ क्या यह ऊंचा है। नीचकैः=क्या यह नीचा है। सर्वकेः=नहीं विदित वे सब कितने हैं॥

१३१७॥ कुत्सिते। ५। ३। ७४। कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः॥

निन्दित अर्थ में विद्यमान शब्द (प्रातिपदिक) से परे क प्रत्यय होवे। अश्वकः=बुरा घोड़ा॥

१३१८॥ किंयत्तदोर्निर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्। ५। ३। ९२। अनयोः कतरो वैष्णवः। यतरः। ततरः॥

दो में से एक के निश्चय अर्थ मे किम्, यत्, और तद्, से परे स्वार्थ में डतरच् प्रत्यय होवे। कतरः (इन दो में से वैष्णव कौन है) ऐसे "यतरः" वा "ततरः" ॥

१३१९॥ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्। ५। ३। ९३। जातिपरिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकरे। कतमो भवतां कठः। यतमः। ततमः। वाग्रहणमकजर्थम्। यकः। सकः॥

॥ इति प्रागिवीयाः॥

बहुतों में से एक के निश्चय करने पर जाति के प्रश्न में किम् आदिकों से परे डतमच् प्रत्यय होवे। आकर (महाभाष्य) में "जातिपरिप्रश्ने" यह निमित्त खण्डन किया है। कतमो भवतां कठः (आप में कठ शाखा के पढ़ने वाला कौन है) ऐसे यतमः। ततमः। यहां 'वा' ग्रहण पक्ष में अकच् के होने के लिये है। 'यकः' और 'सकः' ॥ प्रागिवीय प्रत्यय समाप्त हुए॥

१३२०॥ इवे प्रतिकृतौ। ५। ३। ९६। कन् स्यात्। अश्व इव प्रतिकृतिः अश्वकः॥

प्रतिकृति (प्रतिनिधि) रूप अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से परे स्वार्थ में कन् प्रत्यय होवे। अश्वक (लकड़ी का घोड़ा)॥

१३२१॥ सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन्। अश्वकः॥

सब प्रातिपदिकों से परे स्वार्थ में कन् प्रत्यय होवे। अश्वकः (अश्व एव) घोड़ा॥

१३२२॥ तत् प्रकृतवचने मयट्। ५। ४। २१। प्राचुर्य्येण प्रस्तुतम्प्रकृतन्तस्य वचनम्प्रतिपादनम्। भावेऽधिकरणे वा ल्युट्। आद्ये प्रकृतमन्नमन्नमयम्। अपूपमयम्। द्वितीये तु। अन्नमयो यज्ञः। अपूपमयं पर्व॥

१२१० ॥ इष्ठस्य यिट् च । ६ । ४ । १५९ । बहोः परस्य इष्ठस्य लोपः स्याद्यिडागमश्च ॥ भूयिष्ठः ॥

बहु से परे इष्ठन् के आदि इ वर्ण का लोप होवे । और यिट् का आगम होवे । भूयिष्ठ (अतिशयेन बहु) ॥

१२११ ॥ विन्मतोर्लुक् । ५ । ३ । ६५ । इष्ठेयसोः । अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः । स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान् । त्वचिष्ठः । त्वचीयान् ।

इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो विन् और मतु का लोप होवे । स्रजिष्ठ 'वा' स्रजीयान् (अतिशयेन स्रग्वी) । त्वचिष्ठः, 'वा' त्वचीयान् (अतिशयेन त्वग्वान्) ॥

१२१२ ॥ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः । ५ । ३ । ६७ । ईषदूनो विद्वान् । विद्वत्कल्पः । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः । पचतिकल्पम् ॥

ईषत् (थोड़ी) असमाप्ति के अर्थ में वर्तमान शब्द से परे 'कल्पप्' "देश्य" और देशीयर् ये प्रत्यय होवें । विद्वत्कल्प' वा विद्वद्देश्य' वा विद्वद्देशीय' (जिस के विद्वान् होने में थोड़ी कसर हो) । पचति कल्पम्—पकाने में थोड़ी कसर रखता है ॥

१२१३ ॥ विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात् तु । ५ । ३ । ६८ । ईषदूनः पटुः । बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम् । पचतिकल्पम् ॥

ईषत् असमाप्ति अर्थ में विद्यमान सुबन्त के पूर्व भाग में 'बहुच्' प्रत्यय विकल्प करके होवे । बहुपटु' वा पटुकल्प' (जिस के चतुर होने में थोड़ी सी कसर हो) । यहां "सुप" पद क्यों कहा? उत्तर देता है "पचतिकल्पम्" यहां 'पचति' इस तिङन्त के पूर्व बहुच् न हो जावे ॥

१२१४ ॥ प्रागिवात् कः । ५ । ३ । ७० । इवे प्रतिकृतावित्यतः प्राक् काधिकारः ॥

यहां से १९९ पर्यन्त क प्रत्यय का अधिकार होवे ॥

१२१५ ॥ अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः । ५ । ३ । ७१ । कापवादः ।

अव्यय और सर्वनाम इन को टि के पूर्व अकच् प्रत्यय होवे । यह 'क' का अपवाद है ।

१२१६ ॥ अज्ञाते । ५ । ३ । ७३ । कस्यायमश्वोऽश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वके ॥

यहां "अभूत तद्भावे" यह कहना चाहिये। विकार (रूपान्तर=और रूप) को प्राप्तभई प्रकृति में वर्त्तमान प्रातिपदिक से परे कृ, भू, अस् इन तीनों में से किसी एक के योग के होते विकल्प करके स्वार्थ में 'च्वि' प्रत्यय होवे॥

१३२७॥ अस्य च्वौ। ७। ४। ३२। अवर्णस्य ईत् स्याच्च्वौ। अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तङ्करोति कृष्णीकरोति। ब्रह्मीभवति। गङ्गीस्यात्॥

च्वि प्रत्यय के परे रहते अवर्ण को ईकार होवे। कृष्णीकरोति (जो काला न हो उस को पीछे कोई काला करदे) ऐसे। ब्रह्मी भवति (१) गङ्गीस्यात्॥

१३२८॥ अव्ययस्य च्वावीत्वन्नेति वाच्यम्। दोषाभूतमहः। दिवाभूता रात्रिः॥

च्वि प्रत्यय के परे होते अव्यय को ईकार १३२७ न हो ऐसा कहना चाहिये। "दोषाभूतमहः" (दिन जो रात हो गया) "दिवाभूता रात्रिः" रात जो दिन होगई॥

१३२९॥ विभाषा साति कार्त्स्न्ये। ५। ४। ५२। च्विविषये सातिर्वा स्यात् साकल्ये॥

जहां च्वि की प्राप्ति हो वहां विकल्प करके साति प्रत्यय होवे साकल्य का बोध हो तो॥

१३३०॥ सात्पदाद्योः। ८। ३। १११। सस्य षत्वन्न। दधिसिञ्चति। कृत्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति॥

साति के स् को और पद के आदि के स् को ष् न होवे "दधि सिञ्चति" यहां सिञ्चति के स को ष् नहीं हुआ। अग्निसाद्भवति=सारा शस्त्र अग्नि होजाता है। यहां साति के स् को ष् नहीं हुआ॥

१३३१॥ च्वौ च। ७। ४। २६। दीर्घः स्यात्। अग्नीभवति॥

च्वि प्रत्यय परे हो तो अच् को दीर्घ होवे। अग्नीभवति=वहसारा आगहोजाताहै।

१३३२॥ अव्यक्तानुकरणाद्द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच्। ५। ४। ५७। द्व्यजवरं न्यूनन्न तु ततो न्यूनम्। अनेकाजिति यावत्। तादृशमर्द्धं यस्य तस्माड्डाच् स्यात् कृभ्वस्तिभिर्योगे॥

---

(१) वह नद जो गङ्गा हो जावे॥

प्राधुय (बहुतायी) करके प्रारम्भ की गई वस्तु को प्रकृत कहते हैं। जब प्रतिपादन (वचन) को वचन कहते हैं। "वचनम्" यहां भाव में वा अधिकरण में ल्युट् प्रत्यय आया है। इस लिये 'प्रकृत के कहने में समर्थ प्रथमान्त से परे मयट् प्रत्यय होवे। वा। प्रकृत का वचन जिस में हो उस अर्थ में वर्तमान प्रथमान्त से परे मयट् प्रत्यय होवे। ये दो अर्थ सूत्र के होते हैं। भाव (प्रथम) में जैसे—अन्नमयम् (अन्न का अधिकार)। अपूपमयम् (प्रस्तुतोऽपूप) (पूड़े का अधिकार) द्वितीय में जैसे अन्नमय' (प्रकृतमन्नमुच्यतेऽत्र) (जिस यज्ञ में अन्न का अधिकार हो)। अपूपमयम् (पर्व जिसमें पूड़े का अधिकार॥

१३२३ ॥ प्रज्ञादिभ्यश्च । ५ । ४ । ३८ । अण् स्यात् । प्रज्ञ एव प्राज्ञ । दैवत ॥

प्रज्ञादियों से परे स्वार्थ में अण् प्रत्यय होवे। प्राज्ञ' १ ६१। २११ (विद्वान्) दैवत' १ ६१। २११ (देवतैव)=देवता॥

१३२४ ॥ बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम् । ५ । ४ । ४२ । बहूनि ददाति बहुशः । अल्पशः ॥

"जो कारक बहुत वा थोड़े अर्थ में विद्यमान हो उस से परे शस् प्रत्यय विकल्प करके होवे। बहुश' = बहुत देता है। अल्पश' (अल्पानि ददाति) थोड़ा देता है॥

१३२५ ॥ आद्यादिभ्यस्तसेरुपसंख्यानम् । आदौ आदितः । मध्यतः अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः ॥

आद्यादियों से परे तसिल् प्रत्यय हो। ऐसा कहना चाहिये। आदित (आदिमें) मध्यत (मध्ये) मध्यमें। अन्तत' (अन्ते) अन्तमें। पृष्ठत' (पृष्ठे) पीछे। पार्श्वत' (पार्श्वयो') दहिने वा बांए पासे। यह आद्यादिगण आकृतिगण है। स्वरतः = स्वरसाथसे। वर्णत' (वर्णेन)॥

१३२६ ॥ (१)कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्वि । ५ । ४ । ५० । अभूततद्भाव इति वक्तव्यम् । विकारात्मतांप्राप्नुवत्यांप्रकृतौ वर्तमाना द्विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे ॥

---

(१) इस सूत्र का भी ऐसा अर्थ है "अभूत (असत्य) के तद्भाव के गम्यमान होने कृ भू अस् इन तीन धातुओं में से किसी एक के योग के होने पर सम् पूर्वक पद धातु के कर्ता में वर्तमान प्रातिपदिक से परे स्वार्थ में विकल्प करके "च्वि प्रत्यय होवे"॥

चटका । मूषिका । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । मेधा । इत्यादि । गङ्गा । सर्वा ॥

अज आदि गण का और अकारान्त का वाच्य जो स्त्रीत्व उस के प्रकाश करने में "टाप्" प्रत्यय होवे । उदा० अजा १३४, १८२ बकरी । एडका = भेड । अश्वा (अश्व + टाप्) चटका = चिडिया । मूषिका (चूही) । बाला (लडकी) । वत्सा (बच्छी) । होडा, वा मन्दा वा विलाता = लडकी । इत्यादि और भी जानलेने । गङ्गा (भागीरथी) । सर्वा (सब स्त्री) ॥

१३३६ ॥ उगितश्च । ४ । १ । ६ । उगिदन्तात् प्रातिपदिकान्ङीप् । भवन्ती । पचन्ती ॥

उक् है इत् जिस का ऐसे प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में "ङीप्" प्रत्यय होवे । भवन्ती (भवत् + ङीप्) । पचन्ती (पचति) पचत् + ङीप् ॥

१३३७ ॥ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः । ४ । १ । १५ । अनुपसर्ज्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तन्ततःस्त्रियां ङीप् । कुरुचरी । नदट् नदी । देवट् देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी । ऊरुदघ्नी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । प्रास्थिकी । लावणिकी । यादृशी । इत्वरी ॥

अनुपसर्जन (प्रधान) जो "टित् आदि" (टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, और क्वरप्) प्रत्यय (१) "इनमें से कोई एक है, अन्त में जिस के ऐसा जो अकारान्त" प्रातिपदिक उस से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में "ङीप्" प्रत्यय होवे । कुरुचरी । (कुरुषु चरति या सा) ८३८ । २५५ । पचादि गण में 'नद' के स्थान में नदट् और 'देव' का देवट् लिखा है इस से उन से परे ङीप् हुआ तो क्रम से नदी । देवी । उनके रूप हुए । सौपर्णेयी (सुपर्णाया अपत्यम् स्त्री चेत्) १०८७ । ऐन्द्री (इन्द्रो देवताऽस्याः) १११४ औत्सी १०६८ उत्स के वंश की लडकी । ऊरुद्वयसी, 'वा' ऊरुदघ्नी, वा ऊरुमात्री १२४७ जांघभरप्रमाण वाली । पञ्चतयी १२४८ । आक्षिकी ११८७ । प्रास्थिकी १२२५ । लावणिकी, लवण बेचने वाली । यादृशी ३७० जैसी । इत्वरी, जानेवाली ॥

१३३८ ॥ नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् । स्त्रैणी पौंस्नी । शाक्तीकी । आढ्यङ्करणी । तरुणी । तलुनी ॥

नञ्, स्नञ्, ईकक् और ख्युन्, इन प्रत्ययों को और तरुण और तलुन इन प्राति

(१) इन का अवयव अकार है अन्त में जिस के ऐसा जो प्रातिपदिक' ऐसा भी अर्थ यहां हो सकता है ॥

अ म् और अत् के योग से होते (१)अव्यक्त का अनुकरण जो अनेकाच् जिस के आधे में दो अचों से कम न हों उस से परे डाच् प्रत्यय विकल्प करके होवे। परन्तु इति शब्द परे हो तो नहीं ॥

१३३३ ॥ डाचि बहुलं द्वे भवत इति डाचि विवक्षिते द्वित्वम् ॥

डाच् प्रत्यय के आने पर बहुल करके द्वित्व होवे। इस से डाच् विवक्षित होने पर द्वित्व हुआ ॥

१३३४ ॥ नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्। डाच्परं यदाम्रेडितन्तस्मिन् परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात्। इति तकारपकारयोः पकारः। पटपटाकरोति। अव्यक्तानुकरणात् किम्। दृषत्करोति। द्व्यजवरार्धात् किम्। श्रत्करोति। अवरेति किम्। खरटखरटाकरोति। अनितौ किम्। पटिति करोति ॥ ॥ इति तद्धिताः ॥

डाच् परे है जिस के ऐसे आम्रेडित के परे होते पूर्ववर्ण और परवर्ण, के स्थान में पररूप नित्य होवे। ऐसा कहना चाहिये। इस से तकार और पकार के स्थान में पकार हुआ (पटत्+पटत्+डाच्+करोति) २५१=पटपटाकरोति (वह पटत् ऐसा शब्द करता है) १३३२ सूत्र में "अव्यक्तानुकरणात्" पद क्यों कहा? उत्तर देता है—"दृषत् करोति" यहां डाच् न हो जावे। पुनः वहां "द्व्यजवरार्धात्" ऐसा क्यों कहा? उत्तर देता है:— "श्रत् करोति" यहां श्रत् से परे डाच् न हो जावे। पुनः १३३१ में "अवर" ऐसा क्यों कहा? उत्तर देता है—खरटखरटाकरोति यहां दो से अधिक अच् हैं न्यून नहीं इस लिये यहां भी डाच् हुआ। पुनः वहां ही "अनितौ" पद क्यों कहा? उत्तर देता है —

(२) "पटिति करोति" (वह पटत् शब्द करता है) यहां डाच् न हो ॥

॥ तद्धित प्रत्ययों की प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ अथ स्त्रीप्रत्ययाः ॥

॥ अब स्त्रीप्रत्ययों का वर्णन किया जाता है ॥

१३३५ ॥ अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४॥ अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वन्तत्र द्योत्ये टाप् स्यात्। अजा। एडका। अश्वा।

---

(१) यहां अव्यक्त का मनुष्य की बोली से भिन्न शब्द" यह अर्थ है।

(२) "पटितिकरोति" यहां ("पटत्+इति+करोति") इस अवस्था रूप में— "अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ"।६।१।९८। इस सूत्र से अत् को पर रूप हुआ है।

चटका । मूषिका । बाला । वत्सा । होडा । मन्दा । विलाता । मेधा । इत्यादि । गङ्गा । सर्वा ॥

अज आदि गण का और अकारान्त का वाच्य जो स्त्रीत्व उस के प्रकाश करने में "टाप्" प्रत्यय होवे । उदा० अजा १३४, १८३ बकरी । एडका = भेड । अश्वा (अश्व + टाप्) चटका = चिड़िया । मूषिका (मूही) । बाला (लड़की) । वत्सा (बच्छी) । होडा, वा मन्दा वा विलाता = लड़की । इत्यादि और भी जानलेने । गङ्गा (भागीरथी) । सर्वा (सब की) ॥

१३३६ ॥ उगितश्च । ४ । १ । ६ । उगिदन्तात् प्रातिपदिकान्ङीप् । भवन्ती । पचन्ती ॥

उक् है इत् जिस का ऐसे प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में "ङीप्" प्रत्यय होवे । भवन्ती (भवत् + ङीप्) । पचन्ती (पचति) पचत् + ङीप् ॥

१३३७ ॥ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः । ४ । १ । १५ । अनुपसर्जनं यट्टिदादि तदन्तं यददन्तं तत स्त्रियां ङीप् । कुरुचरी । नदट् नदी । देवट् देवी । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी । ऊरुद्वयसी । ऊरुदघ्नी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । प्रास्थिकी । लावणिकी । यादृशी । इत्वरी ॥

अनुपसर्जन (प्रधान) जो "टित् आदि" (टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, और क्वरप्) प्रत्यय (१) "इनमें से कोई एक है, अन्त में जिस के ऐसा जो अकारान्त" प्रातिपदिक उस से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में "ङीप्" प्रत्यय होवे । कुरुचरी । (कुरुषु चरति या सा) ८३८ । २५५ । पचादि गण में 'नद' के स्थान में नदट् और 'देव' का देवट् लिखा है इस से उन से परे ङीप् हुआ तो क्रम से नदी । देवी । उनके रूप हुए । सौपर्णेयी (सुपर्णाया अपत्यम् स्त्री चेत्) १०८७ । ऐन्द्री (इन्द्रो देवताऽस्याः) १११४ औत्सी १०६८ उत्स के वंश की लड़की । ऊरुद्वयसी, 'वा' ऊरुदघ्नी, वा ऊरुमात्री १२४७ जाघप्रमाण वाली । पञ्चतयी १२४८ । आक्षिकी ११८७ । प्रास्थिकी १२२५ । लावणिकी, लवण बेचने वाली । यादृशी ३०० जैसी । इत्वरी, जानेवाली ॥

१३३८ ॥ नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् । स्त्रैणी पौंस्नी । शाक्तीकी । आढ्यङ्करणी । तरुणी । तलुनी ॥

नञ्, स्नञ्, ईकक् और ख्युन्, इन प्रत्ययों को और तरुण और तलुन इन प्राति

(१) इन का अवयव अकार है अन्त में जिस के ऐसा जो प्रातिपदिक' ऐसा भी अर्थ यहां हो सकता है ॥

पहिलों को भी यहां गिन लेना। वैकी १ ७ पौत्नी १ ०० । मालीकी (मालि प्रवरच मस्या) वरको वाली। (१) भाळघहरणी (जो की गरीब को धनी करे)। तवकी वा तवुगी — जुवान की ॥

१३३९ ॥ यञश्च । ४ । १ । १६ । यञन्तान्ङीप् । यकारलोपे कृते ॥

यञन्त से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् होवे । २९१ से यकार के लोप के करने पर ॥

१३४० ॥ हलस्तद्धितस्य । ६ । ४ । १५० । हल: परस्य तद्धित यकारस्य लोप ईति परे । गार्गी ॥

ई के परे होवे हल् से परे तद्धित के यकार का लोप होवे । गार्गी १ ०१ । १११८ गर्ग के वंश की लड़की ॥

१३४१ ॥ प्राचां ष्फ तद्धित: । ४ । १ । १७ । यञन्तात् ष्फो वा स्यात् स च तद्धित: ॥

यञन्त से परे ष्फ प्रत्यय विकल्प करके होवे और वह तद्धित माना जावे ॥

१३४२ ॥ षिद्गौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ । ङीष् स्यात् । गार्ग्यायणी । नर्तकी । गौरी । अनडुही । अनड्वाही । आकृतिगणोऽयम् ॥

षित् प्रत्ययान्त से परे और गौरादिकों से परे ङीष् प्रत्यय होवे । गार्ग्यायणी १३४१ १ ८ गर्ग ऋषि के वंश की लड़की । (२)नर्तकी (नाचने वाली) ॥

गौरी (गिरा) । अनडुही वा (३)अनड्वाही (गौ:) यह गौरादिगण आकृतिगण है ॥

१३४३ ॥ वयसि प्रथमे । ४ । १ । २० । प्रथमवयोवाचिनोऽदन्ता न्ङीप् । कुमारी ॥

पहिली वय (उमर) के वाचक अकारान्त से परे ङीप् प्रत्यय होवे । कुमारी (कुवारी) लड़की ॥

१३४४ ॥ द्विगो: । ४ । १ । २१ । अदन्ताद्द्विगोर्ङीप् । त्रिलोकी । अजादित्वात् त्रिफला त्र्यनीका ॥

अकारान्त द्विगु से परे ङीप् प्रत्यय होवे । त्रिलोकी (त्रयाणां लोकानां समाहार:) तीनों लोकों का समूह । 'त्रिफला' वा 'त्र्यनीका' ये दो पद तो अजादि होने से टाबन्त हैं ।

(१) यहां "आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञ: करणे ख्युन्" । ३ । २ । ५६ । इस सूत्र करके ख्युन् हुआ है ॥

(२) यहां "शिल्पिनि ष्वुन्" । ३ । १ । १४५ इस करके ष्वुन् प्रत्यय हुआ है ॥

(३) गौरादि गण में अनडुह् शब्द भाम् सहित भी पढ़ा है ॥

१३४५ ॥ वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तोनः । ४ । १ । ३९ । वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनाद्वा ङीप् तकारस्य नः । एता । एनी । रोहिता । रोहिणी ॥

जिस के अन्त में अनुदात्त और उपधा में त् हो ऐसे वर्ण वाचक अनुपसर्जन से परे विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे, और त् को न् होवे । एता 'वा' (एत+ङीप्) एनी (चित्तरमितरी हरिणी) । रोहिता (वा) रोहित+ङीप्=रोहिणी=नक्षत्र विशेष वा लालमृगी ॥

१३४६ ॥ वोतो गुणवचनात् । ४ । १ । ४४ । उदन्ताद्गुणवाचिनो वा ङीष् । मृद्वी । मृदुः ॥

उकारान्त गुणवाचक शब्द से परे विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे । मृद्वी (वा) मृदुः=कोमल स्त्री ॥

१३४७ ॥ बह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ४५ । वा ङीष् । बह्वी । बहुः ।

बहु आदि शब्दों से परे विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे । बह्वी (वा) बहुः ॥

१३४८ ॥ कृदिकारादक्तिनः । रात्री । रात्रिः ॥

क्तिन् प्रत्ययान्त को छोड कर कृत् प्रत्यय का इकार है, अन्त में जिस के उस से परे विकल्प करके ङीष् प्रत्यय होवे । रात्री 'वा' रात्रि' (रात) ॥

१३४९ ॥ सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके । शकटी । शकटि' ।

कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि अक्तिन्नर्थक कृत् (वा) अकृत् सब के इकार से परे ङीष् प्रत्यय होवे । शकटी (वा) शकटि' (गाडी) ॥

१३५० ॥ पुंयोगादाख्यायाम् । ४ । १ । ४८ । या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ततो ङीष् । गोपस्य स्त्री गोपी ।

जो पुवाचक शब्द पुलिङ्ग वाले पादार्थ के सम्बन्ध से स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान हो तो उस से परे ङीष् प्रत्यय होवे । गोपी २५५ (गोपस्य स्त्री) ग्वालिन ॥

१३५१ ॥ पालकान्तान्न । गोपालिका । अश्वपालिका ।

'पालक' है अन्त में जिस के उस से परे ङीष् १३५० न होवे । गोपालिका १३७५, १३५२=ग्वालकी स्त्री । अश्वपालिका १३५२ सहीस की स्त्री ॥

१३५२ ॥ प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुप ।७।३। ४४। प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि स आप् सुपः परो न

चेत्। सर्विका। कारिका। अतः किम्। नौका। प्रत्ययस्थात् किम्। शक्नोतीति शका। असुपः किम्। बहुपरिव्राजका नगरी॥

"सुप् से परे न हो ऐसा जो आप् उस के परे होते" प्रत्ययस्थित ककार से पूर्व अकार को इकार होवे। सर्विका = निन्दित स्त्री। कारिका = करने वाली। यहां "अत" ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है—'नौका' यहां औकार को न होजावे। पुन' यहां "प्रत्ययस्थात् ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देताहै—'शका' यहां धातु के अवयव ककार से पूर्व अकार को इकार न हो जावे। पुन' १२१२ में "असुप" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है "बहुपरिव्राजका" यहां ककार सेउत्तर अकार को इकार न हो जावे॥

१२५३ ॥ सूर्य्याद्देवतायाञ्चाप्। सूर्य्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायाङ्किम्।

देवता अर्थ में सूर्य शब्द से परे चाप् प्रत्यय होवे। सूर्या (जो सूर्य को स्त्री देवता है) यहां 'देवतायाम्' यह पद क्यों कहा ? उत्तर देता है॥

"१२५४ ॥ सूर्य्यागस्त्ययोश्छे च ङ्याञ्च यलोपः। सूरी कुन्ती॥

सूर्य और अगस्त्य इन शब्दों के यकार लोप होवे जब (छ) प्रत्यय 'वा' ङी प्रत्यय परे हो तब। 'सूरी' २११ (मानुषी = कुन्ती) यहां चाप् न हो जावे॥

१२५५ ॥ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्य्याणामानुक्। ४। १। ४९। ङीष् च। इन्द्रस्य स्त्री। इन्द्राणी। वरुणानी। भवानी। शर्वाणी। रुद्राणी। मृडानी।

इन्द्र, वरुण भव शर्व रुद्र मृड हिम अरण्य यव यवन मातुल और आचार्य इन शब्दों से परे ङीष् प्रत्यय होवे और उस के साथ ही आनुक् का आगम भी होवे। इन्द्राणी (इन्द्र की स्त्री)। वरुणानी (वरुण की स्त्री) भवानी (भव की स्त्री) ऐसे शर्वाणी रुद्राणी मृडानी (गौरी)।

१२५६ ॥ हिमारण्ययोर्महत्त्वे। महद्धिमं हिमानी। महदरण्यमरण्यानी।

हिम और अरण्य इन शब्दों को आनुक् का आगम और ङीष् प्रत्यय होवे परन्तु 'महत्व" अर्थ में हो। हिमानी (बड़ी हिम)। अरण्यानी (बड़ा जङ्गल)॥

१२५७ ॥ यवाद्दोषे। दुष्टो यवो यवानी॥

दोष अर्थ में यव शब्द से परे ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होवें। यवानी = खराब जौ॥

१२५८ ॥ यवनाल्लिप्याम्। यवनानां लिपिर्यवनानी।

लिपि अर्थ में यवन् शब्द से परे ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होवें। यवनानी म्लेच्छों की लिखत॥

१३५९॥ **मातुलोपाध्याययोरानुग्वा। मातुलानी। मातुली। उपाध्यायानी। उपाध्यायी॥**

मातुल, और उपाध्याय इन दो शब्दों को अनुक् का आगम विकल्प करके होवे। मातुलानी 'वा' मातुली १३५० (मातुलस्य स्त्री) मामी। उपाध्यायानी "वा" उपाध्यायी (उपाध्यायस्य स्त्री)=गुरु की स्त्री॥

१३६०॥ **आचार्य्यादणत्वञ्च। आचार्य्यानी।**

आचार्य शब्द से परे आनुक् १३५५ के नकार को णकार न होवे। आचार्यानी (आचार्य की स्त्री)॥

१३६१॥ **अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे। अर्य्याणी। अर्य्या। क्षत्रियाणी। क्षत्रिया॥**

अर्य और क्षत्रिय इन शब्दों से परे स्वार्थ में ङीप् और आनुक् इकट्ठे ही विकल्प करके होवें आर्याणी (वा) अर्या (वैश्य की स्त्री)। क्षत्रियाणी (वा)क्षत्रिया=खतरानी॥

१३६२॥ **क्रीतात् करणपूर्वात्। ४।१।५०। ङीष्। वस्त्रक्रीती। क्वचिन्न। धनक्रीता।**

करण वाचक शब्द पूर्व है जिसके ऐसा जो क्रीत शब्द वह है अन्त में जिसके उस से परे ङीप् प्रत्यय होवे। वस्त्रक्रीती (वस्त्र से जो खरीदी गई स्त्री)। कहीं नहीं भी होता। धनक्रीता=धन से खरीदी गई॥

१३६३॥ **स्वाङ्गाच्चोपसर्ज्जनादसंयोगोपधात्। ४।१।५४। असंयोगोपधमुपसर्ज्जनं यत् स्वाङ्गन्तदन्ताङ्ङीप् वा। केशानतिक्रान्ता। अतिकेशी अतिकेशा। चन्द्रमुखी। चन्द्रमुखा। असंयोगोपधात् किम्। सुगुल्फा। उपसर्ज्जनात् किम्। सुशिखा॥**

जिसकी उपधा संयोग नहीं ऐसा जो उपसर्जन स्वाङ्ग (शरीर के अङ्ग का वाचक) वह जिस प्रातिपादिक के अन्त में हो उस से परे विकल्प करके ङीप् प्रत्यय होवे। अतिकेशी (वा) अतिकेशा। चन्द्रमुखी (वा) चन्द्रमुखा (चन्द्रवन्मुखं यस्याः)। इस सूत्र में "असंयोगोपधात्" यह पद क्यों कहा? उत्तर देता है—"सुगुल्फा" यहां पक्ष में ङीप् न हो जावे। पुनः यहां "उपसर्जनात्" यह क्यों कहा? उत्तर देता है "सुशिखा" यहां शिखा उपसर्जन नहीं इस से परे पक्ष में ङीप् न हो जावे॥

१२६४ ॥ न क्रोडादिबह्वचः । ४ । १ । ५६ । क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष् । कल्याणक्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ॥

क्रोडादि स्वाङ्ग वाचक शब्दों से परे, और बह्वच् स्वाङ्ग वाचक शब्दों से परे ङीष् न होवे । कल्याणक्रोडा—जिस स्त्री की छाती सुन्दर हो । यह क्रोडादिगण आकृतिगण है । "सुजघना" यह बह्वच् का उदाहरण है ॥

१२६५ ॥ नखमुखात् सञ्ज्ञायाम् । ४ । १ । ५८ । न ङीष् ।

संज्ञा पक्ष में नख और मुख इन शब्दों से परे ङीष् प्रत्यय न होवे ।

१२६६ ॥ पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः । ८ । ४ । ३ । पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य नस्य णः स्यात् सञ्ज्ञायां न तु गकारव्यवधाने । शूर्पणखा । गौरमुखा । सञ्ज्ञायां किम् । ताम्रमुखी कन्या ।

पूर्वपद में स्थित जो निमित्त (र् वा ष्) उस से परे न् को ण् होवे 'संज्ञा अर्थ में' परन्तु गकार का व्यवधान हो तो नहीं । शूर्पणखा (रावण की भगनी) । गौरमुखा । यहां "संज्ञायाम्" ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है "ताम्रमुखी" (जिस कन्या का मुख ताम्बे के समान लाल हो) यहां ङीष् का निषेध न हो जावे ॥

१२६७ ॥ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् । ४ । १ । ६३ । जातिवाचि यन्न च स्त्रियाम्नियतमयोपधन्ततो ङीष् । तटी । वृषली । कठी । बह्वृची । जातेः किम् । मुण्डा । अस्त्रीविषयात् किम् । बलाका । अयोपधात् किम् । क्षत्रिया ॥

'जाति वाचक जो नियम करके स्त्रीलिङ्ग न हो और उस की उपधा में यकार भी न हो ऐसा जो शब्द उस से परे स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा हो तो ङीष् प्रत्यय होवे । तटी २११ (तीर) । वृषली (शूद्र की स्त्री) कठी कठ शाखा पढ़ने वालों की स्त्री । बह्वृची (ऋग्वेदीयों की स्त्री)। यहां 'जाते" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है 'मुण्डा' (सिरमुण्डी) यहां ङीष् न हो जावे । पुनः यहां "अस्त्रीविषयात्" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है बलाका (बगुलों की पङ्क्ति) यह सदा स्त्रीलिङ्ग में रहता है उस से परे ङीष् न हो जावे । पुनः यहां भी 'अयोपधात्' यह पद क्यों कहा? उत्तर देता है 'क्षत्रिया" यहां ङीष् न हो जावे ।

१२६८ ॥ योपधप्रतिषेधे गवयहयमुकयमत्स्यमनुष्याणामप्रतिषेधः । गवयी । हयी । मुकयी । हलस्तद्धितस्येति यलोपः । मनुषी । मत्स्यस्य ङ्यां यलोपः । मत्सी ॥

१३६७ योपधो के प्रतिषेध में गवय, हय, मुकय, मत्स्य, मनुष्य, इन पांचों से ङीष् का प्रतिषेध नहीहै। हयी (घोडी)। मुकयी = मुकय (जन्तु विशेष) की स्त्री। १२४० से यकार का लोप हुआ तो 'मनुषी' सिद्ध हुआ। मत्स्य शब्द के यकार का ङी के परे होते लोप होता है मत्सी (मच्छी)॥

१३६९ ॥ इतो मनुष्यजाते । ४ । १ । ६५ । ङीष् । दाक्षी ।

मनुष्य जाति वाचक जो इकारान्त शब्द उस से परे ङीष् प्रत्यय होवे। दाक्षी१०८१।

१३७० ॥ ऊङुतः । ४ । १ । ६६ । उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिन. स्त्रियामूङ् । कुरूः । अयोपधात् किम् । अध्वर्युर्ब्राह्मणी ।

जिस मनुष्यजाति वाची उकारान्त शब्द की उपधा में य् न हो उस से परे स्त्रीलिङ्ग मे ऊङ् प्रत्यय होवे। कुरूः (कुरुवंश की स्त्री)। यहां "अयोपधात्" ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है। "अध्वर्युः" यहां ऊङ् न हो जावे ॥

१३७१ ॥ पङ्गोश्च । पङ्गूः ॥

स्त्रीत्व के कहने की इच्छा मे पङ्गु शब्द से परे भी ऊङ् प्रत्यय होवे। पङ्गूः (पङ्गली स्त्री)॥

१३७२ ॥ श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च । श्वश्रूः ॥

श्वशुर शब्द के उकार और अकार का लोप होवे और ऊङ् प्रत्यय भी होवे। श्वश्रूः (श्वशुर+ऊङ्) श्वश्रूः = सास ॥

१३७३ ऊरूत्तरपदादौपम्ये । ४ । १ । ६९ । उपमानवाचि पूर्वपदमूरूत्तरपदं यत् प्रातिपदिकन्तस्मादूङ् । करभोरूः ॥

उपमान वाचक कोई शब्द है पूर्व पद जिस का और ऊरु शब्द है उत्तर पद जिस का ऐसा जो प्रातिपदिक उस से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होवे। करभोरूः (करभवदूरू यस्या) करभ (मणिबन्ध (वीणी) से लेकर चोची के मूल तक हाथ का बाहर का भाग) के समान हैं जांघ जिस स्त्री की ॥

१३७४ ॥ संहितशफलक्षणवामादेश्च । ४ । १ । ७० । अनौपम्यार्थं सूत्रम् । संहितोरूः । शफोरू. । लक्षणोरूः । वामोरूः ।

संहित, शफ, लक्षण, और वाम, इन में से कोई एक है आदि में जिस के और ऊरु शब्द है उत्तरपद जिस का ऐसे शब्द से परे भी ऊङ् प्रत्यय होवे स्त्रीत्व की विवक्षा में। जहा उपमान पूर्व पद नहीं इसी लिये यह सूत्र है। संहितोरूः (संहितावूरू यस्या.)

मिली हुई जांघ वाली) शफोरूः (शफौ (खुरौ) इव मिलितौ ऊरू यस्याः)। लक्षणोरूः (जिस की जांघमें तिल हो)। वामोरूः (वामावूरू यस्याः) सुन्दर जांघ वाली ॥

१२७५ ॥ शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४।१।७३ शार्ङ्गरवाद्यञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन्। शार्ङ्गरवी। बैदी। ब्राह्मणी ॥

शार्ङ्गरव आदि जाति वाचक शब्दों से परे और अञ् का अकार जिस के अन्त में हो उस से परे स्त्री लिङ्ग में 'ङीन्' प्रत्यय होवे। शार्ङ्गरवी (शृङ्गरोरपत्यं स्त्री) शृङ्गर ऋषि के वंशकी कन्या। बैदी १ ८१ — बिद के गोत्र की लड़की। ब्राह्मणी (ब्राह्मण जातिकी स्त्री)।

१२७६ ॥ नृनरयोर्वृद्धिश्च। नारी ॥

ङीन् १२७५ परे हो तो नृ और नर इन दो शब्दों को वृद्धि होवे। नारी (स्त्री) ॥

१२७७ ॥ यूनस्तिः ४।१।७७। युवन्शब्दात् स्त्रियां तिः स्यात्। युवतिः ॥ ॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

युवन् शब्द जब स्त्री वाचक हो तब उस के परे 'ति' प्रत्यय होवे। युवति १८७ — जवान स्त्री ॥ ॥ स्त्रीप्रत्यय समाप्त हुए ॥

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां बालानां चोपकारिका।
कृता वरदराजेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥
इति श्रीवरदराजकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता ॥

वरदराज ने जो व्याकरण से बिना अन्य शास्त्रों में प्रविष्ट हैं और व्याकरण को नहीं जानते उन के और बालकों के उपकार करने वाली यह "लघुसिद्धान्त कौमुदी" बनाई।
॥ श्री वरदराज भट्ट की बनाई हुई लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्त हुई ॥

गुणभूतवसेन्द्वब्दे गङ्गाविष्णुकृता बालौ। कौमुद्याश्चोत्तरार्धस्य विवृतिः पूर्णतामगात् ॥१॥
यस्मादियं शिशुहिता साधिका रूप(शब्द)सन्तते। अत एव कृता भाषया मया शिशुतुष्टये ॥२॥
भ्रम भ्रम च्युतिर्जाता मन्ये संशोधयन्तु ताम्। आर्यैर्ये तानिति क्षमाभावोऽभ्यार्थितजन्मनाम् ॥३॥

इति श्रीमद्गोस्वामिवंशभूषण श्रीयुतपण्डितमथुरानाथात्मज पञ्चनदीयमहाविद्या-
लयाध्यापक पण्डित गङ्गाविष्णुशास्त्रिकृता लघुकौमुद्युत्तरार्धभाषा
विवृतिः समाप्ता।
॥ लघुकौमुदी के उत्तरार्ध की भाषा टीका समाप्त हुई ॥
